* श्रीः *

वैदिक सत्यार्थप्रकाश



लेखक—

युक्ति-विशारद पं० कालूराम शास्त्री ।

* श्रीः *

वैदिक सत्यार्थप्रकाश

उपनाम

आर्यसमाज की अन्त्येष्टि

लेखक—

पण्डित कालूराम शास्त्री

प्रकाशक—

पण्डित कामताप्रसाद दीक्षित

प्रथमावृत्ति—मूल्य [redacted] रुपया

सम्वत् १९९३

मुद्रक—

पं० लालमणि शर्मा, माडर्न प्रेस, कानपुर।

नोट—

लागत अधिक लगने के कारण इस ग्रन्थ पर कमीशन न मिलेगा।

कामताप्रसाद दीक्षित।

पृष्ठ ४५ में चतुर्थ मंत्र का अर्थ पांचवें मंत्र के नीचे और पांचवें मंत्र का अर्थ चतुर्थ के नीचे हो गया है। पाठक सँभाल कर पढ़ें।

॥ श्री राघवाङ्घ्रिशरणम् ॥

भूमिका



स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय प्रभृति कई एक ग्रन्थ लिखे और यजुर्वेद तथा ऋग्वेद के कुछ अंश पर भाष्य किया और इन्हीं के ऊपर से आर्यसमाज नामक एक नवीन मत चलाया। इस नवीन मत चलाने का अभिप्राय स्वामी जी का यह है कि वेद महिमा के गीत गाकर वैदिक धर्म को संसार से एकदम बिदा कर दिया जावे।

सम्वत् १९४० की नरक चतुर्दशी को स्वामी जी का परलोकगमन हो गया। इनके मरने के पश्चात् समस्त आर्यसमाजों की सम्मति से आर्यसमाज प्रयाग ने दयानन्दकृत प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को खतरनाक समझ दूर फेंक दिया और इसके स्थान में द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का निर्माण किया। इतना अनुचित किया कि इस सत्यार्थप्रकाश का लेखक भी स्वामी दयानन्द जी को ठहरा दिया। द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द जी का बनाया नहीं वरन् आर्यसमाज प्रयाग का बनाया है इसका विवेचन हमने सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदड़ में स्पष्ट कर दिया है।[1]

कई एक शास्त्रानभिज्ञ मनुष्य आर्यसमाज को वैदिक मत समझते हैं यह समझने वालों की भूल है। यदि वे आर्यसमाज के ग्रन्थ ही क्रम रीति से पढ़ें तो उनको यह ज्ञान हो जाता है कि आर्यसमाज मत वेदों की रक्षा के लिये नहीं वरन् वेदों को संसार से बिदा करने के लिये चलाया गया है इसका स्पष्टीकरण हमने "आर्यसमाज का मुख्य लक्ष्य" नामक निबन्ध में कर दिया है।

आर्यसमाज वेद, दर्शन, वेदाङ्ग, पुराण, इतिहास प्रभृति किसी भी ग्रन्थ को प्रमाण नहीं मानती। इस मत का आधार चालाकियां हैं, आर्यसमाजी मनुष्य उन चालाकियों से ही दूसरे मनुष्यों पर अपना प्रभाव डाल उनको आर्यसमाजी बनाते हैं।

१—पहिले द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को हम भी दयानन्दकृत समझते थे इसी से इस ग्रंथ के अनेक स्थलों में स्वामी जी या दयानन्द शब्द लिखे गये हैं किंतु तुलसीराम के लेख ने हमारी आंखें खोल दीं।

यद्यपि वे चालाकियां सैकड़ों की संख्या में हैं और उनको हम यहां नहीं लिख सकते, यदि सब चालाकियों को लिखने लगें तो एक सत्यार्थप्रकाश के सदृश दूसरा ग्रन्थ तैयार हो जावे, तो भी हम कुछ चालाकियों का दिग्दर्शन करवा देना उचित समझते हैं। वे चालाकियां ये हैं—(१) घुसने निकलने की कुंजी, (२) हेयोपादेय, (३) पाठ परिवर्तन, (४) प्रमाणांश का ग्रहण, (५) चोरी, (६) सीनाजोरी, (७) नव्यमंत्र निर्माण, (८) तर्क, (९) अर्थ परिवर्तन, (१०) मिथ्या कल्पना, (११) कतरब्योंत, (१२) धोका, (१३) असम्बद्धप्रलाप और (१४) नियोग है। जब किसी धर्म में एक चालाकी आ जाती है तो वह धर्म दूषित हो जाता है, इसी नियम से जब विचारशील मनुष्य आर्यसमाज के चौदह दोषों को देखते हैं तो यही कहने लगते हैं कि न तो आर्यसमाज धार्मिक सोसाइटी है और न ही इसके ग्रन्थ धार्मिक कहे जा सकते हैं।

दोषोद्घाटन

यद्यपि हमने सत्यार्थप्रकाश में चौदह दोष गिनवाये तो भी इस गिनती से कोई मनुष्य दोष को पूर्णरूप से नहीं समझ सकता इसलिये हम यहां पर दोषों को स्पष्ट-रूप से दिखलाते हैं—

घुसने निकलने की कुंजी—सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में यह लिखा गया कि "आर्ष [ऋषि प्रणीत] ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है जैसा एक गोता लगाना बहु-मूल्य मोतियों का पाना" फिर आगे लिखा कि ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान्, सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे। इन्हीं ग्रन्थों के विषय में फिर यह लिख दिया कि "इनमें भी जो जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस उसको छोड़[1] देना" इस कुंजी का फल यह आया कि आर्यसमाजी जिस ग्रन्थ को चाहें आर्ष कह कर प्रमाण में ले लें, यदि दूसरा मनुष्य आर्ष ग्रन्थ का प्रमाण दे तो 'यह वेदविरुद्ध है' ऐसा कह कर आर्यसमाजी उस प्रमाण को न मानें, इसी कुंजी के बल पर सत्यार्थ-प्रकाश के नवम समुल्लास में

ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले
परामृतात्परिमुच्यन्तिसर्वे।

मुण्डक के इस प्रमाण को ले लिया और जब हम "ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्ब-भूव" मुण्डक की इस प्रथम श्रुति को प्रमाण में रखते हैं तब आर्यसमाजी कह देते हैं कि हम इस श्रुति को नहीं मानते क्योंकि यह वेदविरुद्ध है। यह चालाकी है और

१—जब इन्होंने भी वेद विरुद्ध लिखा तब ये बड़े विद्वान् और धर्मात्मा कब रहे।

सत्यार्थप्रकाश में इस चालाकी से बीसियों स्थान में काम लिया गया है, जैसे तृतीय समुल्लास में छान्दोग्य की छः श्रुतियां प्रमाण में रक्खीं और हम यदि "य इह रमणीयाचरणा" छान्दोग्य की इस श्रुति को प्रमाण में रक्खें तो आर्यसमाजी वेदविरुद्ध का बहाना लेकर मानने से इन्कार कर देते हैं। यह घुसने निकलने की कुंजी है. निन्दनीय है एवं आर्यसमाज की विजय के लिये पहिली चालाकी है।

हेयोपादेय—इससे भिन्न आर्यसमाज फिर हेयोपादेय नीति से काम चलाती है। इसका उदाहरण यह है कि सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में इतिहास और पुराण के विषय में लिखा कि "इनको जहर मिले अन्न की भांति त्याग देना क्योंकि ये ग्रन्थ असत्य हैं, इन असत्य ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले चिपट जावे"। यहां पर सत्यार्थप्रकाश ने इतिहास से महाभारत और पुराण शब्द से अठारह पुराण लिये हैं, फिर सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में विश्वामित्र-मतंग की कथाओं, कुन्ती-माद्री-अम्बा-अम्बालिका तथा दासी के नियोग में महाभारत को स्वतःप्रमाण ग्रन्थ माना और षष्ठ समुल्लास के राजधर्म प्रकरण में महाभारत का पढ़ना लिख दिया। इसी प्रकार अष्टम समुल्लास में आर्यावर्त के आरंभिक राजाओं की गणना तथा एकादश समुल्लासान्तर्गत राजवंश के इतिहास में लिख दिया कि "स्वायंभव मनु से लेके महाराज युधिष्ठिर तक का इतिहास महाभारतादि[1] में लिखा ही है"। यहां पर पुराणों को स्वतःप्रमाण माना क्योंकि आर्यावर्त के आरंभिक राजा और राजवंश का इतिहास पुराणों से भिन्न किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता। सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास के "ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय" में कैवल्योपनिषद् और श्वेताश्वतरोपनिषद् को प्रमाणकोटि से बाहर कर दिया एवं फिर प्रथम समुल्लास में "स ब्रह्मा स विष्णुः" श्रुति लिख तथा सप्तम समुल्लास में "अजामेकाम्" श्रुति को रख दोनों उपनिषदों को प्रमाण मान लिया यह आर्यसमाज की दूसरी चालाकी है, जब वह चाहे जिस ग्रन्थ को अमान्य कर दे और जब उसकी इच्छा हो अमान्य ग्रन्थ को स्वतः प्रमाण माननीय बना दे।

पाठ परिवर्तन—जब आर्यसमाज का काम अटकता है तब वह प्रमाणों के पाठ को बदल लेती है, उसको अधिकार[2] है कि प्रमाण के जिस पद को आर्यसमाज चाहे निकाल दे और उसके स्थान में अपनी इच्छानुसार मनमाना पद रख ले। "स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैः" इसकी जगह चतुर्थ समुल्लास में "स्वाध्यायेन जपैर्होमैः" पाठ और "स ब्रह्मा

१—यहाँ आदि शब्द से पुराण ग्रहण किये।

२—आर्यसमाजी बुद्धिमत्ता में अपने को ईश्वर से कुछ अधिक मानते हैं।

स विष्णुः" इस श्रुति का अधिक पाठ परिवर्तन कर दिया। ऐसे ऐसे सत्यार्थप्रकाश में बीसियों उदाहरण हैं जिनमें पाठ बदला गया। प्रमाण का पाठ बदल लेना क्या सभ्य आर्यसमाजी इसको चालाकी न कहेंगे ?

प्रमाणांश का ग्रहण—आर्यसमाज को जब वैदिक सिद्धान्त में उलट फेर करना होता है तब वह प्रमाण को छोड़ प्रमाण के एक अंश को ले लेती है जैसे तृतीय समुल्लास में "कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्" और चतुर्थ समुल्लास में "विद्वाꣳसो हि देवाः" तथा "अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्" लिख नये नये अर्थ किये गये क्या इसे कोई मनुष्य चालाकी के नाम से याद न करेगा ?

चोरी—प्रमाणों का पाठ चुरा लेना आर्यसमाज के बायें हाथ का कर्तव्य है इसको भी पाठक देखें। मनु जी ने "या पत्या वा परित्यक्ता" तथा "साचेदक्षतयोनिः स्यात्" इन दो श्लोकों को युगल श्लोक बनाया, युगल उसे कहते हैं कि जिनका अर्थ मिल कर हो एवं "शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः" तथा "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" इन श्लोकों को भी युगल बनाया, सत्यार्थप्रकाश ने इन युगल श्लोकों के पूर्व पूर्व के श्लोकों की चोरी कर दूसरे दूसरे श्लोक संसार के आगे रख दिये। वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि—

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्॥
एतत्पवित्रं परमं महापातक नाशनम्।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसाद मकरोद्विभुः॥

इसकी जगह सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा कि—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।
सेतुबन्ध इति विख्यातम्॥

दो श्लोकों में से पौन श्लोक[1] सत्यार्थप्रकाश में लिख और सवा श्लोक की चोरी कर यह लिख दिया कि भगवान् राम ने शंकर की स्थापना नहीं की, चोरी के बल पर संसार की आंख में धूल झोंकना क्या यह भयंकर चालाकी नहीं है ?

सीनाजोरी—कहीं कहीं पर सत्यार्थप्रकाश सीनाजोरी का आश्रय लेता है। प्रह्लाद की कथा में खंभे का तपाया जाना और तपे हुये खंभे पर चीटियों की लाइन का चलना तथा हिरण्याक्ष का चटाई की भांति पृथ्वी को लपेट कर ले जाना यह कथा भागवत में नहीं है, झूठा लेख भागवत के मत्थे मढ़ना एवं "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो

१—श्लोक का पाठ भी व्यत्यय कर दिया।

मनुष्या अजायन्त" इस पाठ को यजुर्वेद का पाठ बतलाना, इसी प्रकार पंचम समुल्लास में "विविधानि च रत्नानि विविक्तेपूपपादयेत" मनुस्मृति के नाम से झूठा श्लोक बनाना क्या यह आर्यसमाज की सीनाजोरी नहीं है ? संसार में वह कौन मनुष्य है जो इस सीनाजोरी को चालाकी न समझता हो।

नव्य मंत्र निर्माण—सत्यार्थप्रकाश अपनी मिथ्या कल्पना को वैदिक बनाने के लिये वेद के नाम से झूठे और जाली नये मंत्र बना लेता है जैसे कि चतुर्थ समुल्लास में "ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम। ब्रह्मादि देवपत्न्यस्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादि देवसुतास्तृप्यन्ताम। ब्रह्मादि देवगणास्तृप्यन्ताम्" इत्यादि। क्या कोई ऐसा आर्यसमाजी संसार में पैदा हो गया है जो इस घृणित कार्य को भयंकर चालाकी के नाम से स्मरण न करता हो।

तर्क—सत्यार्थप्रकाश किसी किसी स्थल में अपनी तर्कों से वेदों की धज्जियां उड़ा देता है। इसका उदाहरण यह है कि द्वितीय समुल्लास में सूर्यादि ग्रहों को जड़ लिखा और वेद सूर्य के पूजन की आज्ञा देता है—

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥
अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥

अथर्व० कां० १७ अ० १ सू० १ मं० २२। २३

उदय होते हुये, उदय होनेवाले और उदित सूर्य को प्रणाम है, तीनों अवस्थाओं में विराट्, स्वराट्, सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है। अस्त होते हुये, अस्त होनेवाले और अस्त सूर्य को प्रणाम है। तीनों अवस्थाओं में विराट्, स्वराट्, सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है। इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश ने जो अपनी दलील से फलित ज्योतिष् को झूठा बतलाया है यहां पर भी दलील से वेद का गला घोटा गया है क्योंकि वेद फलित ज्योतिष् को सत्य मानता है इसके लिये द्वितीय समुल्लास का "फलित ज्योतिष् मिथ्या" शीर्षक लेख पढ़ना चाहिये। दलीलों से वेदों को झूठा सिद्ध करना क्या यह आर्यसमाज की नीचता भरी चालाकी नहीं है ?

अर्थ परिवर्तन—प्रमाण के अर्थ बदलने में आर्यसमाज बड़ी निपुण है। देखिये प्रथम समुल्लास "मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति" इसका अर्थ यह है कि "मंगलाचरण में शिष्टाचार है श्रेष्ठ लोग सर्वदा से मंगलाचरण करते आते हैं और मंगलाचरण का शुभ फल भी देखा जाता है तथा मंगलाचरण में श्रुति की आज्ञा भी है"।

इसकी जगह सत्यार्थप्रकाश लिखता है कि "जो न्याय और पक्षपात रहित सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मंगलाचरण कहाता है" कैसा अर्थ बदला ? "कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्" मनु का यह श्लोक राजधर्म का है, इसमें से अर्थ बदल कर आम लोगों के लड़का लड़कियों का अध्ययन सिद्ध किया देखो तृतीय समुल्लास का "अध्ययनाध्यापन"। चतुर्थ समुल्लास में "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" इस मंत्र का अर्थ बदल निराकार ईश्वर के श्रेष्ठ गुण, भुजबल तथा आने जाने की शक्ति और नीचे के अंग से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की उत्पत्ति बतलाई। (१) निराकार ईश्वर में गुण आये कहां से, गुण तो प्रकृति की सन्तान हैं। (२) फिर जब ईश्वर निराकार है तो उसकी भुजा मानना प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। (३) यहां पर सर्वव्यापक ईश्वर के निराकार रहते हुये उसमें चलने फिरने की शक्ति मानी, यह असंभव है। (४) ईश्वर के नीचे के अंग माने जो निराकार में नहीं होते। (५) निराकार ईश्वर से साकार मनुष्य पैदा कर दिये, निराकार से साकार पदार्थ पैदा नहीं होता, हां निराकार साकार खुद बनता है जैसे कि निराकार अग्नि साकार अग्नि का स्वरूप धारण करती है। ऊँट का अर्थ बिल्ली और बिल्ली का अर्थ हलुआ एवं हलुवे का अर्थ जूता लिख कर संसार को धोका देना कौन कहता है कि यह चालाकी नहीं है ?

मिथ्या कल्पना—सत्यार्थप्रकाश अपने सिद्धान्त की पुष्टि में अनेक मिथ्या कल्पनायें उठा कर वेदों के नाम से लिख देता है जैसे कि अष्टम समुल्लास में जवान जवान स्त्री-पुरुष, गाय-बैल, घोड़े-घोड़ियां और गधे-गधियां प्रभृति सृष्टि का पैदा होना तथा नवम समुल्लास में मोक्ष से जीव का लौटना एवं चतुर्थ समुल्लास में "यथेमां वाचं कल्याणीम्" मंत्र के मिथ्या काल्पनिक अर्थ से निराकार ईश्वर का संसारी समस्त मनुष्य स्त्रियों को वेद पढ़ाना। क्या यह मिथ्या कल्पना समूह संसार को धोके में फांस अंधा बनाने के लिये नहीं है ? क्या न्यायशील आर्यसमाजी इसको चालाकी न कहेंगे ?

कतरब्योंत—सत्यार्थप्रकाश में ऐसी घृणित कतरब्योंत है कि जिसको देख मनुष्य दांतों के नीचे अंगुली दबाने लगता है। सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास के अन्त में लिखा है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं और इसमें जितनी भी युक्तियां दी गई वे सब मिथ्या तथा वेद विरुद्ध हैं। कात्यायन, आपस्तम्ब, जैमिनि, गौतम, कणाद, वात्स्यायन, व्यास, बौधायन, मनु आदि जितने भी महर्षि हुये सभी ने ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद माना। महर्षि पतंजलि पसपसाह्निक महाभाष्य में लिखते हैं कि "एकशतमध्वे-

र्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बह्वृच्यनवधाऽथर्वणो वेदः" एक सौ एक यजुर्वेद और एक हजार सामवेद, इक्कीस ऋग्वेद तथा नौ अथर्ववेद की शाखायें हैं। केवल महर्षि पतंजलि ही नहीं वरन् सभी ऋषियों ने ये ही ग्यारह सौ इकत्तीस मंत्र-भाग की शाखायें मानी हैं, इन शाखाओं से भिन्न वेद का एक भी मंत्र पाया नहीं जाता। सत्यार्थप्रकाश ने कोई प्रमाण, कोई युक्ति न देकर शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी और शौनकी शाखाओं को असली वेद कल्पना कर शेष ग्यारह सौ सत्ताइस के मानने का निषेध कर दिया। तृतीय समुल्लास में सत्यार्थप्रकाश ने आर्यसमाज मत को वेद-मत सिद्ध करते हुये लिखा है कि "(प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसीका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है"। इस छोटे से वेदमत शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी, शौनकी रूप वेद से आर्यसमाज के सोलह संस्कार कूच कर गये। चुटिया गई, जनेऊ गया, चाहे जिस स्त्री से विवाह करवा लें, चाहे वह रिश्ते में कुछ भी लगती हो कोई हर्ज नहीं क्योंकि इन चार पुस्तकों में सोलह संस्कार शिखा रखने, उपनयन धारण करने एवं स्वगोत्रोत्पन्न कन्याओं से विवाह करने का निषेध नहीं। कहां तो आर्षग्रन्थों का प्रमाण में लेना और कहां वेद को भी छोड़ देना, इस कतरब्योंत का अभिप्राय यह है कि दूसरे लोग आर्षग्रन्थ और वेद के प्रमाण आर्यसमाज के आगे रक्खेंगे तो आर्यसमाज जवाब न दे सकेगा, इस प्रकार जवाब से जी चुराना तथा वेद का स्वरूप बदल देना क्या यह सभी आर्य-समाजियों की समझ में घृणित चालाकी नहीं है?

धोका—सत्यार्थप्रकाश ऐसा भयंकर धोका देता है कि जिस धोके को देख कर विद्वानों को सत्यार्थप्रकाश से घृणा हो जाती है। चतुर्थ समुल्लास में मृतक पितरों का श्राद्ध तर्पण बतला सोमसद, अग्निष्वात्त, बार्हिषद सोमपा, हविर्भुज, आज्यपा, सुकालिन इन पितरों का तर्पण करवा दिया ये मृतक पितरों के देवता हैं इन्हीं की मार-फत अन्न जल मृतक पितरों को पहुँचता है, जीवितों का बहाना कर मृतकों को जलदान पहुँचाना क्या यह धोका नहीं है? अन्य धोका देखिये "रथेन वायुवेगेन" इतना पाठ तो भाग० स्कं० १० अ० ३६ श्लो० ३८ से लिया और प्रययौ नन्द गोकुलम् भाग० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० १ के 'नन्दगोकुलं' से 'गोकुलं' निकाला तथा "जगाम" और "प्रति" ये दो पद अपनी तरफ से मिला श्रीमद्भागवत के नाम से "रथेन वायु वेगेन जगाम गोकुलं प्रति" यह आधा श्लोक बना दिया, इस जघन्य वृत्ति से दूसरों के ग्रन्थों पर झूठेकलंक लगाना क्या आर्य प्रतिनिधि सभायें इसको पापमिश्रित चालबाजी न कहेंगी?

असम्बद्ध प्रलाप—सत्यार्थप्रकाश में स्थान स्थान पर असम्बद्ध प्रलाप पाया जाता है, प्रमाण को आगे रख सत्यार्थप्रकाश निराकार, निर्विकार, जगदाधार, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त आदि अनेक मनमाने पद जोड़ कर आल्हा गा चलता है, इस विषय में सत्यार्थ-प्रकाश के तृतीय समुल्लास में गायत्री मंत्र का अर्थ देखना चाहिये। मंत्र को आगे रख उससे प्रसंग न रखनेवाले लेख को लिख मंत्र के असली अर्थ को छिपा देना क्या यह विस्तृत आल्हा असम्बद्ध प्रलाप नहीं है और इस आल्हा से जो मंत्र का सूर्यपरक असली अर्थ दबाया जाता है क्या इसका नाम चालाकी नहीं है ?

नियोग—सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में स्त्री के पति का मृतक शरीर घर में पड़े रहने एवं पति के विदेश जाने अथवा पति के जीवित रहने और गर्भवती से न रहा जाय इन चार दशाओं में एक स्त्री को ग्यारह पति कर लेने की आज्ञा वेद के मंत्रों से बतलाई गई है एवं फिर यह भी लिखा है कि "द्विजों में स्त्री और पुरुष का एकही बार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है द्वितीय[1] वार नहीं"। इस दूसरे लेख को आर्यसमाजी सत्य मानते हैं, किसी भी आर्यसमाजी ने अपने कुटुम्ब में किसी भी बहू बेटी को ग्यारह पति नहीं करवाये, ऐसी दशा में मानना पड़ेगा कि यह वेदों का हुक्म नहीं वरन् संसार को वेदों से घृणा हो जावे, संसार यह समझ ले कि वेदों में व्यभिचार ही व्यभिचार भरा पड़ा है इस दोष से वेदों को शैतान की पुस्तक मान संसार उसकी निन्दा करने लगे इसके लिये सत्यार्थप्रकाश में नियोग लिखा गया। क्या नये नये अर्थ बना संसार को वेदों से घृणा करवाना या वेदमत को संसार से उड़ाना यह चालबाजी नहीं है ?

हम आर्यसमाजियों से नम्र निवेदन करते हैं कि वे इन चालाकियों को सत्यार्थ-प्रकाश से निकाल दें जिससे यह ग्रन्थ संसार के पढ़ने योग्य बने। साथही साथ हम सनातनधर्मी विद्वानों से निवेदन करते हैं कि इस ग्रन्थ के पढ़ने से आप लोगों को सत्यार्थप्रकाश के जालों का पता लग गया, अब प्रत्येक विद्वान् आर्यसमाज को तब तक नित्य चैलेंज देता रहे जब तक कि आर्यसमाज सत्यार्थप्रकाश को वेदानुकूल न बनी ले क्योंकि यह एक घर के दो घर बना परस्पर में द्वेषाग्नि पैदा कर लड़ा मारने में जादू कैसा काम करता है।

ग्रन्थकर्त्ता।

१—आर्यसमाजियों की दृष्टि में नियोग चण्डूखाने की गप्प है।

॥ श्रीः ॥

विषयानुक्रमणिका

वेद सिद्धान्त परिचय

विषय		पृष्ठ	विषय		पृष्ठ
१ उन्नति	...	१	१० मत्स्यावतार	...	२८
२ जिह्व	...	३	११ यक्षावतार	...	३१
३ वेद परिमाण	...	४	१२ ब्रह्मावतार	...	३२
४ धर्मशास्त्र	...	७	१३ वराहावतार	...	३४
५ दर्शन	...	८	१४ वामनावतार	...	३४
६ पुराण-इतिहास	...	८	१५ रामावतार	...	३६
७ प्रामाणिक ग्रन्थ	...	१६	१६ कृष्णावतार	...	३७
८ अभिन्न निमित्तोपादान कारण		१७	१७ देवता	...	३८
९ ईश्वर स्वरूप	...	२४	१८ मूर्तिपूजा	...	४३

आर्यसमाज का मुख्य लक्ष्य

१९ दयानन्द	...	५२	२२ आर्यजाति का पशुपन	...	६७
२० आर्यसमाज का स्वरूप	...	५९	२३ वैदिक धर्म	...	७१
२१ वैदिक साहित्य की विदाई		६१	२४ ईसाई धर्म का वर्णन	...	७४

सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदड़

२५ सत्यार्थप्रकाश का जन्म	...	८२	३६ इन्साफ	...	९९
२६ असली सत्यार्थप्रकाश का मृत्यु		८३	३७ दूसरा पहलू	...	१००
२७ द्वितीय सत्यार्थप्रकाश का जन्म		९१	३८ पतंजलि और भारत	...	१००
२८ दूसरे सत्यार्थप्रकाश बनने की खुशी		९२	३९ संस्कार प्रकाश	...	१००
२९ द्वितीयावृत्ति पर कुठाराघात		९३	४० वेदामृत	...	१०१
३० परोपकारिणी का ऐलान	...	९५	४१ यम और पितर	...	१०१
३१ द्वितीयावृत्ति पर वज्रपात	...	९७	४२ निरुक्त और अथर्ववेद	...	१०२
३२ द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश भ्रष्ट		९७	४३ चालाकी	...	१०२
३३ सत्यार्थप्रकाश अशुद्ध है	...	९८	४४ संसार की हानि	...	१०३
३४ सत्यार्थप्रकाश का संशोधन		९८	४५ उद्योग	...	१०४
३५ सत्यार्थप्रकाशमें पंद्रहसौ अशुद्धियां		९८			

प्रथम समुल्लास

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
४६ ईश्वर के नामों की पहिली लिस्ट	१०५	५४ ईश्वर का नाम प्राण ...	११२
४७ प्रत्यक्ष ब्रह्म ...	१०६	५५ हिरण्यगर्भ नाम ईश्वर का	११३
४८ प्रणव महिमा ...	१०६	५६ ईश्वर का नाम नारायण	११४
४९ देव जाति ...	१०८	५७ ईश्वर के नामों की लिस्ट	११५
५० ईश्वर के नामों की दूसरी लिस्ट	१०८	५८ नाम विभाग ...	११६
५१ ईश्वर के नामों की तीसरी लिस्ट	१०९	५९ मंगलाचरण का सर्वथा निषेध	११७
५२ ईश्वर के नामों की चतुर्थ लिस्ट	११०	६० मंगलाचरण का विधान ...	११८
५३ इन्द्र नाम ईश्वर का ...	१११		

द्वितीय समुल्लास

६१ शिक्षा ...	११९	६८ जूते लात ...	१२५
६२ गर्भाधान ...	११९	६९ फलित ज्योतिष् मिथ्या ...	१२६
६३ दुग्धपान ...	१२०	७० सूर्यादि ग्रह जड़ ...	१२८
६४ प्रसूता स्थान परिवर्तन ...	१२१	७१ मंत्र यंत्र ...	१३१
६५ संकोचन-स्तम्भन ...	१२२	७२ शूद्राधिकार ...	१३२
६६ कुचेष्टा की रोक ...	१२२	७३ नमस्ते ...	१३३
६७ भूत प्रेत ...	१२२		

तृतीय समुल्लास

७४ अध्ययनाध्यापन ...	१३६	८४ ब्रह्मचर्य से आयुवृद्धि ...	१४५
७५ गायत्री का अर्थ ...	१३७	८५ विवाहकाल ...	१४६
७६ आचमन और मार्जन का ज्ञान	१४०	८६ कन्या वेदाध्ययन ...	१४७
७७ परिक्रमा ...	१४१	८७ वर्ण व्यवस्था ...	१४८
७८ सन्ध्या अग्निहोत्र ...	१४१	८८ अभिवादन ...	१५०
७९ स्वाहा शब्दार्थ ...	१४२	८९ शूद्रसमाज ...	१५१
८० हवन से वायुशुद्धि ...	१४२	९० नास्तिक ...	१५१
८१ होम में मंत्रोच्चारण का फल	१४३	९१ सृष्टिज्ञान ...	१५२
८२ शूद्राध्ययन ...	१४४	९२ संभव ...	१५३
८३ वेदाध्ययन ...	१४४	९३ पठन पाठन विधि ...	१५४

विषय		पृष्ठ	विषय		पृष्ठ
९४ जाल ग्रन्थ	...	१५६	९८ तिलक कंठी	...	१६४
९५ पुराण-इतिहास	...	१५७	९९ वेद शूद्रानधिकार	...	१६५
९६ गला पकड़नेवाला झूठ	...	१६२	१०० मूर्ख का नाम शूद्र	...	१६८
९७ वैदिक मत	...	१६३	१०१ वेद कन्यानधिकार	...	१६९

चतुर्थ-समुल्लास

१०२ विवाह के नियम	...	१७१	११९ देवता	...	२०२
१०३ विवाह काल	...	१७३	१२० जाली वेदमंत्र	...	२०३
१०४ स्वयम्बर	...	१७९	१२१ बनावटी वेदमंत्र	...	२०३
१०५ वर्ण व्यवस्था में इतिहास		१८०	१२२ यम तर्पण	...	२०४
१०६ वेदादि शास्त्र	...	१८४	१२३ श्राद्ध	...	२०५
१०७ धर्मशास्त्रीय निर्णय	...	१८८	१२४ वैश्वदेव	...	२०८
१०८ वर्णव्यवस्था पर तर्क	...	१९१	१२५ सन्देह निवृत्ति	...	२११
१०९ अनोखी वर्ण संकरता	...	१९२	१२६ विधवा विवाह की विधि		२११
११० जन्म से वर्ण व्यवस्था	...	१९२	१२७ द्विजों में विधवा विवाह का निषेध	...	२१२
१११ वर्ण व्यवस्था का धोका		१९३	१२८ नियोग के नवीन नियम		२१४
११२ विद्यासभा और राजसभा		१९४	१२९ वेद में नियोग की आज्ञा		२१७
११३ फोटू और जीवनचरित्र	...	१९६	१३० स्त्री के नियुक्त पतियों की संख्या	...	२२०
११४ गुप्त प्रश्न	...	१९७	१३१ प्रथम नियोग	...	२२३
११५ चाँदमारी और सालम मिश्री का नुसखा	...	१९८	१३२ द्वितीय नियोग	...	२२४
११६ लड़का क्या है वेद है	...	१९९	१३३ तृतीय नियोग	...	२२६
११७ धायी का दूध और योनि संकोचन	...	२००	१३४ चतुर्थ नियोग	...	२२७
११८ संध्या	... ...	२००	१३५ नियोग की अप्रमाणिकता		२२८

पञ्चम-समुल्लास

१३६ संन्यास का उपदेश	...	२३१	१३९ मुक्ति से लौटना	...	२३३
१३७ ब्रह्म प्राप्ति	...	२३१	१४० संन्यासी का कर्तव्य	...	२३४
१३८ पण्डित मान्नी	...	२३२	१४१ ब्राह्मण का ही संन्यासी होना		२३५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१४२ संन्यासी का आचरण ...	२३६	१४४ संन्यासी को दान ...	२३७
१४३ संन्यासी का लक्षण ...	२३७		

षष्ठ समुल्लास

१४५ राजधर्म ...	२३६	१४८ लोकान्तर सिद्धि ...	२४१
१४६ मंत्री और दूत	२४०	१४९ नवीन वेद का निर्माण ...	२४१
१४७ रानी ...	२४०		

सप्तम समुल्लास

१५० देवता ...	२४२	१६१ ईश्वर के त्रिकालज्ञ का निषेध	२६६
१५१ दयालु और न्यायकारी...	२४४	१६२ जीव लक्षण ...	२६७
१५२ ईश्वर संख्या ...	२४६	१६३ जीव धर्म ...	२६८
१५३ ईश्वर सिद्धि ...	२४६	१६४ जीव का विभुत्व ...	२६९
१५४ जगत्कर्ता ...	२४७	१६५ अभिन्न निमित्तोपादान कारण	२७०
१५५ ईश्वर स्वरूप ...	२४८	१६६ महावाक्य ...	२७०
१५६ सर्वशक्तिमत्व ...	२४९	१६७ वेद प्राप्ति ...	२७४
१५७ अघनाशन ...	२५२	१६८ वेद द्रष्टा ...	२७८
१५८ सगुण-निर्गुण ...	२५६	१६९ ब्राह्मण ग्रन्थों को वेदत्व	२८१
१५९ अवतार ...	२६०	१७० मन्त्रात्मक वेद ...	२८३
१६० जीव की परतन्त्रता ...	२६५	१७१ वेद का कतल ...	२८५

अष्टम समुल्लास

१७२ निमित्त कारण ...	२८६	१८१ आदिसृष्टि की जन्मभूमि	३०४
१७३ ब्रह्मज्ञान ...	२८८	१८२ एक जाति ...	३०५
१७४ अभिन्न निमित्तोपादान कारण	२९३	१८३ तिब्बत में महाभारत ...	३०६
१७५ सर्वशक्तिमान ...	२९९	१८४ म्लेच्छ देश ...	३०६
१७६ ईश्वर की जबरदस्ती ...	२९९	१८५ पुराण-इतिहास सृष्टि ...	३०७
१७७ कार्यकारण की समता ...	३००	१८६ सूर्य के आकर्षण से पृथ्वी का धारण ...	३१०
१७८ प्रलय ...	३००		
१७९ वेद माननेवाले नास्तिक	३०१	१८७ भूभ्रमण विचार ...	३१०
१८० सृष्टि की उत्पत्ति ...	३०२		

नवम समुल्लास

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१८८ मुक्ति प्रकरण ...	३२१	१९५ जवाब नहीं बना ...	३३९
१८९ आत्म प्रशंसा ...	३२१	१९६ ब्रह्मलोक में मुक्ति ...	३४१
१९० मोक्ष में आर्यसमाजियों की घुड़दौड़ ...	३२३	१९७ संसार का खातमा ...	३४२
		१९८ भीड़ भड़क्का ...	३४३
१९१ मुक्तजीव की शक्ति ...	३२६	१९९ ईश्वर की वेइन्साफी ...	३४४
१९२ जीव को सुख ...	३२६	२०० बोझा लादना ...	३४४
१९३ भयंकर छल ...	३२७	२०१ मोक्ष है या जेलखाना ...	३४५
१९४ वेद-दर्शन पर कुठाराघात	३३२	२०२ चतुर्थी मोक्ष ...	३४५

दशम समुल्लास

२०३ शिखा की सफाई ...	३४८	२०८ मनुष्यभक्षण की विधि	३५२
२०४ शूद्रों का बनाया भोजन ...	३४८	२०९ सहभोज ...	३५३
२०५ सब का जूठा खाना ...	३४९	२१० खान पान ...	३५४
२०६ कच्ची पक्की ...	३५०	२११ गू गोबर की अनोखी सूझ	३५४
२०७ शूद्र के हाथ के भोजन का निषेध	३५१	२१२ विद्यावृद्धि में हानि ...	३५५

एकादश समुल्लास

२१३ मंत्र शक्ति ...	३५६	२२४ ईश्वरभक्ति झगड़ा ...	३६९
२१४ ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः ...	३५७	२२५ नाम माहात्म्य ...	३६९
२१५ पोप ...	३५८	२२६ जैनियों से मूर्तिपूजा ...	३७०
२१६ शंकराचार्य को विप ...	३५८	२२७ मूर्तिपूजा ...	३७०
२१७ जीव ब्रह्म की एकता ...	३५९	२२८ मूर्ति में ईश्वर की भावना	३७१
२१८ जीव ईश्वर का भेद ...	३६०	२२९ रुद्राक्ष-तुलसी ...	३७४
२१९ कालिदास गड़रिया ...	३६४	२३० देवता का आवाहन ...	३७५
२२० रुद्राक्ष ...	३६५	२३१ जाली मंत्र ...	३७६
२२१ राजा भोज और शिव-मार्कण्डेय पुराण तथा महाभारत	३६६	२३२ वेद में मूर्तिपूजा का निषेध	३७७
		२३३ मूर्तिपूजा पर पहिली शंका	३८१
२२२ जैनियों की नकल ...	३६८	२३४ मूर्तिपूजा पर सोलह शंका	३८१
२२३ देवी द्वारा संसार रचना	३६८	२३५ मूर्तिपूजा से माता-पिता को दुःख	३८३

विषय		पृष्ठ
२३६ रामेश्वर	...	३८४
२३७ विलक्षण युक्ति	...	३८६
२३८ वाममार्गी और जगन्नाथ		३८७
२३९ वृन्दाबन	...	३८७
२४० तीर्थ	...	३८७
२४१ गुरु महत्व	...	३९२
२४२ आर्यसमाज की गुरुभक्ति		३९२
२४३ शिवपुराण	...	३९३
२४४ श्रीमद्भागवत	...	३९७
२४५ अनर्थकता	...	४००
२४६ ब्रह्मा का मोह	...	४००
२४७ जय-विजय की कथा	...	४०१
२४८ पृथ्वी की चटाई	...	४०३
२४९ प्रह्लाद चरित्र	...	४०५
२५० प्रह्लाद की इक्कीस पीढ़ी	...	४०८
२५१ अक्रूर का गोकुल जाना		४०९
२५२ पूतना	...	४१०
२५३ अजामील	...	४१२
२५४ बोपदेव	...	४१३
२५५ सुमेरु पर्वत का परिमाणादि		४१३
२५६ मार्कण्डेय पुराण	...	४१४
२५७ फलित ज्योतिष्	...	४१४
२५८ ग्रहण	...	४१५
२५९ चक्कर से पुराण सत्य	...	४१६
२६० अस्पृश्यता	...	४१६



ग्रन्थ सम्पादक



पं० कालूराम शास्त्री ।

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

वैदिक सत्यार्थप्रकाश

उपनाम

❀ आर्यसमाज की अन्त्येष्टि ❀

अजं निर्विकल्पं निराकारमेकं
निरानन्दमानन्दमद्वैतपूर्णम् ।
परं निर्गुणं निर्विशेषं निरीहं
परब्रह्मरूपं गणेशं भजामः ॥ १ ॥

वेद सिद्धान्त परिचय ।

उन्नति

ाक देश की उन्नति या अधःपतन उसके मनुष्यों से सम्बन्ध रखता है, जब
ाय के अन्तःकरण में यह भावना जाग उठती है कि हम अपने देश को
सिंहासन पर बिठला कर छोड़ेंगे तब धीरे धीरे परिश्रम करते करते पतित
र्वोत्तम देश बन जाता है, जापान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। आज से
पहिले जिस जापान का कभी नाम भी सुनने में नहीं आता था वही जापान
ड़ देशों की गणना में लिया जाता है। इसके विरुद्ध जब मनुष्यों में आलस्य,
देशरक्षा की बेपरवाही भर जाती है तब सर्वोच्च देश भी अपनी उच्चता
ैश्वर्य को गढ़े में पटक पतित हो जाता है, इसका उदाहरण भारतवर्ष है।
ान्नता की बात है कि आज भारतवासियों के चित्त में यह आकांक्षा पैदा
अपने देश को उन्नत दशा में पहुँचावेंगे और इस विषय पर भारतवर्ष में
भी होने लगा, किन्तु सफलता की आशा अभी बहुत दूर है। भारतवासियों
असली स्वरूप को नहीं समझा, ये इतना ही समझे हैं कि हमारे देश में
ों की बहुतायत हो, घर घर में रुपयों के ढेर लगे हों, अपने देश का शासन
में हो, बस इसी का नाम उन्नति है। कल्पना करो कि इस देश में लीडरों

के घोर परिश्रम से हमारी ये समस्त आशायें पूर्ण भी हो जायं तो भी विचारशील मनुष्य इतनी उन्नति को हिन्दू उन्नति नहीं कह सकते। इस प्रकार की उन्नति का हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति से कोई सम्बन्ध नहीं, यह उन्नति हिन्दू उन्नति नहीं वरन् मनुष्योन्नति कहलाने का ही इसको स्वत्व है, यह पूरी उन्नति भी नहीं अधूरी है। जिस जिस देश में इस उन्नति के साथ साथ मुख्य धार्मिक उन्नति का गठबन्धन किया गया उसी देश की विजय वैजयन्ती भूतल पर चमकी। यद्यपि आज धर्म की तरफ से नाक सिकोड़ी जाती है तो भी क्रिश्चियन् जाति धर्मोन्नति के लिये प्रत्येक वर्ष में करोड़ों रुपये व्यय करती है, इसी हेतु से आज वह संसार की जातियों की शिरोमणि की गणना में आती है। प्राचीनकाल में मुस्लिम जाति में धर्म का उत्कट प्रेम था फल उसका यह हुआ कि एशिया की कौन कहे यूरोप में भी मुस्लिम सभ्यता ने अपना शासन कायम किया। वर्तमान काल में मुसलमान भले ही तास्सुब में भर कर हिन्दुओं से लड़ाई छेड़ दें या हिन्दुओं के बाजों को मस्जिद के सामने बजने से रोक दें अथवा हिन्दुओं को काफ़िर समझ उनकी क्षति को तैयार हो जावें किन्तु इतने पर भी यह मानना पड़ेगा कि मुसलमान जाति का धर्मप्रेम जाता रहा और इसी कारण से इस जाति का अधःपतन हो गया। जिस समय हिन्दू जाति धर्मप्राण कहलाने का हक रखती थी उस समय यह जाति सभ्य, शिरोमणि, संसार की शासक, जगत् की गुरु कहलाती थी। जैसे जैसे यह धर्मप्रेम से पीछे हटी वैसे ही वैसे इसका अधःपतन होता गया। जो जाति भूतल के देशों का शासन करती थी आज धर्मप्रेम की त्रुटि से उसके देश का शासन भी उसके हाथ में नहीं रहा। इस हमारे लेख की सत्यता सिद्ध करने के लिये इतिहास के सहस्रों पन्ने मुक्तकंठ से कह रहे हैं कि इसमें कोई अत्युक्ति नहीं, कथन बिलकुल सही है, इस बात को उत्तम रीति से जानते हुये भी हिन्दू लीडर धर्मरक्षा में जबान नहीं खोलते, यह भारत का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है ?

आज हिन्दू लीडर भले ही धर्म से नौ कोश भागें किन्तु जिन मनुष्यों को देश के उत्थान का सच्चा प्रेम है उनका यह कर्तव्य है कि वे देशोन्नति के साथ साथ धर्मोन्नति का भी उद्योग करें। वर्तमान समय में चाहे रूढ़ियों के तौर पर धर्म का कुछ अनुष्ठान क्यों न होता हो परन्तु धर्म के सिद्धान्तों को आज बड़े बड़े विद्वान् भी नहीं जानते, इसी अनभिज्ञता से देश में अनेक धर्म-संग्राम हुआ करते हैं। एक मनुष्य यह घोषणा करता है कि मेरा ही धर्म सच्चा है, संसार में अन्य जितने भी धर्म हैं वे सब झूठे हैं, दूसरे भी इसी प्रकार का जवाब देने को तैयार होते हैं, बस परस्पर में लड़ाई हो जाती है। एक कहता है कि अब हम तुमको मारेंगे और हम मर जायंगे क्योंकि

तुमने हमारे धर्म की तौहीन की है। दूसरा कहता है कि हम तुम्हें नाकों चने चववा देंगे, तुमने हमारे धर्म को झूठा कैसे कहा। इस प्रकार की घटनायें नित्य होती रहती हैं किन्तु धर्म पर जान खोने वाले या धर्म पर संग्राम रोप देने वाले मनुष्यों से यदि धर्म का स्वरूप पूछा जाय तो दोनों ही मौन रह जायंगे।

अन्य धर्मों की कौन कहे आज हम सनातनधर्म और आर्यसमाज की कथा सुनाते हैं।

जिद्द

सनातनधर्मी कहते हैं कि हम धार्मिक हैं, वेदों के मानने वाले हैं और वेदों में हमारे ही धर्म का वर्णन है आर्यसमाज के धर्म का वेदों में पता भी नहीं चलता। इसके विरुद्ध आर्यसमाजी यही लिखते पढ़ते हैं कि सनातनधर्म एक पोपजाल है, लोगों को ठगने की कुंजी है, वेद में ऐसे ढपोलसंखी धर्म का अनुमोदन नहीं वरन् खण्डन है, हमारा ही धर्म एक ऐसा धर्म है कि जिसको वेद का प्रत्येक पन्ना या हर एक मंत्र सच्चा बतला रहा है, इस प्रकार से दोनों ही परस्पर में लड़ते हुये वेदों के अभिप्राय से निन्यानवे कोश दूर रहते हैं।

संसार के किसी विषय को जानने के लिये पहिले उसके सहायक नियमों का ज्ञान करना होता है, कोई भी मनुष्य एफ० ए० की पढ़ाई पढ़े बिना बी० ए० की पढ़ाई को नहीं समझ सकता, इसी प्रकार संस्कृत की मध्यमा परीक्षा के ग्रन्थ पढ़े बिना शास्त्री और आचार्य श्रेणी के ग्रन्थ उसकी समझ में नहीं आ सकते। मशीनों के इंजीनियर पहिले मशीन चलाने और उसके कल-पुरजों का अध्ययन करते हैं इसमें प्रवीण होने पर ही वे मशीन चलाने के काम को हाथ में लेते हैं। जब तक कोई मनुष्य 'ला' का विद्वान् न हो जाय तब तक वह वकालत करने का अधिकारी नहीं है। रोग का लक्षण, औषधियों के गुण तथा अनेक औषधियों के संयोग से पेटेंट औषधी बनाने वाला वैद्य ही रोगी के रोग को हटा देने का साहस रखता है। जहाँ तक हमारी दृष्टि दौड़ती है वहाँ तक हमको यही पता लगता है कि सहायक नियमों का विद्वान् होने पर ही किसी विषय का विद्वान् होता है, यही बात शास्त्रों के जानने और उनके निर्णय पर पहुँचने में पाई जाती है। भास्कराचार्य ने "द्विविधगणितमुक्तम्" सिद्धान्तशिरोमणि के इस पद्य में यह बतलाया है कि जो बीजगणित, रेखागणित एवं साधारण गणित तथा शब्दशास्त्र का विद्वान् होगा वही ज्योतिष शास्त्र के गहरे भावों को जानेगा, अन्य नहीं।

बस हमारा भी यही कथन है कि जब तक यह मनुष्य परमोपयोगी वेद के कुछ सिद्धान्तों को नहीं समझता तब तक लाख बार समझाने पर भी इसके अन्तःकरण में सत्यासत्य का निर्णय स्थान नहीं करता। जिन मनुष्यों की यह आकांक्षा हो कि हम वेद के सच्चे भाव को समझें उनको चाहिये कि वे हठ और दुराग्रह को तो दियासलाई दिखला दें और इस प्रकरण में लिखे हुये कुछ वैदिक विषयों के समझने का परिश्रम करें, यदि एक बार के समझने से न आवे तो बार बार इन विषयों को विद्वानों के आगे रख घोरतर परिश्रम करें, इनके आ जाने पर वेद रास्ता दे देगा और यह पता लग जायगा कि वास्तव में सनातनधर्म वेद प्रतिपाद्य धर्म है या आर्य-समाज। जो मनुष्य इन विषयों पर परिश्रम न करेगा वह वेदतत्व को न जान सकेगा और उसका मनुष्य जीवन धारण करना व्यर्थ होगा। जानने के योग्य विषय हम क्रम से इस निबन्ध में लिखते हैं उनको जिज्ञासु पढ़ें।

वेद परिमाण

धार्मिक मनुष्य का सबसे पहिले यह कर्तव्य है कि वह वेद को जाने, वेद का स्वरूप कैसा है इसके ऊपर महर्षि आपस्तम्ब लिखते हैं कि "मंत्रब्राह्मणयोर्वेदनाम-धेयम्" मंत्र और ब्राह्मण इन दो का नाम वेद है। ब्राह्मण भाग में ऐतरेय, शतपथ, तैत्तिरीय, ताण्डय, कौषीतकि आदि अनेक हैं। ऋग्वेद के ऐतरेय व कौशीतकि, शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ, कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय, सामवेद का ताण्डय और अथर्ववेद का गोपथ ब्राह्मण है। संसार में जितने भी ऋषि हुये हैं सभी ने ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद माना है, हम कुछ ऋषियों के नाम नीचे दिखलाते हैं। महर्षि जैमिनि लिखते हैं कि—

तच्चोदकेषु मंत्राख्या। मीमांसा० अ० २ सू० ३२

शेषे ब्राह्मणशब्दः। मीमांसा० अ० २ सू० ३३

प्रथम सूत्र में मंत्रात्मक वेद बतलाया अर्थात् प्रेरणा लक्षण श्रुति ही मंत्र है। फिर दूसरे सूत्र में मंत्र से जो शेष वेद है वह ब्राह्मण शब्द से कहा जाता है। महर्षि गौतम लिखते हैं कि—

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।

न्याय० अ० २ सू० ५७

अर्थात् (तदप्रामाण्यम्) उस वेद का प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि (अनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः) उसके वाक्यों में असत्-पूर्वापर विरोध, दो बार कहना इत्यादि दोष हैं। असत्य का उदाहरण यथा "पुत्रकामःपुत्रेष्ट्या यजेत' जिसे पुत्र की इच्छा हो पुत्रेष्टि यज्ञ करे, परन्तु कहीं पुत्रेष्टि करने से भी पुत्र नहीं होता, जब कि इस प्रत्यक्ष वाक्य का प्रमाण नहीं तो "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः" स्वर्ग की कामना से अग्निहोत्र करे ऐसा जो वेद में अदृष्टार्थ वाक्य है उसकी (प्रामाण्यम्) सत्यता में कैसे विश्वास होवे। यहां पर 'पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत' और 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः' ये दोनों श्रुतियां ब्राह्मण की हैं अतएव ब्राह्मण को वेद मान नास्तिक ने वेद को झूठ कहने का कलंक लगाया है। महर्षि कणाद लिखते हैं—

दृष्टानां दृष्टप्रयोजनानां दृष्टाऽभावे प्रयोगोऽभ्युदयाय।

वैशे० अ० १० आ० २ सू० ८

(दृष्टानाम्) [वेद में] देखे हुये (दृष्टप्रयोजनानाम्) जिनका प्रयोजन इस लोक में ही दीखता है उनका तथा (दृष्टाभावे) जब दृष्ट ऐहिक फल न मिले तब भी (प्रयोगः) अनुष्ठान करना (अभ्युदयाय) पारलौकिक फल के लिये [माननीय है]। दृष्टफल और अदृष्टफल दोनों का ही विधान ब्राह्मण ग्रन्थों में है और इस सूत्र में दृष्टादृष्टफल वेद में बतलाया गया है, अब मानना पड़ेगा कि महर्षि कणाद ब्राह्मणों को वेद मानते हैं। महर्षि वात्स्यायन लिखते हैं कि—

वात्स्यायनभाष्यम्— **पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेतेति नेष्टौ संस्थितायां पुत्रजन्म दृश्यते। दृष्टार्थस्य वाक्यस्यानृतत्वाद्-दृष्टार्थमपि वाक्यं अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इत्याद्यनृत-मिति ज्ञायते।**

वेद में लिखा है कि जिसको पुत्र की इच्छा हो वह पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करे परन्तु उक्त यज्ञ करने पर भी बहुत मनुष्यों के पुत्र नहीं होता अतः सिद्ध हुआ कि जब प्रत्यक्षफल में मिथ्यात्व है तो अदृष्टफल जैसा कि अग्निहोत्र करने से स्वर्ग होता है यह भी मिथ्या है। जिस प्रकार न्यायदर्शन के कर्ता महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र में ब्राह्मणों को वेद माना है उसी प्रकार न्यायदर्शन के भाष्यकार महर्षि वात्स्यायन ने उसी सूत्र के उपरोक्त भाष्य में ब्राह्मणों को वेद माना है। महर्षि व्यास लिखते हैं कि—

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्। वेदान्त० अ० २ पा० १ सू० २७

ब्रह्म जो प्रत्यक्ष व अनुमान का विषय नहीं है केवल शब्द मूल है अर्थात् शब्द ही प्रमाणक (प्रमाणवान्) है, मूल शब्द यहां प्रमाण वाचक है, शब्द ही प्रमाण में साध्य होने से श्रुति से ब्रह्म का निरवयव होना व कारण होना सिद्ध है। जब श्रुति (शब्द प्रमाण से) सिद्ध है तो अन्य प्रत्यक्ष आदि के विरुद्ध होने से उसके कारण व कर्ता होने में शंका व दोष आरोपण करना युक्त नहीं है। ब्रह्मसूत्र के आरम्भ से अन्त तक उपनिषदों की व्याख्या है। यहां पर उपनिषदों को वेद मान कर भगवान् व्यास जी ने इस सूत्र को रचा है इससे सिद्ध है कि उपनिषदें जो श्रुतियों से भरी हैं वे वेद हैं। वेदान्त के भाष्यकार भगवान् रामानुजाचार्य, भगवान् वल्लभ, प्रभु निम्बार्क तथा माध्व और जगद्गुरु शंकराचार्य हैं, इन सभी आचार्यों ने उपनिषदों को वेद माना है। महर्षि बौधायन लिखते हैं कि—

मंत्रब्राह्मणमित्याहुः । बौधायन० सूत्र

मंत्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं। इस विषय में मनुजी लिखते हैं कि—

उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

मनु० अ० २ श्लो० १

वेद में वचन मिलता है कि सूर्य के उदयकाल, अनुदयकाल और सूर्य तथा नक्षत्र के अदृश्यकाल में भी हवन करना चाहिये यह वैदिकी श्रुति है। "उदिते जुहोति, अनुदिते जुहोति" ये श्रुतियां ब्राह्मण ग्रन्थों की हैं और मनुजी ने इनको वेद की श्रुति माना है अतएव मनुजी की दृष्टि में ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं। यदि हम समस्त ऋषियों की सम्मतियां लिखें तो सत्यार्थप्रकाश से भी बड़ा ग्रन्थ बन जाय, रही बात निर्णय की, निर्णय तो ऊपर लिखे प्रमाणों से ही हो जाता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं।

अब मंत्रभाग का निर्णय दिखलाते हैं, महर्षि पतंजलि ने व्याकरण के महाभाष्य के प्रथम आह्निक में लिखा है कि—

चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदः।

चार वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये छः उनके अङ्ग हैं, तथा वेदों के रहस्य, उपनिषदें और वेद बहुत प्रकार से विभक्त हैं जैसे कि

एक सौ एक शाखा यजुर्वेद की, सहस्र शाखा सामवेद, इक्कीस शाखा ऋग्वेद और नौ शाखा अथर्व वेद की हैं इस प्रकार मंत्रात्मक वेद ग्यारह सौ इकत्तीस शाखाओं में विभक्त है, ब्राह्मण तथा उपनिषदें और शाखा ये सब मिल कर वेद कहलाते हैं।

धर्मशास्त्र

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥
पराशरव्यासशंखलिखिता दक्षगोतमौ।
शातातपोवसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥

याज्ञवल्क्य स्मृ० अ० १ श्लो० ४। ५

मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, लिखित, दक्ष, गातम, शातातप और वसिष्ठ इन बीस महर्षियों के बनाये बीस धर्मशास्त्र कहाते हैं। सब बीसों धर्मशास्त्रों के प्रतिपाद्य विषय संक्षेप से ये हैं कि चारों वर्ण और चारों आश्रमों के भिन्न भिन्न कर्तव्य, गर्भाधानादि संस्कार, संध्या, तर्पण, पंचमहायज्ञ, श्राद्ध, वेदाध्ययनविधि, दानधर्म, स्त्रीधर्म, सूतकशुद्धि शावशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, भक्ष्याभक्ष्य, दायभाग, वर्णसंकरों की उत्पत्ति और उन उनके कर्म, सब प्रकार के प्रायश्चित्त, आपद्धर्म और योगाभ्यासादि निवृत्ति मार्गोपदेश। वैदिक धर्मियों को सभी धर्मशास्त्र मान्य हैं, हां, जहां पर मनु के साथ किसी धर्मशास्त्र के वचन का विरोध आवेगा वहां मनु का कथन प्रमाण और अन्य धमशास्त्र का विरोधी कथन अप्रमाण रहेगा, इसकी पुष्टि में

वेदार्थोपनिबद्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्।
मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न शस्यते ॥

बृहस्पति०

मनु के प्रत्येक पद्य में वेद के मंत्रों का अर्थ बंधा हुआ है इसलिये समस्त धर्मशास्त्रों में मनुस्मृति प्रधान स्मृति है, मनु के कथन के विपरीत जो स्मृति वाक्य है

वह वाक्य स्मृति कहलाने का स्वत्व नहीं रखता अतएव वह त्याज्य हैं। वेद ने भी मनुस्मृति की प्रशंसा की है, प्रमाण देखिये—

मनुर्वै यत्किंचिदवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः ।

छान्दोग्य०

मनु ने जो कुछ भी कहा है वह भेषजता का भेषज है, कल्याणकारकों में भी कल्याणकारक है।

दर्शन

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त ये छः दर्शन हैं।

पुराण–इतिहास

पुराण अठारह हैं और उनके नाम ये हैं—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैंगं सगारुड़म् ।
नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कन्दसंज्ञितम् ॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् ।
वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥

[श्रीमद्भागवत स्कं० १२ अ० ७ श्लो० २३ । २४]

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, लिंग, गरुड़, नारद, भागवत, अग्नि, स्कन्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वराह, मत्स्य, कूर्म और ब्रह्माण्ड ये अठारह पुराण हैं।

वाल्मीकीय रामायण और महाभारत ये दो ग्रन्थ इतिहास के हैं। इतिहास तथा पुराण में चार विषयों की प्रधानता है–(१) सृष्टि वर्णन, (२) वेदों का निरुक्त, (३) धर्म वर्णन और (४) चरित्रोद्घाटन। सृष्टि का वर्णन पुराणों में जिस उत्तमता के साथ लिखा गया है ऐसा वर्णन वेदों में भी नहीं पाया जाता। पुराण न हों तो वेदों के अनेक स्थलों के अर्थ ही नहीं हो सकते जैसे कि "नमो नीलग्रीवाय" इसका सीधा अर्थ यह है कि नीले गले वाले को मैं प्रणाम करता हूँ किन्तु यह पता नहीं लगता कि नीले गलेवाला है कौन ? नीले गले वाला किसी काश्तकार का बैल है या नीलकंठ पक्षी ? अथवा

जिसने गला खुदवा लिया हो ऐसा कोई मनुष्य, ऐसी उलझन में पुराण काम देता है। पुराण ने यह बतलाया कि देवता और असुरों ने मिल कर अमृत प्राप्ति के लिये समुद्र मथा। समुद्र में से अमृत न निकलकर हलाहल विष निकला। उस विष से प्रजा पीड़ित हुई, देवता घबरा गये, शंकर के पास पहुँचे, सब घटना सुनाई, पार्वती के कथन पर शंकर ने विष का पान कर लिया उस विष ने शंकर का गला नीला कर दिया अतएव शंकर का नाम 'नीलग्रीव' हुआ। पुराण ने समझा दिया कि "नमो नीलग्रीवाय" वाक्य से वेद शंकर को प्रणाम करना लिखता है। ऐसे ऐसे अनेक विषय वेदों में ऐसे हैं कि जिनकी गुत्थियों को पुराण ही सुलझाते हैं। इस विषय में पुराण ने लिखा है कि—

यो विद्याच्चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥ १
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥ २
यस्मात्पुरा ह्यनक्कीदं पुराणं तेन तत्स्मृतम् ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३

ब्रह्माण्ड पुराण प्रक्रियापाद अ० १

जिस द्विज ने अङ्ग और उपनिषद् सहित भी चार वेद अध्ययन करके कभी पुराण अध्ययन नहीं किये वह पंडित नहीं हो सकता कारण कि इतिहास और पुराणों में ही वेद उपबृंहित हैं अर्थात् इतिहास और पुराणों में ही अर्थ सहित वेद का विस्तार किया है। अधिक क्या, पुराणादि ज्ञानविहीन अल्पज्ञ पुरुष से ही वेद भय करता है, कारण कि ऐसा ही पुरुष वेद का अपमान करता है। यह अत्यन्त प्राचीन और वेद का निरुक्तस्वरूप होने से इसका नाम पुराण हुआ है जो इसको जानते हैं वे सब पापों से छूट जाते हैं। सृष्ट्युत्पत्ति और वेदार्थ के निर्णय में पुराण परम प्रमाण हैं।

वेद और धर्मशास्त्रों में धर्माधर्म का निर्णय है किन्तु पुराणों में जो धर्माधर्म का निर्णय लिखा गया है वह सविस्तर और बोधगम्य तथा मान्य है। हां, जहां कहीं पुराण के धर्म निर्णय में वेद या धर्मशास्त्र का विरोध आजावे वहां पर पुराण का उतना अंश अमान्य और वेद, धर्मशास्त्र का अंश मान्य होगा इसके ऊपर व्यास स्मृति लिखती है कि—

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥

व्यास० अ० १ श्लो० ४

वेद, धर्मशास्त्र और पुराण इन ग्रन्थों में जहां विरोध आ जावे वहां श्रुति के कथन को ग्रहण करना तथा श्रुति विरुद्ध धर्मशास्त्र एवं पुराण के उस विरोधी अंश को छोड़ देना, और यदि धर्मशास्त्र तथा पुराण इन दोनों में परस्पर विरोध हो तो धर्मशास्त्र को ग्रहण करना और धर्मशास्त्र के विरोधी पुराणांश को त्याज्य समझना।

चतुर्थ विषय पुराण-इतिहास में मनुष्य के चरित्रों का उद्घाटन है। जिस मनुष्य का जिस प्रकार का चरित्र था पुराण ने उसके चरित्र को ज्यों का त्यों लिखा। पुराणों में सच्चरित्र, मध्यम चरित्र और पतित चरित्र तीनों प्रकार के चरित्रोंवाले मनुष्यों का वर्णन आता है, इसके वर्णन का प्रयोजन धर्माधर्म का निर्णय नहीं वरन् इतिहास का वर्णन ही पुराण-इतिहास ने इसका लक्ष्य रक्खा है, इस इतिहास के वर्णन और धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं, जो मनुष्य अपनी अज्ञता से इतिहास वर्णन के साथ धर्मनिर्णय का सम्बन्ध जोड़ते हैं वे धर्माधर्म के स्वरूपज्ञान से वंचित रह जाते हैं। भारतवर्ष में एक उग्रसेन नाम का राजा हुआ। यह राजा गौ, ब्राह्मण, वेद, देवता तथा ईश्वर का भक्त था, प्रजापालक, प्रशान्त, धैर्यवान, मधुरभाषी और न्याय करना इसका काम था, इसके एक लड़का हुआ, लड़के का नाम कंस था। इस कंस ने गौओं के कतल करने, ब्राह्मणों को मार डालने, वेदों को फूकने, देवताओं के वध करने की आज्ञा दे दी। यह कंस ईश्वर की भक्ती से निन्यानबे फुट दूर रहता था। प्रजा का कदन करना, बालकों को मार डालने की आज्ञा देना, धैर्य को पास न फटकने देना, प्रतिक्षण क्रोध के आवेश में रहना, कटु भाषण करना, न्याय का गला घोंट देना कंस का काम था। जो लोग इतिहास से धर्म निर्णय करना चाहते हैं वे उग्रसेन के आचरण से धर्म का ग्रहण करेंगे या कंस के आचरण से ? मनुष्यों के आचरण से धर्म का एक रूप कभी रहता ही नहीं इसलिये विद्वानों ने इतिहास से धर्मशिक्षा का ग्रहण करना नहीं माना, यह तो इतिहास है, "इति-ह-आस" ऐसा हुआ, हुआ तो होगया, इससे धर्मका क्या सम्बन्ध ?

पुराण-इतिहास बड़े गौरव की वस्तु है इसको केवल हम ही नहीं मानते संसार के ऋषि-मुनि, धर्मशास्त्र, दर्शन और वेदों ने इनके महत्व की भूरि भूरि प्रशंसा की है। पुराणों के विषय में वेद लिखते हैं कि—

ये अर्वाङ्मध्य उत वा पुराणं ।

वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति ।
आदित्यमेव ते परिवदन्ति सर्वे
अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् ॥

अथर्व० कां० १० अनु० ४ सू० ८ मं० १७

जो विद्वान् यज्ञ के अन्त में अथवा बीच में पुराण ग्रन्थ और वेदों का पाठ करते हुये सर्वज्ञ परमात्मा की सब प्रकार से स्तुति करते हैं वे सब अखंडनीय दूसरे प्रकाशस्वरूप और तीनों कर्म उपासना एवं ज्ञान को स्वीकार करनेवाले हंसस्वरूप परमात्मा का ही सब ओर से कथन करते हैं । और देखिये—

स वृहतीं दिशमनुव्यचलत् ।१०। तामितिहासश्च
पुराणं च गाथाश्च नाराश ँ सीश्चानुव्यचलन् ।११।

अथर्व० कां० १५ अनु० १ सू० ६ मं० १०।११

वह ईश्वरीय ज्ञानात्मक वेद बड़ी दिशा को चला, उसके पीछे पीछे इतिहास पुराण-गाथा, नाराशंसी चले । नीचे और पढ़िये—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥

अथर्व० कां० ११ अ० ४ सू० ७ मं० २४

ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद सहित पुराण ये सब और देवता उच्छिष्ट प्रलयकाल में अवशिष्ट ईश्वर से उत्पन्न हुये एवं ये सब द्यौलोक में स्थित हैं । यह पुराणों का महत्व है और वेद ने गाया है । प्राचीन भाष्यकारों की तो कथा कौन कहे किन्तु आधुनिक आर्यसमाजी क्षेमकरण तथा श्रीपाद दामोदर सातवलेकर एवं प्रो० रामदेव जयचंद महानुभावों ने भी इन मंत्रों के ये ही अर्थ किये हैं जिनसे पुराणों का महत्व सिद्ध होता है ।

पुराणों को वेद या धर्मशास्त्र नहीं मानता या दर्शन तथा वेदांग पुराणों की पुष्टि नहीं करते इस कारण से आज पुराणों को मिथ्या नहीं कहा जा रहा वरन् वेद, धर्म-शास्त्र, दर्शन और वेदांग बार बार पुराणों के महत्व को संसार के आगे रखते हैं । इतना रहने पर भी जो पुराणों का खंडन किया जाता है इस खंडन में दो ही हेतु होते हैं एक चरित्र और दूसरे असंभव कथायें । हमको समझाया जाता है कि "देखो अमुक पुराण में अमुक पुरुष ने अमुक स्त्री के साथ व्यभिचार किया तथा अमुक मनुष्य ने

मांस खाया या अमुक ने मदिरा पी, ऐसी शिक्षाओं से भरे हुये पुराणों का तो छोड़ना ही उत्तम है। दूसरे यह बतलाया जाता है कि अमुक पुराण में अमुक कथा ऐसी असंभव है जो मनुष्य की बुद्धि में भी नहीं समाती, इस प्रकार की गप्पें लिखनेवाले पुराणों को निर्बुद्धि मनुष्य ही मानेंगे। हम पहले ही लिख आये हैं कि मनुष्य के चरित्र लिखने का अभिप्राय धर्म निर्णय नहीं है, यदि किसी ने व्यभिचार किया या मांस खाया तो इससे उनके चरित्र का पतन हुआ, पुराण व्यभिचार या मांस भक्षण का अनुमोदन नहीं करते फिर इससे धर्म में हानि कैसे पहुँची ? या व्यभिचार करना अथवा मांस खाना धर्म कैसे होगया ? इस कथन पर कटाक्ष करनेवाले को भी यह मानना पड़ता है कि पुराणों का इसमें कोई दोष नहीं और न ही इतिहास में किसी मनुष्य के मांस खाने या व्यभिचार करने से मांस खाना या व्यभिचार करना धर्म हो जाता है। रही बात असंभव कथा की, जैसी असंभव कथायें पुराणों में हैं वैसी अनेक कथायें वेदों में भी पाई जाती हैं, बाइबिल और कुरान में भी आती हैं, वे वास्तव में असंभव नहीं हैं, हमारे ज्ञान की न्यूनता से हमें असंभव जान पड़ती हैं। दूसरों से हमको कोई मतलब नहीं इसलिये कुरान और बाइबिल की असंभव कथाओं को छोड़ते हैं और वेद की असंभव कथा नमूने के तौर पर पाठकों के आगे रखते हैं। कथा यह है—

तत्रेतिहासमाचक्षते। विश्वामित्र ऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव (विश्वामित्रः सर्वमित्रः सर्वं संस्कृतं सुदाः कल्याणदानः पैजवनः पिजवनस्य पुत्रः पिजवनः पुनः स्पर्धनीयजवो वा मिश्रीभावगतिर्वा) स वित्तं गृहीत्वा विपाट्छुतुद्रयोः सम्भेदमाययावनुययुरितरे। स विश्वामित्रो नदीस्तुष्टाव गाधा भवतेत्यपि द्विवदपि बहुवक्तव्यद्द्विवदुपरिष्टात्तद्व्याख्यास्यामोऽथैतद्बहुवत्। २४।२

रमध्वं मे वचसे सोम्याय
ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः।
प्रसिन्धुमच्छा वृहती मनीषा
वस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥

उपरमध्वं मे वचसे सोम्याय सोमसम्पादिन ऋतावरी-र्ऋतवत्य ऋतमित्युदकनाम प्रत्यृतं भवति मुहूर्तमेवैर-यनैरवनैर्वा । मुहूर्तो मुहुर्ऋतुर्ऋतुरर्तेर्गतिकर्मणो मुहुर्मूढ इव कालो यावदभीक्ष्णं चेति । अभीक्ष्णमभीक्ष्णं भवति क्षणः क्षणोतेः प्रक्षणुतः कालः । कालः कालयतेर्गतिक-र्मणः । प्राभिह्वयामि सिन्धुं वृहत्या महत्या मनीषया मनस ईषया स्तुत्या प्रज्ञया वावनाय कुशिकस्य सूनुः । कुशिको राजा बभूव क्रोशतेः शब्दकर्मणः क्रंशतेर्वा स्यात्प्रकाशयति कर्मणः साधु विक्रोशयितार्थानामिति वा नद्यः प्रत्यूचुः । २५।३

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहु-
रपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणि-
स्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥

इन्द्रो अस्मानरदद्वज्रबाहू रदतिः खनति कर्मापाहन्वृत्रं परिधिं नदीनामिति व्याख्यातम् । देवोऽनयत्सविता सुपाणिः कल्याणपाणिः । पाणिः पणायतेः पूजाकर्मणः प्रगृह्य पाणी देवान्पूजयन्ति । तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः । उर्व्य ऊर्णोतेर्वृणोतेरित्यौर्णवाभः । प्रत्याख्या-यान्तत आशुश्रुवुः । २६।४

आ ते कारो शृणवामा वचांसि
ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा

मर्यायेव कन्या शश्वचैते ॥
आशृणवाम ते कारो वचनानि याहि दूरादनसा च रथेन च निननाम ते पाययमानेव योषा पुत्रं मर्यायेव कन्या परिष्वजनाय निनमा इति वा ।

निरुक्त नैगम कां० अ० २ पा० ७

इस विषय में यह इतिहास कहते हैं कि विश्वामित्र पैजवन सुदास राजा का पुरोहित बना, सब का मित्र होने से या सब जिसके मित्र हैं इससे ही विश्वामित्र नाम है, फैला हुआ और अच्छा देने से 'सुदाः' कहलाया, पिजवन का पुत्र होने से राजा का नाम पैजवन था और पिजवन स्पर्धा के योग्य वेगवाला अथवा न मिली हुई गतिवाला, जिसकी गति को कोई नहीं पहुँचता वह विश्वामित्र पुरोहिताई से कमाये धन को लेकर व्यास और सतलुज के संगम पर आया, अन्य मनुष्य नौकर या चोर विश्वामित्र के पीछे धन छीनने को आ रहे थे वहां विश्वामित्र ने नदियों की स्तुति की और कहा कि तुम मेरे लिये ऐसी हो जाओ जिससे मैं बिना नाव वगैरह के तुम्हें पार कर जाऊँ। यहां पर द्विवचन और बहुवचन से नदियों की स्तुति की, इन नदियों को दो संख्या में भी लिया है और बहु संख्या में भी लिया है, अब बहुवचन को सन्मुख रख व्याख्या की जाती है।

मंत्रार्थ यह है—हे जलवालियो! देवताओं के लिये सोम के तैयार करनेवाले मेरे वचन के आदर के लिये मुहूर्त भर अपनी प्रबल गतियों से ठहर जाओ ताकि मैं पार हो जाऊँ; मैं जो कुशिक का पुत्र हूँ रक्षा चाहता हुआ ऊँची दिली स्तुति से सिन्धु को लक्ष्य करके बुलाता हूँ (ऋ० ३।३३।१२।५)।

ठहरो मेरे वचन से सोम तैयार करनेवाले मेरे लिये, हे जलवाली नदियो! ऋत जल को कहते हैं, प्रति स्थान पहुँचा हुआ है, ऊंचे पर्वतों पर भी और उड़ती वायु पर भी है, यद्यपि निचाई की ओर जानेवाला है, मुहूर्त भर गतियों से वा चलनेवाले जलों से। मुहूर्त बहुत थोड़ा समय, 'ऋतुः' गति अर्थ वाले ऋ० (अ० प०) से। मुहुः छोटा सा समय जितना कि अभीक्ष्ण हो, अभीक्ष्ण क्षण के बराबर। क्षण हिंसा अर्थ वाले क्षण (तु० उ०) से है। झटपट चला गया समय (क्षणुतः क्षणु० तु० प० + क) 'कालः' गति अर्थ वाले काल (चु० प०) से है (•कालयति-क्षयं नयति सर्वाणि भूतानि) सिन्धु को बुलाता हूँ, 'बृहत्या' बड़ी, 'मनीषया' मन की तरह से निकली स्तुति

सेवा बुद्धि से रक्षा के लिये कुशिक का पुत्र। कुशिक राजा हुआ है. शब्द अर्थ वाले (क्रुश् भ्वा० प०) से (साधु क्रियतामिति सदा क्रोशति) जिसे करो ऐसे सदा पुकारता है अथवा प्रकाशवाले क्रंश (भ्वा० प०) से है, धर्म का प्रकाश करनेवाला अथवा अर्थों हित की बातों का भली भाँति बतलानेवाला (क्रुश से), विश्वामित्र के इस वचन का नदियों ने उत्तर दिया।

मंत्रार्थ—जिसकी भुजा (भुजा के एकदेश हाथ) में वज्र है उस इन्द्र ने हमें खोदा है, उसने जलों के घेरनेवाले वृत्र को मार गिराया, वही सुन्दर हाथोंवाला हमारा प्रेरक देव हमें समुद्र की ओर ले जा रहा है उसकी प्रेरणा (आज्ञा) में हम फैली हुई जाती हैं (ऋ० ३।२।१३।१)।

निरुक्तार्थ—वज्रबाहु इन्द्र ने हमें खोदा है। रद (भ्वा० प०) खोदने अर्थ वाला है, जलों के घेरनेवाले वृत्र को मार गिराया यह व्याख्या किया गया है (देखो २।१७) प्रेरक देव चला रहा है 'सुपाणिः' उत्तम हाथोंवाला, 'पाणि' पूजा अर्थ वाले पण (भ्वा० आ०) से है, दोनों हाथ जोड़ कर देवताओं को पूजते हैं उसकी प्रेरणा में हम फैली हुई चलती हैं 'उर्व्याः' ऊर्णुञ् आच्छादने (अ० उ०) से है; बहुत स्थान को ढांपनेवाली। वृञ् वरणे (स्वा० उ०) से है यह और्णवाभ मानता है। विश्वामित्र को इस प्रकार निषेध करके अन्ततः उसकी बात को सुनती भईं।

मंत्रार्थ—हे स्तुति करनेवाले! हम तेरे वचनों को स्वीकार करती हैं अपने माल की गाड़ियां और बैठनेवाले रथ समेत दूर (पार) पहुँच जा, पुत्र को दूध पिलाने वाली स्त्री की तरह हम तेरे लिये झुकती हैं अथवा मनुष्य के लिये कन्या की तरह हम तेरे लिये झुकती हैं (ऋ० ३।२।१३।५)।

निरुक्तार्थ—हे स्तुति करनेवाले! हम तेरे वचनों को स्वीकार करती हैं दूर पहुँच जा। अपनी गाड़ियों और रथ समेत, पुत्र को पिलानेवाली स्त्री की तरह हम तेरे लिये झुकती हैं अथवा जैसे मनुष्य के गले लगने के लिये कन्या या 'निनमै' है। नदियों ने विश्वामित्र को रास्ता दे दिया उस रास्ते से विश्वामित्र धन भरी हुई गाड़ियों को और अपने रथ को पार ले गये, नदियां पूर्व की भाँति फिर गंभीर वेगवाली बन गईं। वे चोर जो विश्वामित्र का धन छीनने को आरहे थे उसी किनारे पर रह गये इधर न आ सके। विश्वामित्र धन लेकर अपने स्थान को चले गये। यहां पर विश्वामित्र के द्वारा नदियों की स्तुति करना और उन स्तुतियों को नदियों के द्वारा सुनना और समझना और फिर विश्वामित्र के साथ नदियों का बोलना तथा अपने वेग को घटा कर रास्ता दे देना ये सब बातें वैसे ही असंभव हैं जैसे कि पुराणों की अनेक कथायें।

मंत्रात्मक वेद में यह एक ही असंभव कथा नहीं है वरन् ऐसी ऐसी अनेक कथायें हैं जिनमें से कई एक पर निरुक्त है और कई एक पर नहीं है। जब असंभवता में वेद और पुराण एक से हैं तब वेद को मान लेना और पुराणों को त्याज्य बतला देना यह न्याय नहीं है। पुराणों में एक भी दोष हम ऐसा नहीं पाते कि जिससे हम पुराणों को त्याज्य होने की डिगरी दे दें।

प्रामाणिक ग्रन्थ

कोई भी धर्म हो उसमें कुछ ग्रंथ प्रामाणिक माने जाते हैं, कौन कौन ग्रंथ प्रमाण हैं इस विषय में किसी सामान्य पुरुष का कथन नहीं माना जाता किन्तु ग्रन्थों का प्रमाण कोटि में लेना किसी पूज्य पुरुष के लेख के आधार पर रहता है इसी नियम के अनुसार वैदिक-धर्मी ऋषियों के लिखने पर ही ग्रंथ को माननीय समझते हैं। वेद प्रतिपाद्य धर्म में कौन कौन ग्रंथ ग्राह्य हैं इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

याज्ञवल्क्य स्मृ० अ० १ श्लो० ३

अठारह पुराण, वाल्मीकीय रामायण और महाभारत ये पुराण शब्द से और सांख्य, योग, वैशेषिक तथा गौतम सूत्र ये न्याय शब्द से क्योंकि इन चार ग्रंथों में भिन्न भिन्न प्रकार के न्याय हैं। जैमिनीय मीमांसा दर्शन एवं वेदांतदर्शन ये दो मीमांसा शब्द से, बीस स्मृतियां धर्मशास्त्र शब्द से, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दसूत्र और ज्योतिष इन अंगों से मिश्रित वेद, इनमें चारों वेद की शिक्षा भिन्न भिन्न है। प्रातिसांख्य सूत्र भी शिक्षान्तर्गत हैं। वेद की प्रत्येक शाखा के एक एक गृह्यसूत्र और एक एक श्रौत ये सब कल्प हैं। अष्टाध्यायी आदि व्याकरण, ज्योतिष् के भी अनेक ग्रंथ हैं और चारों वेदों की ग्यारह सौ इकत्तीस शाखा, सब शाखाओं के उतने ही ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् और उपवेद ये सब जिस जिस वेद के हों उस उस वेद के अन्तर्गत माने जावेंगे। ये सब चौदह प्रकार के ग्रंथ विद्या और धर्म के भंडार हैं। ये ही चौदह विद्या कहाती हैं।

पुराण, दर्शन और अङ्ग अपने अपने विषय का वर्णन करते हुये धर्म का वर्णन करते हैं। किन्तु वेद और धर्मशास्त्र इनका केवल विषय धर्म वर्णन ही है इसलिये ये

दो ग्रन्थ धर्म के निर्णय में सर्वोत्तम माने गये हैं। इसी विषय में महर्षि मनु लिखते हैं कि—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥ १०
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ११

मनु० अ० २

वेद को श्रुति और धर्मशास्त्र को स्मृति कहते हैं, धर्म निर्णय के सब विषयों में इन्हीं का विचार करना क्योंकि धर्म इन्हीं दोनों से निकला है। जो मनुष्य तर्क का आश्रय करके धर्म की मूल श्रुति स्मृति का अपमान (खण्डन) करता है उसका सज्जन लोग बहिष्कार करें, वह वेदनिन्दक है अतएव नास्तिक है। १०। ११। धर्म में जो ग्राह्य ग्रन्थों का प्रमाण लिखा है यह आर्ष है अतएव कोई मनुष्य इसमें कमी वेशी नहीं कर सकता। यदि कोई मनुष्य यह कहे कि हम इस ग्रन्थ को नहीं मानेंगे या किसी अन्य ग्रन्थ को हम प्रमाण कोटि में ले लेंगे, यह नहीं हो सकेगा क्योंकि ऋषि प्रमाण के आगे मनुष्य के कथन का कोई मूल्य नहीं।

अभिन्न निमित्तोपादानकारण

संसार में जितने भी पदार्थ बनाये जाते हैं उनके दो कारण होते हैं एक निमित्त कारण (बनानेवाला) और दूसरा उपादानकारण (मेटर) जिससे पदार्थ बने। यही बात उन पदार्थों में भी है जो बने बनाये हमारी दृष्टि के गोचर होते हैं, जब समस्त पदार्थों में ये दो कारण रहते हैं तब तो संसार रूपी कार्य में भी ये दोनों ही कारण होंगे। जब हम इसकी खोज करते हैं तब पता चलता है कि संसार का उपादान कारण ईश्वर है और निमित्तकारण भी ईश्वर ही है। जब निमित्तकारण और उपादानकारण एक होता है ऐसी अवस्था में कारण को "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" कहते हैं इसका अर्थ यह है कि नहीं है भिन्न (पृथक्) निमित्त और उपादान कारण जिसमें ऐसे कारण का नाम "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" है। वेद ने बतलाया कि जब यह संसार नहीं बना था तब केवल एक ब्रह्म (ईश्वर) था और

कोई पदार्थ नहीं था। इस ज्ञान की उपलब्धि करवानेवाली श्रुतियाँ ये हैं—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमापरो यत्।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म-
न्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं
तस्माद्धान्यन्नपरः किञ्चनास॥

ऋ० मंड० १० अ० १० सू० १२९ मं० १।२

प्रलयकाल में अपरामाया और जीव तथा रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण एवं ब्रह्माण्ड के चारों तरफ जो तत्व समूह का आवरण है वह और वाष्प जल नहीं था ॥१॥ उस समय न मौत, न जीवन, न रात्रि दिन का ज्ञान था किन्तु प्राणरहित शक्ति के सहित ब्रह्म था, इससे अन्य कुछ भी नहीं था ॥२॥ शक्ति और शक्तिमान में भेद नहीं होता, शक्ति शक्तिमान में रहती है इसलिये शक्ति और शक्तिमान एकही होते हैं।

जब सृष्टि होने लगी तब तैत्तिरीयोपनिषद् ने लिखा है कि—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।
आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः।
अद्भ्यः पृथिवी।

तैत्ति० ब्रह्मानन्द वल्ली २ अनु० १

उस परमात्मा से जो सृष्टि के पहिले अरूप था या जो अब सृष्टिरूप से विद्यमान है इससे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी बनी।

जब ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ तब यह शंका हुई कि यह आकाश क्या चीज है? मिट्टी से बना घट मिट्टी और पानी से बनी बर्फ पानी जैसी होती है ऐसे ही ब्रह्म से बना आकाश ब्रह्म है या नहीं? इस शंका को दूर करने के लिय यजुर्वेद की

अन्तिम श्रुति बोल उठी कि—

ॐ खम्ब्रह्म ।

आकाश ब्रह्म है। जब आकाश का ब्रह्म होना सिद्ध हो गया और इस आकाश ब्रह्म से जब वायु उत्पन्न हुआ तब वायु पर भी यह शंका आई कि जैसे सूत से बना कपड़ा सूत ही होता है और लोहे से बना कुठार लोहा ही है इसी प्रकार आकाश ब्रह्म से उत्पन्न हुआ वायु ब्रह्म ही है या कोई दूसरी चीज है इस शंका को निवटा देने के लिये श्रुति कह उठी कि—

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि ।
सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु ।
अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ।

वृह० अ० ४ ब्रा० कं० १ । २ । ३

हे वायो ! मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म जो आप हैं आपको प्रणाम करता हूँ (खास ब्रह्म और खास ब्रह्म से उत्पन्न हुआ आकाश ब्रह्म ये दो ब्रह्म इन्द्रियातीत थे किन्तु तू तीसरा ब्रह्म जो वायु है तू त्वचा का स्पर्श करता है इसलिये तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है) तू ही प्रत्यक्ष ब्रह्म है इस कारण तुझे प्रणाम है, तुझको ही मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म कहता हूँ, ऋत कहता हूँ, सत्य कहता हूँ। तू ब्रह्म है इस कारण मेरी रक्षा कर, वेदवक्ता की रक्षा कर, मेरी रक्षा कर और वक्ता की रक्षा कर। वायु से अग्नि उत्पन्न हुई, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी, यहां भी वेद का वही ध्येय है, वायु ब्रह्म से जो अग्नि पैदा हुआ है वह अग्नि ब्रह्म है और अग्नि ब्रह्म से उत्पन्न हुआ जल भी ब्रह्म एवं जल ब्रह्म से उत्पन्न हुई पृथ्वी भी ब्रह्म है। इसके ऊपर वेद लिखता है कि—

द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च ।
तदेतन्मूर्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षात् ॥
अथामूर्तं वायुश्चान्तरिक्षम् ।

वृह० अ० ४ ब्रा कं० १ । २ । ३

ब्रह्म के दो रूप हैं एक मूर्त और एक अमूर्त। अकाश और वायु इनसे अन्य जो अग्नि, जल, पृथिवी हैं ये ब्रह्म के शकलवाले रूप हैं और वायु तथा आकाश ये दो ब्रह्म के अमूर्त रूप हैं।

जिसको आजकल के मनुष्य जड़ात्मक सृष्टि कहते हैं उन्हीं पंचतत्वों का जन्म वेद ने ब्रह्म से बतलाया है, इसके पश्चात् चेतनात्मक संसार जीव समुदाय का भी प्रादुर्भाव ब्रह्म से ही हुआ है। इसके ऊपर वेद लिखता है कि—

यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः
सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः
प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति। मुण्डक द्वितीय मुं० खं० १

जैसे जलती हुई अग्नि से हजारों चिनगारियाँ पृथक् हो जाती हैं और पृथक् होने पर भी वे अग्नि का ही रूप रहती हैं उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से असंख्य जीव पृथक् होते हैं और अन्त में फिर इसी में आ मिलते हैं।

इस बात को सिद्ध करने के लिये पुनः वेद लिखता है कि—

पुरुष एवेद ꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।

यजु० अ० ३१ मं० २

जो आज तक संसार में पदार्थसमूह उत्पन्न हुआ है और जो आगे को होगा यह सब पुरुष ही है। अब कोई किस आधार पर कह सकता है कि ईश्वर संसार का निमित्तकारण है? ये वैदिक मंत्र तो यही सिद्ध करते हैं कि ईश्वर संसार का उपादान कारण है अर्थात् समस्त संसार ईश्वर से ही उत्पन्न हुआ है। जैसे घड़ा मिट्टी से, कुल्हाड़ी लोहे से, मेज लकड़ी से बनती है उसी प्रकार यह समस्त संसार ब्रह्म से बना है और वह ब्रह्म इसका निमित्तकारण भी है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि ग्रह किसने बनाये? यही जवाब होगा कि ईश्वर ने, तो ईश्वर ही बनाता है और वही बनता है इसलिये वह संसार का उपादान और निमित्त दोनों कारण है, दोनों कारण होने की वजह से वेद ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" मानता है। वेद ने इसकी पुष्टि में लिखा है कि—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्॥

मुण्डक० प्र० मुं० खं० १ श्रु० ७

जैसे मकड़ी अपने जाले को अपने शरीर के मेटर से खुद बनाती है और उसमें खेल खेल कर जाले को खुद अपने में लय कर लेती है (यहां पर जीव और शरीर दोनों के संयोग को मकड़ी माना है) जैसे पृथ्वी में अनेक वृक्ष पौधे उत्पन्न होते हैं और अन्त में वे सब पृथ्वी बन जाते हैं, जैसे पुरुष के शरीर से केश उत्पन्न होते हैं और इनके उत्पन्न होने में अन्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं रहती उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से ही यह विश्व उत्पन्न होता है और उसी में लय हो जाता है।

जिन लोगों ने गुरुमुख से वेद नहीं पढ़ा या वेदज्ञाताओं की सङ्गति नहीं की, जिन्होंने कारण के पृथक् पृथक् भेद को नहीं जाना, जिनकी दृष्टि में कारण का फल नहीं आया या जिनके अन्तःकरण में ईश्वरसत्ता ने सिंहासन नहीं जमाया ऐसे लोग ईश्वर को सृष्टि का निमित्तकारण मानते हैं। घट का निमित्तकारण कुलाल है और उपादानकारण मिट्टी, जब तुम यह खोज करोगे कि घट के प्रत्येक अवयव में कौन पदार्थ है तो तुमको यही मालूम होगा कि मिट्टी है क्योंकि घट मिट्टी से बना है, उपादानकारण एक ऐसा कारण है जो कार्य के प्रत्येक अंश में ताना और बाना बन कर व्यापक रहता है। एक घट के उदाहरण को ही आप अपने आगे न रक्खें वरन् संसार के समस्त कार्यों में यह घटना ज्यों की त्यों पाई जाती है जैसे कि कुठार के प्रत्येक परमाणु में लोहा और कटक कुंडल के प्रत्येक देश में सुवर्ण एवं बर्फ के प्रत्येक परमाणु में जल तथा कपड़े के प्रत्येक अवयव में सूत व्यापक रहता है वैसे ही संसार के प्रत्येक कार्य में उसका उपादानकारण व्यापक बन कर मौजूद रहता है। निमित्तकारण में यह गुण नहीं रहता। घट का निमित्तकारण कुलाल घट में व्यापक नहीं रहता, घट से अन्य देश अपने घर में एकदेशी होकर रहता है। इसी प्रकार कुठार का निमित्तकारण लुहार कुठार में न रह कर कुठार से भिन्न स्थान में रहता है। वस्त्र के निमित्तकारण तन्तुवाय (जुलाहा) और कटक कुंडल के निमित्तकारण स्वर्णकार की भी यही दशा देखने में आती है। यदि हम ईश्वर को संसार का निमित्तकारण मानेंगे तो ऐसी दशा में ईश्वर संसार में व्यापक न रहेगा, अन्य निमित्तकारणों की भाँति इसके रहने का स्थान संसार से अन्य देश में होगा। निमित्त कारण मानने से यह दोष आया कि ईश्वर की सफाई हो गई। संसार में व्यापकरूप से ईश्वर रहा नहीं और संसार से भिन्न देश में उसके रहने का पता वेद बतलाते नहीं ऐसी दशा में वैदिकों को ईश्वरसत्ता से हाथ धोना पड़ेगा। जो सज्जन इस वेद को नहीं जानते या जिनको ईश्वरसत्ता का उड़ाना अभीष्ट है वे लोग ईश्वर को संसार का निमित्तकारण बतलाते हैं यह उनकी उच्छृङ्खलता है।

ईश्वर को संसार का निमित्तकारण बतलानेवाले चन्द सज्जन यह कहा करते हैं कि यदि ईश्वर संसार का उपादानकारण रहेगा तो "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" और "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्" इन दो श्रुतियों की सङ्गति कैसे बैठेगी ? ये दोनों ही श्रुतियाँ ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीन पदार्थों को अनादि मानती हैं ? इसका उत्तर यह है कि संसार में जितने भी पदार्थ होते हैं उनमें दो सत्तायें होती हैं एक परमार्थिक सत्ता और दूसरी व्यवहारिक सत्ता। मिट्टी से घट बना, घट भी मिट्टी है क्योंकि वह पहिले भी मिट्टी था और फूटने पर भी मिट्टी ही बन जायगा। इस विषय में गौड़पादीयकारिका कहती है कि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेपि तत्तथा।

जो आदि में और अन्त में पदार्थ की स्थिति नहीं होती वर्तमान काल में भी वह स्थिति नहीं रहती। घट आदि-अन्त में घट नहीं है मिट्टी है इसलिये मध्य में भी मिट्टी ही है। कुठार लोहे से उत्पन्न हुआ है और अन्त में लोहा ही हो जायगा इसलिये बीच में भी लोहा ही है। इसी प्रकार बर्फ पानी से बनी है और अन्त में भी वह पानी ही हो जायगी अतएव बीच में भी वह पानी ही है। यह पदार्थों की परमार्थिक सत्ता है अर्थात् परमार्थिक सत्ता में घट मिट्टी, कुठार लोहा, बर्फ पानी है इस पर कोई भी मनुष्य ननु, नच नहीं कर सकता।

व्यवहारिक सत्ता में घट पृथ्वी से और कुठार लोहे से तथा बर्फ पानी से भिन्न है क्योंकि ठंडे पानी पिलाने का घट में जो व्यवहार है वह मिट्टी में नहीं। इसी प्रकार लकड़ी फारने का जो व्यवहार कुठार में है वह लोहे में नहीं। अत्यन्त शीतल होना और अन्न को जल्दी हजम कर देना यह व्यवहार जो बर्फ में है वह पानी में नहीं। व्यवहारिक सत्ता में घट मिट्टी से और कुठार लोहे से तथा बर्फ पानी से भिन्न है किन्तु यह व्यवहारिक सत्ता परमार्थिक सत्ता का मटियामेट (बाधा) नहीं करती। व्यवहारिक सत्ता के रहने पर भी परमार्थिक सत्ता ज्यों की त्यों मौजूद रहती है। व्यवहारिक सत्ता संसार के व्यवहार चलाने के लिये और परमार्थिक सत्ता पदार्थ के यथार्थ ज्ञान करवाने की कुञ्जी है। जिस प्रकार व्यवहारिक सत्ता में घट मिट्टी से और कुठार लोहे से तथा बर्फ पानी से भिन्न हैं उसी प्रकार व्यवहारिक सत्ता में जीव, प्रकृति ब्रह्म से भिन्न हैं और परमार्थिक सत्ता में जैसे घट मिट्टी से और लोहा कुठार से तथा पानी बर्फ से बना है अतएव घट मिट्टी, कुठार लोहा तथा बर्फ पानी ही है। इसी प्रकार परमार्थिक सत्ता में ब्रह्म से प्रादुर्भूत हुये जीव प्रकृति भी ब्रह्म ही हैं।

जिस प्रकार संसार के पदार्थों में परमार्थिक सत्ता तथा व्यवहारिक सत्ता ये दोनों ही सत्ता विद्यमान रहती हैं इसी प्रकार दर्शनों में भी दोनों ही सत्तायें काम करती हैं। मीमांसा, सांख्य, योग, वैशेषिक, न्याय और गौतम सूत्र ये दर्शन व्यवहारिक सत्ता के हैं। वैशेषिक दर्शन तथा गौतम सूत्र इन्होंने तो परमाणुओं को भी नित्य माना, ये दोनों दर्शन अत्यन्त स्थूल हैं, ये अपना परमाणुवाद को लेकर ही सब कुछ निर्णय करते हैं तो भी ये व्यवहारिक सत्ता की गणना में आ जाते हैं किन्तु वेदान्त दर्शन परमार्थिक सत्ता का ग्रन्थ है इसने आरंभ से अन्त तक समस्त संसार को ब्रह्म का रूप वर्णन किया है।

जिस प्रकार दर्शनों में कई एक दर्शन व्यवहारिक सत्ता को और वेदान्त परमार्थिक सत्ता को कहता है इसी प्रकार कुछ आचार्य व्यवहारिक सत्ता को तथा कुछ परमार्थिक सत्ता को प्रधान मानते हैं। पूज्य आचार्य श्री रामानुज जी एवं आचार्यश्रेष्ठ निम्बार्क तथा विज्ञानभंडार आचार्य वल्लभ और आचार्यवर माध्व ये व्यवहारिक सत्ता को प्रधान मानते हैं। इनका कथन है कि व्यवहारिक सत्ता में ही कर्मकांड का अनुष्ठान और ईश्वर की भक्ति हो सकती है एवं इसी से जीव का कल्याण होता है। यदि हम व्यवहारिक सत्ता को न मानें तो फिर जीव ब्रह्म में अभेद हो जाता है। अभेद में छोटे बड़े तथा उपास्य उपासक का भाव जाता रहता है इसमें संसारी जीव अपने को ब्रह्म समझता हुआ न वैदिक कर्मकांड का अनुष्ठान कर सकता और न ईश्वर की उपासना। इन दो के बिना संसारबन्धन टूटता नहीं। संसारबन्धन तोड़ने के लिये हम व्यवहारिक सत्ता का आश्रय लेते हैं किन्तु जगद्गुरु शंकराचार्य परमार्थिक सत्ता को मुख्य मानते हैं इसका मतलब यह नहीं कि जगद्गुरु शंकराचार्य व्यवहारिक सत्ता को मानते ही नहीं इन्होंने तो व्यवहारिक सत्ता मान कर ही गणेश, दुर्गा, विष्णु, शङ्कर आदि अवतारों के स्तोत्र लिखे हैं। इनका कथन है कि वेदों के गूढ़ तत्व को जानने और समस्त सृष्टि का कारण कौन है इस बात को समझने, जीव क्या पदार्थ है और यह कहाँ से आया तथा कहाँ जायगा इसको हृदयङ्गम करने के लिये सभी को परमार्थिक सत्ता माननी पड़ेगी।

जिस प्रकार संसारी पदार्थ एवं दर्शन तथा आचार्यों में व्यवहारिक और परमार्थिक ये दो सत्तायें पाई जाती हैं उसी प्रकार वेद में भी व्यवहारिक और परमार्थिक सत्तायें विद्यमान हैं। "द्वासुपर्णा ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०" और "प्रजामेकाम् श्वेताश्वतर अ० ४ मं० ५" तथा "प्रकृतिं पुरुषं चैव गीता १३। २६" ये व्यवहारिक सत्ता के बतलानेवाले प्रमाण हैं और "नासदासीन्नो सदासीत् ऋ० मं० १० अ० १०

सू० १२६ मं० १। २" एवं "तस्माद्वा एतस्मादात्मन० तैत्ति० ब्र० ब० २ अ० १" इत्यादि चार हजार श्रुतियाँ जो अद्वैत का प्रतिपादन करती हैं वे परमार्थिक सत्ता का कथन करनेवाली हैं।

ईश्वर (ब्रह्म) स्वरूप

आजकल ईश्वर स्वरूप के ऊपर भयंकर विवाद चला हुआ है। कोई कहता है कि ईश्वर निराकार है और कोई कहता है कि साकार, किसी का कथन है कि ईश्वर तो एक ही है किन्तु उसके रूप निराकार और साकार दो हैं। इस विषय में वेद क्या कहता है उसको पढ़िये—

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोतीति ब्राह्मणम्। शत० कां० १४ अ० १ ब्रा० २ मं० १८

ईश्वर दो प्रकार का है परिमित-अपरिमित, निरुक्त और अनिरुक्त, जो यज्ञ उपासनादि कर्म यजुर्वेद के मंत्रों से करता है उसके द्वारा ईश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो निरुक्त और परिमित है और जो तूष्णीं भाव सम्पन्न है अर्थात् अध्यात्म मंत्र का ही मनन करता है उससे ईश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो अनिरुक्त और अपरिमित हैं। वेद सर्वव्यापकत्व, सर्वस्वरूपत्व और अवतारत्व इन तीन भेदों से ईश्वर को साकार बतलाता है, क्रम से पढ़ें।

व्याप्य व्यापकत्व—इसको आप इस प्रकार समझें कि एक पं० मोहनलाल नामक सज्जन हैं, ये सज्जन साढ़े तीन हाथ के हैं। ये तो साढ़े तीन हाथ के क्या हैं साढ़े तीन हाथ का तो इनका शरीर है, इन महात्मा का तो पता ही नहीं कि कितने लंबे चौड़े हैं। इनके नाम का भी पता नहीं और पं० मोहनलाल जो इनका नाम कहा जाता है यह नाम तो इनके माता पिता ने कल्पित कर लिया है अपने मन से ही गढ़ कर जबर्दस्ती का सांड नियत किया है वास्तव में तो ये फ़र्ज़ी पं० मोहनलाल नाम शून्य, रूप शून्य, निराकार जीव हैं, निराकार होने पर भी अब ये साढ़े तीन हाथ के शरीर में व्यापक हो गये हैं। ये व्यापक हैं शरीर व्याप्य है इसी कारण से इनका यह शरीर

है क्योंकि यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि व्यापक का व्याप्य शरीर होता है। यह शरीर इनका है घसीटू धोबी का नहीं है क्योंकि जिसका कल्पित नाम घसीटू धोबी है वह आत्मा इस शरीर में व्यापक नहीं है दूसरे शरीर में व्यापक है, जिस शरीर में घसीटू धोबी नामक आत्मा व्यापक है वह शरीर घसीटू धोबी का है इसी प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त, कृष्णदत्त आदि नामवाले आत्मा जिस जिस शरीर में व्यापक हैं वह वह उनका शरीर है। अब उत्तम रीति से सिद्ध होगया कि व्याप्य-व्यापक का शरीर होता है। तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और पृथ्वी व्याप्य है इस कारण पृथ्वी उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और जल व्याप्य है इस कारण जल उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है अग्नि व्याप्य है इस कारण अग्नि उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है वायु व्याप्य है इस कारण वायु उसका शरीर है, तुम्हारा ईश्वर व्यापक है और आकाश व्याप्य है इस कारण आकाश उसका शरीर है। इस भाव को स्पष्ट करनेवाली श्रुतियां ये हैं—

यः पृथिव्यां तिष्ठन्। पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति स त ऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः। ७। योऽप्सु तिष्ठन्। अद्भ्योऽन्तरो यमापो न विदुर्यस्यापः शरीरं योऽपोऽन्तरो यमयति स त ऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः। ८। योऽग्नौ तिष्ठन्। अग्नेरन्तरो यमग्निर्न वेद यस्याग्नि शरीरं योऽग्निमन्तरो यमयति स त ऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः। ९। य आकाशे तिष्ठन्। आकाशादन्तरो यमकाशो न वेद यस्याकाशः शरीरं य आकाशमन्तरो यमयति स त ऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः। १०। यो वायौ तिष्ठन्। वायोरन्तरो यं वायुर्न वेद यस्य वायुः शरीरं यो वायुमन्तरो यमयति स त ऽ आत्मान्तर्याम्यमृतः। ११।

शतपथ कां० १४। ६। ७

जो पृथ्वी में ठहरा हुआ पृथ्वी के मध्य में जिसको पृथ्वी नहीं जानती पृथ्वी जिसका शरीर है जो पृथ्वी को अपनी अनन्त शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है।७। जो जल में ठहरा हुआ जल के मध्य में जिसको जल नहीं

जानता जल जिसका शरीर है जो जल को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है। ८। जो अग्नि में ठहरा हुआ अग्नि के मध्य में जिसको अग्नि नहीं जानता अग्नि जिसका शरीर है जो अग्नि को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है। ९। जो आकाश में ठहरा हुआ आकाश के मध्य में जिसको आकाश नहीं जानता आकाश जिसका शरीर है जो आकाश को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है। १०। जो वायु में ठहरा हुआ वायु के मध्य में जिसको वायु नहीं जानता वायु जिसका शरीर है जो वायु को अपनी अनंत शक्ति से थामे हुये है सो अन्तर्यामी आत्मा अमृत है। ११।

व्यापकता के कारण संसार के समस्त पदार्थ ईश्वर के शरीर हैं अतएव ईश्वर शरीरधारी है इसको आप पढ़ चुके अब आप यह देखें कि सर्वस्वरूप होने के कारण ईश्वर साकार है। "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" में यह बात उत्तम रीति से समझा दी गई कि यह समस्त संसार ईश्वर से बना, उसमें यह भी समझाया गया कि सब से प्रथम ईश्वर से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि और अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी बनी, बस समस्त ब्रह्माण्ड इन्हीं पांच तत्वों से रचा गया और ईश्वर से ही इस जीव का प्रादुर्भाव हुआ अतएव संसार में जड़-चेतन, साकार निराकार जितने भी पदार्थ हैं वे ब्रह्म से बने हैं इसलिये सर्वस्वरूप ब्रह्म है अर्थात् जो कुछ भी संसार में बड़े-छोटे, दृश्य-अदृश्य पदार्थ हैं वह सब ब्रह्म है फिर ईश्वर को केवल निराकार कहना यह प्रमाद नहीं तो और क्या है?

ईश्वर निराकार होने या विविध आकारोंवाला होने पर भी शरीर धारण करता है और ईश्वर के इस शरीर धारण करने को वेद शास्त्रों ने अवतार के नाम से याद किया है। आज हमको यह सौभाग्य मिला है कि हम अपने पाठकों के सन्मुख ईश्वर के अवतार धारण करने को रक्खें। सामान्यरूप से वेद कहता है कि—

प्रजापतिश्चरति गर्भे
अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीरा-
स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

यजु० अ० ३१ मं० १९

प्रजापति ईश्वर गर्भ के अन्दर आता है, है तो वह अजन्मा किन्तु अजन्मा होकर के भी अनेक प्रकार से जन्म धारण करता है उसके योनिस्वरूप को धीर भक्त देखते हैं वह कौन ईश्वर है जिसमें ये समस्त भुवन ठहरे हैं।

एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतो मुखः॥

यजु० अ० ३२ मं० ४

यह देव परमात्मा सब दिशा विदिशाओं में नाना रूप धारण करके ठहरा हुआ है यही प्रथम सृष्टि के आरंभ में हिरण्यगर्भ रूप से उत्पन्न हुआ, वही गर्भ के भीतर आया वही उत्पन्न हुआ और वही आगे को उत्पन्न होगा, जो सबके भीतर अन्तःकरणों में ठहरा हुआ है और जो नाना रूप धारण करके सब ओर मुखोंवाला हो रहा है।

उतैषां पितोत वा पुत्र एषा-
मुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः
प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥

अथर्व० कां० १० अनु० ४ सू० ८ मं० २८

तू इन प्राणियों का पिता है, पुत्र है, इनका ज्येष्ठ है और कनिष्ठ है, एक ही देवता मन में प्रविष्ठ है, वह पहले प्रकट हुआ है और वही गर्भ में भीतर है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव
तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ताह्यस्य हरयः शता दश॥

ऋ० मं० ३ अ० ४ सू० ४७ मं० १८

(इन्द्रः) परमेश्वर (मायाभिः) अपनी अनन्त सामर्थ्यों से (पुरुरूपः)

अनेक देहों के रूपवाला (ईयते) होता है (तत्) सो (अस्य) इस अपने (रूपम्) रूप को (प्रतिचक्षणाय) सब भक्तों पर विख्यात करने के लिये (रूपं रूपं प्रतिरूपः) जैसे जैसे रूप की इच्छा हो तैसा तैसा (बभूव) हुआ (हि) निश्चय (अस्य) इस परमेश्वर के (हरयः) रूप (शत) सैकड़ों हैं (दश) दश मुख्य हैं ।

निराकारवादियों से शास्त्रार्थ करते हुये जगद्गुरु शंकराचार्य जी कहते हैं कि—

मायाभिरिन्द्रः पुरुरूप ईयते
इत्येव तस्य बहुरूपता श्रुता ।
तस्माच्चिदात्मा प्रकृतेः परः प्रभु-
र्ज्ञेयोस्ति मोक्षाय मुमुक्षुभिर्मुदा ॥ शंकर दिग्विजय

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" वेद के केवल इस एक मंत्र से ही ईश्वर के बहुत अवतार सिद्ध हो जाते हैं । ईश्वर चैतन्य है वह अवतार धारण करके भक्तों की रक्षा करता है, प्रकृति से परे है अतएव मोक्ष पानेवालों को मोक्ष पाने के लिये उस परमात्मा का ज्ञान करना परमावश्यकीय है । इस कथन पर निराकारवादियों की जबान बन्द हो गई और जगद्गुरु शंकराचार्य का विजय हो गया । अब पृथक् पृथक अवतारों को पाठक पढ़ें ।

मत्स्यावतार

मनवे ह वै प्रातः । अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावने-निजानस्य मत्स्यः पाणीऽ आपेदे ॥ १ ॥ सहास्मै वाचमुवाद । बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्योघ इमाः सर्वाः प्रजानिर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति ॥ २ ॥ सहोवाच । यावद्वै क्षुल्लका भवामो वह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां मग्रे विभरासि

स यदा तामतिवर्धाऽ अथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धाऽ अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वाऽ अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३ ॥ शश्वद्ध ऋष आस । स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेति समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्यो-पासासै स औघऽ उत्थिते नावमापद्यासैथीꣳ ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥ ४ ॥ तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार । स यतिथीं तत्समां परिदिदेश तातिथीꣳ समां नावमुपकल्प्यो-पासां चक्रे स औघऽ उत्थिते नावमापेदे तꣳ स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृंगे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥ सहोवाच । अपीपरं वै त्वा वृत्ते नावं प्रतिवध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदु-दकꣳ समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवा-न्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे ॥ ६ ॥

शत० कां० १ । ८ । १ । ६

स्वायम्भुव मनु के लिये प्रातःकाल हाथ मुखादि के शोधनार्थ सेवक लोग जल लाये जैसे कि सर्वत्र राजा रईसों के सेवक लोग दोनों हाथों से अपने अपने स्वामियों के समीप हाथ मुखादि धोने के लिये जल लाया करते हैं। यहाँ "पाणिभ्याम्" इस लिये कहा है कि मान्य पुरुषों के लिये एक हाथ से जल लाना असभ्यता है। उन हाथ मुख की शुद्धि करते हुये मनु जी के हाथों में लिये जल में मछली प्राप्त हुई वा देख पड़ी। १। वह मत्स्य इस राजा मनु जी से यह बोला कि हे राजन्! तुम मेरा पोषण करो, मैं तुम्हारा पालन करूँगा। राजा मनु जी बोले तुम किससे मेरी रक्षा वा पालन करोगे? तब मत्स्य बोला कि बड़ा जल का समूह (बूड़ा) आवेगा वह इस द्वीप के सब मनुष्यादि प्रजाओं को बहा ले जावेगा वा डुबा देगा, उस जल में बह जाने से तेरी रक्षा करूँगा। तब राजा बोला कि हे मत्स्य! तुम्हारा पोषण कैसे हो सो बतलाओ। २। वह मत्स्य बोला कि जब तक हम छोटे हैं तब तक हमारा नाश करने

वाली जल जन्तुओं की बहुत जातियाँ हैं अथवा बड़ी बड़ी मछलियाँ ही छोटी मछली को खा लेती हैं, इससे पहिले मुझको घड़े में रख कर पोषण कीजिये, मैं जब घड़े में इतना अधिक बढ़ूँ कि घड़े में न समा सकूँ तब पृथिवी में कोई बनावटी जलाशय खोदकर उसमें मेरा पोषण कीजिये। मैं उस जलाशय में भी जब इतना अधिक बढ़ूँ कि उसमें न समा सकूँ तब मुझको समुद्र में पहुँचा दीजिये, मैं निश्चय करके अपने नाशक शत्रुओं का अतिक्रमण करके सब को दबा ले जानेवाला हो जाऊँगा। ३। तदनन्तर वह शीघ्र ही बड़ा मच्छ हो गया जिस कारण वह मत्स्य बहुत अधिक बढ़ता था इससे शीघ्र ही झष हो गया। इसके अनन्तर फिर मत्स्य बोला कि इतने दिन रूप वर्षों में वह डूबा अर्थात् सब को डुबा देनेवाला जल समुदाय आवेगा। अभिप्राय यह है कि मत्स्य भगवान् ने राजा से कहा कि इसी वर्ष में इतने दिन बाद डूबा आवेगा (श्रीमद्भागवत में सातवें दिन बूड़ा आने का विचार लिखा है) मत्स्य भगवान् राजा मनु जी से कहते हैं कि डूबा आने के समय पहिले से नौका बनवा कर हमारी उपासना करना, अर्थात् हमारा सहारा लेना, सो तुम डूबा आने पर उस नौका में चढ़ जाना (श्रीमद्भागवत में लिखा है कि भगवान् की प्रेरणा ही से एक बड़ी भारी नौका राजा को प्राप्त हुई) मत्स्य भगवान् ने कहा कि इस नौका से तुमको पार करूँगा। ४। उस राजा ने उन मत्स्य भगवान् का घड़ा, तालाब आदि से भली भांति रक्षण, भरण, पोषण करके पीछे समुद्र में पहुँचा दिया। उन मत्स्य भगवान् ने जितने काल में डूबा आने का विचार किया था उतने ही काल में नाव बना कर वा नौका मिलने पर मत्स्य भगवान् की उपासना राजा ने की। वह राजा मनु औघ उठने पर नौका में चढ़ गया। उस राजा मनु को मैं अपने समीप खींच लूँगा ऐसे विचार से मत्स्य भगवान् नौका के समीप आये। उस मत्स्य के सींग में राजा ने नाव को बाँध दिया। उस नाव की रस्सी को लेकर वह मत्स्य उत्तर हिमालय पहाड़ की ओर नौका को ले गया। ५। वह मत्स्य रूप भगवान् कैसे बोला कि मैंने तुम्हारी रक्षा कर दी, तुम डूबने से बच गये, अब वृक्ष में नौका को बांध दो। मत्स्य भगवान् ने और भी कहा कि पहाड़ में विद्यमान रहते हुये तुमको जल पहाड़ से पृथक् न कर देवे अर्थात् जल आगे न बढ़ जावे इसलिये जितना जितना जल बढ़ता जावे उतना उतना तुम भी ऊँचे पहाड़ की ओर बढ़ते जाना, वे मनु उतने ही आगे बढ़ गये। जिस मार्ग से उत्तरीय पर्वत में मनु जी ने बूड़ा के समय नौका द्वारा गमन किया था वही वही स्थान आगे आगे मनु का अवसर्पण कहाने लगा है। वह जल का पूड़ा सब प्रजा को बहा ले गया अर्थात् सब प्रजा जल में डूब कर नष्ट हो गई, तदनन्तर इस जगत् में एक मनु ही शेष रह गये, अन्य सबका प्रलय हो गया।

शतपथ की इस कथा को कुछ विस्तार करके पुराणों ने लिखा और पुराणों से लेकर प्रकारान्तर से बाइबिल में लिखा गया वहां पर इसका नाम "नूह की नाव" है, यही नूह की कथा प्रकारान्तर से "कुरान शरीफ" में आई, वहां पर इसका नाम "नूह की किश्ती" है।

यक्षावतार

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥१४॥ तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥ १५ ॥ तेऽग्निमब्रुवन्। जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६ ॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्। कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ १७ ॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ सर्वं दहेयम्। यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८ ॥ तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १९ ॥ अथ वायुमब्रुवन्वायवे तद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ २० ॥ तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ २१ ॥ तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ २२ ॥ तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३ ॥ अथेन्द्र

मब्रुवन्मधवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥२४॥

तलवकार० खंड ३

एक समय ब्रह्म ने देवताओं पर विजय पाया। गाथा यों है कि एक दिन समस्त देवता इकट्ठे हुये और प्रत्येक देवता कहने लगा कि इस युद्ध में हमारा विजय हुआ, देखो हमारे महत्व को। जब प्रत्येक देवता यह कहने लगा कि यह हमारा ही विजय है, हमारा ही महत्व है, उस समय ईश्वर एक यक्ष के रूप में प्रकट हुये। इसको देख कर देवता बोले यह कौन है ? अग्नि से देवताओं ने कहा अग्ने ! तू जातवेदा है, इसके पास जाकर पता लगा यह कौन है। अग्नि यक्ष के पास पहुँचा। यक्ष ने पूछा तू कौन है? अग्नि ने कहा मैं जातवेदा अग्नि हूँ, यक्ष ने कहा तुममें क्या पराक्रम है ? अग्नि ने कहा मेरे बल की कुछ न पूछिये, यदि मैं चाहूँ तो समस्त ब्रह्माण्ड को फूंक कर खाक बना दूं। यह सुन कर यक्ष ने एक तृण रक्खा कि इसको जलाओ। अग्नि बड़े वेग से उस तृण पर टूटा किन्तु तृण को न जला सका, लौट कर देवताओं के पास आया। देवताओं ने कहा यह यक्ष कौन है, इतना जानना मेरी शक्ति से बाहर है। फिर देवताओं ने वायु से कहा कि तुम जाओ और पता लगाओ यह यक्ष कौन है ? इतना सुन कर वायु यक्ष के पास गया। यक्ष ने पूछा तुम कौन हो ? इसने उत्तर दिया कि मैं मातरिश्वा वायु हूँ। यक्ष बोला तुममें क्या बल है ? वायु ने कहा यदि मैं चाहूँ तो अपने वेग से इस ब्रह्माण्ड को उड़ा इसके टुकड़े बना दूं। यक्ष ने एक तृण रक्खा और वायु से कहा इसको उड़ाओ। वायु ने बड़े वेग से उस तृण पर धावा मारा किन्तु वायु से वह तृण न उड़ सका, हार कर वायु देवताओं के पास आया और बोला कि मैं नहीं जान सकता यह यक्ष कौन है। फिर देवताओं ने इन्द्र से कहा आप जावें आप पता लगा सकेंगे कि यह यक्ष कौन है ? इन्द्र पता लगाने के लिये उस यक्ष के पास गया, इतने ही में यक्ष का तिरोभाव हो गया।

ब्रह्मावतार

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

यजु० अ० १३ मं० ४

हिरण्यपुरुष रूप ब्रह्माण्ड में गर्भरूप से स्थित प्रजापति ब्रह्मा हिरण्यगर्भ है। समस्त प्राणियों में पहिले उसने शरीर धारण किया, वही जातमात्र समस्त संसार का अकेला ही पति हुआ, वह अन्तरिक्ष, द्युलोक और इस पृथ्वी को धारण किये हुये है उस प्रजापति को हम हवि देते हैं।

ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोतजज्ञे
तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥

अथर्व० कां० १६ अनु० ३ सू० २३ मं० ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं, ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरंभ में बड़े द्युलोक का विस्तार किया है, सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मा रूप से प्रकट हुआ, उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ हैं।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ॥

मुण्डक० प्रथम मुण्डक खं० १ श्रु० १

ब्रह्मा जी सब देवताओं से प्रथम उत्पन्न हुये जो संसार के रक्षक और विश्व के बनानेवाले हैं।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

मनु० अ० १ श्लो० ६

वह जो सुवर्ण की कान्तिवाला सूर्य के समान तेजधारी अण्ड था उस अण्ड में सर्वलोक का पिता ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुआ।

वराहावतार

मल्वं बिभ्रती गुरुभृद्
भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः ।
वराहेण पृथिवी संविदाना
सूकराय विजिहीते मृगाय ॥

अथर्व० कां० १२ अ० १ सू० १ मं० ४८

शत्रु को भी धारण करनेवाली, पुण्य और पाप करनेवाले के शव को सहने वाली, बड़े बड़े पदार्थों को धारण करनेवाली और वराह जिसको ढूढ़ रहे थे वह पृथिवी वराह को ही प्राप्त हुई थी।

उज्जृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

तैत्ति० अ० प्र० १ अनु० १ मं० ३०

हे भूमि ! तुमको असंख्य भुजावाले कृष्ण वराह ने उद्धार किया है।

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्यासं प्रादेशमात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोस्याः पतिः प्रजापतिरिति ।

शत० १४ । १ । २ । ११

पहिले भूमि प्रादेश मात्र प्रकट हुई, उसको वराह ने उद्धार किया सो इसका पति प्रजापति है।

वामनावतार

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदा ।
समूढमस्य पांसुरे ।

अथर्व० कां० ७ अनु० ३ सू० २६ मं० ४

व्यापनशील भगवान् विष्णुदेव ने इस विश्व का विक्रमण किया अर्थात् इसके ऊपर पैर रक्खे, उन्होंने पैर को तीन बार रक्खा, इन विक्रममाण भगवान् के धूलि से भरे चरण में तीनों लोक समा गये थे।

(१) इस मंत्र का देवता विष्णु है अतएव इस मंत्र में विष्णु का वर्णन है। इसी सूक्त में मूल वेद ने विष्णु का ऐसा विस्तृत वर्णन किया है कि जिससे विष्णु का अर्थ ईश्वर ही हो सकता है अन्य कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता। (२) इसके ऊपर सायण ने अर्थ किया है और इन्होंने मंत्र को विष्णु के वामनावतार में लगाया है, अर्थ करते समय अपने अर्थ की पुष्टि में एक श्रुति भी दी है। सायण का अर्थ यह है—

विष्णुः व्यापी भगवानिदं विश्वं विचक्रमे विक्रान्तवान्। कतिधा विचक्रमे इति तदाह। त्रेधा त्रिधा पदा पदानि निदधे स्थापयामास। "पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवि च विष्णुर्वामनो भूत्वेमाँल्लोकांस्त्रिभिः क्रमैरभ्यजयत्" इति श्रुतेः। अस्य विक्रममाणस्य विष्णोः पांसुरे पांसुमति। रो मत्वर्थीयः। पादे लोकत्रयं समूढम् सम्यग् ऊढं समवस्थापितं समाकृष्टं वा अभवत्। अत्र "विष्णुर्विशतेर्वा। व्यश्नोतेर्वा। यदिदं किं च तद्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः" नि० १२। १८। इत्यादि निरुक्तमनुसंधेयम्।

(३) इस मंत्र का दूसरा कोई अर्थ हो ही नहीं सकता क्योंकि इसमें 'विचक्रमे' क्रिया पड़ी है। 'विचक्रमे' के ऊपर व्याकरण लिखता है कि "वेः पाद विंहरणे १। ३। ४१" वि उपसर्ग रहते हुये यदि "क्रमु" धातु को आत्मने पद हो तो पैर के उठाने धरने में ही हो। यहां पर वामन का पैर उठाना और आगे रखना यह व्याकरण ने सिद्ध कर दिया, इसके विरुद्ध कोई अन्य अर्थ कैसे करेगा। बीस बाईस वर्ष का अर्सा हुआ टीहरीनरेश की अध्यक्षता में टीहरी में ही शास्त्रार्थ हुआ था। आर्यसमाज की तरफ से पं० श्री गणपति जी शर्मा और पं० तुलसीराम जी स्वामी थे तथा सनातनधर्म की तरफ से वेदव्याख्याता पं० भीमसेन जी थे। शास्त्रार्थ में "वेः पाद विहरणे" का कोई जवाब आर्यसमाज की तरफ से न हो सका इसलिये आर्यसमाज शास्त्रार्थ हार गया। (४) शतपथ लिखता है कि—

वामनो ह विष्णुरास।

शत० कां० १। २। २। ५

विष्णु ही वामन थे। (५) उपनिषद् का वचन है कि—

मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते।

कठ० वल्ली ५ श्रु० ३

प्राण और अपान इनके मध्य में बैठे हुये वामन की विश्वेदेवा उपासना करते हैं।

रामावतार

भद्रो भद्रया सचमान आगा-
त्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठ-
न्नुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात् ॥

सामवेद० उत्तरार्चिक प्रपा० ७ अर्ध प्रपा० २ मं० ५

(भद्रः) रामभद्रः (भद्रया) सीतया सह (सचमानः) सज्जमानः (आगात्) दण्डकारण्यमित्यर्थात् (स्वसारं) अंगुलयः स्वसारः तद्वन्तं सीतायाः पाणिं ग्रहीतुं (जारः) रावणः (पश्चात्) रामात्परोक्षे (अभ्येति) आगत इति पूर्वोक्तानुवादः तेन रावणे हते सति जाया गार्हपत्य इति । इति श्रुतेः । जायासहचरः (अग्निः द्युभिः) द्युलोकसाधनतया द्युशब्दवाच्यः रामदारैः सह (रामम्) रामस्याभिमुखम् (अस्थात्) स्थितवान् (सुप्रकेतैः) शोभन चिह्नैरिति दारानिर्दोषत्वं सूचितं वितिष्ठन्नस्थादिति सम्बन्धः तिष्ठन्नासीदित्यर्थः (उशद्भिः) दीप्यमानैः वर्णैः लोहितादिवर्णज्वालाभिरूप-लक्षितः अयं चार्थः पुनः पत्नीमग्निरदादिति मन्त्रान्तरे दृष्टः पक्षे भद्रो बोधः भद्रया श्रद्धया जारः कामः अग्निर्वाक् ।

(नीलकंठ भाष्य)

(भद्रः) भजन करने योग्य रामभद्र (भद्रया) सीता सहित (सचमानः) सज्जित होकर (आगात्) दण्डकारण्य को आता है तब (स्वसारम्) अंगुली को अर्थात् सीता के हाथ को पकड़ने को (जारः) रावण (पश्चात्) राम के परोक्ष में (अभ्येति) आता है तब रावण के मारने के पीछे (सुप्रकेतैः) अच्छे चिह्नों से (उशद्भिः) दीप्तिमान् (वर्णैः) वर्णों से उपलक्षित (द्युभिः) द्युलोक की साधनभूत राम की दारा सहित (अग्निः) अग्नि देवता (रामम्) राम के सन्मुख (अभ्यस्थात्) उपस्थित होता है अर्थात् जानकी शुद्ध है यह कह कर जानकी को समर्पण करता है। इससे राम का प्रत्येक त्रेता युग में अवतार धारण करना सिद्ध है।

कई एक सज्जन यह प्रश्न करते हैं कि सायण ने तो इस मन्त्र से रामावतार का वर्णन नहीं लिखा ? इसका उत्तर यह है कि जिनको सायण प्रमाण हो वे वामन, वराह और ब्रह्मा के मन्त्र का सायण भाष्य पढ़ कर अवतार मान लें और यदि

मानना तो कुछ नहीं केवल वितंडा ही उठाना है उनसे हमारी प्रार्थना है कि किसी किसी वेद मंत्र के दो दो अर्थ भी हो जाते हैं और वे दोनों सत्य माने जाते हैं फिर हम सायण और नीलकंठ इन दोनों ही विद्वानों के अर्थ को सही क्यों न मानें ? एक मन्त्र के दो अर्थ होते हैं इसकी पुष्टि में नीचे लिखा मन्त्र देखिये—

अष्टा चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

अथर्व० कां० १० अनु० १ सू० २ मं० ३१

आठ चक्रवाली और नौ द्वारवाली देवताओं की (इन्द्रियों की) अयोध्यापुरी है उसमें हिरण्मय स्वर्गप्रदकोश ज्योति से आवृत है ।

दूसरा अर्थ यह है कि आठ चक्र तथा नौ द्वारवाली अयोध्या देवपुरी है उसमें हिरण्मयकोश भगवदवतार है वह स्वर्गलोक में जानेवाला है ।

कृष्णावतार

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।

तैत्ति० आरण्य० प्र० १ अनु १ मं० ३०

अनन्त भुजावाले कृष्ण ने वराह अवतार से तेरा उद्धार किया । इसमें कृष्णावतार और वराहावतार दोनों का ही वर्णन है । 'अनन्त भुजावाले' यह कृष्ण का विशेषण है । कृष्ण के विषय में लिखा है कि—

एतद्घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचेति ।

सामवेदीय छान्दोग्य० उप० प्र० ३ खं० १७

यह उपदेश घोर आंगिरस ने देवकी के पुत्र श्रीकृष्णजी से करके मुझ से कहा ।

कई एक आर्यसमाजी यह कहते हैं कि कृष्णावतार में आपने एक प्रमाण आरण्यक और दूसरा छान्दोग्य का दिया है हम इन दोनों को ही प्रमाण नहीं मानते, उपनिषद् और आरण्यक को तब प्रमाण मानते हैं जब उनके कथन में मंत्रभाग की पुष्टि मिल जावे ? इसके ऊपर हमारा यह कथन है कि आर्यसमाजियों का वेदानुकूल होने पर ही छान्दोग्य और आरण्यक को मानना सुफेद झूठ और संसार को धोका देना तथा वेद से सिद्ध हुये अवतार से जान बचाने का उपाय है । सत्यार्थप्रकाश

तृतीय समुल्लास के ब्रह्मचर्य प्रकरण में "पुरुषोवाव यज्ञः छान्दोग्य० प्रपा० ३ खं० १६" आदि छः श्रुतियां प्रमाण में लिखी हैं इन छः में से एक भी आर्यसमाज के लंगड़े वेद के किसी मंत्र के अनकूल नहीं।

देवता

वेदों में देवताओं का वर्णन आता है। जैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रभृति मनुष्यजातियां हैं ऐसे ही विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, साध्य, पितर, भूत ये देवजातियां हैं किन्तु आजकल के मनुष्य जहां किसी देवजाति का नाम आता है वहां पर देव शब्द का अर्थ 'विद्वान् मनुष्य' कर लेते हैं जिससे देवजाति का सफाया हो जाता है। हम आस्तिक हैं और हमको वेदादि सच्छास्त्र प्रमाण हैं अतएव आज हम इसकी खोज करेंगे कि वेद इस विषय में क्या कहता है। वेद के टटोलने पर हम इस फल पर पहुँचे कि—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता
चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या
देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता
वृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ॥

यजु० अ० १४ मं० २०

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, वसु देवता, रुद्र देवता, आदित्य देवता, मरुत देवता, विश्वेदेवा देवता, वृहस्पति देवता, इन्द्र देवता, वरुण देवता।

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंश शाः सुराधसः।
वृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु मा ॥

यजु० अ० २० मं० ११

तीन त्रया वा एकादश देवता अथवा तेंतीस देवता अनेक सम्पत्तिवाले वृहस्पति हैं पुरोहित जिनके, सविता देवता की प्रेरणा से समस्त देवताओं के सहित ये देवता हमारी रक्षा करें। अब कुछ देवताओं के नाम और महत्व देखिये—

अश्विनी कुमार

"यच्च वर्चो अक्षेषु० अथर्व कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ३५" इस मन्त्र में "अश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम्" 'हे अश्विनीकुमारो! उस तेज से तुम इसकी रक्षा करो' यह प्रार्थना अश्विनीकुमार से की गई है, फिर "इन्द्राग्नी० अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५४" इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि अश्विनीकुमार प्रजा द्वारा इस नारी की वृद्धि करें। विचारिये अश्विनीकुमार मनुष्य हैं या देवता?

यम

"प्रेहि प्रेहि० ऋ० मंड० १० अ० १ सू० १४ मं० ७" इस मंत्र में पितृमेध करने वाला मनुष्य मृतक पितर से कहता है कि तुम यहां से उस मार्ग से जाओ जिससे तुम्हारे पूर्व पितर गये हैं और अभीष्ट स्थान पर पहुँच कर तुम यम और वरुण इन दो देवताओं का दर्शन करोगे। "यो ममार प्रथमो मर्त्यानाम्० अथर्व० कां० १८ अ० ३ सू० ३ मं० १३" इस मंत्र में यह कहा है कि जो यम पहिले मर कर यमलोक को प्राप्त हुये वही विवस्वान् सूर्य के पुत्र यम जो मरे हुये प्राणियों को कर्मफल देते हैं, हे ऋत्विजो! तुम उसकी पूजा करो। यह यम मनुष्य है या देव, इस पर पाठक विचार करें।

अग्नि

"अग्निर्देवता० यजु० अ० १४ मं० २०" इस मंत्र में अग्नि को देवता बतलाया और "देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु० अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ४६" इस मंत्र में दूल्हा वधू से कहता है कि जातवेदा अग्नि तुझे सौभाग्यवती करे। बतलाइये यह अग्नि देव है या मनुष्य?

सोम

"अग्निर्देवता० यजु० अ० १४ मं० २०" इस मंत्र में लिखा है कि 'चन्द्रमा देवता' अर्थात् चन्द्रमा देवता है और "देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ४६" इस मंत्र में वर वधू से कहता है कि सोम राजा तुझे सुन्दर प्रजावाली करे। विचारो यह सोम कौन है।

रुद्र

"अग्निर्देवता यजु० अ० १४ मं० २०" इस मंत्र में लिखा है कि 'रुद्र देवता' रुद्र देवता और "नमस्तेस्त्वायते० अथर्व० कां० ११ अ० १ सू० २ मं० १५" इस मंत्र में आते हुये और जाते हुये, खड़े और बैठे हुये रुद्र को प्रणाम करना लिखा है। यह अब भी कोई मनुष्य है?

अदिति

"यस्मिन्देवा० अथर्व० कां० १८ अ० १ सू० १ मं० ३६" इस मंत्र में यह कहा गया है कि अदिति देवता हमको वरुणदेव से निरपराध बतावे और "दितेः पुत्राणाम् अथर्व० कां० ७ अ० १ सू० ८ मं० १" इस मंत्र में कहा गया है कि दैत्यों के स्थान को मैं दैत्यों से छीन कर अदिति के पुत्र देवताओं का करता हूँ। यहाँ पर अदिति देवमाता और देवता है।

बृहस्पति

"अग्निर्देवता० यजु०१४। २०" इस मंत्र में लिखा है कि 'बृहस्पतिर्देवता' बृहस्पति देवता है और "ममेयमस्तु पोष्या० अथर्व कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५२" इस मंत्र में वर वधू से कहता है कि बृहस्पति देवता ने तुझको मुझे दिया है। यहां पर बृहस्पति मनुष्य नहीं वरन् देवता है।

भग

"गृह्णामि ते सौभगत्वाय० अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५०" इस मंत्र में कहा है कि भग देवता ने गृहस्थाश्रम के लिये तुझको मुझे दिया है और "भगस्त्वेतो नयतु० अथर्व० कां १४ अ० १ सू० १ मं० २०" इस मंत्र में पति वधू से कहता है कि भग देवता तुझे सौभाग्य दें। यहां पर भी भग कोई मनुष्य नहीं है।

अर्यमा

"गृह्णामि ते सौभगत्वाय अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५०" इस मंत्र में वर वधू से कहता है कि अर्यमा देवता ने गृहस्थ के लिये तुझको मुझे दिया है और "शिवा नारी० अथर्व कां० १४ अ० २ सू० २ मं० १३" इस मंत्र में वर कहता है कि इस नारी को अर्यमा देवता सुन्दर प्रजा से बढ़ावे।

सविता

"अग्निर्देवता यजु० १४। २०" इस मन्त्र में 'सूर्यो देवता' शब्द से सविता को देवता लिखा है और "गृह्णामि ते अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५०" इस मन्त्र में वर वधू से कहता है कि सविता देवता ने गृहस्थ के लिये तुझको मुझे दिया है। क्या यह सविता भी कोई मनुष्य है?

त्वष्टा

"त्वष्टा वासो व्यदधात्० अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५३" इस मंत्र में वर वधू को वस्त्र उढ़ाते समय यह कहता है कि इस वस्त्र को त्वष्टा देव ने

तैयार किया है और "त्वष्टा जायामजनयत् अथर्व० कां० ६ अ० ८ सू० ७८ मं० ३" इस मंत्र में यह बतलाया गया है कि यह जो तुम्हारी पत्नी है इसको तथा तुमको त्वष्टा देव ने उत्पन्न किया है। क्या अब भी त्वष्टा कोई मनुष्य है?

वायु

"अग्निर्देवता यजु० १४। २०" इस मंत्र में 'वातो देवता' लिख कर वायु को देवता बतलाया है और "इन्द्राग्नी द्यावा अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५४" इस मंत्र में वर कहता है कि वायु इस नारी को प्रजा से बढ़ावे।

मित्र

"यस्मिन्देवा अथर्व० कां० १८ अ० १ सू० १ मं० ३६" इस मंत्र में प्रार्थना है कि मित्र देवता वरुण देव से हमको निरपराध बतावें और "मित्र एनं वरुणः अथर्व० कां० २ अ० ५ सू० २८ मं० २" इस मंत्र में बालक का पिता कहता है कि इस बालक को मित्र देवता बुढ़ापे में मरनेवाला करें। क्या यह मित्र देवता कोई लिखा पढ़ा मनुष्य है?

इन्द्र

"अग्निर्देवता यजुः १४। २०" इसमें लिखा है कि 'इन्द्रो देवता' इन्द्र देवता है और "अद्भाभ्याम् ऋ० मं० २ अ० २ सू० १८ मं० ४" यज्ञ में यजमान इन्द्र से प्रार्थना करता है कि हे इन्द्र! तू दो घोड़ों के रथ में बैठ कर आ और कल्याण करनेवाली पत्नी तथा और भी सुरमणीय तेरे घर में हैं। क्या यह इन्द्र देव नहीं है?

विश्वेदेव

'अग्निर्देवता यजु० १४। २०" इस मन्त्र में 'विश्वेदेवा देवता' लिख कर विश्वेदेवों को देवता माना है और "इहेदसाथ अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ३२" इस मन्त्र में वर वधू को कहा है कि विश्वेदेवा देवता तुम दोनों को सोम की कान्ति के तुल्य कान्तिवाला करें। विचारो, विश्वेदेवा देवता हैं या मनुष्य?

वसु

"अग्निर्देवता यजु० १४। २०" इस मन्त्र में 'वसवो देवता' लिख कर अष्ट वसुओं को देवता बतलाया है और "वसवस्त्वा दक्षिणतः अथर्व० कां० १० अ० ५ सू० ६ मं० ८" इसमें लिखा है कि वसु देवता दक्षिण की ओर से तेरी रक्षा करेंगे। वसु क्या हैं; तुम्हीं विचारो।

वरुण

"अग्निर्देवता यजु० १४। २०" इसमें 'वरुणो देवता' लिखा है और "प्रेहि प्रेहि ऋ० मं० १० अ० १ सू० १४ मं० ७" इस मन्त्र में अन्त्येष्टि करनेवाला मृतक पुरुष से कहता है कि तुम उस रास्ते से जाओ जिससे तुम्हारे पूर्वज गये हैं और अभीष्ट स्थान पर पहुँच कर तम वरुण देव को देखोगे। यह वरुण क्या है?

पूषा

"इमं गावः अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ३३" इस मंत्र में लिखा है कि पूषा देवता तुमको प्रेरित करे और "पूषेमा अथर्व० कां० ७ अ० १ सू० ६ मं० २" पूषा देवता हमको निर्भय मार्ग से ले जावे यह बतलाया है।

आदित्य

"अग्निर्देवता यजु० १४। २०" इसमें लिखा है कि 'आदित्या देवता' आदित्य देवता हैं और "वसवस्त्वा अथर्व० कां० १० अ० ५ सू० ६ मं० ८" इस मंत्र में यह कहा है कि आदित्य देवता पीछे से तेरी रक्षा करेंगे। समझो आदित्य क्या हैं?

मरुत

"इमं गावः अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ३३" इस मंत्र में लिखा है कि इसके लिये तुमको मरुत प्रेरित करें और "इन्द्राग्नी अथर्व० कां० १४ अ० १ सू० १ मं० ५४" इस मंत्र में प्रार्थना की गई है कि मरुत देवता इस नारी को सुन्दर प्रजा से बढ़ावें।

यद्यपि देवता हमारे लिखे देवताओं से बहुत अधिक हैं और उनका वणन वदों के पांच पांच छः छः मंत्रों से अधिक मंत्रों में आता है किन्तु हमने ग्रंथ बढ़ने के भय से उन सबको नहीं लिखा, कुछ थोड़े से देवता यहां लिख दिये हैं। जो जो मंत्र हमने लिये हैं उनमें से बाज बाज मंत्र में कई एक देवताओं के नाम आते हैं, हमने उन सबको छोड़कर उसी अकेले देवता का नाम ग्रहण किया है कि जिसके देवता होने में हमने प्रमाण को रक्खा है। आर्यसमाज की संस्कारविधि नामकरण प्रकरण की टिप्पणी में सत्ताइस नक्षत्र के सत्ताइस देवता और सोलह तिथि के सोलह देवता लिख कर इनके नाम की आहुतियां देनी लिखी हैं। अब पाठक विचार करें कि ये देवजाति के देव हैं या लिखे पढ़े मनुष्य हैं? यदि ये सब लिखे पढ़े मनुष्य ही हैं और विद्वान् होने के कारण इनको देवता लिख दिया है तो फिर अग्नि में डाली हुई आहुतियों से इनकी तृप्ति कैसे होगी?

मूर्तिपूजा

वेदों में मूर्तिपूजा सविस्तृत लिखी है, उसको क्रम से पढ़िये—

गणेश पूजन

निषुसीद गणपते गणेषु
त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे
महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥

ऋ० मंड० १० अ० १० सू० ११२ मं० ६

भगवन् गणपते ! आप देवगण में आकर बैठें, आपको ऋषि लोग कवियों में उत्तम कवि कहते हैं, आपके बिना कोई कार्य नहीं होता, महामर्क चित्र जो आप हैं आपका मैं अर्चन करता हूँ ।

सूर्य पूजन ।

यो देवेभ्यः आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

यजु० अ० ३१ मं० २०

जो आदित्य देवताओं के लिये प्रकाशमान है, जो देवताओं के समस्त कार्यों में आगे रहता है, जो समस्त देवताओं से पहिले उत्पन्न हुआ है उस दीप्यमान ब्रह्म के अवयव भूत सूर्य को मैं प्रणाम करता हूँ ।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

यजु० अ० ३ मं० ३५

उस देव अन्तर्यामी रूप से प्रेरक हिरण्यगर्भ रूप या आदित्य के अन्तर्गत जो पुरुष है उसका जो वर्णन करने योग्य तेज है उसका हम ध्यान करते हैं, वह हमारी बुद्धियों को शुभ कार्य में लगावे ।

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥
अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तामिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥

अथर्व० कां० १७ अ० १ सू० १ मं० २२ । २३

उदय होते हुये, उदय होनेवाले और उदित सूर्य को प्रणाम है, तीनों अवस्थाओं में विराट्, स्वराट्, सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है । २२ । अस्त होते हुये, अस्त होनेवाले और अस्त सूर्य को प्रणाम है, तीनों अवस्थाओं में विराट्, स्वराट्, सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है । २३ ।

शक्ति पूजन

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरा
म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा विभ-
र्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥
अहं सोममाहनसं विभ-
र्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति
यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।

अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति
श्रुधिश्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥
अहं रुद्राय धनुरातनोमि
ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ ।
अहं जनाय समदं कृणो-
म्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥६॥

ऋ० मंड० १० अ० १० सू० १२५ मं० १ से ६ तक

मैं रुद्रदेव और आठ वसुओं के साथ विचरती हूँ। मैं ही बारह आदित्यों और विश्वेदेवताओं के साथ भी विचरती हूँ। मैं मित्रावरुण, अग्निदेवता और अश्विनीकुमारों को धारण करती हूँ। १। मैं सब तरफ से मारनेवाले सोम देवता का पोषण करती हूँ, मैं ही त्वष्टा, पूषा और भग देवता को धारण करती हूँ, धन और हविषवाले सुन्दर प्राप्त करते हुये यजमान तथा सोम निकालते हुये को। २। मैं ईश्वरीय ज्ञान मिलने अथात् मुख्य यजनीय देवताओं में अनेक तरह से स्थित होने वाली और सब ओर से प्रवेश कराती हूँ, तिस मुझको देव लोग अनेक जगह विधान करते हैं। ३। मैं ही आप यह कहती हूँ कि सेवित है देवताओं और मनुष्यों से, जिसको मैं चाहती हूँ उस उसको उत्तम बनाती हूँ, उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको मेधावी बनाती हूँ। ४। मेरी सहायता से वह अन्न को खाता है, जो देखता है, जो श्वास लेता और सुनता है, जो मेरे कथन किये को नहीं मानते वे नष्ट हो जाते या मेरी दी हुई शक्तियों से रहित हो जाते हैं। सुन सखे! श्रद्धा और यत्न से प्राप्त होनेवाले वचन को तुझ से कहती हूँ। ५। मैं रुद्र के धनुष को विस्तृत करती हूँ, ब्राह्मण के बैरी या हिंसकजन के लिये मदयुक्त करती हूँ, मैं आकाश पाताल में व्याप्त हो रही हूँ। ६।

विष्णु पूजन

तं यज्ञं वर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये ॥

यजु० अ० ३१ मं० ६

सृष्टि के आरंभ में सब से प्रथम उत्पन्न हुये यज्ञपुरुष (विष्णु) का सृष्टि रचयिता प्रजापति और मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने मानसिक यज्ञ में पूजन किया।

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥

ऋ० मंड० १० अ० १२ सू० १५५ मं० ३

विप्रकृष्ट देश में वर्तमान पुरुष निर्माण रहित जो दारुमय पुरुषोत्तम शरीर समुद्र के तट में विराजमान है उस शरीर का अवलम्बन वा उपासना करो, जो किसी से भी हनन नहीं होता उस दारुमय देव की उपासना करने से अतिशय उत्कृष्ट वैष्णव लोक को प्राप्त हो।

शंकर पूजन

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

यजु० अ० ३ मं० ६०

निरुक्त—त्र्यम्बको रुद्रस्तं त्र्यम्बकं यजामहे, सुगन्धिम्। सुगन्धिं सुष्ठुगन्धिं पुष्टिवर्धनं पुष्टिकारकमिवोर्वारुकमिव फलं बन्धनादारोधनान्मृत्योः सकाशान्मुंचस्व मां कस्मादित्येषा परा भवति।

हम तीन नेत्रवाले रुद्र परमात्मा को पूजते हैं जो पुण्यगन्ध से युक्त और धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ानेवाला है जिससे कि उसकी कृपा से खरबूजे के तुल्य हम बन्धन से छूटें-अमृत से न छूटें।

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥५॥
नमस्तेस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥६॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः। १६

अथर्व० कां० ११ अ० १ सू० २ मं० ५। १५। १६

हे पशुपते! तेरे मुख को प्रणाम है और हे भव! तेरी जो आंखें हैं उनको प्रणाम है, तेरी त्वचा एवं देखने योग्य जो तेरा रूप है उसको प्रणाम है, पश्चिम दिशा के अधिपति आप को प्रणाम। ५। आते हुये तुझको प्रणाम और जाते हुये को प्रणाम, हे रुद्र! खड़े हुये आपको प्रणाम तथा बैठे को प्रणाम। १५। सायंकाल प्रणाम, प्रातःकाल प्रणाम, रात्रि को प्रणाम, दिन में प्रणाम, भवरूप तथा शर्वरूप जो आप हैं मैं आपको प्रणाम करता हूँ। १६।

सर्वस्वरूपेश्वर पूजन

संसार को ईश्वर का शरीर मान कर यह पूजन है—

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि॥

अथर्व० कां० १ अनु० ३ सू० १३ मं० १

हे पर्जन्य! आपसे सम्बन्ध रखनेवाली दमकती हुई बिजली को मेरा प्रणाम और होमी हुई हवि पहुँचे तथा आपसे सम्बन्ध रखनेवाली ध्वनि करनेवाली अशनि को भी मेरा नमस्कार है और आपके व्यापनशील मेघ के लिये नमस्कार है (नमस्कार करने का और हवि देने का प्रयोजन यह है कि) कठिनता से देनेवाले लुब्ध अथात् स्तुति प्रणाम हवि आदि न देनेवाले के ऊपर आप अशनि (बज्र) फेंकते हैं अतएव अशनि की निवृत्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ।

महावीर

यज्ञ में महावीर नामक प्रजापति की प्रतिमायें बनती हैं उनको क्रम से पढ़ने का कष्ट उठावें।

देवीद्यावा पृथिवी मखस्य त्वामद्य शिरो राध्यासं।
देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥

यजु० अ० ३७ मं० ३

हे मृद्जलरूप देवियो ! मैं देवयजन स्थान में तुम दोनों को लेकर महावीर की मूर्ति बनाऊँगा, अतएव मैं यज्ञ के लिये तुम दोनों का ग्रहण करता हूँ, महावीर के बनाने के हेतु यह तुम्हारा ग्रहण है।

यह मन्त्र का अर्थ है। इस मन्त्र पर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि "मृदमादत्ते पिण्डवद्देवीद्यावा पृथिवीति का० २६।१।४"। 'देवीद्यावा पृथिवी' इस मंत्र से जलमिश्रित मृत्पिण्ड को उठावे। इसी के ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ मृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्या च दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवीद्यावापृथिवीऽ इति यज्ञस्य शीर्षच्छिन्नस्य रसो व्यक्षरत्स इमे द्यावापृथिवीऽ अगच्छद्यन्मृदियं तद्यदापोऽसौ तन्मृदश्चापां च महावीराः कृता भवन्ति तेनैवैनमेतद्रसेन समर्धयति कृत्स्नं करोति तस्मादाह देवीद्यावापृथिवीऽ इति मखस्य त्वामद्य शिरो राध्यासमिति यज्ञो वै मखो यज्ञस्य त्वामद्य शिरो राध्यासमित्येवैतदाह देवयजने पृथिव्या इति देवयजने हि पृथिव्यै सम्भरति मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णऽ इति यज्ञो वै मखो यज्ञाय त्वा यज्ञस्य त्वाशीर्ष्णऽ इत्येवैतदाह।६।

शतपथ कां० १४।१।२।६

अब मिट्टी के पिण्ड को ग्रहण करते हैं—दक्षिण हस्त से 'देवीद्यावा पृथिवी' इस मंत्र से मृत्पिण्ड लेकर कृष्ण मृगचर्म पर उत्तर दिशा में रख दे। यज्ञ विष्णु का वैष्णवी तेज माया में गिरा उस समय कुछ दीप्तिरूपी रस पृथ्वी स्वर्ग में व्याप्त हुआ जिसको जल और मिट्टी कहते हैं और इन्हीं दोनों वस्तुओं से महावीर की मूर्ति बनाते हैं इस कारण मूर्ति बनाने के लिये मृत्पिण्ड को ग्रहण करता है मानो उस पूर्वोक्त ज्योतिरस से ही इसको समृद्धियुक्त और पूर्ण करता है इस कारण देवीद्यावा पृथिवी' इस मंत्र में कहा कि यज्ञ में आज मैं तुम्हारे शिररूप महावीर प्रजापति का निर्माण करूंगा। यज्ञ मख को कहते हैं उस मख में शिर महावीर का निमाण करूंगा, इसी को लेकर 'देवयजने पृथिव्याः' यह कहा गया है।

'देवीद्यावा' इस मन्त्र के आगे "देव्यो वम्रयो" यह मंत्र है।

देव्यो वम्रयो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥

यजु० अ० ३७ मं० ४

हे प्राणियों से उत्पन्न उपजिह्वकाओ! तुमको लेकर देवयजन स्थान में अब महावीर की मूर्ति को सम्पादन करूं, मैं यज्ञ के लिये तुझे ग्रहण करता हूँ, महावीर के हेतु तुझे ग्रहण करता हूँ।

इसके ऊपर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि "उत्तरतो देव्यो वम्रय इति वल्मीकवपाम् का० २६।१।५-६" बांबी से मिट्टी लेकर मौन धारण कर मृत्पिण्ड से उत्तर की तरफ रख दे। इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ वल्मीकवपाम्। देव्यो वम्रय इत्येता वाऽ एतदकुर्वत यथायथैतद्यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत ताभिरेवैनमेतत्समर्धयति कृत्स्नं करोतीति॥

शत० कां० १४।१।२।१०

यज्ञपुरुष का तेज पतित होने से बांबी की मिट्टी हुई इस कारण उसको लेता है और उससे महावीर की मूर्ति को परिपूर्ण करता है।

इयत्यग्रे आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥

यजु० अ० ३७ मं० ५

हे पृथ्वि! जिस समय वराह ने तेरा उद्धरण किया था तब तू प्रादेशमात्र थी उस तुझको लेकर आज मैं देवयजन में तेरा यज्ञ शिर महावीर बनाता हूँ।

इसके ऊपर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि "इयत्यग्र इति वराहविहितम् कां० २६।१।७"। "इयत्यग्र" इस मन्त्र से जंगली वराह की खोदी हुई मिट्टी को लेकर मौन होकर वल्मीक की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रख दे। इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ वराहविहतम्। इयत्यग्रऽ आसीदितीयतीह वाऽ इयमग्रे पृथिव्यास्र प्रादेशमात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिस्तेनैवैनमेतन्मिथुनेन प्रियेण धाम्ना समर्धयति कृत्स्नं करोतीति।

शत० कां० १४।१।२।११

सृष्टि के आरंभकाल में यह पृथ्वी प्रादेशमात्र थी उसको वराह ने ऊंचा उठाया, वे वराह इस पृथ्वी के पति और प्रजा के स्वामी हैं इस कारण उस प्रियधाम मिथुन के द्वारा महावीर को समृद्ध और परिपूर्ण करता है अर्थात् मूर्ति बनाने को वराहविहत मृत्तिका लेता है।

इसके आगे के "इन्द्रस्य" इस मन्त्र से महावीर बनाने के लिये रोहिषतृण (घास) का ग्रहण लिखा है। मन्त्र में घास को विष्णुतेज कह कर महावीर बनाने के लिये ग्रहण किया है। कात्यायन श्रौतसूत्र कहता है कि इस घास को लेकर मौन धारण कर वराह की मिट्टी के उत्तर की तरफ़ मृगचर्म पर रख दे। शतपथ "अथ-यत्पूयन १४। १। २। १२" कहता है कि यह घास विष्णुतेज से उत्पन्न हुआ है इस कारण यज्ञ के मुख्य महावीर निर्माण में इसको लिया जाता है।

ऋग्वेद के "चत्वारि शृङ्गा" इस मन्त्र में यज्ञ को 'त्रिधाबद्धः' लिखा है इसका भाषा यह है कि यज्ञ मन्त्र ब्राह्मण और कल्पबद्ध है। यज्ञ प्रकरण में जो अर्थ मन्त्र का होता है उसी अर्थ को ब्राह्मण कहता है और क्रिया बतलाता हुआ उसी अर्थ को कल्पसूत्र कहता है, यज्ञ प्रकरण होने के कारण इस प्रकरण में मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प तीनों ही मिल कर चलते हैं।

आगे "प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः" मंत्र है इसका अर्थ है कि वेद के रक्षक परमात्मा महावीर रूप में हमारे यज्ञ में आवें। इसके ऊपर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि "कृष्णाजिनं परिगृह्योत्तरतः परिवृतं गच्छन्ति प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति का० २६। १। १२" "प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः" इस मंत्र को बोल कर उस समस्त सामग्री वाले कृष्ण मृगचर्म को यज्ञस्थल के अन्दर ले जावे और तीन महावीर बनावे।

फिर "मखस्य शिरोऽसि" इस मंत्र से अपने बायें हाथ में रक्खे हुये महावीर को दहिने हाथ से छुवे और इसी मंत्र को पढ़ कर इससे महावीर की स्तुति करे। फिर "अश्वस्य त्वा वृष्णः" इस मंत्र से घोड़े की लीद से महावीर को पकावे, बाद में "ऋजवे त्वा" इस मंत्र से पके हुये महावीरों को पकने के स्थान से निकाले फिर "यमाय त्वा" इस मंत्र से महावीर का तीन बार प्रोक्षण करे। फिर "अनाधृष्टा" इस मंत्र से महावीर के ऊपर अंगूठा और अंगुली रख कर महावीर की स्तुति करे। इस प्रकार इस प्रकरण में महावीर की परिक्रमा आदि पूजन की सब क्रियायें लिखी हैं इसको देख कर संदेह हुआ कि महावीर ईश्वर नहीं है, हमारी बनाई एक मूर्ति है। इस संदेह को दूर करने के लिये शतपथ बोल उठा कि—

उभयं वा एतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्य निरुक्तं परिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोत्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्तमपरिमितꣳ रूपं तदस्य तेन संस्करोतीति।

शत० कां० १४। १। २। १८

परमेश्वर दो प्रकार का है परिमित अपरिमित, निरुक्त और अनिरुक्त इस कारण जो यज्ञ उपासनादि कर्म यजुर्वेद के मंत्रों से करता है उसके द्वारा परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो निरुक्त और परिमित है और जो तूष्णींभाव सम्पन्न है अर्थात् जहां मौन हो जाना पड़ता है उससे परमेश्वर के उस रूप का संस्कार करता है जो अनिरुक्त और अपरिमित नाम है।

जैसे माता पिता का पूजन पंचतत्वात्मक शरीर के द्वारा होता है इसी प्रकार ईश्वर का पूजन भी उसके शरीर पंचतत्वों के द्वारा होता है अतएव यह शरीर परिच्छिन्न पूज्य है और सृष्टि के बाहर जो ब्रह्म अरूप है वह अविज्ञेय-अनिर्वचनीय है। शतपथ ने इस प्रकार समझा कर महावीर के पूजन में उठी हुई शंका को दूर कर दिया।

इति वेद सिद्धान्त परिचयः।

आर्यसमाज का मुख्य लक्ष्य

जिस जिस देश में अंग्रेजी शिक्षा पहुँची वह वह देश चालाक, नास्तिक और पौलिसीबाज बन गया। जब यह शिक्षा भारतवर्ष में आई तो आने के कुछ दिन बाद ही इसने इस पवित्र देश में आर्यसमाज का जन्म दिया, फल जिसका यह हुआ कि भारतवर्ष के धर्मों में अशान्ति, परस्पर द्वेष और जिद्द फैल गई।

दयानन्द

आर्यसमाजी दूसरों को चाहे जितना भी भला बुरा कहें किन्तु वे इतना कथन भी नहीं सह सकते कि आर्यसमाज की जन्मदाता इंग्लिश शिक्षा है, इसको सुनते ही कह उठाते हैं कि भारतवर्ष में आर्यसमाज का जन्म होना अंग्रेजी शिक्षा का फल नहीं वरन् मधुरभाषी, सत्यवक्ता श्री १०८ महर्षि दयानन्द जी के सद्गुणों ने आर्यसमाज का जन्म दिया है। आर्यसमाज के जन्मदाता में ईश्वर करे ये गुण हों किन्तु उनके लेखों से इन गुणों का होना स्वामी दयानन्द जी में पाया नहीं जाता। आर्यसमाज के प्रवर्तक कैसे मधुरभाषी थे इसको सिद्ध करने के लिये हम सत्यार्थप्रकाश के कुछ लेखों को यहां उद्धृत करते हैं, पाठक ध्यान से पढ़ें।

(१) सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास पृ० ७० पं० २८ में लिखा है कि "तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है"। 'तुम कुये में पड़ो' यह कितना मीठा शब्द है। (२) स० प्र० समु० ११ पृ० ३१२ पं० ७ में लिखा है कि "प्रथम इनका मूलपुरुष शठकोप हुआ कि जो चक्रांकितों ही के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रंथ जो नाभा डूम ने बनाया है उनमें लिखा है कि 'विक्रीय शूपं विचचार योगी' इत्यादि वचन चक्रांकितों के ग्रन्थों में लिखे हैं, शठकोपयोगी सूप को बना, बेच कर विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था"। संसार के किसी ग्रंथ में शठकोप को कंजर नहीं लिखा, स्वामी जी खंडन नहीं कर सके तब मीठे लेख से शठकोप को कंजर लिख दिया। (३) स० प्र० समु० ११ पृ० ३१२ पं० १५ में लिखा है कि "उस (शठकोप) का चेला मुनिवाहन जो कि चाण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था"। स्वामी जी खंडन न कर सकने के कारण क्रोध में आकर मुनिवाहन को चाण्डाल लिखते हैं, स्वामी जी को यहां पर इतना भयंकर क्रोध आया कि जिस क्रोध के कारण यहां पंचम वर्ण चाण्डाल को लिख दिया, सब जगह चार वर्ण और

स्वामी जी को क्रोध आ जाय तो पांच वर्ण। (४) स० प्र० समु० ११ पृ० ३१२ पं० १५ में लिखा है कि "उस (मुनिवाहन) का चेला यावनाचार्य यवनकुलोत्पन्न था" यावनाचार्य जाति का मुसलमान था यह लेख बिलकुल झूठा है और क्रोध के वश में लिखा गया है। (५) स० प्र० समु० ११ पृ० ३१२ पं० ८ में लिखा है कि "भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है"। नाभा जी जाति का डोम नहीं था और न इसके डोम होने में स्वामी जी ने कोई प्रमाण दिया है, क्रोध में आकर चिढ़ कर डोम लिखा है यह स्वामी जी का मंजुल भाषण है। (६) स० प्र० समु० ११ पृ० ३७२ पं० २४ में रामसनेही को "रांडसनेही" लिखा है। क्या मधुर भाषण है, मानो स्वामी जी की वाणी से फूल टपकते हैं। (७) स० प्र० समु० ११ पृ० ३३३ पं० ३ में लिखा है कि "वृन्दाबन जब था तब था अब तो वेश्यावन है"। स्वामी जी करें क्या, क्रोध रुकता नहीं फिर क्रोध में गालियां न दें तो और क्या करें। (८) स० प्र० समु० ११ पृ० ३२० पं० ३ में लिखा है कि "मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं है किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है"। बलिहारी है स्वामी जी के इस मधुर लेख और विज्ञान पर, क्या मधुर शब्दों में मूर्तिपूजा का खंडन नहीं हो सकता था? खण्डन तो हो सकता था किन्तु स्वामी जी को गाली देने की आदत ने मजबूर कर दिया। (९) स० प्र० समु० ११ पृ० ३१६ पं० २० में लिखा है कि "सुनो अंधो! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है"। स्वामी जी का "सुनो अंधो" यह लेख आर्यसमाजियों को सुनहरे अक्षरों में लिख कर अपने कमरों में लटकाना चाहिये ताकि उनके लड़के भी इतनेही मधुरभाषी बन जावें। (१०) स० प्र० समु० ११ पृ० २५ पं० २६ में लिखा है कि "जो कोई बुद्धिमान उनकी भेंट पांच जूता दंडा व चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं"। ऐसे नम्र शब्द किसी धार्मिक ग्रन्थ में पाये जाते हैं तो केवल सत्यार्थप्रकाश में, यह आर्यसमाजियों के उत्कर्ष की लावण्यता है। (११) स० प्र० समु० ११ पृ० ३५९ पं० १८ में लिखा है कि "जब उन्हों से दण्ड न पाया तो इनके कर्मों ने पुजारियों को बहुत सी मूर्तिविरोधियों से प्रसादी दिला दी और अब भी मिलती है और जब तक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तब तक मिलेगी"। देश पर यवनों के राज्य होने को पुजारियों को प्रसादी और मूर्तिपूजा को कुकर्म लिखना स्वतंत्र मनुष्य का काम है, सभ्यता, विद्वत्ता और लज्जा के कीच में सना हुआ कोई मनुष्य ऐसे मीठे शब्द लिख ही नहीं सकता। (१२) स० प्र० समु० ११ पृ० ३२१ पं० ३ में लिखा है कि "आप पराधीन भूठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में

होकर अनेक विध दुःख पाते हैं"। सनातनधर्मियों के पूज्य पुजारियों को कुम्हार के गधे और भठियारे के टट्टू लिखना क्या आर्यसमाजियो तुम्हारी दृष्टि में ये गालियां नहीं हैं? (१३) स० प्र० समु० ११ पं० १ में लिखा है कि "उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं"। ईश्वरपूजक शंकर की स्थापना करनेवालों के लिये स्वामी दयानन्द जी के ये मधुर वचन हैं, इतने मधुर वचन कोई आर्यसमाजियों को कहे तो या तो आर्यसमाजी मार पीट कर बैठें या इज्जत हतक के भय से गवर्नमेंट का दरवाजा खटखटावें। (१४) स० प्र० समु० ११ पृ० ३११ पं० २४ में लिखा है कि "अपने अपने शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें"। क्या मधुर शब्द हैं, स्वामी जी खण्डन करने की अपेक्षा गाली देना अच्छा समझते हैं, यहां पर तो स्वामी जी वैसी ही गालियां देने लगे जैसी औरतें रांड निपूती आदि मधुर शब्द बोलकर दिया करती हैं। (१५) स० प्र० समु० ११ पृ० ३४० पं० १३ में लिखा है कि "वाहरे वाह भागवत के बनानेवाले लालबुझक्कड़! क्या कहना तुझको, ऐसी ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई, निपट अन्धा ही बन गया। .....भला इन महाझूठ बातों को वे अन्धे पोप और बाहर भीतर की फूटी आँखोंवाले उनके चेले सुनते और मानते हैं, बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई !!! इन भागवतादि पुराणों के बनानेहारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता"। यहाँ पर तो स्वामी दयानन्द जी ने भठियारियों को भी मात कर दिया, गाली क्या लिखीं गालियों का जंकशन बना दिया। यद्यपि आर्यसमाजी यह हुज्जत मचाया करते हैं कि भागवत व्यास की बनाई नहीं है, परन्तु जहाँ जहाँ पर इस विषय में आर्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ हुआ वहाँ वहाँ पर आर्यसमाज फेल हुआ और सनातनधर्म द्वारा यह निरन्तर सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवत के रचयिता भगवान वेदव्यास हैं। व्यास के लिये यह गालियों का जंकशन लिखा गया है इसके एक एक पद में गाली है, क्या सम्पादक की यही विवेचना होती है कि किसी के लेख का जब तुम खण्डन न कर सको तब गालियों पर उतारू हो जाओ—यह मनुष्य का काम नहीं। कभी कभी अपने व्याख्यान में कविरत्न पं० अखिलानन्दजी "भागवत" इसके स्थान में "सत्यार्थप्रकाश" और "भागवतादि" के स्थान में "सत्यार्थप्रकाशादि" करके पढ़ देते हैं उस समय यह पाठ ऐसा हो जाता है—"वाह रे वाह सत्यार्थप्रकाश के बनानेवाले लालबुझक्कड़, क्या कहना तुझको ऐसी ऐसी मिथ्या बातें

लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अन्धा ही बन गया। .... भला इन महाझूठ बातों को वे अन्धे पोप और बाहर भीतर की फूटी आँखोंवाले उनके चेले सुनते और मानते हैं, बड़े आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई, इन सत्यार्थप्रकाशादि के बनानेहारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये वा जन्मते समय मर क्यों न गये क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता"। इसको सुन आर्यसमाजी चिढ़ कर आपे से बाहर हो जाते हैं। क्या आर्यसमाजी ही अन्न खाते हैं और सनातनधर्मी नहीं खाते? क्या आर्यसमाजियों को ही क्रोध आता है सनातनधर्मियों को नहीं आता? जिस समय सनातनधर्मी सत्यार्थप्रकाश में इस लेख को पढ़ते हैं पढ़ते ही स्वामी जी और सत्यार्थप्रकाश इन दोनों पर रोष आ जाता है। स्वामी जी ने यहां पर एक दो गालियाँ नहीं दीं-गालियों की श्रेणी बना दी, इतने आवेश में आ गये कि "लज्जा और शरम" लिख गये, स्वामी जी की दृष्टि में "लज्जा" और है और "शरम" और चीज है, हम आर्यसमाजियों से नम्र होकर यह अपील करेंगे कि सत्यार्थप्रकाश से परस्पर में फूट और द्वेष फैलाने वाली गालियाँ निकाल दी जायँ। (१६) सं० प्र० समु० ११ पृ० ३५६ पं०-२५ में लिखा है कि "इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई-नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने के शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता"। एकादशी व्रत की विधि पुराणों में है। आर्यसमाज की दृष्टि में चाहे पुराण कितने ही बुरे हों और उनका बनानेवाला चाहे कोई अनपढ़ जङ्गली हो किन्तु बाइस करोड़ हिन्दुओं की दृष्टि में पुराण भारत के पवित्र इतिहास के कहने और वेदार्थ को स्पष्ट कर देनेवाले हैं, इनके रचयिता विष्णु के सत्रहवें अवतार भगवान् वेदव्यास हैं, उन्हीं के लिये कसाई की पदवी दी है, यह स्वामी दयानन्द जी की सभ्यता है, इसको पढ़ कर अन्य धर्म के मनुष्य को भी रोष आ जाता है। इस प्रकार के असभ्य गाली गलौज के लेख किसी सभ्य मनुष्य की लेखनी से लिखे नहीं जा सकते। इन लेखों को देख यही कहना पड़ता है कि स्वामी जी का स्वभाव क्रोधी था और उनके मुख में हरदम गालियों की कृपा रहती थी। आर्यसमाजी या तो सत्यार्थप्रकाश को नहीं पढ़ते या दुराग्रह के पञ्जे में फँस जबर्दस्ती से स्वामी जी को निर्दोष सिद्ध करते हैं।

स्वामी जी को आर्यसमाजी सत्यवक्ता कहते हैं किन्तु उनके ग्रन्थों से तो कुछ और ही सिद्ध होता है, पाठक इसका अवलोकन करें। सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखा है कि "अब आर्यावर्तियों के विषय में विशेष कर ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा

है, इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है वह वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य है"। इस भूमिका के लेख से यही सिद्ध है कि ग्यारहवें समुल्लास तक जो कुछ भी लिखा गया है वह वेदमत है किन्तु जब हम सत्यार्थप्रकाश को देखते हैं तब हमको यह पता चलता है कि इस ग्रन्थ में जितने भी लेख हैं वे सर्वथा झूठे, धोके से भरे हुये और वेदों से कोशों दूर रहनेवाले हैं।

(१) सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर और राहु, केतु ये नाम ईश्वर के बतलाये हैं, वेद में कहीं पर भी इन नामों से ईश्वर का ग्रहण नहीं होता तो क्या इन नामों को ईश्वर के नाम बतला देना यह जनता को धोके में डालना नहीं है? (२) सत्यार्थप्रकाश में शूद्रों को वेद पढ़ने की आज्ञा दी है और उसकी पुष्टि में तृतीय समुल्लास में "यथेमां वाचं कल्याणीम् यजु० २६।२" मंत्र दिया है, मन्त्र का भाषा यहाँ यह लिखा कि 'ईश्वर मनुष्यों से कहता है कि हे मनुष्यो! जैसे मैं ईश्वर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज तथा अपने स्त्री सेवकों को वेद पढ़ाता हूँ ऐसे तुम भी पढ़ाओ'। यह बिल्कुल असत्य बात है। न तो निराकार ईश्वर के कोई स्त्री है और न ही निराकार ईश्वर कभी किसी को वेद पढ़ाता है, बात सोलह आने असत्य रहने पर भी जनता को धोके में डालने के लिये ईश्वर का मनुष्यों को वेद पढ़ाना वेदमन्त्र का यह बनावटी अर्थ लिख दिया। (३) सत्यार्थ-प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में श्राद्ध, तर्पण जीवित❀ पुरुषों का लिखा, जब इसमें कोई वेद प्रमाण न मिला तब नवीन तर्पण के लिये नवीन बनावटी जाली वेदमंत्र बना लिये, वे मंत्र ये हैं—

ॐ ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्। ॐ मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्यादृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम् मरीच्यादृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्यादृषिगणास्तृप्यन्ताम्। ॐ सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् वर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्।

❀आर्यसमाजी ही कहते हैं कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द जी ने बनाया

अब आर्यसमाजी बतलावें कि स्वामी जी की इस चालाकी को हम धोका कहें या सत्यता ? (४) सत्यार्थप्रकाश समु० ५ पृ० १३४ पं० २३ में लिखा है कि

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् । मनु०

"नाना प्रकार के रत्न-सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवे" । स्वामी दयानंद जी विरक्त थे, जब उनको धनलोलुपता ने घेरा तब स्वार्थसिद्धि के लिये मनु के श्लोक को काट छांट कर ऊपर लिखे मुताबिक बना लिया । यह श्लोक मनु में इस प्रकार है—

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥

मनु० अ० ११ श्लो० ६

वेदज्ञाता और त्यागी ब्राह्मणों को जो यथाशक्ति धन देता है वह मर कर स्वर्गलोक में जा सुख भोगता है । स्वामी जी ने श्लोक ही लौट दिया, पाठ भी बदला और श्लोक का भाव भी बदला, ब्राह्मण के बजाय संन्यासी को रत्न देने लिख दिये । स्वामी जी की इस चालबाजी को जो आर्यसमाजी सत्यता की डिगरी देते हैं वे अपने आत्मा का हनन करते हैं । (५) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० १२७ "मुखं किमस्यासीत्, ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्" इन दो मंत्रों के टीका में स्वामी जी ने "ईश्वर में मूर्खत्व और नीचत्व गुण माना है" । धन्य है इन महर्षि को जो ईश्वर को भी मूर्ख बतलाते हैं, इनकी दृष्टि में ईश्वर मुतलक़ जाहिल है । ऐसे अयोग्य लेख लिखने का प्रयोजन यह है कि संसार ईश्वर को मूर्ख और मुझे विद्वान् मानने लगे । धोकेबाजी से भरे हुये इस लेख को जो आर्यसमाजी सत्यता की डिगरी देते हैं क्या यह आर्यसमाजियों का न्याय है ?

ऐसे ऐसे सैकड़ों लेख सत्यार्थप्रकाश में मिलते हैं कि जिनका आधार धोका देना और चालबाजी करना ही है ।

अब रही यह बात कि स्वामी दयानन्द जी 'महर्षि' थे या नहीं ? इसके ऊपर निरुक्त लिखता है कि—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान्त्सम्प्रादुरुपदेशाय ।

निरुक्त० नैगम कां० अ० १ पा० ६

तप के बल से जिन्होंने धर्म को साक्षात् किया था ऐसे ऋषि मंत्रकाल में हुये

हैं, वे धर्म के साक्षात् द्रष्टा ऋषि छोटों को जोकि धर्म को साक्षात् किये हुये न थे उपदेश द्वारा मंत्र दे गये।

जिन्होंने सृष्टि के आरंभ में प्रबल तप के द्वारा धर्म बतलानेवाले वेदमंत्रों को जाना था वे ऋषि कहलाये और उन ऋषियों के मुख से जिन्होंने मंत्रों का श्रवण किया वे भी ऋषि कहलाने का स्वत्व रखते हैं।

जिन्होंने ऋषियों के मुख से मंत्र न सुन कर गुरुपरंपरा से मंत्र सुने हैं वे ऋषि कहलाने के अधिकारी नहीं हैं, स्वामी जी उस समय उत्पन्न नहीं हुये जिस समय कि धर्मद्रष्टा ऋषि उत्पन्न हुये थे और न ही स्वामी जी ने धर्मद्रष्टा ऋषियों के मुख से मंत्र सुने हैं। प्रथम तो इनके मंत्र श्रवण में ही हमको संदेह है, यदि सुने भी हैं तो गुरुपरम्परा से सुने हैं, गुरुपरम्परा से मंत्रों का सुननेवाला ऋषि या महर्षि नहीं हो सकता अतएव यह मानना पड़ेगा कि स्वामी जी न ऋषि थे और न महर्षि। हमने मान लिया कि विद्वान् होंगे, उनकी विद्वत्ता कैसी थी इसके दो एक नमूने हम पाठकों के आगे रखते हैं। स्वामी जी ब्रह्मा का निर्णय करने चले कि वेद-शास्त्रों में जिसका वर्णन है वह ब्रह्मा कौन है ?

(१) सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में लिखा कि "ब्रह्मा-विष्णु-महादेव नामक पूर्वज महाशय" यहां पर ब्रह्मा को पूर्वज बतलाया किन्तु यह न लिखा कि यह पूर्वज ब्रह्मा कब हुआ और किसका लड़का था। फिर इसके विरुद्ध (२) चतुर्थ समुल्लास के तर्पण प्रकरण में "ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्" इसके ऊपर लिखा गया कि "जो सांगोपांग चार वेदों के जाननेवाले हों उनका नाम ब्रह्मा" इस लेख से 'पूर्वज, लिखे हुये ब्रह्मा की सफाई हो गई और एक ही ब्रह्मा नहीं रहा वरन् सैकड़ों ब्रह्मा बनने संभव हो गये किन्तु चारो वेदों का पढ़ा हुआ मनुष्य ब्रह्मा बन जाता है इसमें वेदादि सच्छास्त्र का कोई प्रमाण नहीं दिया। इसके विरुद्ध (३) संस्कारविधि के नामकरण प्रकरण में टिप्पणी देकर रोहिणी नक्षत्र का स्वामी देवता ब्रह्मा को बतला इसके नाम की आहुति दिलाई, यहां पर किसी खास देवता को ब्रह्मा माना। इसके विरुद्ध (४) सत्यार्थप्रकाश के स्वमन्तव्यामन्तव्य नम्बर दो में लिखा है कि "वेदों की शाखा जोकि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ हैं उनको परतः प्रमाण" यहां पर ब्रह्मा को महर्षि बतलाया प्रमाण इसमें भी कुछ नहीं। इसके विरुद्ध (५) ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में लिख दिया कि "उन चार मनुष्यों के ज्ञान के बीच में वेदों का प्रकाश करके उनसे ब्रह्मादि के बीच में वेदों का प्रकाश कराया था" यहां पर ब्रह्मा को अग्नि-वायु-रवि-अंगिरा का शिष्य लिखा, प्रमाण की यहां पर भी सफाई है।

इसके विरुद्ध (६) "स ब्रह्मा स विष्णुः" इस श्रुति के अर्थ में यह लिखा कि सब जगत् के बनाने से निराकार ईश्वर का नाम ब्रह्मा है। हद होगई, मात कर दिया, जैसे किसी अन्धे मनुष्य का रुपया खोया जावे और वह उस रुपये की खोज में घर के समस्त वर्तनों को टटोल डाले एवं इतने पर भी रुपया न मिले यही दशा यहाँ स्वामी दयानन्दजी की हुई। खूब ही भटके किन्तु दिमाग ने काम न किया, सब कुछ लिखने पर भी यह पता न चला कि अथर्ववेद, मुण्डकोपनिषद् एवं मनुस्मृति ने जिस ब्रह्मा का वर्णन किया वह ब्रह्मा क्या बलाय है। जब स्वामी जी का मस्तिष्क ब्रह्मा शब्द के निर्णय में फेल हो गया तो फिर उनको वही मनुष्य विद्वान् कहेगा कि जो अक्ल का पूरा शत्रु हो।

सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास में स्वामी जी ने यह लिखा कि "शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें" यहां पर स्वामी जी ने शूद्रों के उपनयन संस्कार तथा वेद पढ़ने का स्पष्ट निषेध कर दिया। इसके विरुद्ध सत्यार्थ-प्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखा कि "सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मंत्र है"। इसके भी विरुद्ध फिर इसी समुल्लास में लिखा कि "जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है"। शूद्र और उसके वेदाध्ययन पर जो इस प्रकार की गल्तियां करे उसको संसार का कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं कह सकता, यही कहना पड़ेगा कि ये महात्मा वेदादि सच्छास्त्र के ज्ञान से सर्वथा शून्य होने पर भी जबर्दस्ती से नया मजहब चलाते हैं।

बस सिद्ध होगया कि स्वामी जी क्रोधी, गालियां बकनेवाले, चालबाजी के साथ संसार को धोके में फांसने के पंडित थे, ऋषि मुनि एवं विद्वान् नहीं थे फिर उनको आर्य-समाजियों के द्वारा मधुरभाषी, सत्यवक्ता, महर्षि प्रभृति शब्दों से याद किया जाना आर्यसमाजियों का दुराग्रह नहीं तो और क्या है? ऐसे सज्जन के द्वारा जो संसार में नया मजहब चलाया जावेगा वह मजहब परस्पर में विग्रह, द्वेष, लड़ाई, अशान्ति और धर्म की हानि किये बिना न रहेगा।

आर्यसमाज का स्वरूप

संसार के अनेक मनुष्य धोकेबाज बनकर साधारण मनुष्यों को ठगा करते हैं (१) पुराने जमाने में मारकीन के कई एक थान ऐसे आते थे कि जिनके ऊपर के पल्ले ठस और चिकने तथा भीतर की मारकीन हल्की रहती थी। (२) बनारस आदि

शहरों में कुछ ऐसे भी जेवर बनते हैं जिनके ऊपर के भाग में कुछ थोड़ा सा सुवर्ण और भीतर तांबा रहता है। (३) बाज बाज लोग किताब में रद्दी कागज देकर टाइटिल बहुत चिकना और फर्स्ट क्लास का लगा किताब को मनमोहनी बनाते हैं। (४) कपड़े भी आजकल ऐसे चल गये हैं कि जिनकी चमक दमक रेशमी वस्त्रों को मात कर देती है किन्तु धोने पर उनकी असली दशा सामने आये बिना नहीं रहती। (५) भैंस बेचनेवाले व्यापारी जब भैंस को बाजार ले जाने के लिये तैयार होते हैं तब भैंस के ऐन (दूध देने के स्थान) में भिलावें का धुआं दे देते हैं जिससे ऐन सूज कर बहुत बड़ा और थन मोटे मोटे हो जाते हैं, इन सब चालाकियों का मतलब यही है कि ग्राहक धोके में फँस हमारे चंगुल में आ जावें।

अभी तक ये चालबाजियां संसारी पदार्थों में ही पाई जाती थीं किन्तु आर्यसमाजियों की कृपा से इन चालबाजियों ने अब मजहबों में अपना सिंहासन जमाना आरम्भ कर दिया। आर्यसमाज ही इन चालाकियों का शिकार बन गया। (१) आर्यसमाजी बड़े जोर से कहते हैं कि आर्यसमाज कूड़ा करकट साफ करनेवाली हिन्दुओं की सफरमैना पल्टन है। (२) हिन्दूरक्षा में आर्यसमाजी कमर बांधे हुए हरदम तैयार रहते हैं। (३) यदि आर्यसमाज कायम न हुई होती तो नहीं मालूम हिन्दू लोग कब के ईसाई मुसलमान हो गये होते यह हिन्दू धर्म की सचाई को नित्य दिखलाती रहती है। (४) हिन्दुओं को सोते से जगाना या आलस्य से उठा कर वीर बनाना आर्यसमाज का मुख्य कर्तव्य है। (५) मन्दिरों पर आपत्ति आने के समय उनकी रक्षा के लिये आर्यसमाजी ही पहिले कूदते हैं। (६) इस संस्था ने स्थान स्थान में गुरुकुल एवं कालेज स्कूल खोल कर विद्या की वृद्धि की है। (७) वेदों का उद्धार तथा वेदों का प्रचार जितना आर्यसमाज करती है उतना कोई अन्य संस्था नहीं करती। (८) देशहित के काम में आर्यसमाज सब से आगे रहती है, महात्मा गान्धी के अन्दोलन ने जो इतनी प्रसिद्धि पाई इसका कारण यही है कि इनके आन्दोलन में समस्त आर्यसमाजें कूद पड़ी थीं, आर्यसमाज की कौन बराबरी करेगा" यह कथन सत्य होता तो हम आर्यसमाजियों के चरणों पर मस्तक रखते, समस्त हिन्दू आर्यसमाज के ऋणी बनते, आज आर्यसमाज की उज्वल कीर्ति से भारत का सितारा कुछ ऊंचा दिखलाई देता किन्तु आर्यसमाजियों का यह कथन सर्वथा मिथ्या, बाहरी आडम्बर, लोभ देकर मनुष्यों को अपने जाल में फांसने और उनसे रुपया ठगने का बनावटी दृश्य है। आर्यसमाज का भीतरी रूप हिन्दुओं के लिये अत्यन्त भयंकर है। (१) वैदिक साहित्य को गपोड़े बतला कर संसार से उखाड़ना, (२) हिन्दू जाति की गुणगरिमा को मिटा उसको जंगली जाति

सिद्ध करना, (३) सत्यार्थप्रकाश का धर्म वेदधर्म है इसका धोका दे (४) हिन्दुओं में ईसाई संस्कृति का प्रचार कर हिन्दुओं को ईसाई बनाना सत्यार्थप्रकश का मुख्य लक्ष्य है। हमारे इस कथन में न असत्यता है और न द्वेष; अब हम इसको दिखलाते हैं पाठक पढ़ने की कृपा करें।

वैदिक साहित्य की बिदाई

भारतवासी, अमेरिकन तथा यूरोपीय विद्वानों का यह सिद्धान्त है कि जिस जाति को संसार से बिदा करना हो उसके साहित्य को नष्ट कर दो अधिक उद्योग की कोई आवश्यकता नहीं, साहित्य के नष्ट होते ही जाति काल के गाल में जा फंसेगी, यह सर्वतंत्र स्वतंत्र सिद्धान्त है, संसार का कोई भी विद्वान् इसकी सत्यता में ननु, नच, किन्तु, किम्बा नहीं करता। आर्यसमाज ने भी इस सिद्धान्त पर विचार किया मालूम हुआ कि सत्य है और जल्दी से जल्दी काम करेगा इसको हृदयंगम कर आर्यसमाज ने पहिला वार हिन्दू साहित्य पर फेंका, पाठक इसका अवलोकन करें।

(१) सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में पुराण और इतिहास को त्याज्य ग्रंथ बतलाया, इतना ही नहीं वरन् इनके ऊपर लिखा कि "इन ग्रंथों में थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है इससे ये ग्रंथ विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्य हैं"। फिर लिखा कि "जो कोई इन मिथ्या ग्रंथों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले चिपट जावे"। जिनको यह समस्त लेख देखना हो वे इसी ग्रंथ के तृतीय समुल्लास के "गला पकड़नेवाला झूठ" शीर्षक लेख पढ़ लें। आर्यसमाज ने लक्षों रुपया व्यय कर पुराण और इतिहास के खंडनात्मक आन्दोलन का प्रारम्भ किया, और इस खंडन को इस दृढ़ता के साथ चलाया कि भारत वर्ष के प्रत्येक शहर, कस्बे, ग्राम और मुहल्लों में इस विषय पर बार बार व्याख्यान होकर अनेक छोटी छोटी किताबें बांटी गईं। आज भी यह आन्दोलन उसी भाँति से चलाया जा रहा है कि जिस भांति से जोर शोर के साथ इसका आरम्भ हुआ था। आर्यसमाज के अच्छे अच्छे वक्ता भी पुराण और इतिहास पर झूठे झूठे कलंक लगा इनसे हिन्दुओं को घृणा पैदा करवा रहे हैं। फल इस आन्दोलन का यह निकला कि अठारह पुराण और अठारह उप-पुराण तथा इतिहास के ग्रंथ, वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारत से हिन्दुओं की श्रद्धा उड़ गई, आज बड़े बड़े पंडित भी यह कहने लग गये कि यह लेख तो महाभारत का है इसके स्थान में कोई वेद का लेख दो तो हम

मान लें। जब हम आर्यसमाजियों से यह पूछते हैं कि तुम जो पुराण-इतिहास का खंडन करते हो उनमें क्या खराबी है? तब आर्यसमाजी यही उत्तर देते हैं कि पुराण-इतिहास में व्यभिचार, मांसभक्षण तथा असम्भव कथायें भरी पड़ी हैं। इसके ऊपर जब हम नम्रता के साथ आर्यसमाजियों को यह समझाते हैं कि पुराण-इतिहास में व्यभिचार करने, मांस खाने का कहीं कोई हुक्म तो लिखा नहीं, हां, इतिहास में यह कथा आ गई कि अमुक मनुष्य ने मांस खाया और अमुक ने व्यभिचार किया तो इस इतिहास को तुम धर्म का रूप क्यों देते हो? इतिहास की कथायें तो धर्म नहीं होतीं (इसका विशेष विवरण जिस पाठक को देखना हो वह "वेदसिद्धान्त परिचय" का "पुराण-इतिहास" शीर्षक लेख पढ़ ले) तब आर्यसमाजी पण्डित यही कहते हैं कि आपका कथन तो सर्वथा सत्य है किन्तु हम आर्यसमाज के मुलाजिम हैं जो उसकी आज्ञा होगी हमको वही करना पड़ेगा। फिर हम आर्यसमाजियों से प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार की असंभव कथायें पुराणों में हैं उसी प्रकार की असम्भव कथायें वेदों में भी तो हैं (इसके जानने के लिये वेदसिद्धांत परिचय के "वेद परिमाण" में विश्वामित्र की कथा पढ़ें) यह क्या बात है कि असम्भव कथाओं के कारण तुम पुराणों का खण्डन करते हो और वेद का गौरव दिखलाते हो, ये कथायें असंभव नहीं हैं वरन् वर्तमान जमाने के संसर्ग से उत्पन्न हुई हमारी बुद्धियां इनको असम्भव मानती हैं!

यूरोप का वीर बोनापार्ट लिखता है कि असम्भव शब्द को डिक्शनरी से निकाल देना चाहिए, विद्वान् की दृष्टि में कोई विषय असंभव नहीं, इस असम्भवता के रहने का स्थान केवल मूर्ख मनुष्यों का अन्तःकरण ही है। वास्तव में यह बात है भी सत्य। आज से सौ वर्ष पहिले बिना तार का तार, मोटरों का दौड़ना, हवाई जहाजों का उड़ना, अमेरिका की स्पीच को घर बैठे भारतवासियों का सुनना असम्भव माना जाता था आज ये सब सम्भव हैं, जब सम्भव असम्भव की यह दशा है तब तुम पुराणों के असंभव लेख को लेकर पुराणों को असत्य कैसे बतलाते हो? इसके ऊपर आर्यसमाजी पंडितों के मुख से यही निकल पड़ता है कि रोटी का सवाल विकट है इसके लिये सब कुछ करना पड़ता है।

(२) दुर्जन-तोष-न्याय से हम यह माने लेते हैं कि पुराण और इतिहास छोड़ने के लायक हैं अतएव इनके छोड़ने का तुम उत्साह के साथ उद्योग करो किन्तु आगे मत बढ़ो, अन्य किसी दूसरे ग्रन्थ को अमान्य मत बतलाओ। हम देखते हैं कि जिस भांति आर्यसमाज के विद्वान् इतिहास का खंडन करते हैं उसी प्रकार महाभारत

के भीष्मपर्व में आई हुई गीता की भी अच्छी खबर लेते हैं। जिस गीता पर जगद्गुरु शंकराचार्य और भगवान् रामानुजाचार्य तथा पूज्य आचार्य बल्लभ एवं आचार्यवर निम्बार्क और विद्वद्वर माध्वाचार्य की लेखनी उठी क्या उस गीता में भी असत्यता भरी है? जिस गीता पर संस्कृत भाषा के बावन भाष्य हों और हिन्दी भाषा के सैकड़ों तथा इंग्लिश, जर्मन, फ्रेंच, लैटिन प्रभृति प्रत्येक भाषा में जिसका अनुवाद हो गया हो, जिसने अमेरिका के बाशिन्दे एमर्शन और यूरोप-निवासी कार्लाइल को तत्ववेत्ता बना दिया हो, जो गीता थियासोफिस्टों का प्राण हो, जिसके महत्व पर लट्टू होकर विदेशियों ने 'गीता की थ्योरी' के नाम से पुकारा हो उस गीता का जब आर्यसमाजी खण्डन करते हैं तब हमको यही मानना पड़ता है कि सनातनधर्म के साहित्य को उड़ा देना ही आर्यसमाज का लक्ष्य है।

(३) हम इसको भी माने लेते हैं कि गीता असत्य का भंडार है और आर्यसमाजी जो इसका खंडन करते हैं वे उचित ही करते हैं किन्तु उसी तृतीय समुल्लास में तुलसीकृत रामायण आदि भाषाग्रन्थों को भी तो त्याज्य लिख दिया! तुलसीकृत रामायण में कौन खराबी और कितनी असत्यता थी जिसे दृष्टि में रख आर्यसमाज ने इसको बुरा बतलाया? शाही-जमाने में जब हिन्दू धर्म पर आपत्ति के पहाड़ गिर रहे थे तब इसी तुलसीकृत रामायण ने हिन्दुओं को रामभक्त बना सच्चे हिन्दू का रूप बना दिया था, आज इसमें कौन दोष आ गया जो इसके मानने से लोगों को बेवकूफ बतलाया जाता है? हमको यही मानना पड़ेगा कि हिन्दू साहित्य का खण्डन करना ही आर्यसमाज का लक्ष्य है इसी कारण से रामायण को त्याज्य लिखा।

(४) हमने मान लिया कि रामायण में भी कोई दोष होगा और उस छिपे हुये दोष को जान कर ही आर्यसमाज ने रामायण को त्याज्य ग्रंथ बतलाया किन्तु फिर धर्मशास्त्र का खण्डन क्यों किया? ऋषियों ने बीस स्मृतियां मानी हैं, सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में उन्नीस को तो कतई छोड़ दिया, उनका तो कोई चर्चा ही नहीं किया, यह लिख दिया कि 'क्षेपक को छोड़ मनुस्मृति मान्य है'। यहां पर पाठकों को कुछ समझना पड़ेगा, मनु के जितने श्लोक वेद के मंत्रों के अर्थ से मिलें वे तो असली श्लोक और जो न मिलें वे क्षेपक अर्थात् मनु के बनाये नहीं, अन्यों ने बना कर मनुस्मृति में मिला दिये, यह तो असली और क्षेपक की कथा हुई। अब वेद से मिलने की कथा सुनिये, जब वेद पूरा माना जाता था अर्थात् ग्यारह सौ इकत्तीस शाखा मंत्रभाग की और ब्राह्मणभाग के समस्त ग्रंथ एवं समस्त उपनिषदें तथा आरण्यक, तब मनुस्मृति के श्लोक श्रुतियों से मिलते थे, आर्यसमाज ने केवल

वेद की चार पुस्तकें तो मानीं बाकी वैदिक ग्रंथों के लिये लिख दिया कि ये वेद ही नहीं। अब इन चार किताबों से मनुस्मृति के श्लोक नहीं मिलते, हमने खूब खोजा, कुल मनुस्मृति में से "लोकानान्तु विवृद्धयर्थम्० मनु० १। ३१" यह श्लोक "ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्० यजु० ३१" से मिलता है। इसमें भी पत्थर पड़ गये, यह जन्म से वर्णव्यवस्था लिखता है, इसलिये आर्यसमाज ने इसको क्षेपक माना! आर्यसमाज ने जो वेदों की चार किताब मानीं उनसे मनु के श्लोक मिलते नहीं इसलिये समस्त मनु के श्लोक क्षेपक होगये। उन्नीस स्मृतियों के मानने से तो साफ इन्कार कर दिया, मनुस्मृति को क्षेपक कह कर उड़ा दिया इस अनोखी चालबाजी से हिन्दुओं के धर्मशास्त्र को त्याज्य करार दिया, अब हिन्दू फिरें टहपते, इनके धर्मशास्त्र का खण्डन तो लिख ही दिया गया।

(५) हम माने लेते हैं कि हिन्दुओं का धर्मशास्त्र बुरा था और वह हिन्दुओं को गढ़े में पटकता था या हिन्दूधर्म के ऊपर कुठाराघात करता था, आर्यसमाज धर्मशास्त्र का खण्डन करके भी तो चुप नहीं रहा इसने तो फिर आगे पैर बढ़ाये और फिर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष् इन छः वेदांगों का सफाई के साथ खण्डन क्यों किया गया? तृतीय समुल्लास के "प्रामाण्याप्रामाण्य विषय" में लिखा है कि वेदानुकूल होने पर ये ग्रन्थ प्रमाण हैं, वेदानुकूल ये होंगे कैसे क्योंकि इन ग्रन्थों के विषय स्वतन्त्र हैं, जिन विषयों का ये वर्णन करते हैं वेद में उनका कहीं पर वर्णन ही नहीं आता, भिन्न विषय होने से छहो अंग वेदानुकूल हो नहीं सकते और जब ये वेदानुकूल नहीं तो प्रमाणिक नहीं इस चालबाजी के गुप्त खंडन का क्या प्रयोजन है? हम तो यही समझे हैं कि इनके मानने से इन्कार करना ही आर्यसमाज का लक्ष्य है।

(६) हमने मान लिया कि वेद के छहो अंग वेद विरुद्ध विषय का वर्णन करते होंगे इससे आर्यसमाजियों ने इनको धर्मनिर्णय में स्वतन्त्रता नहीं दी किन्तु वैशेषिक, न्यायदर्शन, योग, सांख्य, मीमांसा और वेदान्त इन छः दर्शनों का खण्डन क्यों लिखा? इनके विषय में भी तो यही लिखा गया कि वेदानुकूल होने पर प्रमाण? क्या इन ग्रन्थों में वेदविरोधी लेख भी लिखे गये हैं? ये तो वेदों का मंडन करते हैं फिर इनकी अप्रामाणिकता कैसे? हां, आर्यसमाज ने जो वेदों पर वेदगौरव मिटानेवाले कल्पित मिथ्या भाष्य लिखे हैं उनसे इन दर्शनों की इतनी भी अनुकूलता नहीं कि जितनी उर्द पर सुफेदी! उसी को लेकर इनकी प्रमाणिकता का हनन किया है, जिन न्याय आदि दर्शनों पर यूरोप का दार्शनिक कांट मुग्ध हो गया, जिनकी महिमा को देख यूरोप के विद्वान् हर्बर्ट स्पेंसर का हृदय गद्गद हो उठा, जिन दर्शनों

के निर्माणकाल का विवेचन करते हुये मिस्टर मेक्समूलर ने हिन्दुओं के उत्कर्ष को गाया-आर्यसमाज के द्वारा उन दर्शनों के खण्डन होने का यही अभिप्राय है कि हिन्दू-साहित्य संसार से उठा दिया जावे।

(७) हमने मान लिया कि दर्शन वेदविरुद्ध थे और इसी कारण से आर्यसमाज ने इनका खण्डन लिख दिया किन्तु फिर उपनिषदों पर वज्रप्रहार क्यों हुआ? सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में प्रथम तो दश उपनिषदों को प्रमाण में लिया शेष उपनिषदें बिना किसी हेतु के बतलाये अपने हुक्म से ही प्रमाणकोटि से निकाल दीं, रही दस की बात, इनको तो "चत्वारो वेदा" व्याकरण के इस पस पसाह्निक महाभाष्य में 'रहस्यों' के नाम से लिख कर इनको स्वतन्त्र प्रमाण माना था किन्तु आर्यसमाज ने यह लिख दिया कि वेदानुकूल होने पर ही उपनिषदें प्रमाण हैं। उपनिषदों में अद्वैत पक्ष का समर्थन करनेवाली ब्रह्मविद्या है और आर्य-समाज के बनावटी वेदभाष्य में अद्वैत की गन्ध तक नहीं, ऐसी दशा में उपनिषदें वेद से कैसे अनुकूलता करेंगी? बस इनका भी खंडन हो गया।

(८) हम यह भी माने लेते हैं कि उपनिषदें वाहियात लेखों के लिखनेवाली हैं, आर्यसमाज ने उनको प्रमाणकोटि से निकाल कोई बुरा काम नहीं किया, हिन्दू जाति का झंझट पटा गया, साहित्य का अधिक भार हिन्दुओं के शिर से उतर गया, बस अब हिन्दू वेद को ही माना करेंगे। ठीक है, मानेंगे तो तब जब कि आर्यसमाज के खण्डन से वेद बचेंगे, अब आर्यसमाज ने वेदों के खण्डन पर कलम उठाई है देखें आज वेदों को कौन बचा सकता है। महर्षि आपस्तम्ब लिखते हैं कि

मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नाम धेयम्।

वेद, मंत्र और ब्राह्मण इन दो विभागों में विभक्त है। सृष्टि के आरंभ से लेकर जितने भी ऋषि हुये उन सबने यही माना कि ब्राह्मणात्मक और मंत्रात्मक ये वेद के दो विभाग हैं, ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद और मंत्रात्मक भी वेद, जिस पाठक को इस विषय के अधिक प्रमाण देखने हों वह 'वेद सिद्धान्त परिचय' के 'वेद परिमाण' शीर्षक को पढ़ ले। ऋषि लोग ब्राह्मणग्रन्थों को भले ही वेद मान लें किन्तु आर्य-समाज ने तो सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास के अन्त में यह स्पष्ट लिख दिया कि ब्राह्मणग्रंथ वेद नहीं हैं, तृतीय समुल्लास में तो यहां तक लिखा गया कि ब्राह्मणग्रंथ पुराण हैं, इस विषय में आर्यसमाज को सैकड़ों प्रमाण बतलाये गये किन्तु ब्राह्मण-ग्रन्थों का वेद होना आर्यसमाज ने स्वीकार नहीं किया इस प्रकार से आर्यसमाज ने आधे वेद का खंडन कर उससे गला बचा लिया।

अब रही मंत्रात्मक वेद की बात, मंत्रभाग में चारो वेदों की ग्यारह सौ इकत्तीस पुस्तकें हैं इसके ऊपर व्याकरण के महाभाष्य में महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि

एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद
एकविंशतिधा बह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदः ।

महाभाष्य आह्निक १

एक सौ एक यजुर्वेद और एक सहस्र सामवेद, इक्कीस ऋग्वेद तथा नौ शाखा (पुस्तकें) अथर्व वेद की हैं ।

ये ग्यारह सौ इकत्तीस पुस्तकें मंत्रात्मक वेद की हैं। स्वामी दयानन्द जी इनका खण्डन करते हुये बड़ी चालबाजी से काम लेते हैं, उन्होंने क्या किया, ऋग्वेद की शाकल और यजुर्वेद की माध्यन्दिनी, साम की कौथुमी तथा अथर्व वेद की शौनकी इन शाखाओं को तो असली वेद मान लिया और ग्यारह सौ सत्ताइस शाखायें जो बाकी रहीं उन पर लिख दिया कि 'शाखा वेद नहीं हो सकतीं' ! सैकड़ों प्रमाण आर्य-समाज के आगे ऐसे रक्खे गये जो शाखाओं को वेद और जिनको असली वेद माना उनको शाखा सिद्ध करते थे किन्तु आर्यसमाज ने अपने हठ को नहीं छोड़ा, यह स्पष्ट कह दिया कि हम चार ही किताबों को प्रमाणिक और वेद मानते हैं । बस अब सारा साहित्य बिदा हो गया, केवल चार किताब रह गईं, चलो वेद का भी बोझा शिर से उतर गया, अब चार ही किताबों से हिन्दुओं के सब कांम चला करेंगे किन्तु आर्य-समाज कब माननेवाला है वह इन चारों का भी खंडन करके छोड़ेगा, उसने गुप्त रूप से इन चारो को भी संसार से उड़ा दिया इसको मूर्ख भले ही न समझें किन्तु विद्वान् समझते हैं, हम समझने का तरीका लिखते हैं शायद पाठक समझने का उद्योग करेंगे । इनके अद्भुत खंडन को देख कर कई एक को तो हँसी आ जावेगी कि यह खण्डन बड़ा विलक्षण है । आप सब से पहिले यजुर्वेद पर एक दृष्टि डालिये । इस वेद का नाम 'यजुः' है, 'यजुः' इसका नाम क्यों है ? जब इसकी खोज करते हैं तब यह पता चलता है कि "यजनाद्यजुः" इसमें यजन (यज्ञें) हैं इसी से इसका नाम 'यजुः' है। दर्श, पौर्णमास वगैरह इष्टियां, शतरुद्रियाग, वाजसनेय, सौत्रामणि, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध आदि यज्ञों का विधान यजुर्वेद में लिखा है, स्वामी दयानन्द जी ने क्या किया कि इस वेद में जो मंत्रों का अर्थ यज्ञ विधान में लगता था उनको उड़ा दिया और वेद के मंत्रों पर नये अर्थ लिख दिये, इन अर्थों में अब यज्ञें नहीं हैं, क्या है जरा इसको देखिये—लुहार और बढ़इयों का कानून, उपदेशक और उपदेशिकाओं

के उपदेश की विधि, अध्यापक और अध्यापिकाओं के पढ़ाने के तरीके, सभाओं का वर्णन, टूटी फूटी शिल्पविद्या, राजसभा के विचार, ये नये अर्थ वेद से निकाले ! यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा के मंत्र तो ज्यों के त्यों रक्खे किन्तु वेद का अर्थ बदल दिया, कैसी चालाकी का खण्डन है, इस प्रकार के खण्डन को क्या कोई साधारण मनुष्य जान सकता है, इसके ऊपर भूतपूर्व ज्वालापुर महाविद्यालय के प्रेंसिपल पं० नरदेव शास्त्री जी ने लिखा है कि "जो कोई मनुष्य दयानन्द जी के भाष्य को देख लेता है उसको वेदों से घृणा हो जाती है"। अब शाकल, कौथुमी और शौनकी शाखाओं की कथा सुनिये। इनमें से सामवेद की कौथुमी शाखा पर पं० तुलसीराम जी स्वामी मेरठ ने भाष्य किया है और अथर्व वेद की शौनकी शाखा पर महाशय क्षेमकरण और पं० राजाराम जी शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर ने भाष्य लिख दिया एवं शाकल शाखा के कुछ हिस्से पर दयानन्द भाष्य है। इन तीनों शाखाओं का जब हम प्रमाण देते हैं तब आर्यसमाज कह उठाती है कि हम किसी के भाष्य को नहीं मानते ! इसके ऊपर जब हम यह कहते हैं कि फिर तुम इस मंत्र का अर्थ करो तो आर्यसमाज कह देती है कि हमें अर्थ करने की कोई जरूरत नहीं, जो कुछ हमारे सत्यार्थप्रकाश में लिखा है हम उसी को मानते हैं। इस प्रकार की बारीक (सूक्ष्म) चालबाजियों से आर्यसमाज ने वेद का भी काला मुंह कर दिया, अब हिन्दुओं के पास यदि कोई ग्रन्थ रहा तो सत्यार्थप्रकाश रहा, जिसके जी में आवे वह सत्यार्थप्रकाश को मान ले और जिसके मन में न आवे वह न माने। आर्यसमाज ने इस प्रकार वैदिक साहित्य की विदाई करदी कि इसकी विदाई में जो बहाने बनाये गये वे बहाने झूठ हैं या सच इसके समझने की योग्यता साधारण हिन्दुओं में नहीं है, इस लेख को कई बार पढ़ने पर समझ सकेंगे।

आर्य जाति का पशुपन

आज तक यह कहा जाता था कि आर्यजाति का जन्म सृष्टि के आरंभ काल में हुआ था, यह जाति सब से पुरानी है किन्तु यह मानना अब गपोड़ा होगया, साथ ही साथ हिन्दुओं के गोत्र और प्रवर भी उड़ गये। बड़े बड़े अंग्रेजों ने जो यह लिखा है कि सभ्यता, धर्म और विद्याओं का जन्म सब से पहिले आर्यजाति ने दिया, यह भी गलत। हिन्दू जाति में शिवि, दधीचि सदृश परोपकारी; हरिश्चन्द्र, दाशरथि राम और युधिष्ठिर जैसे सत्यवक्ता एवं रन्तिदेव जैसे दयालु; पृथु, पाण्डु,

अर्जुन, राम, भीष्म जैसे धनुर्धर; जरासंध, भीम जैसे बली; अम्बरीष, ध्रुव, प्रह्लाद जैसे भक्त; दिलीप, दशरथ, दाशरथि राम जैसे वैदिक कर्मकाण्ड के भक्त; कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध पिप्पलायन और जड़भरत जैसे ब्रह्मज्ञानी हो गुजरे हैं और आर्य लोग इनके गौरव पर फूले नहीं समाते थे, आज इन सब की इतिश्री होगई! क्योंकि जिन पुराण और इतिहास ग्रन्थों में इनके चरित्रों का वर्णन आता है वे ग्रन्थ असत्य हैं "अनुक्त मप्यूहति पण्डितोजनः" पण्डित मनुष्य बिना कही बात को भी जान लेते हैं इसी न्याय से हम लिखें या न लिखें विद्वान् लोग यह समझ लें कि आर्य जाति का दूसरे देशों पर शासन करना और उस शासन के बदले दूसरे देश से किसी प्रकार का कर न लेना, लक्षों वर्ष तक आर्य जाति का शासन रहने पर भी कभी उसके शासन के विरुद्ध आवाज न उठना, प्रत्येक आर्यसन्तान का धर्म पर दृढ़ रह दूसरे के माल की इच्छा न करना इत्यादि आर्यों में जो सद्गुण थे ये सब झूठे थे क्योंकि आर्यकीर्ति का वर्णन करनेवाले पुराण, इतिहास झूठे हैं अतएव हिन्दू जाति एक जंगली जाति है इसके सिद्ध होने में किसी प्रकार की कसर नहीं रही।

आर्य लोग जो यह कहते हैं कि चारो वर्ण और चारो आश्रमों के भिन्न भिन्न कर्तव्य, गर्भाधानादि संस्कार, सन्ध्या, तर्पण, पंचमहायज्ञ, श्राद्ध, वेदाध्ययन विधि, दानधर्म, स्त्रीधर्म, सूतकशुद्धि, शावशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, भक्ष्याभक्ष्य, दायभाग, वर्ण-संकरों की उत्पत्ति और उन उनके कर्म, सब प्रकार के प्रायश्चित्त, आपद्धर्म, योगाभ्यासादि, निवृत्तिमार्गोपदेश ये आर्यजाति को निष्पाप और स्थायी रखने के हेतु हैं किन्तु सत्यार्थप्रकाश ने इस कथन को चण्डूखाने की गप्प सिद्ध कर दिया। जिन धर्मशास्त्रों में इन विषयों का वर्णन है वे समस्त धर्मशास्त्र स्वार्थी लोगों के बनाये गपोड़े और वेदविरुद्ध होने से मानने के लायक नहीं।

आर्यजाति को इसका बड़ा घमंड था कि अद्वैतपक्ष को लेकर हम संसार के आस्तिक और नास्तिक सभी धर्मों का पराजय कर सकते हैं एवं इन्हीं के आधार पर आर्यों ने कालवादी, स्वभाववादी, नियति और यदक्षावादी, परमाणुवादी, प्रकृति और पुरुषवादी लोगों का पराजय करके दिखला दिया। जगद्गुरु शंकराचार्य ने इसी पक्ष को लेकर मण्डन मिश्र और बौद्धों का पराजय कर दिया। जिस ब्रह्मविद्या के आधार पर महेश ठक्कुर के विद्यार्थी रघुनन्दन ने अकबर के दरबार में आलिमों का पराजय करके दरभंगा स्टेट इनाम में पाई, जिस ब्रह्मविद्या ने हिन्दूधर्म के परम शत्रु दाराशिकोह को हिन्दूधर्म का भक्त बना मुसलमानों में अद्वैतवादी सूफी मजहब चलाने के लिये मजबूर कर दिया, जिस ब्रह्मविद्या के आधार पर स्वामी विवेकानन्द जी

ने चिकागों में हिन्दूधर्म की पताका गाड़ दी सत्यार्थप्रकाश ने यह निर्णय कर दिया कि आर्यों की यह ब्रह्मविद्या और इसके कहनेवाले उपनिषद् ये सोलह आने झूठे और दूर फेकने के लायक तथा वेद विरुद्ध हैं क्योंकि वेद में अद्वैत मत का खंडन और द्वैत का प्रतिपादन है, भला इस बारीकी को आज तक किसी ने परखा था ? सब आंख बन्द करके अद्वैतपक्ष को मानते रहे। स्वामी दयानन्द जी ने अद्वैतपक्ष की सारी कलई खोल कर इसको संसार से उड़ा दिया। बस इसके साथ ही साथ आर्यों की कीर्ति, विद्वत्ता और ईश्वर के सर्वव्यापकत्व की भी सफाई कर दी। संसार पर यह भी विदित हो गया कि आर्य लोगों ने जितने ग्रन्थ लिखे वे सब झूठे लिखे अतएव मूर्खता के कारण आर्यों में सच्चे ग्रन्थ लिखने का मस्तिष्क कभी नहीं हुआ।

आर्य कहते हैं कि यज्ञ करनी चाहिये, यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं, उत्तम जल बरसता है, कृषि की वृद्धि होती है, पुष्ट अन्न पैदा होता है, यज्ञ करनेवाला पुरुष मर कर स्वर्ग को जाता है, दिलीप सदृश अनेक आर्य राजाओं ने निन्यानबे निन्यानवे अश्वमेध यज्ञें की हैं। रघु ने समस्त संसार पर विजय कर विश्वजित् यज्ञ किया था। आर्य राजाओं में कोई एक खास ही ऐसा राजा हुआ होगा जिसने कोई न कोई यज्ञ न की हो। शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञों के अतुलनीय महत्व को वर्णन करते हुये बार बार यज्ञों का ही विधान कर रहे हैं। यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के प्रथम और द्वितीयाध्याय में दर्शपूर्ण मास इष्टि के, तृतीयाध्याय में चातुर्मास्य इष्टि के, चतुर्थाध्याय से लेकर अष्टमाध्याय पर्यन्त अग्निष्टोम के, नवमाध्याय में वाजपेय राजसूय यज्ञ के, दशमाध्याय में राजसूय और सौत्रामणी के, सोलहवें अध्याय में शतरुद्रियाग के, बाइस के अध्याय से उन्तीस के अध्याय तक अश्वमेध के, तीस और इकत्तीस के अध्याय में पुरुषमेध यज्ञ के तथा बत्तीस और तेंतीस के अध्याय में सर्वमेध यज्ञ के मंत्र हैं। अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र आदि समस्त ऋषि और शंकर, रामानुज, वल्लभ, निम्बार्क, माध्व प्रभृति समस्त आचार्य एवं धौम्यादि संसार के विद्वान् अपनी मूर्खता से यज्ञों के पोपजाल में पड़े रहे, सत्यार्थप्रकाश ने इनके बनावटी जाल का भंडाफोड़ कर दिया। साफ लिख दिया कि शतपथादि जिन ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों का वर्णन है वे ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं जो उनको वेद मानता है वह मूर्ख है, साथ ही साथ स्वामी दयानन्द जी ने यजुर्वेद माध्यन्दिनीशाखा पर भाष्य कर संसार की आँख खोल दी, यह दिखला दिया कि दर्श-पूर्णमास चातुर्मास्य वगैरह इष्टियां, अग्निष्टोम सौत्रामणि, शतरुद्रियाग, अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेधादि यज्ञें जो यजुर्वेद में बतलाई

जाती हैं यह जमीन आसमान का झूठ है जिसको विश्वास न हो वह हमारा यजुर्वेद भाष्य देख ले उसमें एक भी यज्ञ नहीं, ऐसे घोर परिश्रम से स्वामी जी ने आर्यों को यज्ञ के चक्कर से निकाला, अतएव यह मानना पड़ेगा कि स्वामी जी में अपार विद्या है।

आर्य लोग यह कहा करते हैं कि हमारा धर्म सर्वोत्तम, सर्वथा सत्य और गौरव की वस्तु है। इस धर्म के वर्णन करनेवाले ग्रन्थ वेदों में अटूट विज्ञान है, एक दिन ऐसा आवेगा कि समस्त संसार को वैदिक झंडे के नीचे आ जाना पड़ेगा उसी दिन विद्या, शांति, सद्गुण, परस्पर प्रेम आदि पवित्र सिद्धांतों की छटा संसार के आगे आकर खड़ी होगी। इसके ऊपर स्वामी जी ने यजुर्वेद पर भाष्य करके दिखला दिया कि तुम झूठे हो, लोगों को अपने जाल में फांसते हो, वेदों में विज्ञान नहीं, वेदों में तो राजसभा, प्रजासभा, राजा का प्रजा के साथ वर्ताव, उपदेशक का धर्म, उपदेश देने के नियम, उपदेशिकाओं का वर्णन, अध्यापक और अध्यापिकाओं के गुण, परस्पर व्यवहार की रीति ही का वर्णन है फिर तुम झूठ बोल वेदों को समस्त विद्याओं का भंडार क्यों ठहराते हो? यही दशा ऋग्वेद की शाकल और सामवेद की कौथुमी तथा अथर्ववेद की शौनकी शाखा के उन भाष्यों की है जो आर्यसमाजियों ने इनके ऊपर भाष्य लिखे हैं। स्वामी जी ने आर्यों को सच्चा मार्ग दिखलाने के लिये अटूट परिश्रम किया है आज तक धोके में पड़े हुये आर्य अपनी मूर्खता से यही समझते रहे कि वेदों में उत्कट विज्ञान है किन्तु आज इस बनावटी धोके का सर्वनाश होकर यह मालूम हो गया कि वेदों में मनुष्यजीवन के ऐसे सद्व्यवहार का वर्णन है जो इसी दुनियां से सम्बन्ध रखता है, संसार स्वामी जी के इस उपकार का सदा ऋणी रहेगा।

आर्य जाति का संसार में कोई इतिहास नहीं और जो कुछ पुराण एवं महाभारतादि के रूप में है यह झूठा है, इसके धर्मशास्त्र दूर फेक देने के लायक हैं क्योंकि वे वेदानुकूल नहीं हैं। वेदों के अंग पोपों के गपोड़े हैं, उपनिषदों का अद्वैत पक्ष वेद विरुद्ध होने से संसार के छोड़ने के लायक है, यज्ञों का पचड़ा फैलानेवाले ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं, मंत्र भाग की ग्यारह सौ इकत्तीस शाखाओं में से केवल चार शाखा वेद हैं उनमें संसार के बर्ताव का वर्णन है अतएव सब प्रकार से यह आर्यजाति विद्याविहीन, सभ्यतारहित, वीरताशून्य पशु जाति है यह स्वामी जी का विवेचन है इसको द्वेष से कोई मनुष्य झूठ माने तो मान ले किन्तु उसके शिष्य तो इसी को मानेंगे चाहे

उनको कोई फाँसी दे दे, फाँसी पर चढ़ते हुये भी यही कहेंगे कि विद्या, बुद्धि, ज्ञान, वीरता, सभ्यता से शून्य यह आर्यजाति पशुजाति है।

वैदिक धर्म

यद्यपि स्वामी दयानन्द जी मंत्रों के अर्थ करते समय मंत्रों के पदों को छोड़ कर निर्विकार, निराकार, जगदाधार, सर्वाधार, सब का नियन्ता, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी इत्यादि अनेक पद लगा कर अपना आल्हा गा चलते हैं। दूसरे आप किसी भी मंत्र के अर्थ को ले लीजिये, स्वामी जी के अर्थ में वेद मंत्र का अर्थ ही नहीं आता, वेद मंत्र को आगे रख मनमाने औ असंभव अर्थ निकालते हैं, भाषा इतनी बुरी लिखते हैं कि साधारण मनुष्य भाषा के समझने में असमर्थ हो जाता है, फ़र्ज़ी अर्थों से ईसाई संस्कृति की प्रशंसा करना और वैदिक संस्कृति को मारना यह स्वामी जी का लक्ष्य है, इनका विवेचन आज हम नहीं करेंगे जिनको इस कथन की सत्यता जाननी हो वे सत्यार्थप्रकाश में लिखे गायत्री मंत्र आदि मंत्रों के अर्थों को पढ़ लें। जो कोई धर्म निर्णय को लक्ष्य कर सत्यार्थप्रकाश को पढ़ेगा उसको हमारे दिये दूषणों की सत्यता का ज्ञान हुये बिना नहीं रह सकता।

यहां पर तो केवल वैदिक धर्म का निर्णय करना है। पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, वेदांग, दर्शन, उपनिषद् एवं ब्राह्मण ग्रन्थ इन सब को यदि हम वेदानुकूल समझ प्रमाणकोटि में ले लें तब तो इनका कहा धर्म वैदिक हो सकता है, यदि हम इन सब को वेद विरुद्ध की डिगरी दे दें ऐसी दशा में तो वेद मंत्रों में प्रतिपाद्य धर्म का नाम ही वैदिक धर्म होगा। स्वामी दयानन्द जी ने इन सब का खण्डन करके शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी और शौनकीय इन चार ही शाखाओं को वेद माना है अतएव इनके मंत्रों के अर्थों से निकला हुआ जो धर्म है आर्यसमाजियों की दृष्टि में वही वैदिक धर्म कहलाने का हकदार है।

इस भाव को छिपा कर स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में प्रथम समुल्लास से लेकर एकादश समुल्लास तक जो कुछ भी वर्णन किया है सभी को वैदिक धर्म माना है यह स्वामी जी ने बहुत बुरी चालाकी की है जो उनके रूपानुकूल नहीं थी, सत्यार्थप्रकाश में वेद के कुल मंत्र तेहत्तर हैं उन तेहत्तर में भी बीस मंत्र के लगभग ऐसे हैं जिनके टुकड़े सत्यार्थप्रकाश में लिखे गये हैं, प्रायः ये टुकड़े अपने

अपने मंत्र के चतुर्थांश हैं, यदि हम सत्यार्थप्रकाश के लेखानुसार यही मानलें कि वेद ही आर्यसमाज का धर्म ग्रन्थ है जैसा कि सत्यार्थप्रकाश में लिखा मिलता है, "(प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं, जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है" इसके अनुसार तेहत्तर मंत्रों का धर्म ही आर्यसमाज की दृष्टि में वैदिक धर्म होगा और इस वैदिकधर्म को लिख सत्यार्थप्रकाश छपवाया जावेगा तो तीन फर्मे (चौबीस पन्ने) से अधिक पन्ने न होंगे। इन तेहत्तर मंत्रों में किस किस धर्म का वर्णन है पाठक एक दृष्टि इस पर भी डालने की कृपा करें।

प्रथम समुल्लास में "इन्द्रं मित्रम्" से इन्द्र मित्र आदि ईश्वर के नामों का ग्रहण और "भूरिस" इस मंत्र से भू, भूमि, और पृथ्वी ये तीन नाम ईश्वर के बतलाये गये हैं, "इन्द्रो महा रोदसी" इससे इन्द्र ईश्वर का नाम है यह बतला कर "प्राणाय नमः" इस मंत्र से ईश्वर का नाम प्राण बतलाया है, "ततो विराट्" इस मंत्र से ईश्वर का नाम विराट् और 'हिरण्यगर्भः' इस मंत्र से ईश्वर का नाम हिरण्यगर्भ बतला दिया। बस प्रथम समुल्लास में इतनेही वेदमंत्र हैं। यद्यपि स्वामी जी ने वेदमंत्रों के बनावटी अर्थ लिख उन अर्थों से जबरन् ईश्वर के नाम निकाले हैं यदि हम इस पर चीं चपट न करें और स्वामी दयानन्द के अर्थ को सत्य मान लें तब भी वेद से ईश्वर के चौदह ही नाम सिद्ध हुये! सत्यार्थप्रकाश में जो ईश्वर के सौ नाम लिखे हैं इनमें से छियासी नामों की वेद पुष्टि नहीं करता।

सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास में एक भी वेदमंत्र नहीं है फिर वैदिकधर्मी आर्यसमाज द्वितीय समुल्लास को सत्यार्थप्रकाश से निकाल कर क्यों नहीं फेंकती? तृतीय समुल्लास में "तत्सवितुर्वरेण्यम्" इस गायत्री मंत्र से ईश्वर का ध्यान और "विश्वानि देव" मंत्र से कल्याण मिलने की प्रार्थना तथा "उतत्व पश्यन्" मंत्र से मूर्ख मनुष्य सुनते हुये भी नहीं सुनता, देखते हुये भी नहीं देखता यह सिद्ध किया है, एवं "ऋचो अक्षरे" इस मंत्र से ईश्वर में पृथिव्यादि लोक स्थित हैं तथा "यथेमाम्" इस मंत्र से ईश्वर का मनुष्यों को वेद पढ़ाना और मनुष्यों को भंगी, चमारों को वेद पढ़ाने की ईश्वरीय आज्ञा और "ब्रह्मचर्येण" इस मंत्र से कन्याओं का ब्रह्मचर्य धारण करना तथा युवति होने पर पाणिग्रहण करवाना लिखा है।

चतुर्थ समुल्लास में "युवा सुवासः" से ब्रह्मचारी का गृहस्थ बनना एवं "आधेनवः" से युवान स्त्री युवान पति को प्राप्त होके गर्भधारण करे और "पूर्वीरहम्" से स्त्री-पुरुष पूर्णायु होकर परस्पर उत्तम रीति से वर्तें तथा "ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्"

से चारो वर्णों की उत्पत्ति एवं "सायं सायं-प्रातः प्रातः" इन मंत्रों से सायंकाल, प्रातः-काल हवन तथा "इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः, कुहस्विद्दोषाः उदीष्वे नारी. अंदृष्टन्यपतिघ्नी, सोमः प्रथमो विविदे, अन्यमिच्छस्व" इनसे नियोगसिद्धि को वैदिक दिखलाया है।

पंचम समुल्लास में "अभ्यादधामि" से वानप्रस्थ बनना एवं षष्ठ समुल्लास में "त्रीणि राजाना" से विद्या, धर्म, राज तीन सभाओं का बनाना, और "तं सभा" से राजा और प्रजा सभा द्वारा सद्व्यवहार करे तथा "सभ्यं सभा" से राजा सभ्यों से कहे कि तुम ठीक प्रबन्ध से सभा चलाओ एवं "इन्द्रो जयाति" से सभापति का बनाना तथा "इमं देवा" से राजा बनाना और "स्थिरा वः" से ईश्वर आज्ञा देता है कि तुम्हारे शस्त्र शत्रुओं के जीतने में मजबूत रहें का वर्णन है।

सप्तम समुल्लास में "ईशावास्य" से ईश्वर से डर और दूसरे का धन मत ले तथा "अहं भुवं वसुनः" से ईश्वर कहता है कि मैं समस्त संसार का पति हूँ और सबको भोजन देता हूँ एवं "अहमिन्द्रः" से ईश्वर कहता है कि तुम मुझसे धन मांगो और मेरी मित्रता से अलग मत हो और "स पर्यगात्" से ईश्वर निराकार एवं "यां मेधाम् तेजोसि, यज्ञाग्रतः, येन कर्माणि, यत्प्रज्ञानम्, येनेदम्, यस्मिन्नृचः, सुपारथिरश्वान्" से विद्या, धन और कल्याण की इच्छा तथा "अग्नेनय" से श्रेष्ठ मार्गों द्वारा प्रज्ञा को प्राप्त होना एवं "मानो महान्तम्" से ईश्वर से प्रार्थना है कि आप हमारा हनन न करें और "कुर्वन्नेवेह" से मनुष्य जब तक जिये तब तक कर्म करे यह ईश्वर की आज्ञा है तथा "यस्मादृचः" से सब को धारण करनेवाला परमात्मा।

अष्टम समुल्लास में "इयं विसृष्टिः" से जिससे यह संसार बना वह परमात्मा और "तम आसीत्" से यह संसार अंधकार रूप में था ईश्वर ने प्रकाशित कर दिया एवं "पुरुष एवेदम्" से जो जीव और संसार से भिन्न है वही संसार का बनानेवाला है तथा "द्वा सुपर्णा" से ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीन का अनादिपन और "सूर्याचन्द्रमसौ" से ईश्वर ने जैसे सूर्य, चन्द्रादि पहिले कल्प में बनाये थे वैसेही इस कल्प में बनाये एवं "विजानीह्यार्यान्" से विद्वान् आर्य और मूर्ख डाकू हैं तथा "उत शूद्रे उतार्ये" से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का नाम आर्य और अनार्य शूद्र हैं, और "सत्येनोत्तभिता भूमिः" से ईश्वर ने सब लोकों को धारण किया एवं "उक्षा दाधार" से भूमि को सूर्य धारण कर रहा है तथा "तथा आयं गौ" से भूमि का चलना और "आकृष्णेन" से सूर्य का घूमना एवं "दिवि सोमो अधिश्रितः" से सूर्य का प्रकाश ही सब में पहुँचता है यह दिखलाया गया है।

नवम समुल्लास में "विद्यां चाविद्याम्" से जो मनुष्य विद्या को जानता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है एवं "कस्य नूनम्" से ईश्वर मोक्ष से लौटा कर फिर जन्म देता है तथा "अग्नेर्वयम्" से मुक्ति से लौटा कर ईश्वर हमको पुनः जन्म देता है बतलाया है। दशम समुल्लास में "मानोबधीः और आचार्य उपनयमानो" से माता, पिता, आचार्य की पूजा करना देवपूजा है। एकादश समुल्लास में "पवित्रंते" से पवित्र ईश्वर को सदाचार रखनेवाला पुरुष प्राप्त होता है अन्य नहीं एवं "अंधं तमः" से जो मूर्तिपूजा को करता है वह नरक को जाता है तथा "न तस्य प्रतिमा" से उस निराकार ईश्वर की मूर्ति नहीं है और "आचार्यो ब्रह्मचर्येण" से विद्या देनेवाले आचार्य की सेवा करनी एवं "अतिथिः" से विद्वान् अतिथि की सेवा करना तथा "अर्चत" से स्त्री के लिये पुरुष और पुरुष के लिये स्त्री पूजनीय है एवं "नमस्तीर्थ्याय" से विद्वानों को धन देना और उनसे विद्या लेनी तथा "यमेन" से शरीर छोड़ जीव वायु के साथ अन्तरिक्ष में रहते हैं। बस सत्यार्थप्रकाश में इतनाही वैदिकधर्म है। फिर सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में प्रथम समुल्लास से एकादश समुल्लास तक के वर्णनीय विषय को जो वैदिकधर्म बतलाया इस मिथ्या लेख का प्रयोजन यह है कि स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में ईसाईधर्म का विधान करेंगे उस ईसाईधर्म को वैदिकधर्म मान लिया जावे।

ईसाई धर्म का वर्णन

सत्यार्थप्रकाश लिखने का यही प्रयोजन है कि वैदिक साहित्य को मार आर्यजाति को पशुजाति सिद्ध कर ईसाई धर्म के सिद्धान्त और ईसाइयों के रस्म रिवाज को वैदिकधर्म सिद्ध किया जावे जिससे हिन्दू जल्दी से जल्दी ईसाई बनें। वैदिक सिद्धान्त का मारना और आर्यजाति का पशुजाति सिद्ध करना जिस युक्ति से लिखा गया उसको हम 'आर्यसमाज के मुख्य लक्ष्य' नामक इसी प्रकरण में पूर्व दिखला आये ईसाइयों के सिद्धान्त और रस्म रिवाजों को किस प्रकार वैदिक सिद्ध किया जाता है इसका सच्चा फोटू अब हम पाठकों के आगे रखते हैं पाठक ध्यान से पढ़ के हमारे लेख को हृदयंगम करें।

(१) ग्रन्थ के आदि, मध्य, अन्त में मंगलाचरण करना आर्य परिपाटी है और इसमें "मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति" यह प्रमाण भी है जिसका भाषा यह होता है कि "मंगलाचरण में शिष्टाचार है, श्रेष्ठ लोग सर्वदा से मंगलाचरण

करते आते हैं और मंगलाचरण का शुभ फल भी देखा जाता है तथा मंगलाचरण में श्रुति की आज्ञा भी है" तो भी सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास ने इस प्रमाण का अर्थ बदल मंगलाचरण का सर्वथा निषेध कर दिया इसका केवल कारण यही है कि ईसाइ धर्म में मंगलाचरण की पद्धति नहीं है, हिन्दू अपनी शास्त्रीय रस्म को छोड़ कर ईसाई रस्म पर चलने लगें, यह मंगलाचरण के खंडन का अभिप्राय है।

अब द्वितीय समुल्लास की कथा सुनिये—

(२) वेदों में बच्चे को माता का दूध पीने की आज्ञा है, अंग्रेजों में बच्चे को धायी दूध पिलाती है, वेद झूठे हैं और ईसाइयों की रस्म बच्चे को धायी का दूध पिलाना हिन्दुओं में प्रचलति हो इस भाव से सत्यार्थप्रकाश ने बच्चे को धायी का दूध पिलाना लिख दिया।

(३) हिन्दुओं के यहां यह शैली है कि प्रसूता स्त्री ग्यारह दिन तक अपने स्थान को न बदले और अंग्रेजों के यहां प्रसूता का स्थान परिवर्तन होता है, ईसाई रिवाज हिन्दुओं में चल जाय इस कारण सत्यार्थप्रकाश ने प्रसूता के स्थान परिवर्तन को वैदिकधर्म बतलाया।

(४) वेद में भूत-प्रेतों का वर्णन है और ईसाई लोग भूत-प्रेतों को नहीं मानते, हिन्दू लोग भूत-प्रेत के मानने को छोड़ कर ईसाई पद्धति पर चलें इस हेतु से सत्यार्थ-प्रकाश ने भूत प्रेतों का खण्डन लिख दिया।

(५) वेद फलित ज्योतिष् को मानना है किन्तु प्रायः ईसाई इसका खंडन करते हैं, हिन्दू लोग ज्योतिष् का मानना छोड़ दें और ईसाइयों की रस्म पर विश्वास कर लें इस हेतु से सत्यार्थप्रकाश ने फलित ज्योतिष् का खंडन किया।

(६) वेद ग्रहों को जड़ नहीं मानता, इनमें मौलिक शक्ति की चेतनता विद्य-मान है अतएव ग्रह चेतन हैं यह वेद का सिद्धान्त है किन्तु ईसाई ग्रहों को जड़ मानते हैं इस ईसाई सिद्धान्त की सत्यता सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने ग्रहों को जड़ लिखा।

(७) वेद, मंत्र-यन्त्रों के प्रभाव का मानता है और ईसाई इसको ढोंग बतलाते हुये नहीं मानते, ईसाइयों का यह सिद्धांत हिन्दुओं के अन्तःकरण में स्थान पावे इसलिये सत्यार्थप्रकाश ने मंत्र-यन्त्रों के प्रभाव का खंडन लिख दिया।

(८) हिन्दू धर्मशास्त्र मनु में अभिवादन-प्रत्यभिवादन करने की प्रणाली लिखी है, छोटा अभिवादन और बड़ा प्रत्यभिवादन करता है, इसमें छुटाई बड़ाई

का भेद है किन्तु अंग्रेजों में जो गुडनाइट और गुडमौर्निंग से रस्म होती है उसमें बड़ाई छुटाई का भेद नहीं, बड़ाई छुटाई का भेद मिटे और ईसाई धर्म की रस्म से सब बराबर के बनें इसके लिये सत्यार्थप्रकाश ने परस्पर में नमस्ते करना बतलाया।

तृतीय समुल्लास—

(९) हिन्दुओं के यहां "वैवाहिको विधिस्त्रीणाम्" मनु के इस पद्य की आज्ञानुसार कन्यायें गुरुकुलों में पढ़ने नहीं जातीं और ईसाइयों में कन्याओं को पढ़ने का उतना ही स्वत्व है जितना कि लड़कों को, ईसाई धर्म की सत्यता दिखलाने के लिये सत्यार्थप्रकाश कन्याओं का गुरुकुल में पढ़ना सिद्ध करता है।

(१०) हिन्दू लोग ईश्वर से भिन्न देवताओं को भी मानते हैं, गायत्री मंत्र में सूर्यदेव की आराधना है किन्तु ईसाई ईश्वर को छोड़, ईश्वर से भिन्न देवताओं को नहीं मानते, ईसाइयों का यह सिद्धान्त सत्य है इसकी सिद्धि के लिये सत्यार्थप्रकाश ने गायत्री मंत्र के अर्थ से ईश्वर का ध्यान निकाला है।

(११) मनु ने "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्याम्" इस श्लोक में अष्टम वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक और "सोमः प्रथमो विविदे" इस वेद मंत्र ने ग्यारह वर्ष की अवस्था में कन्या का विवाह बतलाया किन्तु ईसाइयों के यहाँ स्त्रियाँ जवान होने पर विवाह करती हैं, ईसाई धर्म सच्चा है, संसार को इसकी सत्यता दिखलाने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने भी चौबीसवें वर्ष में कन्या का उत्तम विवाह लिख दिया।

(१२) वैदिक धर्म में जन्म से जाति मानी जाती है और जाति से ही मनुष्य की उत्तमता तथा नीचता गिनी जाती है किन्तु ईसाइयों के यहां उत्तमता विद्या और फौजी ग्रेड में आने से होती है, ईसाइयों का यह सिद्धान्त हिन्दुओं को मानना चाहिये इसके लिये सत्यार्थप्रकाश ने गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था लिख दी।

(१३) हिन्दू लोग अपने पुराण, इतिहासादि ग्रंथों की बहुत अधिक प्रशंसा करते हैं और उन्हीं ग्रंथों के आधार पर यह भी कह देते हैं कि हम ही संसार के गुरु हैं किन्तु ईसाई रामचरित्र-कृष्णचरित्र प्रभृति छोटे छोटे ट्रेक्ट निकाल कर सिद्ध करते हैं कि पुराणों में घृणित और झूठी कथायें हैं, इस विषय में हिंदू झूठे और ईसाई सच्चे हैं इसको सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने पुराण, इतिहासादि अनेक ग्रंथों को त्याज्यग्रंथ लिख दिया जिसके माने ये होते हैं कि इन ग्रंथों को दूर फेंक दो।

(१४) हिन्दुओं के यहाँ पुराण, उपपुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र, वेदांग, दर्शन और उपनिषदें एवं विस्तृत वेद के हजारों ग्रन्थ हैं। हिन्दुओं का कथन है कि इतने

ग्रंथों के बिना धर्म का निर्णय नहीं होता किंतु ईसाई एकली बाइबिल से धर्म का निर्णय करते हैं, ईसाइयों का यह मत सत्य है, धर्मनिर्णय में अधिक ग्रंथों की आवश्यकता नहीं है इसकी पुष्टि के लिये सत्यार्थप्रकाश ने भी शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी और शौनकी इन चार ही शाखाओं को धमग्रंथ मान शेष सब ग्रंथों का खंडन कर दिया।

(१५) हिन्दुओं के यहाँ तिलक लगाना और कण्ठी बांधना यह एक धार्मिक चिह्न है, अंग्रेज इसकी मसखरी करते हैं, अंग्रेजों का मसखरी करना सत्य है संसार को यह साबित करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने तिलक लगाने और कंठी बांधने का खूब खंडन लिखा।

(१६) हिन्दुओं के यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन को ही वेद पढ़ने का अधिकार है इसके ऊपर मनु जी ने लिख दिया कि "अधीयीरंस्त्रयोवर्णाः" तीन ही वर्ण वेद पढ़ें किन्तु ईसाइयों के यहाँ बाइबिल के पढ़ने का सब को अधिकार है, हिंदुओं का सिद्धांत बनावटी और ईसाइयों का सत्य है इसको सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने शूद्रों का वेद पढ़ना लिखा और उसकी सत्यता के लिये "यथेमां वाचं कल्याणीम्" मंत्र का श्रुति-स्मृति तथा प्रत्यक्ष विरुद्ध अर्थ कर दिया।

चतुर्थ समुल्लास—

(१७) द्विजातियों में गोत्र हैं और मनु ने लिखा है कि अपने गोत्र में तथा माता की सात पीढ़ी में विवाह न करना किन्तु ईसाइयों में यह प्रणाली नहीं है, ईसाईधर्म सच्चा है इसे सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश में 'गोत्र' का अर्थ "दूर देश" कर दिया गया।

(१८) हिन्दू जाति में ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र जाति में स्वयंवर नहीं होता, क्षत्रियों में बलपरीक्षा के लिये होता है जैसे द्रोपदी और सीता के। यहां कन्या का कोई अधिकार नहीं रहता, वर का अधिकार होता है कि कन्या को वह स्वयं विवाह ले, क्षत्रिय जाति में जब एक कन्या से अनेक राजा विवाह की इच्छा रखते हों और युद्ध करने का डर दिखलाते हों उस समय पिता की आज्ञा से कन्या युद्ध का भय दिखलानेवालों में से किसी एक के गले में माला डाल दे, इसके विरुद्ध ईसाइयों में अपने पति चुनने का सभी कन्याओं को अधिकार है, वैदिकधर्म ढपोलसंख और ईसाईधर्म सच्चा सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने हिन्दुओं की समस्त जातियों में स्वयंवर करना लिख दिया।

(१६) वेद में वर्णव्यवस्था जन्म से मानी जाती है, ईसाइयों के यहां वर्णव्यवस्था का कोई जिकर ही नहीं, सिविल सर्विस और बैरिष्टरी आदि के सार्टीफिकेट परीक्षा पास करने पर मिलते हैं, हिन्दुओं के कायदे को रद्दी और अंग्रेजी कायदे को सच समझ सत्यार्थप्रकाश ने राजसभा और विद्यासभा से वर्णव्यवस्था का भी सार्टीफिकेट दिला कर छोड़ा।

(२०) वैदिकधर्म की आज्ञा है कि पिता वर को देख कर उस वर के साथ कन्या का विवाह कर दे किन्तु अंग्रेजों में कन्या और वर फोटू देख कर विवाह करते हैं, अंग्रेजों के इस रिवाज को वेदधर्म सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने फोटू और जीवनचरित्र देख कर विवाह की आज्ञा दी।

(२१) हिन्दू धर्मशास्त्रों की आज्ञा है कि विवाह होने पर भी वर कुछ दिन जितेन्द्रिय रहे और ईसाइयों के यहां विवाह होते ही सहवास होता है, इस ईसाई प्रणाली को वेदप्रतिपाद्य धर्म सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने विवाह से उठते ही सहवास करने की विधि बतला दी।

(२२) हिन्दूधर्म में बहुत सादगी है किंतु फ्रांस में विलासिता है, विलासिता ही वैदिक धर्म है इसकी पुष्टि करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने सहवास में चांदमारी और पीछे से सालम मिश्री के नुसखे का सेवन लिखा है।

(२३) ईसाइयों के यहां शौकीन स्त्रियां बच्चा उत्पन्न करने के पश्चात् योनिसंकोचन के लिये शराब आदि का इस्तेमाल करती हैं, ऐसा करना ही वैदिक धर्म है इसकी सिद्धि के लिये सत्यार्थप्रकाश ने योनिसंकोचन का डिमडिम घोष कर दिया।

(२४) वेद में देवजाति का वर्णन है, इनका मानना, पूजना वेद ने बड़े जोर से लिखा है किन्तु ईसाईधर्म में देवताओं का वर्णन नहीं, वेद झूठा और बाइबिल सच्ची यह सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने लिखे पढ़े मनुष्यों को देवता बतलाया।

(२५) वैदिक साहित्य में कोई मनुष्य एक अक्षर भी घटा बढ़ा नहीं सकता किन्तु अंग्रेजों की बाइबिल समय समय पर तरमीम के पंजे में पड़ती है, यह ईसाइयों का सिद्धान्त बहुत ही अच्छा है इसकी सिद्धि में सत्यार्थप्रकाश ने कुछ जाली वेद मंत्र बना, वेदों का धोका दे, लिख दिये।

(२६) वेद में मृतक पितरों के लिये श्राद्ध करना लिखा है और इसका इतना विस्तार है कि कांगड़ी गुरुकुल के स्नातक मंगलदेव तडित्कान्त वेदालंकार ने इस मृतक श्राद्ध के पन्द्रह सौ के लगभग मंत्र चुन कर "यम और पितर" नामक ग्रन्थ

लिखा किंतु ईसाइयों के यहां इस प्रकार से मृतक श्राद्ध का विधान नहीं है, वेद का लिखना बकवाद और झूठा है और ईसाई धर्म सच्चा है यह दिखलाने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने मृतक श्राद्ध का खण्डन कर जीवित पितरों का श्राद्ध लिखा।

(२७) वेदों ने स्त्री के लिये पातिव्रत धर्म का पालन बतलाया किंतु ईसाई धर्म की स्त्रियां स्वतंत्र रहती हैं, वेद धर्म झूठा है तथा ईसाई धर्म सत्य है इस बात को साबित करने के लिये वेदमंत्रों का गला घोट उनसे जबर्दस्ती नियोग निकाला गया।

पंचम समुल्लास—

(२८) हिन्दू शास्त्रों ने संन्यासी को दान देने का निषेध किया है किंतु ईसाई पादरियों को दान देते हैं, हिन्दू धर्म झूठा और ईसाई धर्म सच्चा है इस ज्ञान के लिये मनु का श्लोक बदल कर सत्यार्थप्रकाश ने संन्यासी को दान देना बतलाया।

सप्तम समुल्लास—

(२९) वेदों में ईश्वर का अवतार धारण करना उत्तम रीति से लिखा है किंतु ईसाई धर्म अवतार धारण करने पर अनेक ईश्वर मानता है, ईसाई धर्म की सत्यता सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने भी अवतार लेने से अनेक ईश्वर माने हैं।

(३०) वेद में ब्रह्मादि अवतारों का वर्णन है किंतु बाइबिल ईश्वर का अवतार धारण करना नहीं मानती, वेद झूठे और बाइबिल सच्ची जानी जावे इस निमित्त से सत्यार्थप्रकाश में अवतारों का खंडन लिखा गया।

(३१) वेद के चार हजार मंत्र अद्वैत को कह रहे हैं, वेद का अभिप्राय यह है कि यह समस्त संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ, बाइबिल इसके विरुद्ध कहती है कि संसार ईश्वर से उत्पन्न नहीं हुआ वरन ईश्वर ने उत्पन्न किया है, वेद की चार हजार श्रुतियां गलत बात कहती हैं और बाइबिल का लेख सच्चा है संसार को यह दिखलाने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने प्रकृति से संसार का बनना माना।

(३२) वेदों के हजारों मंत्र समस्त संसार को ईश्वर का रूप बतलाते हैं परन्तु बाइबिल इसको मंजूर नहीं करती इसलिये सत्यार्थप्रकाश ने ब्रह्मविद्या को झूठा ठहरा दिया।

(३३) वेद ने ब्रह्मा का रूप धारण करनेवाले ईश्वर से वेदों की प्राप्ति मानी परन्तु बाइबिल ऐसा नहीं मानती वह इलहाम द्वारा ईश्वरज्ञान की प्राप्ति मानती है, सत्यार्थप्रकाश ने वेदों के लेख को असत्य और बाइबिल का लेख सत्य सिद्ध करने के लिये अग्नि, वायु, रवि, अंगिरा के इलहाम द्वारा वेद प्राप्ति लिखी।

अष्टम समुल्लास—

(३४) हिन्दूसाहित्य में सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्मावर्त देश में बतलाई गई है किंतु अंग्रेज सृष्टि की उत्पत्ति उत्तरीय हिमालय में बतलाते हैं, हिन्दुओं का कथन झूठा और अंग्रेजों का सत्य साबित करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने सृष्टि की उत्पत्ति तिब्बत में होनी लिखी ।

(३५) वेद बतलाते हैं कि सृष्टि के आरंभ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चार जातियां पैदा हुईं, अंग्रेज कहते हैं कि केवल मनुष्यजाति सृष्टि के आरंभ में पैदा हुई, वेदों को असत्य और अंग्रेजों के कथन को सत्य सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने सृष्टि के आरम्भ में एक जाति की उत्पत्ति बतलाई।

(३६) वेदादि समस्त शास्त्रों में पृथ्वी का अचलत्व लिखा है किंतु ईसाई पृथ्वी का घूमना कहते हैं, हिन्दू साहित्य झूठा और ईसाइयों का सिद्धान्त सच्चा सिद्ध करने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने पृथ्वी का घूमना लिखा।

दशम समुल्लास—

(३७) वेद और धर्मशास्त्रों ने हिन्दुओं के लिये शिखा रखनी लिखी है, यवन साम्राज्य में हिन्दुओं की शिखा बचाने के लिये लाखों हिंदू तलवार के घाट उतरे किंतु शिखा बचा ली, ईसाईधर्म में शिखा रखनी नहीं लिखी, हिंदूधर्म को झूठा कर भारतीयों को ईसाई बनाने के लिये सत्यार्थप्रकाश ने गर्म देश में शिखा की सफाई कर देना लिख दिया।

(३८) मनु ने लिखा है कि "नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नम्" शूद्र के हाथ का पक्वान्न भी मत खाओ किन्तु ईसाई धर्म में इसका कोई परहेज नहीं, मनु बकते हैं और ईसाई धर्म सच्चा है इसकी सिद्धि के लिये सत्यार्थप्रकाश ने शूद्रों के हाथ की रसोई द्विजों को खाना लिखा ।

एकादश समुल्लास—

(३९) वेद ने "इमं मे गंगे यमुने" आदि मंत्र से गंगा यमुना आदि तीर्थों के द्वारा मनुष्य का पवित्र होना लिखा है और ईसाई धर्म ऐसी पवित्रता को नहीं मानता इसलिये सत्यार्थप्रकाश ने तीर्थ के महत्व का जोरदार शब्दों में खंडन किया ।

(४०) वेद ने गणेश, दुर्गा, विष्णु, शंकर, सूर्य इन पंचदेव का मूर्तिपूजन बड़े जोर से विस्तार पूर्वक लिखा है किंतु ईसाई धर्म ऐसे मूर्तिपूजन को नहीं मानता,

वेद मानने के योग्य नहीं और ईसाई धर्म की आज्ञा माननी चाहिये इस अभिप्राय से सत्यार्थप्रकाश ने मूर्तिपूजा का खण्डन लिख दिया।

(४१) वेद और धर्मशास्त्र ने द्विजातियों को यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा दी है किन्तु इंजील में यह आज्ञा नहीं है, हिन्दुओं का सिद्धान्त जनेऊ पहिनना वेदादि सच्छास्त्रों का कथन बकवाद है और इंजील का हुक्म मानने के लायक है यह सावित करने के लिये सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने यज्ञोपवीत पहिनने को उड़ाया और ऐसी युक्ति से उड़ाया कि कोई समझ भी न पावे। उसको इस प्रकार समझें कि समस्त हिन्दू-सिद्धान्त को उड़ा कर स्वामी जी ने शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी और शौनकी इन चार ही शाखाओं को वेदश्रेणी में लिया है और इनमें द्विजातियों को जनेऊ पहिनने की आज्ञा नहीं, बस जनेऊ उड़ गया।

वेद के महत्व को गा कर ईसाई सिद्धान्तों को वैदिक सिद्ध कर देना यह सत्यार्थप्रकाश का काम है, इसको वे ही लोग समझ सकते हैं जो सत्यार्थप्रकाश को उत्तम रीति से हृदयंगम कर चुके हैं ऐसी बारीक बातों को वे नहीं समझ सकते जो रजिस्टर में नाम लिखवा कर आर्यसमाजी बन गये और जिन्होंने सत्यार्थप्रकाश के प्रत्येक शब्द का अर्थ नहीं जाना। आज हम उन आर्यसमाजियों से प्रश्न करते हैं कि जिनको सत्य भाषण करने से प्रीति है ऐसे आर्यसमाजी पक्षपात छोड़ कर सत्य सत्य बतलावें कि सत्यार्थप्रकाश वैदिकधर्म का प्रबल से प्रबल शत्रु है या नहीं, और साथ ही साथ यह भी बतलावें कि सत्यार्थप्रकाश वेद के गीत गा कर भारतवासियों को ईसाइयत की तरफ ले जा रहा है या नहीं? कई एक हठी मनुष्य यह कहेंगे कि यह तो पं० कालूराम शास्त्री का लेख है, निःसन्देह लेख हमारा है किन्तु हमने ऐसी गवेषणा और जानकारी के साथ लिखा है कि जिसके खंडन में किसी आर्यसमाजी की लेखनी उठने का साहस नहीं कर सकती। सत्यार्थप्रकाश की अयोग्यता को हम ही पब्लिक के आगे नहीं रखते वरन् सत्यार्थप्रकाश कैसा है इस विषय में लिखे पढ़े आर्य विद्वानों के विचार आगे के लेख में हम जनता के आगे रक्खेंगे। हमें आशा है कि पाठक आर्य विद्वानों के लेखों को पढ़ कर सत्यार्थप्रकाश के योग्य अथवा अयोग्यता के विचार पर पहुँच जावेंगे।

इति आर्यसमाज का मुख्य लक्ष्य।

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

सत्यार्थप्रकाश की छीछालेदड़

सत्यार्थप्रकाश का जन्म

स्वामी दयानन्द जी ने आर्यसमाज नामक मत चलाने के लिये इस मत का आधारभूत ग्रंथ "सत्यार्थप्रकाश" लिख श्री १०५ राजा जयकृष्णदास जी मुरादाबाद के हाथ बेंच दिया, जितने टके इसकी तैयारी में व्यय हुये थे उतने पैसे लेकर 'सत्यार्थप्रकाश' का स्वत्व राजा जयकृष्णदास जी को दे दिया। राजा साहब ने इस सत्यार्थप्रकाश को "स्टार प्रेस बनारस" में छपवाया और अपने ही नाम से इस ग्रन्थ की रजिस्ट्री करवाई। सम्वत् १९३३ में यह ग्रन्थ छपा और इसी ग्रन्थ के आधार पर "आर्यसमाज" नामक मत जारी हुआ। दानापुर, लाहौर आदि अनेक स्थानों में आर्यसमाजें कायम हुईं। अब तो आर्यसमाजी लोग खुले मैदान सनातनधर्मियों का खण्डन करने लगे अतएव सनातनधर्मियों को भी सत्यार्थप्रकाश के देखने की इच्छा हुई। जिन लोगों ने इस सत्यार्थप्रकाश को देखा उनको शान्ति नहीं हुई समझ लिया कि स्वामी जी मनमानी व्यवस्था देते हैं, हां, सत्यार्थप्रकाश के एक स्थान में स्वामी जी ने बैल और गाय को मार हवन कर उनका मांस खा जाना लिखा। इस लेख के देखने से सनातनधर्मियों को सत्यार्थप्रकाश से घृणा होगई। इन लोगों ने यह लेख आर्यसमाजियों को दिखलाया, आर्यसमाजी भी जाति के हिन्दू ही थे इसलिये यह लेख उनको अखरा। इसी लेख पर पं० मोहनलाल जी अग्निहोत्री मेरठ प्रभृति अनेक आर्यसमाजियों ने आर्य-समाज से इस्तीफे दे दिये। जिन लोगों ने इस लेख को बुरा तो समझा किन्तु इस्तीफा नहीं दिया ऐसे लोगों ने यह लेख स्वामी दयानन्द जी के आगे रक्खा। इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि हमने जो कुछ लिखा है वह सब वेद प्रतिपाद्य है, तुम्हारी समझ में नहीं आता तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं तुम्हारी बुद्धि का दोष है। (१) स्वामी दयानन्द जी हठी थे इस कारण वे नहीं चाहते थे कि हम अपने लिखे को अब झूठ कहें (२) स्वामी जी ने मांस प्रकरण की व्यवस्था नहीं समझी थी इस कारण मांस के विषय में उनको कोई निर्णय नहीं मिलता था (३) सर प्रतापसिंह करनैल जो जोधपुर के राजा के चाचा थे वे आर्यसमाज के प्रचार के लिये स्वामी जी को अधिक से अधिक रुपया अपने पास से देते थे और वे मांस खाते थे।

एक दिन सर प्रतापसिंह ने स्वामी जी से पूछा कि वेद में मांस खाने की आज्ञा है या नहीं ? तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कि वेदों में तो मांस खाने की विधि भरी पड़ी है, करनैल प्रतापसिंह ने स्वामी जी से कहा कि तो इसके ऊपर कोई ग्रन्थ लिखा जाना चाहिये, उनकी आज्ञा से स्वामी जी ने अन्य पंडितों से "मांस खाना वेद में है" इस विषय पर "मांस भक्षण विचार" आदि तीन ग्रंथ लिखे। इस 'मांस भक्षण विचार' ग्रन्थ का खण्डन सनातनधर्म के स्तम्भ वेदव्याख्याता पं० भीमसेन जी ने "मांस भक्षण विचार" नामक ग्रन्थ में लिखा।

इन तीन कारणों से स्वामी जी लाचार हो गये और उन्होंने गौ, बैल को मार कर हवन करके खा जाने पर कोई विचार न किया। इत्तफाक की बात सम्वत् १९४० की नरक चतुर्दशी तिथि को स्वामी जी का शरीरपात हो गया, इस मृत्यु से आर्यसमाजों में बहुत शोक हुआ। जब तक स्वामी दयानन्द जी जीवित रहे तब तक यही सत्यार्थप्रकाश संसार में चलता रहा और इसी के सिद्धांतों को लेकर आर्यसमाजों का जन्म हुआ किन्तु यह सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज की दृष्टि में अयोग्य सिद्ध हुआ अतएव आर्यसमाजियों ने इस सत्यार्थप्रकाश को संसार से नष्ट करने का विचार कर लिया और उसके नष्ट करने के लिये विविध जाल बनाये गये जिनको हम नीचे दिखलाते हैं।

असली सत्यार्थप्रकाश का मृत्यु

कुछ दिन बाद आर्यसमाजियों की एक कमेटी बैठी और उसमें यह पेश हुआ कि सत्यार्थप्रकाश में बहुत अशुद्धियां हैं इसका संशोधन होना चाहिये। अधिक सम्मति से पास हो गया किन्तु पण्डितों ने यह कहा कि इसके सिद्धांतों में कहीं कहीं पर बहुत अधिक फर्क है इस कारण उन गलत सिद्धान्तों के स्थानों में सत्य सिद्धांत रखने पड़ेंगे और उस समय पबलिक यह कहेगी कि बाइबिल की भांति आर्यसमाज भी अपने सत्यार्थप्रकाश को बदल लेती है अतएव अभी आर्यसमाज स्थायी धर्म नहीं हुआ, इसका क्या उत्तर होगा ?

इसके ऊपर कुछ देर विचार करके स्वामी दयानन्द जी के नाम से सत्यार्थप्रकाश की द्वितीय भूमिका बनाई गई और वह यह है—

"जिस समय मैंने यह ग्रंथ "सत्यार्थप्रकाश" बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभमि की

भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है। कहीं कहीं शब्द, वाक्यरचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी परंतु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां, जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक २ कर दी गई है। यह ग्रंथ १४ (चौदह) समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है इसमें १० (दश) समुल्लास पूर्वार्द्ध और ४ (चार) उत्तरार्द्ध में बने हैं परंतु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धांत किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे अब वे भी छपवा दिये हैं"।

(१) प्रथम तो भूमिका में यह लिखा है कि "हिंदी न जानने के कारण भाषा में अशुद्धियां हो गई थीं" यह बात बिल्कुल गलत है। प्रथम सत्यार्थप्रकाश की हिंदी भाषा में भाषा की अशुद्धियाँ नहीं। (२) भूमिका में लिखा है कि "कहीं कहीं शब्द, वाक्यरचना का भेद हुआ है"। नहीं नहीं, शब्द वाक्यरचना का भेद नहीं हुआ वरन् सिद्धांतों का भेद हुआ है। प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में जो स्वामी दयानन्द जी के सिद्धांत थे उनके विरुद्ध द्वितीयावृत्ति में सिद्धांत रक्खे गये इसके कुछ उदाहरण पाठकों की जानकारी के लिये हम नीचे लिखते हैं।

अभिन्न निमित्तोपादानकारण

स्वामी दयानन्द जी केवल ब्रह्म को अनादि मानते हैं इसकी पुष्टि में वे प्रथम समुल्लास में लिखते हैं कि

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।

यह छान्दोग्योपनिषद् का वचन है इसका अभिप्राय यह है कि हे सोम्य हे श्वेतकेतो श्वेतकेतु के जो पिता उद्दालक वे उससे कहते हैं अग्रे नाम सृष्टि जब उत्पन्न नहीं भई थी तब एक अद्वितीय ब्रह्म परमेश्वर ही था और कोई भी नहीं था।

तीसरे समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं कि

"सब प्रकृत्यादिक भूतों का एक अद्वितीय अनादि परमेश्वर ही कारण है और परमेश्वर से भिन्न सब कार्य हैं क्योंकि परमेश्वर ही में सब प्रकृत्यादिक सूक्ष्म भूत रचे हैं सो परमेश्वर के सामने तो संसार सब आदि है"।

इस अद्वैत सिद्धान्त के विरुद्ध द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा गया कि

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्संगापत्तिः । १
सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्यम् । २
श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य । ३

सांख्य सू०

यदि पुरुष को प्रधान शक्ति का योग हो तो पुरुष में संगापत्ति हो जाय अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिल कर कार्यरूप में संगत हुई है वैसे परमेश्वर भी स्थूल हो जाय इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है । १ । जो चेतन से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्य युक्त है वैसा संसार में भी सर्वैश्वर्य का योग होना चाहिये सो नहीं है इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है । २ । क्योंकि उपनिषत् भी प्रधान ही को जगत् का उपादान कारण कहती है । ३ ।

स्वामी दयानन्द जी ने ऊपर के लेख में अद्वैत मान कर ईश्वर को सृष्टि का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" माना, द्वितीयावृत्ति में ईश्वर को संसार का निमित्त कारण कहा क्या यह सिद्धान्त नहीं बदला ? सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज ने बदला इसलिये स्वामी जी के सिद्धांत को बदल दिया किंतु ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका अभी नहीं बदली गई अतएव इसमें स्वामी जी का वही सिद्धांत अब भी मौजूद है । देखिये

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं
नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्म-
न्नभः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥

ऋग्वेदादि० सृष्टिविद्या वि०

(नासदासी०) यदाकार्यं जगन्नोत्पन्नमासीत्तदाऽसत्सृष्टेः प्राक् शून्यमाकाशमपि नासीत् । कुतः । तद्व्यवहारस्य वर्तमानाभावात् (नो सदासीत्तदानीं) तस्मिन्काले सत्प्रकृत्यात्मक मव्यक्तं सत्संज्ञकं यज्जगत्कारणं तदपि नो आसीन्नावर्तत । इत्यादि ।

जब यह कार्यजगत् उत्पन्न नहीं हुआ था तब असत् सृष्टि से पहले शून्य आकाश भी नहीं था क्यों आकाश का व्यवहार उस समय वर्तमान ही नहीं था उस समय सत्प्रकृत्यात्मक अव्यक्त सत्संज्ञावाला जो जगत् का कारण है वह भी नहीं था।

श्राद्ध–तर्पण

स्वामी दयानन्दजी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में मृतक पुरुषों का श्राद्ध-तर्पण लिखा है—

ॐ सम्बन्धिभ्यो मृतेभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धीन्मृतांस्तर्पयामि।

ॐ सगोत्रेभ्यो मृतेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रान्मृतांस्तर्पयामि।

पित्रादिकों में जो कोई जीता होय उसका तर्पण न करै और जितने मर गये होंय उनका तो अवश्य करै।

तृतीय समुल्लास।

"मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है उससे क्या आता है कि जीते-भये को अन्न और जलादिकों से सेवा अवश्य करनी चाहिये यह जाना गया। दूसरा गुण जिनके ऊपर प्रीति है उनका नाम लेके तर्पण और श्राद्ध करेगा तब उसके चित्त में ज्ञान का संभव है कि जैसे वे मर गये वैसे मुझको भी मरना है, मरण के स्मरण से अधर्म करने में भय होगा, धर्म करने में प्रीति होगी। तीसरा गुण यह है कि दायभाग बांटने में सन्देह न होगा क्योंकि इसका यह पिता है, इसका यह पितामह है, इसका यह प्रपितामह है। ऐसे ही छः पीढ़ी तक सभों का नाम कंठस्थ रहैगा। वैसे ही इसका यह पुत्र है, इसका यह पौत्र है, इसका यह प्रपौत्र है इससे दायभाग में कभी भ्रम न होगा। चौथा गुण यह है कि विद्वानों को श्रेष्ठ धर्मात्माओं ही को निमन्त्रण भोजन-दान देना चाहिये, मूर्खों को नहीं। इससे क्या आता है कि विद्वान् लोग आजीविका के बिना कभी दुःखी न होंगे, निश्चिन्त हो के सब शास्त्रों को पढ़ावेंगे और विचारेंगे, सत्य सत्य उपदेश करेंगे और मूर्खों का अपमान होने से मूर्खों को भी विद्या पढ़ने में और गुण ग्रहण में प्रीति होगी इत्यादि।

तृतीय समुल्लास।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में आर्यसमाज प्रयाग ने जीवितों का श्राद्ध तर्पण लिख दिया ऐसा करने पर क्या सिद्धान्त नहीं बदला? जब सनातनधर्मियों ने आर्यसमाज के आगे श्राद्ध का मामला रक्खा तब आर्यसमाजियों ने एक युक्ति ऐसी सोची कि जिससे आर्यसमाजियों की चतुराई दृष्टि आने लगी।

आर्यसमाजियों ने बतलाया कि प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश सनातनधर्मियों के प्रेस में छपा था, स्वामीजी ने तो उसमें जीवित पितरों का ही श्राद्ध-तर्पण रक्खा था किन्तु कम्पाजीटरों ने मृतकों का बना दिया।

(१) कम्पाजीटरों से एक दो अक्षरों की गलती होती है किन्तु ये इतना लम्बा चौड़ा मजमून बनाकर किसी की किताब में नहीं रख सकते कि जितना विस्तृत मजमून मृतक श्राद्ध के विवेचन में लिखा है। (२) भास्करप्रकाश की भमिका में लिखा है कि प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश का प्रूफ स्वामी दयानन्द जी ने ही देखा था, यदि कम्पाजीटरों ने मजमून मिला दिया था तो प्रूफ देखने के समय उसको क्यों नहीं निकाला? (३) यदि प्रूफ के समय भी रह गया था तो स्वामी दयानन्दजी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश पर शुद्धाशुद्ध पत्र बनाया है उस पत्र में जीवित श्राद्ध को अशुद्धिपत्र में क्यों नहीं लिखा? (४) इसके पश्चात् स्वामी दयानन्द जी ने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश की विषय सूची लिखकर सत्यार्थप्रकाश में छपवाई क्या तब भी स्वामी जी को मृतक पितरों का श्राद्ध-तर्पण नहीं सूझा? असली बात तो यह है कि आर्यसमाजी स्वामी दयानन्द जी के घोर शत्रु हैं और उनके सिद्धान्तों को कुचल देना इनका मुख्य उद्देश्य है, अपने ऊपर कलंक न लगे इस हेतु से कोई न कोई नई युक्ति बनाकर अपने को दूध का धुला सिद्ध करते हैं, वैसाही श्राद्ध में भी किया है।

मांस विधि

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं कि

"वेद, ब्राह्मण और सूत्र पुस्तकों में चार प्रकार के पदार्थ होम के लिखे हैं। एक तो जिसमें सुगंध गुण होय जैसे कि कस्तूरी केशरादिक और दूसरा जिसमें मिष्ट गुण होय जैसे कि मिश्री शर्करादिक और तीसरा जिसमें पुष्टिकारक गुण होय जैसा कि दूध, घी और मांसादिक और चौथा जिसमें रोगनिवृत्तिकारक गुण होय जैसा कि वैद्यक शास्त्र की रीति से सोमलतादिक औषधियां लिखी हैं उन चारों का यथावत् शोधन, उनका परस्पर संयोग और संस्कार करके होम करैं।

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के दशम समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं कि

"जहां जहां गोमेधादिक लिखे हैं वहां पशुओं में नरों को मारना लिखा है इससे इस अभिप्राय से नरमेध लिखा है। मनुष्य नर को मारना कहीं नहीं क्योंकि जैसी पुष्ट बैलादिक नरों में है वैसी स्त्रियों में नहीं है और एक बैल से हजारहा गैया

गर्भवती होती हैं इससे हानि भी नहीं होती सोई लिखा है "गौरनुबन्ध्योऽग्नीषोमीयः" यह ब्राह्मण की श्रुति है। इसमें पुल्लिंग निर्देश से यह जाना जाता है कि बैला आदिक को मारना, गैया को नहीं, सो भी गोमेधादिक यज्ञों में अन्यत्र नहीं क्योंकि बैला आदि से भी मनुष्य का बहुत उपकार होता है इससे इनकी भी रक्षा करनी चाहिये और जो बन्ध्या गाय होती हैं उसको भी गौमेध में मारना लिखा है "स्थूलपृषती-माग्नेवारुणी मनड्वाहीमालभेत" यह ब्राह्मण की श्रुति है इसमें स्त्रीलिंग और स्थूलपृषती विशेषण से बन्ध्या गाय ली जाती है क्योंकि बन्ध्या से दुग्ध और वत्स्या-दिकों की उत्पत्ति होती नहीं और जो मांस न खाय सो घृत दुग्धादिकों से निर्वाह करे क्योंकि घृत दुग्धादिकों से भी बहुत पुष्टि होती है सो जो मांस खाय अथवा घृतादिकों से निर्वाह करे वे भी सब अग्नि में होम के बिना न खाय क्योंकि जीव को मारने के समय पीड़ा होती है उससे कुछ पाप भी होता है फिर जब अग्नि में वे होम करेंगे तब परमाणु से उक्त प्रकार सब जीवों को सुख पहुँचेगा, एक जीव की पीड़ा से पाप भया था सो भी थोड़ा सा गिना जायगा अन्यथा नहीं"।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी के ये दोनों लेख उड़ा दिये गये। भूमिका में लिखा है कि "अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है"। स्वामी दयानन्द जी मांस का खाना वैदिक मानते हैं और आर्यसमाज स्वामी दयानन्द के उस सिद्धान्त को निकाल मांस को हेय बतलाती है क्या यह अर्थ भेद नहीं हुआ? जब ये दोनों लेख निकाल कर दूर फेंक दिये तब भी कमी करना नहीं हुआ! फिर भी यही कहेंगे कि "विशेष तो लिखा गया"! आर्यसमाज को कौन अधिकार था कि जिससे वह स्वामी जी के लेख को निकाल कर फेंक दे और ग्रन्थ लेखक में स्वामी जी का ही नाम रख दे।

मोक्ष से अनावृत्ति

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी का यह सिद्धान्त है कि जीव के मोक्ष पहुँचने पर फिर इसका जन्म-मरण नहीं होता।

तृतीय समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं कि "इनको सम्यक् जानने से निःश्रेयस जो मोक्ष नाम नित्यानन्द परमेश्वर की प्राप्ति और जन्ममरणादिक दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है"।

चतुर्थ समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं कि

"कितने योगी और ज्ञानी लोग वाणी में प्राण का होम करते हैं, कितने प्राण में वाणी का होम करते हैं, सदा वाणी और प्राण में यज्ञ की सिद्धि अक्षय अर्थात्

जिसका नाश नहीं होता उसको देखते हैं अर्थात् वाणी तो प्राण ही से उत्पन्न होती है और प्राण आत्मा से, आत्मा अविनाशी है उस को परमात्मा से युक्त कर देते हैं इससे उनकी मुक्ति ही हो जाती है फिर कभी उनको दुःख का संग नहीं होता है इससे उनको वाह्य क्रिया का करना आवश्यक नहीं।

चतुर्थ समुल्लास में फिर लिखा है—

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्॥

तिससे नित्य ही सहाय के लिये धीरे धीरे धर्म ही का संचय करैं क्योंकि धर्म ही के सहाय से दुस्तर जो तम अर्थात् जन्म-मरणादिक दुःखसागर का जो संयोग उसका नाश और मुक्ति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति और सर्व दुःख की निवृत्ति धर्म ही से होती है अन्यथा नहीं"।

फिर पंचम समुल्लास में लिखते हैं कि—

नदीकुलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा।
तथात्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते॥

जैसे वृक्ष जब नदी के तट से जल में गिर के चला जाय वैसे ही समाधियोग से इसको छोड़ै तब बड़ा भारी जन्म-मरण रूप संसार के सब दुःख से छूट के मुक्त हो जाय।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में इसको निकाल डाला और इसकी जगह मुक्ति से लौट आना लिख दिया। देखिये समुल्लास नवम—

"हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है"।

कहिये दयानन्द के सिद्धांत को काट कर उन्हीं के नाम से अपना बनावटी सिद्धान्त सत्यार्थप्रकाश में लिखा या नहीं और जब मुक्ति से लौटने पर शास्त्रार्थ होगा तब सत्यार्थप्रकाश झूठा ठहरेगा वा नहीं?

स्त्री की अस्वतंत्रता

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी लिखते हैं कि—

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम्॥

बाल्यावस्था न्यून से न्यून षोडश वर्ष पर्यन्त होती है तब तक पिता के वश में कन्या रहै और षोडश वर्ष से लेके चौबीस वर्ष पर्यन्त जिस वर्ष में विवाह होय तब अपने पति के वश में रहै, जब पति न रहै तब पुत्रों के वश में स्त्री रहै, स्त्री स्वतन्त्र न होवे ।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्त्री की स्वतन्त्रता लिखी है और इस लेख के जिम्मेदार भी स्वामी दयानन्द जी ही हैं। आर्यसमाज के इस अन्याय को क्या संसार का कोई मनुष्य सहन कर सकता है ? कोई नहीं।

मनुस्मृति

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्द जी मनुस्मृति के बारे में लिखते हैं कि—

"अन्य स्मृतियों का वेदों से विरोध और वेद में प्रमाण भी किसी का नहीं है ऋषि मुनियों की की भई कोई स्मृति नहीं सिवाय मनुस्मृति के। यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भैषजं भेषजतायाः। यह छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति है इसका यह अभिप्राय है कि जो कुछ मनु जी ने उपदेश किया है सो यथावत् वेदोक्त है और सत्य ही है जैसे कि रोग के नाश करने का औषध वैसा ही है यह एक मनुस्मृति ही का वेद में प्रमाण मिलता है और किसी स्मृति का नहीं और सब लोगों को भी यह बात सम्मत है कि—

वेदार्थोपनिबन्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम् ।
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते ॥

इस श्लोक से सब पंडित लोग कहते हैं कि मनुस्मृति के अनुकूल जो स्मृति उसको मानना चाहिये और उससे विरुद्ध किसी स्मृति को नहीं।

चतुर्थ समुल्लास के इस लेख में स्वामी दयानन्द जी ने समस्त मनुस्मृति को प्रमाण मान लिया किन्तु द्वितीयावृत्ति के तृतीय समुल्लास में लिखा है कि—

"स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति त्याज्य हैं"।

स्वामी दयानन्द जी मनुस्मृति में प्रक्षिप्त श्लोक नहीं मानते किन्तु प्रयाग आर्यसमाज ने स्वामी जी के विरुद्ध मनु में प्रक्षिप्त श्लोक माने, इसका कलंक स्वामी जी के मत्थे ही रहा, और आर्यसमाज प्रयाग ने स्वामी जी के लेख को धूल में मिला कर जो प्रक्षिप्त माना यह आर्यसमाज प्रयाग की घोर नास्तिकता है।

पौनर्भव व्यवस्था

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में स्वामी जी लिखते हैं कि—

साचेदक्षतयोनिः स्यादृगतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥

जो स्त्री अक्षतयोनि अर्थात् विवाह तथा जाने आने मात्र व्यवहार तो हुआ हो परंतु पुरुष से समागम न भया होय तो पौनर्भव पुरुष अर्थात् विधवा के नियोग से जो पुत्र उत्पन्न भया होय उसके साथ उस विधवा का विवाह ही होना उचित है ।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में पौनर्भव (वर्णसंकर) को उड़ा कर विधवा का विवाह द्विजातियों में लिख दिया, यह आर्यसमाज ने स्वामी जी से शत्रुता की ।

द्वितीय सत्यार्थप्रकाश का जन्म

आज तक यह घटना संसार के सामने नहीं आई कि किसी धर्म का प्रवर्तक कोई ग्रंथ लिखे और उसके चेले उस ग्रंथ को संसार से बिदा कर उसी ग्रन्थ के नाम से दूसरा ग्रंथ लिख अपने धर्मप्रवर्तक के नाम से उस ग्रंथ की प्रसिद्धि करें। यह अभूतपूर्व घटना आर्यसमाज ने संसार के आगे रक्खी। इस अनोखी बनावट पर जब कोई मनुष्य दृष्टिपात करता है तब उसको मजबूरन आर्यसमाज की निन्दा करनी पड़ती है। दूसरा सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज ने लिखा किन्तु सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका से इसके लेखक स्वामी दयानन्द जी को ही ठहरा दिया, यह और भी भयंकर पाप है। ऐसी ऐसी चालबाजियाँ किसी के छिपाने से छिपती नहीं, किसी न किसी दिन सत्यता संसार के आगे आ ही जाती है।

आर्यसमाज के प्रधान पण्डित जिनकी बराबरी का विद्वान आर्यसमाज में उस समय अन्य कोई नहीं था, जो संयुक्तप्रांतीय आर्य प्रतिनिधि के सभापति और उपदेशकों के प्रबन्धक थे वे ही मेरठ निवासी पं० तुलसीराम जी स्वामी अपने सम्पादकत्व में निकलनेवाले वेदप्रकाश मासिक पत्र अगस्त सन् १९१० ई० के पृष्ठ १८२ में लिखते हैं कि "सत्यार्थप्रकाश की द्वितीयावृत्ति आर्यसमाज प्रयाग की बनाई और वैदिक प्रेस कमेटी की निगरानी में छपी है" अब कोई विचारशील मनुष्य कैसे मान लेगा कि द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के लेखक स्वामी दयानन्द जी हैं।

हमने प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश की नौ आवृत्ति कीं और द्वितीयावृत्ति सत्यार्थ-प्रकाश चालिस वार से भी अधिक पढ़ा, सौ नाम ईश्वर के और एक नियोग तथा अवतार, मूर्तिपूजा और सम्प्रदायों का खंडन ये सिद्धान्त प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के द्वितीयावृत्ति में आये, शेष सब सिद्धान्त बदल दिये गये। प्रथमावृत्ति सत्यार्थ-प्रकाश के सैकड़ों प्रमाण द्वितीयावृत्ति में नहीं आये और द्वितीयावृत्ति में सैकड़ों प्रमाण नये रक्खे गये जो प्रथमावृत्ति में नहीं हैं। द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में श्रुति-स्मृति समन्वय, अर्थज्ञान, सिद्धान्त की स्थिति और उसकी वैदिकता इन बातों पर ध्यान नहीं दिया गया, लक्ष्य केवल यह रक्खा कि पाश्चात्य देश का व्यवहार ही वैदिक धर्म सिद्ध हो जावे। मालूम होता है कि आर्यसमाज प्रयाग ने जो सत्यार्थ-प्रकाश बनाने की सोसाइटी बनाई उसके मेम्बर अंग्रेजी के विद्वान् और सुधारक थे, इन सुधारकों ने अपनी जबर्दस्ती से पाश्चात्य व्यवहार को वैदिक धर्म बनाने का जो उद्योग ठाना इस उद्योग में सत्यार्थप्रकाश बहुत अधिक बिगड़ा।

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश निराकार, मूर्तिपूजा का खंडन और सम्प्रदायों का मिथ्यापन तथा नियोग प्रभृति दश पांच विषयों में ही शास्त्रविरुद्ध था किन्तु यह द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश ऐसा है जिसका प्रत्येक प्रमाण और प्रत्येक युक्ति वेदों से विरोध करती है। इस सत्यार्थप्रकाश में चौदह सौ से अधिक ऐसे विषय (सब्जेक्ट) हैं जो वेदों से शत्रुता कर वेदों को संसार से उड़ा देना चाहते हैं। एक आर्यसमाज तो क्या यदि आर्यसमाजी, सिक्ख, सनातनधर्मी, जैनी, मुसलमान, ईसाई, पार्सी, यहूदी आदि सब मिल कर भी यह चाहें कि यह सत्यार्थप्रकाश वैदिक धर्मानुकूल हो जाय तब भी नहीं हो सकता इतने पर भी आर्यसमाजी अपनी चालबाजी और धोकादेही से इसको वैदिक बतलाते हैं। इस सत्यार्थप्रकाश ने सनातनधर्मी और आर्यसमाजियों के बीच में एक फौलाद की दीवार खड़ी कर दी, इसी सत्यार्थप्रकाश ने आर्यसमाज को पराजय का ठेकेदार बना दिया, कोई भी शास्त्रार्थ हो किन्तु पराजय (हार) आर्यसमाज को ही प्राप्त होगी।

दूसरे सत्यार्थप्रकाश बनने की खुशी

आर्यसमाजी वेदादि सच्छास्त्रों के पास नहीं जाते, अपनी पुस्तकों की प्रशंसा और अपनी अक्ल की सूझ इन दो ही सिद्धान्तों पर आर्यसमाज का मत चल रहा है। जिस समय द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश छपा इसको देख कर आर्यसमाजियों के मन सातवें आसमान पर जा विराजे, पुस्तक लेकर सनातनधर्मियों के यहां घूमते थे

और कहते थे कि प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में तो कुछ गलतियां अवश्य थीं किन्तु यह द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश ऐसा उत्तम बना है कि इसके एक सिद्धान्त को भी कोई खण्डन नहीं कर सकता, प्रत्येक सिद्धान्त वेद से छांट छांट कर लिखा गया है, सत्यार्थप्रकाश क्या है वेदों का सार है, इस सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करनेवाला न कोई है और न आगे को होगा, इसके खण्डन में लेखनी उठाने का साहस तो बड़े बड़े विद्वानों में भी नहीं पाया जाता। आर्यसमाजियों का यह भरोसा थोड़े ही दिन चला फिर सचाई ने दर्शन देने की कृपा की।

द्वितीयावृत्ति पर कुठाराघात

यह सत्यार्थप्रकाश सन् १८८४ में छपा था, दो वर्ष तक आर्यसमाज को इस सत्यार्थप्रकाश का बड़ा भरोसा रहा किन्तु सन् १८८६ में सद्धर्मप्रचारक उर्दू पत्र जालंधर आदि कई एक पत्रों में एक विज्ञापन छपा उसमें लिखा था कि सत्यार्थप्रकाश में छापे की अशुद्धियां बहुत हैं और भी कई प्रकार की अशुद्धियां पाई जाती हैं, किसी किसी स्थान में यह सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज के सिद्धान्तों के भी विरुद्ध है, इसमें कहां कहां पर रद्द बदल की जावे सब आर्य इसकी लिस्ट बना कर भेजें। अब क्या था, अब तो आर्यसमाज के प्रामाणिक ग्रंथ द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश की भी काट छांट होने लगी, इसके कुछ थोड़े से नमूने हम पाठकों के आगे रखते हैं।

(१) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास पृ० १२०—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम् ॥ १

सन् १८९७ में यह पाठ बदल कर "आत्मावै पुत्र नामासि" किया गया। द्वितीयावृत्ति में यह प्रमाण सामवेद का लिखा था और सन् १८९७ में इस प्रमाण को "निरुक्त ३। ४" का बतलाया।

(२) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में मनु के श्लोक का "याचेदक्षतयोनिः स्यात्" पाठ था किन्तु १८९८ में "साचेदक्षतयोनिः स्यात्" कर दिया गया और अर्थ अभी तक "याचेदक्षतयोनिः स्यात्" का ही लिखा है। साधारण मनुष्यों को धोका देने के लिये मनुस्मृति के श्लोक का पाठ मनु के विरुद्ध लिख दिया।

(३) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश पृ० ११७ पंक्ति ७ में "पति और देवर को दुःख देनेवाली स्त्री" पाठ था, सन् १८९८ में "पति और देवर को दुःख न देने वाली स्त्री" किया गया।

(४) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास पृ० १२० में "गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे" इसके स्थान में १८६७ में "पुरुष से वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे" आर्यसमाज प्रयाग के सत्यार्थप्रकाश में गर्भवती को दूसरा गर्भ पेट में रखने की विधि थी, इस पाठ से गर्भ पर गर्भ रखने को उड़ा दिया।

(५) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश पंचम समुल्लास पृ० १२६ में "पच्चीसवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त" पाठ था, सन् १८६७ में "पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त" किया गया।

(६) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास पृ० १८८ में "स वेत्ति विश्वं" यह पाठ लिखा है और अठारहवीं आवृत्ति में भी यही है। श्रुतियों का पाठ बदलना आर्यसमाज के बायें हाथ का कर्तव्य है, ईश्वर की गलती को आर्यसमाजी न पकड़ेंगे तो कौन पकड़ेगा ?

(७) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास पृ० २०२ में "अग्नेर्वा ऋग्वेदो" लिखा है, सन् १८६७ में इसके स्थान में "अग्नेर्ऋग्वेदो" किया गया। वेदों के पाठ बदल देने का आर्यसमाजियों को अधिकार है क्योंकि ईश्वर आर्यसमाजियों से विद्वान् नहीं है इसी कारण से यहां पाठ बदला।

(८) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास पृ० २१० में "अन्नेन सोम्यशुंगेनापोमूलन्विच्छ अद्भिस्सोम्यशुंगेन तेजो मूलमिच्छ तेजसा सोम्यशुंगेन सन्मूलन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः" इसके स्थान में पंचमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में लिखा गया कि "[एवमेव खलु] सोम्यान्नेन शुंगेनापो मूलमन्विच्छद्भिस्सोम्य शुंगेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्यशुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः" एक यह छान्दोग्य का पाठ क्या बदला आर्यसमाज चाहेगा तो समस्त वेद को बदल देगा, आर्यसमाज की दृष्टि में ईश्वर मूर्ख है और अपनी बेवकूफी से कुछ का कुछ लिख मारता है फिर उस लेख को आर्यसमाज ठीक न करे तो कौन करे।

(९) द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश अष्टम समुल्लास पृ० २२३ में "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त, यह यजुर्वेद में लिखा है" ऐसा पाठ था, स्वामी दर्शनानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ होने लगा, उन्होंने ये ही दो प्रमाण अपने पक्ष की पुष्टि में दिये, स्वामी जी से कहा कि यह पाठ यजुर्वेद में नहीं है, यजुर्वेद के नाम से

इस पाठ को लिखना मिथ्या है, स्वामी जी ने यजुर्वेद देखा, यह पाठ नहीं मिला, स्वामी जी शास्त्रार्थ हार गये तब ग्यारहवीं बार यह लिखा कि "यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है" किन्तु अब भी पाठ यजुर्वेद में नहीं है, यजुर्वेद के नाम से झूठे प्रमाण रखना इस प्रकार उच्चश्रेणी का न्याय आर्यसमाज द्वारा संसार में न फैलेगा तो फिर किस के द्वारा फैलेगा ?

हमने द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के पाठ बदलने के कुछ थोड़े से उदाहरण दिये हैं और भी बहुत हैं जिनको आवश्यकता हो वे द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश और वर्तमान सत्यार्थप्रकाश को मिला कर पढ़ लें, आर्यसमाजियों की समस्त चालाकियां आगे आ जावेंगी। प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश स्वामी दयानन्द जी ने बनाया और द्वित्तीयावृत्ति आर्यसमाज प्रयाग ने बनाया इनका तो पता लगा किन्तु इस बात का पता न लगा कि यह पाठ किसने बदला ? बदलनेवाले का कहीं नाम ही नहीं ! सत्यार्थप्रकाश क्या है एक प्रकार की होली है, जैसे होली में कोई लकड़ी डाल जाता है और कोई झाड़ झंखाड़ एवं कोई फूंस तथा कोई कंडे, इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश कोई लिखता है, कोई काट छांट करता है और कोई पाठ बदल देता है, अस्तु इस पाठ के बदलने पर तो द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश शुद्ध हो जाना चाहिये था किन्तु ऐसा न हुआ तब हार मान कर परोपकारिणी सभा ने मुसाफिर अखबार आगरा में ३१ जौलाई सन् १९०८ में एक विज्ञापन छपवाया उस विज्ञापन को भी पढ़िये, यह है।

परोपकारिणी का ऐलान

सूचना दीजिये, प्रायः समाजों से शिकायत आई है और आती रहती है कि सत्यार्थप्रकाश के प्रमाणों के पते आदि तथा छापे की अशुद्धियां रह गई हैं, कई महाशय अन्य प्रकार की अशुद्धियां भी बतलाया करते हैं जो इन्हें विपक्षी लोगों से वादविवाद के समय मालूम हुई हैं, इस गड़बड़ को दूर करने के वास्ते सभा ने सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध कराने का प्रबन्ध किया है इसलिये सब आर्यसमाजों, सामाजिक पुरुषों, विशेष कर आर्य विद्वानों तथा उपदेशकों से प्रार्थना है कि वह अपनी अपनी सम्मति से शीघ्र सूचित करें कि उन्हें सत्यार्थप्रकाश में किस प्रकार संशोधन अभीष्ट है, जिस प्रकार की अशुद्धियां उक्त ग्रन्थ में जिन महाशयों को मालूम हों शीघ्र सभा के दफ्तर में लिख भेजें अति कृपा होगी।

निवेदक—हरविलास सारदा,
सहायक मंत्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर।

इस विज्ञापन के वितीर्ण होने पर कुछ सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियों के सूची-पत्र आये और कुछ सम्मतियां आईं कि सत्यार्थप्रकाश अवश्य शुद्ध किया जावे, इन सब को परोपकारिणी ने अपने दफ्तर में रख लिया और किसी गूढ़ अभिप्राय को आगे रख सत्यार्थप्रकाश का संशोधन नहीं किया।

फिर अशुद्धि की आवाज

वेदप्रकाश वर्ष १५ मा० ८ अगस्त सन् १९११ पृष्ठ १९८ 'सत्यार्थप्रकाश में खाडिया' धौलेश्वर महादेव समीपे अहमदाबाद ता० ६।७।११। श्रीयुत वेदमूर्ति पण्डित-वर्य्य श्री तुलसीराम जी सादर प्रणाम कोटि है। निम्न लेख सर्वसाधारण के ज्ञातार्थ वेदप्रकाश में अवश्य प्रकट करें (१) सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास के आरंभ में ४ मंत्र छपे हैं परन्तु ५ मंत्र होने चाहिये, जो पंचम मंत्र छपना था वह लिखने वाले वा छापनेवाले के प्रमाद से छूट गया है वह मंत्र अब छपना चाहिये क्योंकि हिन्दी भाषा में जो लेख "हे मनुष्यो! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि से धन देता हूँ और धारण करनेवाला हूँ वह अनुवाद निम्न मंत्र का बराबर है "अहंदाम गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम्। अहंभवं यज-मानस्य चोदिता यज्वनः साक्षी विश्वस्मिन्भरे। ऋ० १०।४९।०१" (२) दशम समुल्लास में सप्तम श्लोक के अनन्तर अष्टम निम्न श्लोक "श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः। ते सर्वार्थेष्व मीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ २।१०" होना चाहिये क्योंकि इसका अनुवाद हिन्दी में है जैसा कि श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं इनसे सब कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करना चाहिये (३) षष्ठ समुल्लास में जो यह "प्रमाणानि प्रकुर्वीत तेषां धर्मान्यथोदितान्" पंक्ति लिखी है वह नहीं चाहिये, उसके स्थान में "स्थापयेत्तत्र तद्वश्यं कुर्याच्च समयक्रियाम् ७।२०३" यह पंक्ति छपनी चाहिये क्योंकि हिन्दी में इसी का अनुवाद विद्यमान है। ऐसी ऐसी छोटी छोटी भूलें सत्यार्थ-प्रकाश में रह गई हैं इसको शुद्ध करने में कुछ हानि नहीं है, सिद्धान्त में फेरफार नहीं करना चाहिये। सम्पादक जी! आप ठीक समझें तो परोपकारिणी ऐसी अशुद्धि भविष्य में ठीक करे, इसके विषय में कुछ थोड़ा सा लेख अपनी ओर से लिखें फिर अन्य अशुद्धियां मैं लिख भेजूंगा।

नारायणदास भक्त अहमदाबाद।

टिप्पणी-इस प्रकार की अशुद्धियाँ अवश्य शुद्ध करानी चाहिये, श्रीमती परो-पकारिणी सभा ध्यान दे—सम्पादक।

सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियों को जान परोपकारिणी सभा का साहस छूट गया, वह इस ग्रंथ का कहां तक संशोधन करे—लाचारी से टिप्पणी को पढ़कर मौन धारण करना पड़ा।

द्वितीयावृत्ति पर वज्रपात

जब सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियों की अधिक शिकायत आने लगी तब आर्यसमाज लाहौर ने पं० राजनारायण षट्शास्त्री को एक चिट्ठी लिखी कि "सत्यार्थप्रकाश अशुद्ध है इसकी बार बार शिकायत आती है तुम इसका संशोधन करो"। यह चिट्ठी पं० राजनारायण के पास अब भी मौजूद है और वे सभाओं में बाज बाज आर्यसमाजियों को दिखलाया भी करते हैं।

द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश भ्रष्ट

वेदप्रकाश अगस्त सन् १४ पृष्ठ २१६—कृपया इस पत्र को वेदप्रकाश में छाप दीजिये। महात्मन्! आपको विदित है कि सत्यार्थप्रकाश में अनेकों ऐसी अशुद्धियां हैं जिनके सहारे विपक्षी नित्यप्रति आक्षेप करते रहते हैं और प्रायः आर्योपदेशक निरुत्तर हो जाते हैं परन्तु आश्चर्य है कि आर्य नेता इसके संशोधन का कोई उपाय नहीं करते। क्या ऋषि दयानन्द का यह मन्तव्य नहीं था कि पहिले अपनी भूल निकाल कर दूसरे की भूल जतलायें। यदि यह मान्य है तो जब तक सत्यार्थप्रकाश में अशुद्धियां हैं तब तक आपको कोई अधिकार दूसरों पर आक्षेप का नहीं है। स्वामी दर्शनानन्द ने पहिले विज्ञप्त कराया था कि मैं सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियां निकाल कर दूर कर दूंगा परन्तु वह कार्य न कर सके। हमारी सम्मति में एक आर्य विद्वानों की महती सभा हो और उसमें जो अशुद्धियाँ ऋषिग्रन्थों में अथवा सत्यार्थप्रकाश में हों वह सर्वसम्मति से वेदशास्त्रानुकूल शोध दी जायें। यदि आप आर्य विद्वानों को अपनी प्रभावशाली लेखनी द्वारा इस विषय पर आकर्षित करना चाहेंगे तो संभव है कि यह कार्य शीघ्र हो जाय। रामनारायण सभासद आर्यसमाज।

उन दिनों पं० तुलसीराम जी आर्यसमाज के सर्वोपरि लीडर गिने जाते थे इनको मालूम था कि लाला मुन्शीराम की सम्मति से परोपकारिणी सभा ने यह निश्चय किया है कि अब सत्यार्थप्रकाश में काट छांट न होगी अतएव पं० तुलसीराम जी ने इस लेख पर एक सम्पादकीय टिप्पणि लिख दी और वह यह है—

"भास्करप्रकाश को देख लेते तो ऐसा न लिखते"।

सत्यार्थप्रकाश अशुद्ध है

आर्यमित्र ता० १।८। १४ पृष्ठ २–मं० जीवनदास पेन्शनर लाहौर ने सत्यार्थ-प्रकाश के संशोधन का एक नमूना पुस्तकाकार तैयार किया है इसमें सत्यार्थप्रकाश की कुछ मोटी मोटी अशुद्धियों का संशोधन दर्शाया गया है। हम समझते हैं कि यदि सत्यार्थप्रकाश के सिद्धांतों को बचाते हुये उसकी ऐसी भूलें शोध दी जायँ जो कि लेखक के भ्रम अथवा प्रमाद से हुई हैं तो कोई हानि नहीं। स्मरण रखना चाहिये कि स्वामी जी स्वयं कभी ग्रंथ को अपने हाथ से नहीं लिखते थे।

सत्यार्थप्रकाश का संशोधन

जिन आर्यसमाजियों को यह मालूम नहीं है कि आर्यसमाज ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अब सत्यार्थप्रकाश में काट छांट न होगी ऐसे लोग अब भी लिखते रहते हैं कि सत्यार्थप्रकाश का संशोधन हो जाय तो अच्छा है। ता०.३।४ मार्च सन् १६३५ को शाहाबाद जिला हरदोई आर्यकुमार सभा का जलसा था, इसमें प्रश्नोत्तर का टाइम दिया गया था, सनातनधर्मियों के प्रश्नों में जे० पी० चौधरी उलझ गये, निरुत्तर हो गये अब वे अपनी "पाखण्डखण्डिनी पताका" नामक पत्रिका जो उनके सम्पादकत्व में काशी से निकलती है उसकी १ अप्रैल सन् १६३५ की संख्या में लिखते हैं कि—

"अक्सर देखा जाता है कि हमारे सिद्धान्तों पर प्रश्न बहुत कम आते हैं। सत्यार्थप्रकाश में जहां कहीं गलतियां छप गई हैं और जिसका सुधार आज तक नहीं हुआ उसी को लेकर लोग आगे बढ़ते हैं जिसके कारण व्यर्थ में अक झक करना पड़ता है। अच्छा होता कि प्रतिनिधि सभा पंडितों की एक समिति बनवाकर सत्यार्थ-प्रकाश का संशोधन करवा देती"।

सत्यार्थप्रकाश में पन्द्रह सौ अशुद्धियां

एक दिन स्वामी दर्शनानन्द जी, गोस्वामी पं० यदुकुलभूषण जी से शास्त्रार्थ कर रहे थे, सत्यार्थप्रकाश की पकड़ से वे लाचार हो गये, कुछ उत्तर न दे सके और शास्त्रार्थ छोड़ कर बीच में ही चल दिये। उन्होंने यह प्रण किया कि मैं सत्यार्थप्रकाश

की समस्त अशुद्धियां ठीक करूँगा, उन्होंने सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियों की एक लिस्ट बनाई थी उस लिस्ट में अशुद्धियों की संख्या पन्द्रह सौ से ऊपर थी। यह लिस्ट आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब की मीटिंग में स्वामी जी ने पेश की किन्तु लाला मुन्शीराम जो फिर बाद में श्रद्धानन्द हो गये थे उन्होंने यह कहा कि जब हम ये अशुद्धियां ठीक करेंगे तब सत्यार्थप्रकाश बहुत छोटा होजायगा और साथ ही साथ आर्य-समाज के सिद्धान्त भी बदल जायँगे इसलिये कोई कुछ भी कहे सत्यार्थप्रकाश में अब काट छाँट नहीं हो सकती। स्वामी दर्शनानन्द जी ने कहा कि यदि ये अशुद्धियाँ ठीक न कर दी गईं तो जहाँ कहीं भी शास्त्रार्थ होगा आर्यसमाज की ही हार होगी, इसको मुन्शीराम जी ने मंजूर नहीं किया कि काट छांट हो और प्रतिनिधि पञ्जाब ने भी अधिक वोट से ला० मुन्शीराम जी की सम्मति को पास कर दिया।

लाला मुन्शीराम जी परोपकारिणी सभा के भी सभासद थे, जब सन् १६०८ में परोपकारिणी सभा ने सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियों के लिये मुसाफिर अखबार में विज्ञापन छपवाया तब भी मुन्शीराम जी ने यही सम्मति दी थी और इसी सम्मति को मान परोपकारिणी ने सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धि निकालने के इरादे को स्थगित कर दिया। आर्यसमाज में अब यह दृढ़ हो गया कि सत्यार्थप्रकाश में चाहे जितनी भी अशुद्धियाँ हों वे निकलेंगी नहीं।

इन्साफ

हमारे पास दो सत्यार्थप्रकाश हैं, एक प्रथमावृत्ति और दूसरा द्वितीयावृत्ति। प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के खंडन में कभी भी किसी आर्यसमाजी ने दो अक्षर नहीं लिखे, यह सत्यार्थप्रकाश सनातनधर्मियों को भी खंडन करने का बहुत कम अवकाश देता है। द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश एक ऐसा सत्यार्थप्रकाश है कि जिसके ऊपर हमेशा आर्यसमाजी लेख निकालते हैं कि इसका संशोधन होना चाहिये और बार बार के संशोधन से परोपकारिणी ने भी घुटने डाल दिये कि अब सत्यार्थप्रकाश हमारा किया शुद्ध नहीं होता, इन दोनों को पब्लिक के आगे रख हम इन्साफ चाहते हैं कि इन दो सत्यार्थप्रकाशों में अच्छा कौन ? और आर्यसमाज प्रयाग ने द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश लिख कर जो अशुद्ध होने की आवाज प्रत्येक आर्यसमाजी के दिल में बिठलाई तो अब आप यह बतलावें कि दूसरी आवृत्ति में द्वितीय भूमिका के अनुसार सुधार किया या बिल्कुल बिगाड़ डाला ?

दूसरा पहलू

जब परोपकारिणी सभा ने सत्यार्थप्रकाश के संशोधन पर चुप्पी साध ली और जब प्रत्येक शास्त्रार्थ में आर्यसमाज की हार एवं सनातनधर्म का विजय होने लगा तथा जब शास्त्रार्थ करनेवाले आर्यसमाजी लज्जित होने लगे तब आर्यसमाजी विद्वानों ने सत्यार्थप्रकाश में लिखे हुये आर्यसमाज के सिद्धान्त सर्वथा ही वेदविरुद्ध हैं इसको दिखलाने के लिये अपना पहलू बदला। लाला मुन्शीराम के ज्येष्ठ पुत्र हरिश्चन्द्र जी जब गुरुकुल से पढ़ कर निकले तब उन्होंने घोषणा की कि मैं दयानन्द जी के ५१ स्वमन्तव्यामन्तव्यों को नहीं मानता। उसी वर्ष लाला मुन्शीराम के छोटे पुत्र इन्द्र भी स्नातक होकर निकले थे, इन्होंने लिखा कि वेदों में विज्ञान नहीं है। आर्यसमाजियों ने इस पर नाक भौं चढ़ाई। और बात सच ही है, वह यों है कि ब्राह्मण विभाग में विज्ञान है उसको आर्यसमाज प्रयाग द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में वेद नहीं मानती और जिस मंत्रभाग को वेद मानती है उसमें विज्ञान ही कम है। देखो वेदप्रकाश फर्वरी सन् १९१८।

जिस वर्ष हरिश्चन्द्र और इन्द्र स्नातक होकर गुरुकुल से निकले उसी वर्ष चन्द्रमणि विद्यालंकार भी निकले, इन्होंने एक पुस्तक बनाई उसका नाम रक्खा

महर्षि पतंजलि और तत्कालीन महाभारत

इस पुस्तक में यह लिखा कि महर्षि पतंजलि के जमाने में अवतार और मूर्तिपूजा तथा मृतक श्राद्ध माने जाते थे एवं अश्वमेधादिक यज्ञें भी होती थीं। इस पुस्तक की समालोचना वेदप्रकाश नवम्बर सन् १९१५ से आरंभ हुई है। जब श्रद्धानन्द जी को इस पुस्तक के छपने का दिल्ली में पता लगा तब आप गुरुकुल कांगड़ी पहुँचे, पुस्तक पढ़ी, मालूम हुआ कि यह पुस्तक तो आर्यसमाज के लिये बहुत ही बुरी है। चन्द्रमणि विद्यालंकार को छपाई और कुछ मुनाफा देकर स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उस पुस्तक को फूंक डाला।

संस्कारप्रकाश

स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि में इन्द्र, यम, वरुण, चन्द्रमा, जल, वायु, ओखली, मूसल, श्री (लक्ष्मी), भद्रकाली (दुर्गा), ब्रह्मपति, वास्तुपति (मकान का

देवता), विश्वेदेव, दिवाचरभूत, नक्तंचारीभूत, सर्वात्मभूत ईश्वर और पितर इनको नित्य लवण छोड़ कर शेष अन्न का भोग लगाना लिखा है। आर्यसमाजी चालबाजी के पेंचों से इन भोगों से बचा करते थे किन्तु रामगोपाल विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी ने संस्कारविधि पर "संस्कारप्रकाश" नामक ग्रंथ लिखकर इन भोगों को स्पष्ट कर दिया और इसके साथ ही साथ छुरा (उस्तरा) ईश्वर की दाढ़ है, छुरे को नमस्ते करना एवं छुरे से यह प्रार्थना करना 'तू इस बच्चे को मत मार', 'जूते से रक्षा की प्रार्थना करना' तथा 'चन्द्रमा को अर्घ देना' ये भी उत्तम रीति से स्पष्ट कर दिये, इनकी स्पष्टता से अब आर्यसमाजियों की चलाई हुई चालाकियाँ काम नहीं देतीं।

वेदामृत

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने श्रीपाद दामोदर सातवलेकर औंध जिला सतारा से वैदिक विषयों पर एक ग्रन्थ लिखने की प्रार्थना की तब उन्होंने "वेदामृत" नाम का एक ग्रन्थ तैयार किया और वह ग्रन्थ सन् १९२४ में प्रतिनिधि सभा पंजाब ने मुद्रित करवाया, जब छप कर पुस्तकें आगईं तो एक पुस्तक सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा पंजाब का कोई उपदेशक खरीद लेगया, उसके दफ़्तर में पहुँचते ही उपदेशकों ने पुस्तक को देखा, देखते ही जितने उपदेशक वहां मौजूद थे सभी एक एक पुस्तक खरीद लेगये। इस पुस्तक में अवतार, मूर्तिपूजा, श्राद्ध आदि का मंडन कर द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश पर गर्दनतोड़ बुखार चढ़ा दिया। जब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को इस ग्रन्थ के भीतरी आशय का भाव मालूम हुआ तब इसके मुद्रित करवाने वाली आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इस ग्रन्थ को फूंक डाला। कहो कैसी रही ? द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश ने कैसे नये नये रंग खिलाये ?

यम और पितर

आर्यसमाज मृतक श्राद्ध का खण्डन करता है किन्तु पं० मंगलदेव तडित्कान्त जी वेदालंकार गुरुकुल कांगड़ी ने एक "यम और पितर" नामक पुस्तक लिख कर "श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के प्रेस औंध जिला सतारा में छपवाई है, बड़ी अच्छी खोज की है, इसमें चारों वेदों के पन्द्रह सौ मंत्र लिखे हैं और इन सब मंत्रों से मृतक श्राद्ध की सिद्धि होती है। यह पुस्तक सन् १९३० में छपी है और सम्मति के लिये दो सौ पुस्तकें आर्य पंडितों के पास भेजी गईं, आज सन् १९३६ है आज तक

एक विद्वान् की भी सम्मति औंध में नहीं पहुँची। कारण इसका यह है कि मंत्र मृतक श्राद्ध की ऐसी पुष्टि करते हैं कि जिस बात को एक मंत्र कहता है उसी को किसी किसी स्थल में चार और पांच मंत्र कहते हैं, मृतक श्राद्ध से भिन्न विषय में ये मंत्र लग नहीं सकते, यदि मृतक श्राद्ध की सिद्धि कोई आर्यपंडित लिख दे तो आर्यसमाज उसको नौकरी से 'गच्छ गच्छ' कर दे इस भय से किसी ने सम्मति नहीं दी।

निरुक्त और अथर्व वेद

पं० राजाराम जी शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर ने निरुक्त और अथर्व वेद पर हिन्दी भाष्य लिखे हैं इन ग्रन्थों के पढ़ने से प्रत्येक मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि सनातनधर्म के समस्त सिद्धान्त वैदिक हैं और आर्यसमाज का एक भी सिद्धान्त ऐसा नहीं कि वेद जिसका मंडन करदे। वेद जो कुछ भी कहता है द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश के बिल्कुल विरुद्ध कहता है।

चालाकी

इस सत्यार्थप्रकाश की संसार में जैसी छीछालेदड़ हुई है ऐसी दुर्दशा तो किसी मूर्ख के लिखे हुये ग्रन्थ की भी नहीं हुई। जिस धर्म के आधारभूत ग्रन्थ की यह हालत है उसका गौरव गान करना या पद पद पर मिथ्या सिद्ध होनेवाले इस ग्रन्थ को सत्यार्थप्रकाश कहना यह दिन दोपहरी मनुष्यों की आंख में धूल झोकना है और धार्मिक लोग इस प्रकार की अनुचित काररवाई को पाप बतलाते हैं। आर्यसमाज ने सत्यार्थप्रकाश के ऊपर आ जानेवाले आक्षेप और सत्यार्थप्रकाश के सिद्धान्त को मिथ्या सिद्ध कर देनेवाले निरुक्तादि ग्रन्थों का कोई जवाब नहीं दिया। जान बचाने के लिये पहिले यह आवाज उठाई कि सत्यार्थप्रकाश से और हमसे कोई सम्बन्ध नहीं, सत्यार्थप्रकाश हमारा धर्मपुस्तक नहीं और हम उसको मानते भी नहीं यह बात लाहौर प्रतिनिधि सभा के मुलाजिम पं० बुद्धदेव स्नातक ने और पं० रामचन्द्र देहलवी ने सन् १९२९ के शास्त्रार्थ नीमच में और इसके बाद शहर हैदराबाद दक्षिण में भी कही थी किन्तु सनातनधर्मी पंडित आजकल प्रायः शास्त्रार्थ के विषय ऐसे चुनते हैं कि जिनमें आर्यसमाज को सत्यार्थप्रकाश मानना ही पड़ता है जैसे किसी सतातनधर्मी ने शास्त्रार्थ का विषय चुना कि "दयानन्द मत वेद विरोधी है" विरोध सिद्ध करने के लिये सनातनधर्मी दयानन्द जी के ग्रन्थ 'आर्याभि-

विनय', 'संस्कार विधि', 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' और 'सत्यार्थप्रकाश' को लेंगे। उस समय यदि आर्यसमाजी यह कहते हैं कि हम इन ग्रन्थों को नहीं मानते तो बिना शास्त्रार्थ किये पब्लिक के सामने शास्त्रार्थ में हारे जाते हैं, लाचारी से इनको स्वामी दयानन्द जी के सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थों को सत्य सिद्ध करना पड़ता है अब यह मन्तव्य कहां रहा कि हम सत्यार्थप्रकाश को नहीं मानते ?

'हम सत्यार्थप्रकाश को नहीं मानते' यह बार बार कहने पर भी सत्यार्थप्रकाश का मण्डन करना पड़ता है अतएव इन्होंने अब एक दूसरी चालाकी से काम लिया है। ये बार बार कहते और लिखते हैं कि हम स्वामी दयानन्द जी के लेख को छोड़ कर अन्य किसी भी आर्यसमाजी के भाष्य या भाषा टीका अथवा लेख को नहीं मानते। यद्यपि यह कमजोरी का मन्तव्य है किन्तु 'मरता क्या न करता' फिर करें भी क्या ? जब बीसियों आर्यसमाजी सत्यार्थप्रकाश को अवैदिक सिद्ध करने के लिये तैयार हो गये तब आर्यसमाज क्या करे, यदि यह वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन और अंगों की शरण जाती है तब तो ये सब ग्रंथ टका सा जवाब दे देते हैं कि सत्यार्थप्रकाश को वैदिक बनाने की शक्ति हमारे पास नहीं, निराधार होकर आर्यसमाजी दयानन्द के लेख को प्रमाण और अन्य आर्यसमाजियों के लेखों को अप्रमाणिक मान अपना गला बचा लें तो कौन बुराई है।

सत्यार्थप्रकाश को वैदिक सिद्ध करने के लिये आज तक न कोई मनुष्य उत्पन्न हुआ और न आगे को हो सकता है, आर्यसमाजी भी यह जानते हैं कि आर्यसमाज प्रयाग का बनाया हुआ द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश ईसाई सांचे में ढला है तो भी वे इज्जत बचाने के लिये और बाज बाज पैसा कमाने के लिये वैदिक कहते हैं यह अन्धेर कब तक चलेगा।

संसार की हानि

यह ग्रन्थ संसार की भलाई नहीं कर सकता वरन् परस्पर में द्वेष-फूट बोकर अशान्ति फैलाने का मसाला है, इसमें जो दूसरे मजहबों का खंडन किया गया है वह इस प्रकार का भयंकर है कि उसको पढ़ने या सुनने पर वह मनुष्य सावधान रह नहीं सकता, उसको क्रोध आये बिना रहता नहीं कि जिसके मजहब का खण्डन सुनाया जावे। पाश्चात्य सिद्धान्तों को यह वैदिक बनाता है इसलिये सनातनधर्मी इस ग्रन्थ को अपना शत्रु समझते हैं। किसी किसी स्थल में यह आर्यसमाज के सिद्धान्तों को कुचल सनातनधर्म की पुष्टि करता है ऐसे स्थलों में आर्यसमाज

इसको घृणा की दृष्टि से देखता है अतएव यह किसी का भी भला नहीं। आर्यसमाज प्रयाग ने जो इसको लिखा है वह धर्मनिर्णय के अभिप्राय से नहीं लिखा वरन् भारतवर्ष के प्रत्येक घर में लड़ाई, झगड़ा, फूट, द्वेष फैलने के अभिप्राय से लिखा है इस वास्ते जहां यह जाता है वहां ही द्वेष पैदा कर देता है।

उद्योग

हमारी समझ में यह आया है कि अब सनातनधर्मियों को सत्यार्थप्रकाश के ऊपर कुछ लिखने का उद्योग करना व्यर्थ है। सत्य की छानबीन करनेवाले आर्यसमाजियों ने इस द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश को और इसके ऊपर से जारी होनेवाले मत आर्यसमाज को निर्जीव बना दिया है एवं भविष्यकाल में भी धर्मनिर्णय की इच्छावाले आर्यसमाजी अनेक लेख लिख कर इस सत्यार्थप्रकाश की पोल खोलते हुये इसको हमेशा के लिये कबर में दफ़न किये बिना न रहेंगे किन्तु यह दशा कुछ काल में होगी। वर्तमान समय में विकृत मस्तिष्क, वेदशास्त्र के ज्ञानशून्य आर्यसमाज के प्रचार से टके कमा कर पेट भरनेवाले कुछ गुण्डे ऐसा भयंकर उपद्रव मचा रहे हैं कि इस उपद्रव से क्रोधित होकर शान्त सनातनधर्मी यही चाहने लगते हैं कि यह आर्यसमाज मत जल्दी से जल्दी भारतवर्ष से बिदा हो। इस निन्दनीय घटना, खण्डन और गालीगलौज का भव्य फोटू मुनीश्वरानन्द ने रायबरेली के सनातनधर्मियों के सामने रख दिया जिससे रायबरेली का प्रत्येक सनातनधर्मी आर्यसमाज रायबरेली से बिगड़ गया, फिर क्या था इधर से भी विद्वानों ने आर्यसमाज का खंडन किया और मूर्खों ने गालियां देनी शुरू कीं, शहर में एकदम अशान्ति फैल गई। नमूना के लिये हमने आर्यसमाज रायबरेली को पब्लिक के आगे रक्खा है। जहां जहां ये मूर्ख आर्यसमाजी पहुँचते हैं वहां वहां ही परस्पर में विद्वेष हो शान्ति भंग हो जाती है, उस समय सनातनधर्मी यह चाहते हैं कि हमको एक ऐसा ग्रन्थ मिले जिसमें गालियां और कटु शब्द तो हों नहीं किन्तु आर्यसमाज का ऐसा सुगम खण्डन हो कि जिसके सहारे से हम सनातनधर्मी जनता के आगे आर्यसमाज का सच्चा फोटू रख दें। इसी विषय में हमारे पास पं० रामेश्वरदत्त जी एवं डाक्टर चन्द्रिकाप्रसाद तथा पं० कामताप्रसाद जी ओझा प्रभृति कई महानुभावों के पत्र आये कि आप अपनी लेखनी से सत्यार्थप्रकाश का समस्त खण्डन लिखें। इन पत्रों पर बाध्य होकर हम आज सत्यार्थप्रकाश का खंडन लिखने को तैयार हुये हैं और आरंभ से लेकर एकादश समुल्लास की समाप्ति तक इस प्रकार का विवेचन लिखेंगे जो साधारण मनुष्यों की समझ में भी भली प्रकार आ सके।

पूर्वार्द्ध समाप्तम्

आर्यसमाज की अन्त्येष्टि

उत्तरार्द्ध

त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिंगात्मकं हर चराचर विश्वरूपिन् ॥१॥

प्रथम समुल्लास

ईश्वर के नामों की पहिली लिस्ट

सत्यार्थप्रकाश[1] पृष्ठ ७ पंक्ति २४ में लिखा है कि (शन्नो मित्रः सं व०) इस मन्त्र में मित्रादि नाम हैं, वे भी परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति-प्रार्थना-उपासना श्रेष्ठ ही की की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण-कर्म-स्वभाव और सत्य सत्य व्यवहारों में सब से अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं।

विवेचन—मित्रादि नाम ईश्वर के हैं यह लिख दिया किन्तु इसमें प्रमाण नहीं दिया, आगे को भी कोई प्रमाण नहीं दे सकता। मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र और बृहस्पति ये नाम देवताओं के हैं इसके लिये "वेदसिद्धान्त परिचय" का "देवता" शीर्षक लेख पढ़ लें। उरुक्रम विष्णु का विशेषण है, विष्णु नाम ईश्वर का है और वह वामनादि अवतार धारण करता है देखो "वेद सिद्धान्त परिचय" का "ईश्वर स्वरूप" शीर्षक लेख।

---

१ यह ग्रन्थ सम्वत् १९८२ के छपे अठारहवीं आवृत्ति सत्यार्थप्रकाश के ऊपर से बना है। इसी के पृष्ठ पंक्तियाँ ठीक मिलेंगी। सत्यार्थप्रकाश की अन्य आवृत्तियों में पाठ (लेख) आगे पीछे मिलेगा। द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज प्रयाग ने किसी ऐसे मनुष्य से बनवाया है कि जिसने वेद-शास्त्र पढ़े ही नहीं।

प्रत्यक्ष ब्रह्म

स० प्र० पृ० ९ पं० १९–(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) (वृह वृहि वृद्धौ) इन धातुओं से ब्रह्म शब्द सिद्ध होता है। जो सब के ऊपर विराजमान, सब से बड़ा, अनन्त बलयुक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं। हे परमेश्वर! (त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि) आपही अन्तर्यामिरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो।

वि०—कोई भी पदार्थ हो प्रत्यक्ष तब कहा जावेगा जबकि उसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होने लगे। 'अन्तर्यामीरूप से ब्रह्म प्रत्यक्ष है' यह लेख सोलह आने असत्य, अतएव विद्वानों के मानने के लायक नहीं। ठीक अभिप्राय इसका यह है कि प्रथम ब्रह्म से आकाश पैदा हुआ, जैसे मिट्टी से उत्पन्न हुआ घट मिट्टी है और लोहे से उत्पन्न हुआ कुठार लोहा ही है उसी प्रकार साक्षात् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ आकाश भी ब्रह्म है। फिर आकाश से वायु उत्पन्न हुआ, जैसे सुवर्ण से उत्पन्न हुये कटक-कुण्डलादि सुवर्ण ही हैं और जल से उत्पन्न हुआ बर्फ जल ही है इसी प्रकार आकाश ब्रह्म से उत्पन्न हुआ वायु भी ब्रह्म है। साक्षात् ब्रह्म ईश्वर और इससे उत्पन्न हुआ आकाश ब्रह्म ये दोनों ही ब्रह्म इन्द्रियातीत थे किसी भी इन्द्रिय से इनका ज्ञान नहीं होता था किन्तु आकाश ब्रह्म से पैदा हुआ जो यह तृतीय ब्रह्म वायु है यह त्वचा का प्रत्यक्ष हो गया अर्थात् चमड़े से इसका ज्ञान होने लगा इसलिये वायु को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा, देखो "वेदसिद्धान्त परिचय" का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" शीर्षक लेख।

प्रणव महिमा

स० प्र० पृ० १ पं० १० और स० प्र० पृ० ३ पं० २–(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिल कर (ओम्) समुदाय हुआ है, इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं। जैसे अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्य शास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है। ओ३म् खम्ब्रह्म यजु० अ० ४० मं०

१७। देखिये वेदों में ऐसे ऐसे प्रकरणों में ओम् आदि परमेश्वर के नाम हैं। ओमित्येतदक्षर मुद्गीथ मुपासीत्–छान्दोग्य उपनिषत् मं० १। ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्–माण्डूक्य मं० १। सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳ सि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्–कठोपनिषद् वल्ली २ मं० १५।

वि०—[क] प्रणव ईश्वर का नाम है इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। [ख] 'ॐ खम्ब्रह्म' इस श्रुति में ईश्वर का अर्थ 'ॐ' नहीं है वरन् यहाँ "स्वीकार" अर्थ का वाचक ॐ है देखो 'वेदसिद्धान्त परिचय" का 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' शीर्षक लेख। [ग] "ओमित्येतदक्षर" इत्यादि श्रुतियों को यहाँ वेद लिखा है, सत्यार्थ-प्रकाश के तृतीय समुल्लास "ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषय" में उन उपनिषदों को जिनके ये वाक्य हैं वेद से भिन्न और वेद के अनुकूल होने से प्रमाण माना है। कहीं पर कुछ और कहीं पर कुछ लिख देना यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक का प्रमाद है। [घ] एक प्रणव में से ईश्वर के अनेक नाम निकलते हैं जैसे कि "अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि" यह कल्पना मिथ्या है और आर्यसमाज के माने हुये लंगड़े वेद में इसकी गन्ध तक नहीं। सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में यह भी लिख दिया कि "जैसे गुड़ गुड़ कहने से मुँह मीठा नहीं होता वैसे ही ईश्वर का नाम लेने से पाप नहीं छूटता", जो ईश्वर के नाम लेने से पाप का छूटना नहीं मानते उनके यहाँ प्रणव का महत्व क्या होगा इसका कुछ विवेचन नहीं लिखा और सनातनधर्म जो प्रणव के जप से पापनिवृत्ति एवं कल्याण का होना मानता है उसकी दृष्टि में भी यहाँ प्रणव का कोई महत्व नहीं दिखलाया गया। [ङ] प्रणव का महत्व यह है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

मुण्डक० द्वितीय मुण्डक खं० २ श्रु० ४

प्रणव जो ॐ है उसका धनुष बनाओ और आत्मा जो जीव है उसका तीर बनाओ, ब्रह्म को लक्ष्य बना कर सावधान हो बेध करो तब जीव ब्रह्म बन जायगा।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

गीता अ० ८ श्लो० १३

ॐ यह जो एकाक्षर ब्रह्म है इसका मुख से उच्चारण कर भगवान् कृष्ण कहते हैं कि मेरा स्मरण करता हुआ जो शरीर को त्याग कर प्रयाण करता है वह परमगति को जाता है।

देवजाति

स० प्र० पृ० १ पं० १५ में लिखा है कि (प्रश्न) परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं ? ब्रह्माण्ड-पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यक शास्त्र में शुण्ठ्यादि औषधियों के भी ये नाम हैं वा नहीं ? (उत्तर) हैं परन्तु परमात्मा के भी हैं।

वि०—यहां पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इन्द्रादि देवताओं को मान लिया किन्तु चतुर्थ समुल्लास में विद्वान मनुष्यों को देव मान कर इन्द्रादिक देवताओं को उड़ा दिया। कहीं पर कुछ और कहीं पर कुछ लिखना यह उन्माद है! जो अद्वैत पक्ष को मानते हैं उनके मत में विराट् नाम ईश्वर का है किन्तु वह आर्यसमाज जो द्वैत को माननेवाली है उसके मत में विराट् नाम ईश्वर का कैसे हो सकता है? विराट् तो पैदा होनेवाली चीज है। वेद में लिखा है कि "ततो विराडजायत यजु० अ० ३१ मं० ५" विराट् नाम ब्रह्माण्ड का है। अब तो आर्यसमाज का ईश्वर पैदा होने लगा, आज पैदा हुआ है तो किसी दिन अवश्य ही मरेगा।

ईश्वर के नामों की दूसरी लिस्ट

स० प्र० पृ० ३ पं० १३ तथा स० प्र० पृ० ३ पं० १७—

एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

मनु० अ० १२ श्लो० १२३

वि०—आर्यसमाजियों की न वेद में प्रवृत्ति है और न धर्मशास्त्र में योग्यता। इस स्थल में अग्नि का वर्णन है और 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' होने से मनु, प्रजापति, इन्द्र, प्राण आदि के साथ में अग्नि का अभेद बतलाया है। इसी को नीचे लिखी श्रुति कहती है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमाग्निमाहु-
रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एकं सद्विप्रा वहुधा वद-
न्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋग्वेद मंड० १ अ० २३ सू० १६४ मं.४६

निरुक्त—इममेवाग्निं महान्तमात्मानमेकमात्मानं वहुधा मेधाविनो वदन्तीन्द्रं मित्रं वरुणमग्निं दिव्यं च गरुत्मन्तम् । दिव्यो दिविजो गरुत्मान्गरणवान्गुर्वात्मा महात्मेति वा । यस्तु सूक्तं भजते यस्मै हविर्निरुप्यतेऽयमेव सोऽग्निर्निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी एतेन नामधेयेन भजेते ।

मन्त्रार्थ—अग्नि को इन्द्र-मित्र-वरुण कहते हैं और वही दिव्य सुपर्ण गरुत्मान है, एक सत् सर्वत्र सत्तावाले को विद्वान् अनेक प्रकार से कहते हैं अग्नि, यम, मातरिश्वा कहते हैं ।

निरुक्तार्थ—इसी अग्नि महान् आत्मा एक आत्मा को अनेक प्रकार से बुद्धिमान् कहते हैं इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, गरुत्मान् । दिव्य द्यौ में प्रकट होनेवाला, गरुत्मान् स्तुतिवाला वा बड़ा आत्मा, महान् आत्मा, पर जो अग्निसूक्तभागी है आग्नेय सूक्तों में और जिसके लिये हवि दी जाती है वह यह पृथिवी स्थानी ही अग्नि है । यह ऊपर के ज्योति विद्युत् और सूर्य इस नाम से अप्रधानता औपचारिक अर्थ को ही सेवन करता है ।

मंत्र के मूल में लिखा है कि एक को ही विप्र सैकड़ों प्रकार का कहते हैं, सैकड़ों प्रकार का कहना और बात है और उसके ये नाम हैं यह दूसरी बात है, फिर निरुक्तकार यास्कमुनि भौतिक एवं अन्तरिक्ष इस जड़ अग्नि तथा इन्द्रादि चैतन्य देवता और आत्मा इन सब का अभेद मानता है, इस श्रुति से "एतमग्निम्" यह श्लोक बना है, यास्क के विरुद्ध इनको ईश्वर का नाम बतलाना यह आर्यसमाज की नास्तिकता का फोटू है ।

ईश्वर के नामों की तीसरी लिस्ट

स० प्र० पृ० ३ पं० १६ और स० प्र० पृ० ४ पंक्ति २३—

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिव इति ।

कैवल्योपनिषद्[1]

१ तृतीय समुल्लास में आर्यसमाज ने दश उपनिषदें माना है कैवल्योपनिषद् को प्रमाणकोटि से बाहर कर दिया किन्तु यहां प्रमाण में ले लिया ।

वि—"स ब्रह्मा" यह श्रुति द्वितीयावृत्ति सत्यार्थप्रकाश से लेकर अठारहवीं आवृत्ति तक बराबर अशुद्ध छप रही है, लाखों आर्यसमाजियों में से किसी एक ने भी कभी सत्यार्थप्रकाश को नहीं पढ़ा, पढ़ते तो अशुद्धि न रहती। सच तो यह है कि लाखों आर्यसमाजियों में दो ही चार मनुष्य ऐसे होंगे जो सत्यार्थप्रकाश पढ़ उसके समझने की शक्ति रखते हैं। शुद्ध श्रुति इस प्रकार है—

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥

कैवल्य० खं० १ श्रु० ८

यह तो इनके पाठज्ञान की दशा है अब अर्थ का फोटू देखिये—श्रुति तो कहती है कि 'स ब्रह्मा' वही ब्रह्मा है और उसका अर्थ लिखा जाता है कि "सब जगत् के बनाने से ब्रह्मा" ऐसे कल्पित झूठे अर्थों के लिखनेवाले आर्यसमाज को हम धन्यवाद न दें तो फिर क्या करें?

अभिप्राय श्रुति का यह है कि जब यह संसार बन गया और इस संसार में ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अक्षर, परम, स्वराट् (ब्रह्म) विष्णु, प्राण, काल, अग्नि, चन्द्रमा आदि भिन्न भिन्न पदार्थ दिखलाई देने लगे तब यह शंका पैदा हुई कि सृष्टि के आरंभ में तो "नासदासीत्" इस सूक्त में वेद ने बतलाया था कि एक ही ब्रह्म है और ब्रह्म को छोड़ कर अन्य दूसरा पदार्थ है ही नहीं किन्तु अब ये ब्रह्मा आदि अनेक सत्तायें कहां से आ गईं? इस शंका पर श्रुति जवाब देती है कि वही निराकार ब्रह्म ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर है, वही परम है, वही स्वराट् है, वही विष्णु है, वही प्राण है, वही काल (टाइम) है, वही अग्नि है और वही चन्द्रमा है अर्थात् उसी अरूप ईश्वर ने ही ब्रह्मा आदि के रूप धारण किये हैं इसका भेद न जानते हुये इस श्रुति में ईश्वर के नाम बतलाते हैं इस अन्धेर और अयोग्यता का भी कुछ ठिकाना है!

ब्रह्मा के अर्थ करने में सत्यार्थप्रकाश का लेखक कुछ का कुछ लिख देता है इसको 'आर्यसमाज के मुख्य लक्ष्य' में देख लें।

ईश्वर के नामों की चतुर्थ लिस्ट

स० प्र० पृ० ३ पं० २१—भूरसि भूमिरस्वदितिरसि०।

वि०—इस मंत्र से ईश्वर का नाम भूमि और पृथिवी बतलाया गया है किन्तु यहां पर ईश्वर का नाम भूमि नहीं वरन् पृथ्वी (जमीन) का नाम भूमि है समझिये,

"भूरसि" इस मंत्र से पहिले यह मंत्र आता है—

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्।
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि॥

यजु० अ० १३ मं० १७

वाष्परूप समुद्र के जलों के उपरिभाग में प्रजापति तेरा स्थापन करे, तू व्यंजन वाली, विस्तारवाली, प्रजापति से स्थापित की हुई विस्तार कर अर्थात् विस्तारवाली हो, तू पृथ्वी है इसलिये विस्तार को प्राप्त हो। इस मंत्र में स्पष्ट रूप से पृथ्वी का वर्णन है, इसके आगे का मंत्र यह है कि—

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि
विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह
पृथिवीं माहिꣳसीः॥

यजुः अ० १३ मं० १८

तू सुखों के देनेवाली है और तू भूमि पृथिवी है अर्थात् भूम्यभिमानी देवता है और तू ही अदिति देवमाता है एवं तेरे ऊपर विश्व की स्थिति है, हे पृथिव्यधिष्ठातृ-देव! विश्व समस्त प्राणियों के समूह धारण करनेवाली तू पृथ्वी को नियतरूप से कर अर्थात् पृथ्वी को मजबूत कर, पृथिवी की हिंसा मत कर।

इन दो मंत्रों में पृथ्वी का वर्णन है ईश्वर का नहीं, फिर कोई कैसे मान लेगा कि "भूरसि" इस मंत्र में ईश्वर का नाम भूमि और पृथ्वी लिखा है। इस प्रकार के मनमाने अर्थ कर धर्मनिर्णय करना नहीं है वरन् वेदों के असली भाव को संसार से उड़ाना है।

इन्द्र नाम ईश्वर का

स० प्र० पृ० ४ पं० १–"इन्द्रो मह्ना रोदसी०"।

वि०—इस मंत्र से स्वामी जी निराकार ईश्वर का नाम इन्द्र लिखते हैं किन्तु यह बात है ग़लत। इसका अर्थ यह है "इन्द्र अपने बल के महत्व से द्युलोक और पृथ्वीलोक को पूर्ण करता हुआ राहु से ढके हुये सूर्य को प्रकाशित करता है इसी

इन्द्र में समस्त भुवन ठहरे हैं और इन्द्र में अभिषूयमाण सोम नियमित होते हैं"। इन्द्र देवता है और उसमें ईश्वर की विशेष शक्ति है। अद्वैत पक्ष में उसको ईश्वर माना है तथा वह यज्ञों में आकर सोम पान करता है, इन सब घटनाओं को दबा कर निराकार ईश्वर का नाम इन्द्र बताना तो छल है।

ईश्वर का नाम प्राण

म० प्र० पृ० ४ पं० ४–"प्राणाय नमः" इत्यादि।

वि०—प्राण शब्द का अर्थ जानने के लिये वैदिक सृष्टिक्रम जानना आवश्यकीय है। ऋग्वेद के "नासदासीत् मंड० १० अ० ११ सू० १२९ मं० १" में यह कहा है कि ब्रह्म एक रूपरहित सत्ता है, जब वह अपनी शक्ति से इस संसार को उत्पन्न करने के लिये तैयार होता है तब वही संसार बन जाता है, उसी से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी ये पंचमहाभूत बनते हैं। ये पंचमहाभूत मिल कर विराट् को रचते हैं। ईश्वर की ज्ञानशक्ति से उत्पन्न होने वाली पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रिय तथा पंच प्राण, मन-बुद्धि विराट् में धंस कर चैतन्यशक्ति का प्रादुर्भाव करते हैं, ये सब सत्तायें ब्रह्म से बनती हुई विराट् को बनाती हैं अतएव विराट् भी ब्रह्म है। वेद, योग और पुराण में विराट् ब्रह्म की उपासना का विधान है। विराट् में जितने पदार्थ हैं उनमें से किसी में हीन और किसी में अधिक ईश्वर शक्ति विद्यमान है, जिसमें ईश्वरशक्ति अधिक है वह अधिक पूजनीय है इसी भाव को लेकर श्रीमद्भगवद्गीता के ग्यारहवें अध्याय की विभूतियां कही गई हैं। विराट् में रहनेवाले समस्त पदार्थ ब्रह्म से उत्पन्न हुये हैं, अतएव वे ब्रह्म हैं।

ब्रह्म होने और सुखदुःख से पृथक् रहने पर भी यह जीव सुख दुःख का भोक्ता है, इसी प्रकार विराट् में रहनेवाले समस्त पदार्थ ब्रह्म होने पर भी अपने अपने व्यापार को करते रहते हैं। जब सब पदार्थ ब्रह्म हैं तब प्राण भी ब्रह्म है किन्तु यह रचा गया है, ईश्वर की भांति स्वतः सिद्ध नहीं है। प्राण के रचे जाने में वेद लिखता है कि—

स प्राणमसृजत्।

प्रश्नोपनि० प्रश्न ६ श्रु० ४

उस ईश्वर ने प्राण को रचा। इसी कंठस्थ वायु (प्राण) को "प्राणाय नमः अथर्व० कां० ११ अनु० २ सू० ४ मं० १" इस मंत्र में ब्रह्म कह कर प्रणाम करना लिखा।

सत्यार्थप्रकाश के सम्पादक वैदिक सिद्धान्त पर कभी ध्यान नहीं देते, हमेशा उनका यही ध्यान रहता है कि आर्यसमाजी पढ़ते हैं नहीं इसलिये वे वेदों से कुछ भी निर्णय न कर हमारे पंजे में फंसे रहेंगे, इसी भाव को लेकर वे ईश्वर का नाम प्राण बतलाते हैं।

बतला दें; कोई घोड़े का अर्थ टोपी कर दे तो किया करे, जाननेवाले जान ही जाते हैं कि घोड़े का अर्थ टोपी नहीं होता, जो वेदों को पढ़ते हैं वे जानते हैं कि प्राण नाम ईश्वर का नहीं है।

"प्राणाय नमः" यह श्रुति अथर्ववेद कां० ११ अनु० २ सू० ४ मं० १ की है इसी के अर्थ में ईश्वर का नाम प्राण बतलाया गया है किन्तु इससे आगे दूसरे मंत्र "नमस्ते प्राणक्रन्दाय" में प्राण का ध्वनि करना, गर्जना और बिजलीरूप से चमकना तथा सातवें मन्त्र "नमस्तेस्त्वायते" में प्राण का आना-जाना और ठहरना लिखा है, ये सब व्यापार ईश्वर में नहीं होते, निराकार ईश्वर न कभी ध्वनि करता है, न गर्जता है और न बिजलीरूप से चमकता है एवं न ही वह कहीं से आता है तथा न कहीं को जाता है और न किसी विशेष रूप से कहीं ठहरता है फिर 'प्राण' का अर्थ 'ईश्वर' कैसे होगा ? प्राण का अर्थ ईश्वर करना तो ऐसे उड़ा जैसे कि गधे के शिर से सींग।

हिरण्यगर्भ नाम ईश्वर का

स. प्र. पृ. ६ पं. २६—"ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे" "यो हिरण्यानां सूर्यादिनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः" जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवास स्थान है इससे उस परमेश्वर का नाम हिरण्यगर्भ है। इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

यजुः अ. १३ मं. ४

इत्यादि स्थलों में 'हिरण्यगर्भ' से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है।

वि०—हिरण्यगर्भ निःसन्देह ईश्वर का नाम है और इसका बतलानेवाला "हिरण्यगर्भः" यही मन्त्र है। इस मंत्र में ईश्वर का शरीर धारण करना लिखा है। इसको ऐसे समझें कि 'जातः-भूतस्य-एकः-पतिः-आसीत्' वह प्रकट होकर के भूत-

समूह का अकेला ही पति हुआ, फिर हिरण्यगर्भ से केवल निराकार ईश्वर का ग्रहण कैसे होगा ? एक दिन मवानाकलां जिला मेरठ में ईश्वर के साकार निराकार पर शास्त्रार्थ हो रहा था, सनातनधर्म की तरफ से पं० गंगाविष्णु जी और आर्यसमाज की तरफ से पं० तुलसीराम जी स्वामी शास्त्रार्थ करते थे। गंगाविष्णु जी ने ईश्वर के शरीर धारण करने पर 'हिरण्यगर्भः' मंत्र पेश किया और अपने अर्थ की पुष्टि में महीधर तथा उव्वट ये दो भाष्य सुनाये, पं० तुलसीराम जी स्वामी ने कहा कि महीधर उव्वट इन दोनों भाष्यों को हम प्रमाण नहीं मानते हां इस मंत्र का सायण भाष्य यदि ईश्वर का शरीर धारण करना लिखदे तो हम मान लेंगे। यह मंत्र ऋग्वेद में भी आया है और ऋग्वेद का सायण भाष्य वहां पर मौजूद था, ऋग्वेद की पुस्तक से "हिरण्यगर्भः" मंत्र और उसका सायण भाष्य सुना दिया, सायण भाष्य में ईश्वर का शरीर धारण करना लिखा था, पं० तुलसीराम स्वामी शास्त्रार्थ हार गये। 'हिरण्यगर्भः' में ईश्वर का शरीर धारण करना लिखा है इससे अधिक हम और क्या प्रमाण दें ?

आर्यसमाज ने शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी और शौनकी इतनी ही शाखाओं को वेद माना है इनसे 'हिरण्यगर्भ' तक ईश्वर के नाम बतलाये हैं फिर नारायण नाम को मनु से सिद्ध कर शेष नामों को अपनी जबर्दस्ती से ईश्वर के नाम बनाये हैं।

ईश्वर का नाम नारायण

स. प्र. पृ. १३ पं. १–"आपो नारा इति प्रोक्ता० इत्यादि"।

वि०—इस श्लोक का गलत अर्थ कर निराकार ईश्वर का अर्थ नारायण बतलाया। मनु जी लिखते हैं कि—

सोऽभिध्यायशरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीजमवासृजत्॥

मनु० अ० १ श्लो० ८

नाना प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा करते हुये उस परमात्मा ने जल उत्पन्न हो ऐसा ध्यान करके अपने शरीर से आदि में जल ही को उत्पन्न किया और उस जल में अपना शक्तिरूप बीज स्थापित किया। इसके आगे मनु जी लिखते हैं कि–

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

मनु० अ० १ श्लो० १०

आप जो जल हैं उनको नारा कहते हैं, नारा का अर्थ क्या 'नरात्संजाता नाराः' नर से उत्पन्न होने के कारण जलों का नाम नारा है। फिर अगाड़ी लिखा कि "आपो वै नरसूनवः" आप जो जल हैं वे ईश्वर के लड़के हैं, पहिले जब ईश्वर ब्रह्मरूप में था तब ये जल उसका आश्रय थे, इसीलिये उस नर ईश्वर का नाम नारायण है।

पहिले तो "सोऽभिध्याय०" यह श्लोक सत्यार्थप्रकाश में नहीं लिखा इसके लिखने से 'जल ईश्वर के शरीर से पैदा हुये' सत्यार्थप्रकाश के पाठक यह जान जाते, फिर सत्यार्थप्रकाश में जलों के नारा होने का कारण नहीं बतलाया और फिर सत्यार्थप्रकाश में लिखे हुये "आपो नारा" इस श्लोक के टुकड़े "आपो वै नरसूनवः" इसका अर्थ नहीं लिखा, इसका अर्थ भाषा में यह है कि "आप जो जल हैं वे नर ईश्वर की सन्तति हैं"। समझ लिया कि जो हम "आपो वै नरसूनवः" इसका भाषा में अर्थ लिख देंगे तो पाठकों को यह मालूम हो जायगा कि "जल ईश्वर की सन्तान हैं" सन्तान साकार के ही होती है पाठक समझ लेंगे कि यहां ईश्वर साकार है ऐसा न होने पावे इसलिये "आपो वै नरसूनवः" इसका भाषा अर्थ गायब कर दिया, उसकी चोरी कर ली और अपनी इस चोरी तथा सीनाजोरी से निराकार ईश्वर का नारायण नाम है यह आर्यसमाजियों को समझा दिया किंतु जो मनु को देखते हैं वे जान जाते हैं कि मनु ने ईश्वर के शरीर से जलों की पैदायश लिखी और इसी वजह से जलों का नाम नारा पड़ा। इस नारा शब्द के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये मनु जी ने "आपो वै नरसूनवः" इस पद से जलों को ईश्वर का लड़का बतलाया। जिसके लड़के जल हैं उस ईश्वर को संसार का कोई मनुष्य निराकार कह सकता है? कदापि नहीं। नारायण शब्द से साकार ईश्वर का ग्रहण होता है निराकार का नहीं। जब तक ऐसी ऐसी गप्पें न हांके तब तक आर्यसमाज में प्रतिष्ठा ही नहीं होती।

ईश्वर के नामों की लिस्ट

ईश्वर के सौ नाम सिद्ध करने के लिये मंत्रों के फ़र्जी अर्थ किये और जब ऐसे भी वेदमंत्र न मिले तब बिना प्रमाण के ही लिख चले कि सूर्य, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु तथा जल, श्रीलक्ष्मी और सरस्वती आदि ईश्वर के नाम हैं, वेद का धोका देकर झूठ लिख देना यह पाप है। यह पाप किया क्यों गया, यह इस भरोसे पर किया गया कि आर्यसमाजी लिखते पढ़ते तो हैं ही नहीं जो हम लिख देंगे उसको वे सच मान लेंगे, हमारा दल बढ़ जायगा।

नाम विभाग

ईश्वर के जो सौ नाम लिखे हैं उनका हम यहां विभाग दिखलाते हैं। देखिये—अग्नि, इन्द्र, कालाग्नि, मातरिश्वा, अदिति, आदित्य, मित्र, वरुण, अर्यमा, वृहस्पति, सूर्य, सविता, देव, कुवेर, वसु, चन्द्र, धर्मराज, यम ये इतने नाम तो देवताओं के हैं। सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र शनैश्चर, राहु, केतु ये नाम ग्रहों के हैं और 'खम्' यह नाम आकाश का है। मनु यह नाम श्राद्धदेव, स्वायंभू आदि मनुओं का वाचक है। प्राण यह नाम हृदय में रहनेवाले वायु का है। विराट् यह नाम ब्रह्माण्ड या संसार का है। विश्व यह नाम संसार का है। जल यह नाम पानी तत्व का है। आकाश नाम तत्व का है जिसको गगन कहते हैं। अन्न यह नाम खाद्य पदार्थ का है। होता यह नाम हवन करनेवाले का है। बन्धु शब्द भाई का वाचक है। पिता नाम बाप का है। पितामह नाम बाबा का, प्रपितामह नाम परबाबा का है। माता जननी को कहते हैं। आचार्य पढ़ानेवाले विद्वान् का नाम है। गुरु आचार्य को ही कहते हैं। ज्ञान जानने का नाम है। सगुण प्रकृति का वाचक है और प्रकृति का आश्रय लेनेवाले साकार ईश्वर को भी सगुण कहते हैं। काल नाम टाइम का है। आप्त सच बोलनेवाले विद्वान् का नाम है। श्री, लक्ष्मी, सरस्वती ये तीन साकार ईश्वर की शक्तियां हैं। ॐ, प्रजापति, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव, स्वराट्, गरुत्मान, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, प्राज्ञ, परमेश्वर, आत्मा, परमात्मा, नारायण, यज्ञ, अज, अनादि, निराकार, गणपति, विश्वेश्वर, साकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, निर्गुण, सगुण, अन्तर्यामी, भगवान्, पुरुष, विश्वंभर, शेष, शंकर, महादेव, स्वयम्भू, कदि ये नाम साकार ईश्वर के हैं और शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द ये साकार ईश्वर के विशेषण हैं। ॐ, ब्रह्म, प्रजापति, अक्षर, आत्मा, परमात्मा, अत्ता, अज, अनादि, निराकार, निरंजन, कूटस्थ, सर्वशक्तिमान्, अद्वैत, निर्गुण, अन्तर्यामी, पुरुष, शेष, शिव इन नामों से निराकार का ग्रहण होता है और अनन्त, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द, नित्य ये निराकार के विशेषण हैं।

सम्पादक ने जो ईश्वर के नाम की नकली सर्वथा असत्य व्युत्पत्तियां और समास लिखे हैं उनको देख कर संस्कृत जाननेवालों की आंखों से आंसू गिर जाते हैं, ऐसे भ्रष्ट व्युत्पत्ति और समास करनेवाला सत्यार्थप्रकाश का लेखक और फिर उसको विद्वान् कहा जावे यह धर्म में गदर मचाना है। जैसी व्युत्पत्तियां सत्यार्थप्रकाश में हैं वैसी ही व्युत्पत्ति और समास हम लिखते हैं, पढ़िये—"गृह्णाति धान्यादिकं

गृहम्" ईश्वर सब धान्यादि को अपने वश में किये है इससे उस ईश्वर का नाम घर है, "कायासु तिष्ठतीति कायस्थः" ईश्वर जड़ चैतन्य सभी के शरीर में व्याप्त है इससे ईश्वर का नाम कायस्थ है, "दययाआनन्दयतीति दयानन्दः" ईश्वर अपनी दया से सबको आनन्द देता है इससे उस परमात्मा का नाम दयानन्द है, "सत्यस्य अर्थस्य प्रकाशो भवति यस्मात्स सत्यार्थप्रकाशः" ईश्वर वेद के द्वारा सत्य अर्थ को प्रकाशित करता है इससे उसका नाम सत्यार्थप्रकाश है, "आर्याणां समाजः समूहो यत्र स आर्य-समाजः" सर्वत्र व्यापक होने से श्रेष्ठ पुरुषों का समुदाय ईश्वर में ही रहता है इससे उसका नाम आर्यसमाज है। इस प्रकार के कल्पित समास बिना लिखे पढ़े मनुष्यों को भ्रम में डालने के लिये होते हैं।

मंगलाचरण का सर्वथा निषेध

स. प्र. पृ. २० पं. ८–(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त में मंगलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी न लिखा, न किया ? (उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मंगल करेगा तो उसके ग्रन्थ में आदि, मध्य तथा अन्त के बीच में जो लेख होगा वह अमंगल ही रहेगा।

वि०—मंगलाचरण का कतई निषेध कर दिया, निषेध में कोई शास्त्रीय वचन भी नहीं दिया अपने को ईश्वर समझ हुक्म दे दिया कि मंगलाचरण नहीं करना, मंगलाचरण विधायक सांख्य वचन का अर्थ इस साहस पर बदला कि मूर्ख आर्य-समाजी क्या समझेंगे कि अर्थ बदल दिया इतना करते हुये भी सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ में "शन्नो मित्रः" इन दो श्रुतियों से मंगलाचरण किया था उसको भी भुला दिया। सत्यार्थप्रकाश के आरंभ में किये हुये मंगलाचरण को बीसवें पृष्ठ में भूल जाना यह नशे का प्रभाव है। मंगलाचरण अवश्य ही होना चाहिये इसके ऊपर सांख्य लिखता है कि—

मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति

सांख्य० अ० ५ सू० १

मंगलाचरण में शिष्टाचार है, श्रेष्ठ लोग सर्वदा से मंगलाचरण करते आते हैं और मंगलाचरण का शुभ फल भी देखा जाता है तथा मंगलाचरण में श्रुति की आज्ञा

भी है। मंगलाचरण में जब वेद की आज्ञा है तब वेद के माननेवाले सत्यार्थप्रकाश के सम्पादक के निषेध करने पर कैसे छोड़ देंगे।

मंगलाचरण का विधान

स. प्र. पृ. २० पं. २१—आधुनिक ग्रन्थों में श्रीगणेशाय नमः, सीतारामाभ्यां नमः, राधाकृष्णाभ्यां नमः, श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः, हनुमते नमः, दुर्गायै नमः, वटुकाय नमः, भैरवाय नमः, शिवाय नमः, सरस्वत्यै नमः, नारायणाय नमः इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते हैं क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता और आर्षग्रन्थों में ओ३म् तथा अथ शब्द तो देखने में आता है।

वि०—यदि श्रीगणेशाय नमः इत्यादि मंगलाचरण वेदविरुद्ध है तो आप ने सत्यार्थप्रकाश के आरंभ में 'सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः' यह मंगलाचरण क्यों किया? वेदों में तो इस प्रकार का मंगलाचरण मौजूद है और वह यह है—

नमः शम्भवाय च मयो भवाय च
नमः शंकराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च।

यजु० अ० १६ मं० ४१

संसार को सुख जिससे होता है यद्वा संसार सुखप्रद जिसको है और लौकिक सुख के देनेवाले, मोक्ष सुखदाता, कल्याणरूप, भक्तों को निष्पाप करनेवाले शिव को प्रणाम है।

आप कहते हैं कि ऋषियों ने 'अथ' शब्द से मंगलाचरण किया इसमें हानि क्या? मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है—आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तु निर्देशात्मक। अमरकोशादि ग्रन्थों में अशीर्वादात्मक मंगल, वेद और पुराणों में नमस्कारात्मक, दर्शनों में वस्तु निर्देशात्मक मंगल है। मंगलाचरण सब ठीक हैं किन्तु सत्यार्थप्रकाश के लेखक अपने दिमाग की कमजोरी से घबराये हुये हैं उन्हें मंगलाचरण का पता नहीं लगता। बिना लिखे पढ़े ग्रन्थ बनावेंगे तो यही नतीजा होगा!

इति प्रथम समुल्लासः

अथ द्वितीय समुल्लास

शिक्षा

स. प्र. पृ. २२ पं. १०–धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

वि०—यह शिक्षा मजे की है। किस वेद के किस मंत्र से यह विलक्षण शिक्षा निकाली गई ? सत्यार्थप्रकाश के रचयिता अपनी भूमिका में लिखते हैं कि "अब आर्यावर्तियों के विषय में विशेष कर ग्याहरवें समुल्लास तक लिखा है, इन समुल्लासों में जो कि सत्य मत प्रकाशित किया है वह वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य है" किन्तु यहां तो आप वेद-शास्त्र को छोड़ कर झूठी गप्पें लिखने लगे ! गर्भ में वीर्य आते ही स्त्री कहने लगे कि वीर्य देवता ! अब तू मेरा लड़का बनेगा इसलिये "सत्यं वद, धर्मं चर" यह शिक्षा तो प्रत्यक्ष के भी विरुद्ध है किन्तु आर्यसमाजियों को इसका आचरण करना ही चाहिये जिससे कि धर्म का पुतला शान्ति पाठ करता हुआ लड़का पैदा हो।

जब आर्यसमाजी उपदेशक इस शिक्षा पर हारते हैं और हार कर जब बिना जल की मछली की भांति तड़फते हैं तब कहने लगते हैं कि प्रह्लाद को भी तो गर्भ में ही ज्ञान हुआ था।

इसका उत्तर यह है कि प्रह्लाद को उसकी माता ने किसी प्रकार की शिक्षा नहीं दी, आठ नौ महीने का जब गर्भ हो गया तब देवर्षि नारद की कृपा से गर्भ में तत्वज्ञान समझने की शक्ति आई ऐसी ऐसी विशेष घटनाओं को आर्यसमाजी पुराणों का गपोड़ा कहते हैं इस झूठे गपोड़े को आर्यसमाज अपना वेद मान कर भी आज शिक्षा की सत्यता सिद्ध नहीं कर सकती क्योंकि प्रह्लाद की माता ने प्रह्लाद को शिक्षा नहीं दी और यहां माता द्वारा शिक्षा प्राप्त होनी लिखी इस प्रश्न पर आर्यसमाजियों के चेहरे फीके पड़ जाते हैं और वे शास्त्रार्थ हार कर पब्लिक की दृष्टि में मूर्ख बनते हैं।

गर्भाधान

स. प्र. पृ. २३ पं. १६–जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजो-

दर्शन के पांचवें दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है, उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे बारह दिन उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़ के बाकी दश रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है।

वि०—मनुजी ने आरंभ की चार रात्रियां और फिर चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा ये पर्वतिथियां तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि गर्भाधान में निषेध की हैं और इतनी ही रात्रियों का निषेध स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि में लिखा है किन्तु फलित ज्योतिष् के मान लेने का कलंक न लगे इस भय से सत्यार्थप्रकाशकर्ता ने "पर्ववर्जम्० मनु० अ० ३ श्लोक ४५" छोड़ दिया, इस प्रकार की चालाकी करना आर्यसमाज के मत में मोक्षदाता धर्म समझा गया है। 'ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि में स्त्रीप्रसंग क्यों नहीं करना' इस प्रश्न पर यही उत्तर हो सकता है कि इन तिथियों में गर्भाधान करने से दुष्ट सन्तान होगी। गर्भाधान के द्वारा टाइम का दुष्ट प्रभाव पैदा हुए बच्चे में आ जाना यही तो फलित ज्योतिष् है।

दुग्धपान

स. प्र. पृ. २३ पं. १०—प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे पश्चात् धायी पिलाया करे।

वि०—यहां पर वेदविधि के लेख लिखे जाते हैं या यूरोप के चालू व्यवहार को वैदिकधर्म बनाया जाता है? वेद तो इसके विरुद्ध कहता है और उस विरोध में स्वामी दयानन्द जी साक्षी हैं। संस्कारविधि के जातकर्म संस्कार में स्वामीजी ने लिखा है कि "प्रसूता स्त्री को प्रसन्न करके पश्चात् स्त्री के दोनों स्तन किंचित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर पोंछ के

ओं इमꣳस्तनमूर्ज्जस्वन्तं धयापां
प्रपीनमग्ने शरीरस्य मध्ये।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्व-
न्त्समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व॥

यजु० अ०.१७। ८७

उपरोक्त मंत्र को पढ़ के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवे, इसके पश्चात्

ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभू-
र्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि
सरस्वती तामिह धातवे कः॥

ऋ० १ सू० १६४ मं० ४६

इस मंत्र को पढ़ के वाम स्तन बालक के मुख में देवे" ।

इन वेदमंत्रों में माता का दूध पिलाना लिखा है, धायी का नहीं। यह भी खूब तमाशा है कि संस्कारविधि में तो बच्चे को माता दूध पिलावे और सत्यार्थप्रकाश में धायी ! मंत्रात्मक और ब्राह्मणात्मक वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास, चरक, सुश्रुत वैद्यक के ग्रन्थों में भी धायी का दूध पिलाना नहीं लिखा तो भी सत्यार्थप्रकाश में धायी के दूध पिलाने को लिख इसको वैदिक सिद्धान्त बतलाया। धायी का दूध पिलाना यह सत्यार्थप्रकाश का लेख आम स्त्रियों के लिये है इसलिये धायी भी अपने बच्चे को छः रोज ही दूध पिलावेगी, जब वह सात दिन के बाद अपने ही बच्चे को दूध नहीं पिलावेगी तब वह दूसरे के बच्चे को दूध कैसे पिलावेगी ? अतएव संसार में तो कोई औरत धायी है ही नहीं, ऐसी धायियां आर्यसमाज को पैदा करनी होंगी।

प्रसूता स्थान परिवर्तन

स. प्र. पृ. २३ पं. १४–जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान में जहां का वायु शुद्ध हो वहां रक्खे।

वि०—यह हवा खिलाने की नई रीति नहीं मालूम किस वेद में से निकाली गई ! अंग्रेजों की स्त्रियों में यह व्यवहार है, भारतीय स्त्रियों को यूरोप की लेडी बनाने के लिये सत्यार्थप्रकाश लिखा जा रहा है। प्रसूता स्त्री दश दिन तक प्रसूत स्थान से अन्यत्र नहीं जा सकती इसकी साक्षी में हम स्वामी दयानन्द जी का लेख पेश करते हैं। संस्कारविधि जातकर्म प्रकरण में स्वामी जी ने लिखा है कि "प्रसूता स्त्री के शिर की ओर एक कलश जल से पूर्ण भर के दश रात्रि तक वहीं धर रक्खे तथा प्रसूता स्त्री प्रसूत स्थान में दश दिन तक रहे" इन दो परस्पर विरोधी लेखों में कौन

सत्य माना जाय इसके ऊपर भी कभी आर्यसमाज ने विचार किया है ? विचार ही किया तो वैदिकधर्म कहां रहा ?

स्त्री का योनिसंकोचन और पुरुष का वीर्यस्तम्भन

स. प्र. पृ. २३ पं. २४–स्त्री योनिसंकोचन, शोधन और पुरुष वीर्य का स्तंभन करे पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे ।

वि०—यह किस वेदमन्त्र का अनुवाद है ? यदि सत्यार्थप्रकाश योनिसंकोचन की कोई औषधि लिख देता तो विषयीसंसार का अपूर्व उपकार हो जाता, औषधि न लिखने के कारण स्त्रियों के मन की मन ही में रह गई । क्या ये गप्पें ही वैदिक धर्म कहलाता है ?

कुचेष्टा की रोक

स. प्र. पृ. २४ पं. ११–उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गंध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें ।

वि०—इस प्रकार की शिक्षा माता दे यह अयोग्य है, ऐसी शिक्षा देते समय माता को किसी प्रकार की लज्जा तो नहीं होगी ? आर्यसमाज का दावा है कि हमारा सत्यार्थप्रकाश वेदानुकूल है, हम पूछते हैं कि यह किस वेदमन्त्र का अनुवाद है ? क्या कोई समाजी इस पर लेखनी उठाने का परिश्रम करेगा ?

भूत प्रेत

स. प्र. पृ. २४ पं. २०–जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो ।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समंतत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥

मनु. अ. ५ । ६५

अर्थ—जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठानेवालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है और जब उस शरीर का दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था, जितने उत्पन्न हों वर्तमान में आके न रहें वे भूतस्थ होने से उनका नाम भूत है।

वि०—आज भूत-प्रेतादि को मिथ्या कहा जाता है वह दिन जल्दी आनेवाला है कि जिस दिन आर्यसमाज वेदों को मिथ्या कहेगी। जिस प्रकार मनुष्ययोनि में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अनेक जातियां हैं इसी प्रकार देवजाति में विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत ये जातियां हैं।

अथर्ववेद कां० ८ अ० ३ में जो छठा सूक्त है वह भूतसूक्त है और इसमें २६ मंत्र हैं। २६ मंत्रों में भूतों का वर्णन है एवं इस सूक्त में सरसों (सर्षप) के द्वारा भूत भगाने का प्रयत्न है। इसी सूक्त का एक मंत्र हम यहां लिखते हैं पाठक पढ़ने की कृपा करें।

येषां पश्चात्प्रपदानिः पुरः पार्ष्णी पुरो मुखा।
खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मट्मटाः
कुम्भमुष्का अयाशवः। तानस्या ब्रह्मणस्पते
प्रतीबोधेन नाशय ॥१५॥

"जिन राक्षस आदि के पश्चिम की ओर पैर की अंगुलियें होती हैं और सामने एड़ियें होती हैं एवं मुख पूर्व की ओर होता है ऐसे राक्षसों को और धान्य शोधन देश-खल में होनेवाले राक्षसों को, मुण्डरहित राक्षसों को, मुट्मुट् शब्द करनेवाले राक्षसों को, घड़े के समान अंडकोशोंवाले राक्षसों को और वायु के समान शीघ्रगामी राक्षसों को हे वेदराशि के स्वामिन् वृहस्पति नामक देव! आप सरसों के बल से नष्ट करिये"। यहां वेद ने भूतजाति को राक्षसजाति का भेद माना है इसलिये भूत को राक्षस लिखा है। जब वेद में भूत का वर्णन है तब भूत का खण्डन करना वेद का खण्डन करना है। इसी सूक्त पर कौशिकसूत्र है, इस सूत्र में यह बतलाया गया है कि हवन में भी सर्षप का प्रयोग करना। वेद में सर्षप का प्रयोग केवल भूत निवारणार्थ आता है अन्य किसी कार्य के लिये सर्षप का प्रयोग कहा ही नहीं। "शंडा-

मर्क०" पारस्कर गृह्यसूत्रोक्त दो मंत्रों से संस्कारविधि में जो हवन करवाया है इसका मतलब भूत भगाना है देखिये संस्कारविधि जातकर्म—"प्रसूता स्त्री प्रसूत स्थान में दश दिन तक रहे वहां नित्य सायं और प्रातःकाल सन्धिबेला में निम्नलिखित दो मंत्रों से भात और सरसों मिला के दश दिन तक बराबर आहुतियां देवे"। ईश्वरकृत वेद को मानता कौन है अब तो सत्यार्थप्रकाश ही वेद बनाया जा रहा है।

सत्यार्थप्रकाशकर्ता ने लिखा है कि "जब शरीर का दाह हो जाय, जिस आदमी का शरीर फूका गया वह भूत हो जाता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था" यहां पर चालाकी से काम लिया गया है, बकरी का बच्चा दूध पीने के लिये ऊंटनी के नीचे छोड़ कर ऊंटनी का दूध निकालना चाहा है! यहां पर जो भूत शब्द है यह काल (टाइम) का वाचक है, भूत-भविष्य-वर्तमान ये तीन शब्द समय के बोधक हैं, भूत शब्द को समय से हटा कर गुजरे हुये पुरुष में लगा देना यह संसार की आंख में धूल झोंकना है। यदि गुजरनेवाला भूत होता है तो इस भाव को लेकर कहीं आर्यसमाजी यह भूत शब्द आपके आगे न लगा दें, नहीं तो आपका नाम 'सत्यार्थ-प्रकाशकर्ताभूत' हो जावेगा। आपका कथन है कि "ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है" क्या यह सिद्धान्त आपको किसी पुस्तक में मिला? वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन और अंग, पुराण तथा इतिहास आदि में यह सिद्धान्त कहीं नहीं लिखा, फिर आप ब्रह्मादिकों का झूठा नाम क्यों लेते हैं? क्या जबर्दस्ती से किसी का झूठा नाम लिख देना यह चालबाजी नहीं है? ऐसा ब्रह्मादिक मानते थे इसका सबूत न आपने लिखा है और न भविष्य में कोई आर्यसमाजी इस पर लेखनी उठा सकता है, किसी में दम हो तो लेखनी उठा कर सिद्ध करे। आप सच्ची बात लिखा करें कि "ऐसा मैं मानता हूँ"। फिर आपने "गुरोः प्रेतस्य" श्लोक लिख दाह देने वाले और प्रेत के साथ जानेवालों की दश दिन के पश्चात् शुद्धि बतलाई, इसका अर्थ करते हुये "पितृमेधं समाचरन्" इस इतने पद के अर्थ को क्यों छिपा गये? 'शिष्य (पुत्र) मरे हुये गुरु (पिता) का पितृमेध यज्ञ करता हुआ मृतक शरीर को ले जानेवालों के साथ साथ दश दिन में शुद्ध होता है' यह अर्थ है, इस अर्थ में 'पितृ-मेधं समाचरन्' इतने पद के अर्थ को छिपा कर नहीं मालूम आपने किस अद्भुत विज्ञान का जन्म दे दिया?

'गुरोः प्रेतस्य' इस मनु के श्लोक को लेकर आपने मृतक को अग्नि देनेवाले और मुर्दे को कंधे पर लाद कर ले चलनेवालों की जो दश रात्रि के पश्चात् शुद्धि बतलाई है उसको मानता कौन है? आपके शिष्य तो मृतक को फूक घर में जरा सा

हवन कर उसी दिन शुद्ध हो जाते हैं और आपकी इस आज्ञा को मदकचियों की बेहूदा हरकत समझते हैं, बोलिये अब आपका संसार में कितना मान है? और मजहबों के लोग तो बैठे ही रहेंगे किन्तु आर्यसमाजी आपकी एक एक बात को मिथ्या सिद्ध कर संसार को दिखा देंगे, आर्यसमाजियों के चित्त में आपका यह भयंकर गौरव है। हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि जब सत्यार्थप्रकाशकर्ता ने मनु के प्रमाण को लेकर मुर्दे की चिता में आग देनेवाले और मुर्दे को ले जानेवाले की दश दिन में शुद्धि बतलाई है एवं तुम उसको पागलों का लेख समझ कर पहिले ही दिन शद्धि कर लेते हो तो फिर तुम सत्यार्थप्रकाश को सत्य और वैदिक कैसे कहते हो? क्या तुम्हारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम सत्यार्थप्रकाश को सत्य बतला उसको झूठा कहनेवाले मनुष्य के साथ लड़ कर देश में द्रोह और अशान्ति तथा द्वेष पैदा करें?

जूते-लात

स. प्र. पृ. २५ पं. २२–तब वह धूर्त बोलता है मैं हनुमान हूँ लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट। मैं देवी वा भैरव हूँ लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गा, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र। जब वे कहते हैं कि जो चाहो सो लो, तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है परन्तु जो कोई बुद्धिमान उनकी भेट पांच जूता दंडा वा चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं।

वि०—भूत का खण्डन करते करते जब संपादक आगे बढ़े तब हनुमान, देवी और भैरव उदाहरण में रक्खे। क्या विलक्षण समझ है जिस अनोखी समझ के आधार पर दुर्गा, हनुमान तथा भैरव को भूत माना गया। हनुमान, दुर्गा, भैरव आदि का विवेचन तो हम एकादश समुल्लास में करेंगे, यहां तो इतना विचार किया जाता है कि सम्पादक का कथन क्या है प्रेम का साकार रूप है। जब सम्पादक बोलते हैं तो ऐसा बोलते हैं मानों वाणी से फूल टपक रहे हैं। इस प्रेम पर ध्यान दीजिये कि "जब उनके पांच जूता दंडा वा चपेटा लातें मारे" ऐसे शब्द आर्यसमाज के लिये यदि कोई कहे तो आर्यसमाज पहले तो उसके लिये भयंकर से भयंकर रूप धारण करती है और फिर इस मामले को गवर्नमेंट तक ले जावे तो कोई आश्चर्य नहीं। सत्यार्थप्रकाश के सम्पादक

ने ऐसे ऐसे कटु शब्द लिख कर जो हिन्दुओं में द्वेष फैलाया है इसकी जिम्मेदार आर्य-समाज है।

फलित ज्योतिष् मिथ्या

स. प्र. पृ. २६ पं. ९–(प्रश्न) तो क्या ज्योतिष् शास्त्र झूठा है? (उत्तर) नहीं, जो उसमें अंक-बीज-रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।

वि०—यह है अध्ययन का मजा, अध्ययन करते करते सम्पादक की बुद्धि उस उच्च श्रेणी पर पहुँची कि जिस स्थान पर पहुँचने से ईश्वर की बुद्धि जवाब दे रही है। सम्पादक सत्यार्थप्रकाश को इस प्रणाली से लिख रहे हैं कि जिसमें वेद के भाव आ जावें, आपने जो फलित को झूठा बतलाया यह भी तो वेद का ही आशय होगा? आओ इस विषय में वेद टटोलें और निश्चय करें कि वेद फलित को झूठ कहता है या सत्य?

वेद में ज्येष्ठा नक्षत्र में पैदा होनेवाले बालक के जन्म का फल यह बतलाया है कि वह बालक या तो माता, पिता, बड़े भाई को मारेगा या खुद मर जावेगा। मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुये बालक के विषय में वेद कहता है कि यह बालक वंश के मूल का काटनेवाला होता है इस प्रकार का दुष्ट फल न हो इसलिये वेद ने मूलशान्ति का विधान किया है। इस समस्त विषय को पाठक अवलोकन करें।

ज्येष्ठघ्न्यां[1] जातो विचृतोर्यमस्य
मूलवर्हणात्परिपाह्येनम्[2]।

---

१ तैत्तिरीय ब्राह्मण १।५।२।८ में कहा है कि 'ज्येष्ठं एषां अवधिष्मेति तज्ज्येष्ठघ्नी' इस कुल के बड़े को हम मारें ऐसा विचार रखनेवाला नक्षत्र ज्येष्ठघ्नी (ज्येष्ठा) कहलाता है।

२ मूल नक्षत्र एक ही होता है तथापि अधिष्ठान की ओर ध्यान देकर यहाँ द्विवचन दिया है इसका वर्णन अथर्ववेद के द्वितीयकांड के अष्टम सूक्त के प्रथम मंत्र "उदगातां भगवती विचृतौ नाम तारके" में है यह मूल नक्षत्र भी वंशबेल की मूल को उखाड़नेवाला है इसकी व्युत्पत्ति करते हुये तैत्तिरीय ब्राह्मण ने १।५।२।८ में कहा है कि "मूलं एषां अवृक्षामेति तन्मूलवर्हिणी" इनकी जड़ को काटे यही मूल वर्हिणी (मूल) नक्षत्र का अर्थ है अर्थात् मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुआ पुत्र वंश को नष्ट करता है अतः मूलशान्ति करनी चाहिये।

अत्येनं नेषद्दुरितानि विश्वा
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥

अथर्व० कां० ६ अनु० ११ सू० ११० मं० २

अवस्था में ज्येष्ठ (बड़े) को मारने के प्रभाववाले ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न हुआ पुत्र पिता भाई आदि बड़ों का मारनेवाला होता है और हिंसन प्रभाववाले मूल नक्षत्रों में उत्पन्न हुआ पुत्र सारे कुल का संहार करता है अतः पाप नक्षत्र में उत्पन्न हुये इस कुमार को (हे अग्ने आप) यम के किये हुये मूलोच्छेदरूप कार्य से रक्षित रखिये (अलग रखिये) इसको सौ वर्ष के जीवनरूप दीर्घायु के लिये सब देवता पापों के पार पहुँचावें अर्थात् इसके दुर्लक्षणों को शान्त करें।

व्याघ्रेह्यजनिष्ट वीरो
नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत्पितरं वर्धमानो
मा मातरं प्रमिनीजनित्रीम् ॥

अथर्व० कां० ६ अनु० ११ सू० ११० मं० ३

व्याघ्र के समान क्रूर पाप नक्षत्रवाले दिन में यह कुमार उत्पन्न हुआ है अतएव यह उत्पन्न होते ही शोभानवीर्य से युक्त हो जावे और यह ऐसा पुत्र बड़ा होकर अपने पिता की हिंसा न करे और अपनी माता की भी हिंसा न करे।

ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में जन्म लेनेवाले लड़के के जन्म का फल माता, पिता, भाई और कुल के लिये नाशकारी है, इन सब का नाश न हो इसके लिये मूलशान्ति का विधान है, इस मूलशान्ति में वेद के ये दो मंत्र बोल कर देवताओं से प्रार्थना की जाती है कि आप इस लड़के के जन्म के दुष्टफल को दूर करें।

वेद ज्योतिष के फलित को मानता है और सत्यार्थप्रकाशकर्ता खंडन करते हैं, हम न्याय आर्यसमाजियों के हाथ में देते हैं वे ही बतलावें कि सम्पादक का लेख झूठ है या ईश्वर का बनाया वेद ? तअज्जुब तो यह है कि जिस सत्यार्थप्रकाशकर्ता ने कभी वेद को हाथ में उठा के नहीं देखा उसका लिखा सत्यार्थप्रकाश वेदानुकूल माना जाता है, आर्यसमाजी अपनी ऐसी ऐसी भूलों पर ध्यान दें।

सूर्यादि ग्रह जड़

स. प्र. पृ. २६ पं. ६–क्या ये (ग्रह) चेतन हैं जो क्रोधित हो के दुःख और शान्त हो के सुख दे सकें ?

वि०— सत्यार्थप्रकाशकर्ता की बुद्धि में यह समाया है कि मुझ से अधिक विद्वान संसार में कोई है ही नहीं, इसी ख्याल से ऊल जलूल लेख लिख कर वेदों की हत्या की जा रही है। वेद सूर्यादि ग्रहों को चेतन मानता है, देखिये प्रमाण—

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥

अथर्व० कां० १७ अनु० १ सू० १ मं० २२

उदय होते हुये, उदय होनेवाले और उदित सूर्य को प्रणाम है, तीनों अवस्थाओं में विराट्, स्वराट्, सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है।

अस्तंयते नमोस्तमेष्यते नमोस्तमिताय नमः ।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः

अथर्व० कां० १७ अनु० १ सू० १ मं० २३

अस्त होते हुये, अस्त होनेवाले और अस्त सूर्य को प्रणाम है, तीनों अवस्थाओं में विराट्, स्वराट्, सम्राट् इन तीन नामवाले सूर्य को प्रणाम है।

यदि सूर्य जड़ है तो फिर वेद सूर्य को प्रणाम क्यों करवाता है ? आर्यसमाजी कहते हैं कि हम वेद मानते हैं, यह बात है संसार को धोका देने के लिये, सच पूछो तो आर्यसमाजी वेद का एक अक्षर नहीं मानते, हम दुर्जनतोषन्याय से यह मान लें कि आर्यसमाजी वेद मानते हैं ऐसी दशा में तो आर्यसमाजी जड़पूजक हुये क्योंकि सत्यार्थप्रकाशकर्ता सूर्यादि ग्रहों को जड़ लिखते हैं और वेद की आज्ञा है कि तुम दोनों वक्त सूर्य को प्रणाम करो, इन जड़पूजक आर्यसमाजियों का कौन हक है कि ये मूर्तिपूजा का खंडन करें ! और देखिये—

शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।
शन्नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥

अथर्व० कां० १९ अनु० १ सू० ९ मं० १७

चन्द्रमंडल के संघर्षक जो मंगल आदि ग्रह हैं वे हमें शान्ति देनेवाले होवें। राहु से ग्रस्त आदित्य भी अपने दोष को हटाता हुआ हमको शान्ति प्रदान करनेवाला हो। मारक धूमकेतु का उत्पात भी हमारे लिये शान्तिप्रद हो [धूमकेतु का अनिष्ट-कारकत्व कौशिक ने १३। ३५ में कहा है कि 'अथ यत्रै नद्धूमकेतुः सप्तऋषीन् उपधूपयति तद् अयोगक्षेमाशंकम्' जहां यह धूमकेतु सप्तऋषियों को उपधूपित करता है वह अयोगक्षेम करनेवाला है] तीक्ष्ण तेजवाले रोदक रुद्रदेव भी अपने सन्तापक उपद्रव को शान्त करें"।

वेद ग्रहों से मनुष्यों को शान्ति और कल्याण की प्रार्थना लिखता है क्या जड़ पदार्थ किसी का कल्याण कर सकता है या किसी को शान्ति दे सकता है? फिर आर्य-समाजी ही बतलावें कि वेद की दृष्टि में ये ग्रह जड़ हैं या चेतन? सूर्यादि ग्रहों की कौन कहे वेद तो नक्षत्रों को चैतन्य मान उनसे भी प्रार्थना करनी लिखता है—

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी
चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो
भानुराश्लेषा अयनं मघा मे॥

अथर्व० कां० १६ अनु० १ सू० ७ मं० २

हे अग्ने[1]! कृत्तिका नक्षत्र सुन्दरता से आह्वान करने योग्य हो अर्थात् अपने दोषांश को त्याग कर हमारे अनुकूल हो। हे प्रजापति देव! रोहिणी नक्षत्र भी सुन्दरता से आह्वान करने योग्य हो अर्थात् अपने दोषांश को त्याग कर हमारे अनुकूल हो। हे सोम! मृगशिरा नक्षत्र भी सुन्दरता से आह्वान करने योग्य हो अपने दोषांश को त्याग कर हमारे अनुकूल होवे और मंगलप्रद होवे। रुद्र देवतावाला आर्द्रा नक्षत्र भी सुख देनेवाला हो। अदिति देवतावाला पुनर्वसु नक्षत्र प्रिय सत्य वाणी को प्रदान करनेवाला हो। वृहस्पति देवतावाला पुष्य नक्षत्र कल्याणप्रद हो। सर्प देवतावाला अश्लेषा नक्षत्र दीप्तिप्रद हो, पितृ देवतावाला मघा नक्षत्र मेरा गन्तव्य हो।

पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्त-
श्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।

---

१ कृत्तिका नक्षत्र के अग्निदैवत होने से यहाँ अग्नि को संबोधित किया है इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये।

राधे विशाखे सुहवानुराधा
ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ॥ ३

अर्यमा देवतावाला पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र पुण्यप्रद हो, भगदेवत्य उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पुण्यप्रद हो, सविता देवतावाला हस्त नक्षत्र पुण्यप्रद हो, इन्द्र देवता वाला चित्रा नक्षत्र मंगलप्रद हो, वायु देवतावाला स्वाती नक्षत्र मेरे लिये सुख देने वाला हो, इन्द्र देवतावाला राधा और विशाखा नामवाला एक नक्षत्र सुन्दरता से आह्वान करने योग्य होवे, मित्र देवतावाला अनुराधा नामक नक्षत्र सुखपूर्वक आह्वान करने योग्य हो, सब अरिष्टों का कारण पितृ देवतावाला मूल नक्षत्र मुझे कल्याण देनेवाला हो।

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा
ऊर्जं देव्युत्तरा आवहन्तु ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव
श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वता सुपुष्टिम् ॥४

जल देवतावाला पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र मुझको भक्षण करने योग्य अन्न प्रदान करे, विश्वेदेवा देवतावाला उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हमारे सामने बलप्रद अन्न रस को देवे, ब्रह्मा देवतावाला अभिजित् नक्षत्र मेरे लिये पुण्य देवे, विष्णु देवतावाले श्रवण नक्षत्र और वसु देवतावाले धनिष्ठा नक्षत्र मुझे शोभन पुष्टि देवें अर्थात् मेरे पशु पुत्र आदि को पुष्ट करें।

आ मे महच्छतभिषग्वरीय
आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आरेवती चाश्वयुजौ भगं म
आ मे रयिं भरण्य आवहन्तु ॥ ५

इन्द्र देवतावाला शतभिषक् नक्षत्र मुझे महान् फल देवे, दो प्रकार की प्रोष्ठपदा अर्थात् अजैकपाद देवतावाला पूर्वा भाद्रपद और अहिर्बुध्न्य देवतावाला उत्तरा भाद्रपद हमें शोभन घर प्रदान करे, पूषा देवतावाला रेवती नक्षत्र मुझको सौभाग्य प्रदान करे, अश्विनीकुमार देवतावाला अश्वयुक् नक्षत्र मुझको भाग्य प्रदान करे, यम देवतावाला भरणी नक्षत्र मुझको धन प्रदान करे।

ग्रह और नक्षत्रों से प्रार्थना करनेवाले आर्यसमाजी बतलावें कि ग्रह और नक्षत्र चेतन हैं या जड़ ? और सत्यार्थप्रकाश निर्माता के सत्यार्थप्रकाश लिखने का भाव तो यह है कि ईश्वर बेवकूफ है उसके वेद को मत मानो और मैं बुद्धिमान् हूँ मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश को मानो।

मंत्र–यंत्र

स. प्र. पृ. २७ पं० १२–"कोई कहता है कि जो हम मंत्र पढ़ के डोरा वा यंत्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मंत्र यंत्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते, इनको वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे"।

वि०—यदि मंत्र तंत्र कुछ नहीं करते तो फिर "स्वस्ति न इन्द्रोवृद्धश्रवाः" इत्यादि मंत्रों में देवताओं से कल्याण मांगना व्यर्थ है। मंत्र में महत्व है इस विषय की अधिक पुष्टि की आवश्यकता नहीं क्योंकि वेद "ज्येष्ठघ्न्यां जातः" "व्याघ्रेह्यजनिष्ट" इन दो मंत्रों में मूल शान्ति कहता है। वेदमंत्रों से की हुई मूलशान्ति का फल यह होता है कि लड़के का बाप और लड़के की माता तथा लड़के का ज्येष्ठ भाई एवं मूल में पैदा होनेवाला लड़का ये चारों ही नहीं मरते और न ही वंश का उच्छेदन होता है और जो वेदमंत्रों से मूल शान्ति नहीं करता तो मूल में पैदा होने वाले लड़के का पिता, माता, बड़ा भाई और वह लड़का ये सब मर जाते हैं तथा आगे को वंश नहीं चलता इससे अधिक मंत्रों का प्रभाव और क्या होगा ? किन्तु इन बातों को वही जान सकता है जिसने वेद का अध्ययन किया है और जिस संपादक ने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखा वह मंत्रों का प्रभाव क्या जान सकता है? और आर्यसमाज की संध्या में शिखा बांधने के पश्चात् रक्षा करना लिखा है, जब मंत्र में रक्षा की शक्ति नहीं तब तो तुम्हारी संध्या की रक्षा भी पागलों की बकवाद होगी। नहीं नहीं, सत्यार्थ-प्रकाश के संपादक के दिमाग में यह समाया है कि वेदमंत्रों में कही हुई रक्षा तो झूठी है और मैंने जो संध्या में रक्षा लिखी है वह सोलह आने चौसठ पैसे सत्य है। लेखक समझते हैं कि संध्या में जो रक्षा कर ले और उसको सांप काट खाय तो मरे नहीं, कोई संखिया खिला दे तो जहर चढ़े नहीं, कुये में गिर पड़े तो डूबे नहीं, जलती आग में कूद जाय तो जले नहीं, रेल की पटरी पर लेट जाय तो रेल से कटे नहीं, इसको डाकू घेर लें तो यह रक्षा डाकुओं से बचा लें, रक्षावाले को पुलिस गिरफ्तार कर

सकती नहीं। हमारी समझ में आर्यसमाजी पंडित रक्षा करके शास्त्रार्थ में जाया करें जिससे इनकी हार न हो, मरनेवाला आर्यसमाजी यदि घंटा भर पहिले चोटी में गांठ लगा कर रक्षा कर ले तो फिर वह कभी मरे नहीं। इस अन्याय का भी कहीं ठिकाना है कि अपनी बतलाई रक्षा तो सत्य और वेदों की बतलाई झूठी!

रही बात डोरे की, इस विषय में यजुर्वेद लिखता है कि—

न तद्रक्षांसि न पिशाचाश्चरन्ति
देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ
स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥

यजु० ३४। ५१

जो सुवर्ण को धारण करते हैं, राक्षस और पिशाच उनको अतिक्रमण नहीं कर सकते यह देवगण का प्रथम उत्पन्न तेज है, यह दाक्षायण तेज जो धारण करता है वह देवता और मनुष्यलोक में सर्वत्र ही दीर्घायुलाभ करता है।

यदा बध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ
शतानीकाय सुमनस्य मानाः।
तन्म आबध्नामि शतशारदाया
युष्माञ्जरदष्टिर्यथासम्॥

यजु० ३४। ५२

श्रेष्ठ ब्राह्मण डोरों में यही सुवर्ण बड़ी सेनावाले राजों के बांधते हुये शरीर में धारण करने से सुमन और सैकड़ों वर्ष इसके धारण करने से सुख साधन में समर्थ हुआ जाता है, सम्वत्सरजीवी हूँ इस कारण मैं भी इस सुवर्ण को डोरे में बांधता हूँ।

अब आर्यसमाजी ही विचार करें कि सत्यार्थप्रकाश झूठ लिख रहा है या वेद।

शूद्राधिकार

स.प्र. पृ. २८ पं. ९–"९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों वहां लड़के और लड़-

कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें।

वि०—भाग्यवश इस स्थान में लेखक की बुद्धि ठिकाने पर ही है बात शास्त्रोक्त कही है किन्तु इस लेख को देख कर आर्यसमाजी भयंकर रूप बनाते हैं, क्रोध में आकर कह बैठते हैं कि हम सत्यार्थप्रकाश को मानते कब हैं? सम्पादक के शिर में क्या सुरखाब का पर लगा है एक वे मनुष्य एक हम मनुष्य, वे गलती खा जायँगे तो क्या हम इसके जिम्मेदार होंगे? यह लेख हरगिज नहीं माना जायगा और शूद्रों को डंके की चोट वेद पढ़ाया जायगा देखें कोई हमारा क्या करता है।

तृतीय समुल्लास में सत्यार्थप्रकाश ने गिरगिट की भाँति रंग बदला, इस लेख की मिट्टी पीट दी गई और इसके विरुद्ध लिख दिया गया। क्षण क्षण में जिसके सिद्धांत बदल जायँ ऐसी आर्यसमाज को धार्मिक कहना घोर पाप है।

नमस्ते

स. प्र. पृ. २९ पं. १२—बड़ों को मान्य दे, उनके सामने उठकर जा के उच्चासन पर बैठावे, प्रथम नमस्ते करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे। स. प्र. पृ. ९३ पं. २५—जब जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब तब प्रीतिपूर्वक नमस्ते एक दूसरे से करें।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के निर्माता ने इतना न देखा कि स्वामी दयानन्द जी ने अपने बनाये वेदांगप्रकाश में अभिवादन और प्रत्यभिवादन करने की प्रणाली रक्खी है पाठकों के लिये उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ८। २। ८२" शूद्र के भिन्न प्रत्यभिवादन में वाक्य की टी को प्लुतोदात्त हो। अभिवादन—"अभिवादये देवदत्तोऽहं भोः" प्रत्यभिवादन—"आयुष्मानेधि देवदत्त इ" "अशूद्र इतिकिम्" शूद्र भिन्न में क्यों कहा? अभिवादन—"अभिवादये तुषजकोऽहं भोः" प्रत्यभिवादन—"आयुष्मानेधि तुषजक, यहाँ अभिवादन करने वाला शूद्र है इस कारण टी को प्लुतोदात्त न हुआ। महर्षि कात्यायन वार्तिक कहते हैं "स्त्रियाँ न" स्त्रियों को दिया जो प्रत्यभिवादन उसमें अन्त की टी को प्लुतोदात्त न हो, अभिवादन—"अभिवादये गार्म्यहं भोः" प्रत्यभिवादन—"आयुष्मतीभव गार्गि" यहाँ प्लुतोदात्त नहीं हुआ क्योंकि प्रत्यभिवादन स्त्री का है। फिर दूसरा वार्तिक महर्षि कात्यायन कहते हैं कि "भो राजन्य विशां वेत्ति वक्तव्यम्" अर्थात् क्षत्रिय और

वैश्य को दिया गया जो प्रत्यभिवादन उसकी टी को प्लुतोदात्त विकल्प करके हो, अभिवादन—"अभिवादये इन्द्रवर्माहं भोः" प्रत्यभिवादन—'आयुष्मानेधि इन्द्रवर्म इन्' 'आयुष्मानेधिः इन्द्रवर्मन्'। वैश्य को अभिवादन—"अभिवादये इन्द्रपालितोऽहं भोः" प्रत्यभिवादन—'आयुष्मानेधीन्द्र पालित इ' 'आयुष्मानेधीन्द्र पालित'।

स्वामी दयानन्दजी ने संस्कारविधि में भी अभिवादन और प्रत्यभिवादन प्रणाली ही रक्खी है देखिये—

'अमुक गोत्रोत्पन्नोऽहं भो भवन्तमभिवादये' ऐसा वाक्य बोल के आचार्य का वन्दन करे और आचार्य "आयुष्मान्विद्यावान्भव सौम्य" ऐसा आशीर्वाद दे। वेदारंभ संस्कार।

सत्यार्थप्रकाश निर्माता ने भी तृतीय समुल्लास में अभिवादन करना ही लिखा है जिसको हमने "अभिवादन" नाम शीर्षक लेख लिखकर दिखलाया है किन्तु यहां पर 'नमस्ते' करना लिख दिया यही तो सत्यार्थप्रकाश की वैदिकता है कि कहीं पर कुछ और कहीं पर कुछ।

वेदों में नमस्ते आता है किन्तु केवल ईश्वर को किया गया है मनुष्यों को नहीं। उपनिषद्, नाटक, पुराणों में भी कहीं कहीं भय से या विज्ञान की आधिक्यता से ईश्वर समझ कर किसी किसी को नमस्ते किया गया है किन्तु जिसको नमस्ते किया गया है उसने नमस्ते के जवाब में नमस्ते नहीं की। ईश्वर से भिन्न मनुष्यों के लिये परस्पर में अभिवादन और प्रत्यभिवादन करने की ही आज्ञा धर्मशास्त्र ने दी है। देखिये—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥१२१
अभिवादात्परंविप्रो ज्यायां समभिवादयन्।
असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्तयेत्॥१२२
नामधेयस्य ये केचिदभिवादं न जानते।
तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च॥१२३
भो शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने।
नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभाव ऋषिभिः स्मृतः॥१२४

आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने ।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः ॥१२५

मनु० अ० २

जो मनुष्य नित्य बड़ों को अभिवादन करता है और उनकी सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश, बल चारों बढ़ते हैं। १२१। किस प्रकार अभिवादन करे कि अपने गुरु को अथवा बड़ों को प्रणाम करनेवाला द्विज प्रणाम करने के पीछे मैं अमुक नामवाला हूँ ऐसे अपना नाम कहे। १२२। जिसको प्रणाम करना हो वह संस्कृत न पढ़ने के कारण प्रणाम करनेवाले का किस प्रकार सत्कार करना चाहिये, यह न जानता हो तो ऐसे द्विजों को विद्वान् पुरुष प्रणाम करते समय 'मैं हूँ' इतना भाषा में कहे तथा पूज्या स्त्रियों को प्रणाम करते समय भी ऐसा ही कहे। १२३। प्रणाम करते समय अपने नाम के पीछे भो शब्द बोले क्योंकि भो शब्द सामने के मनुष्यों के नामों का स्वरूप माना जाता है ऐसा ऋषियों ने कहा है जैसे कि "अभिवादये मथुराप्रसाद शर्माऽहं भोः" । १२४। प्रणाम करने पर आशीर्वाद देनेवाला ब्राह्मण प्रणाम करनेवाले ब्राह्मण को "आयुष्मान्भव सौम्य" हे सौम्य! चिरकाल जीवित रह ऐसा कहे और उसके नाम के अन्त में अकार को यदि व्यंजनान्त नाम हो तो उसके पहले अक्षर को प्लुत उच्चारण करे। १२५। जिस मनु के ३९०½ श्लोक सत्यार्थप्रकाश में लिख कर आर्यसमाज को वैदिकधर्म बनाया उसी मनु के अभिवादन और प्रत्यभिवादन प्रणाली बतलानेवाले दो चार श्लोकों को झूठे बना दिया यही तो सत्यार्थप्रकाश के निर्माता का धर्मानुष्ठान है।

इति द्वितीय समुल्लासः

अथ तृतीय समुल्लासः

अध्ययनाध्यापन

स. प्र. पृ. ३२ पं० १५—

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ।

मनु. अ. ७ श्लोक १५२

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो, प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्यकुल में हो, पिता, माता वा अध्यापक अपने लड़का लड़कियों को अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें ।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक जब अपने मन से कोई बनावटी धार्मिक सिद्धान्त बनाते हैं तब संसार को धोका देने के लिये उसकी पुष्टि में किसी वेद या धर्मशास्त्र का कोई वचन लिख देते हैं ऐसा ही यहां किया है । जिन श्लोकों में राजधर्म था उनमें से पठन पाठन विधि एवं शिक्षा के नियम, बालकों के पढ़ने की अवस्था और दो वार यज्ञोपवीत एवं न पढ़ाये जानेवाले बालकों के माता पिता को दण्ड निकाल लिया । श्लोक और उनका अर्थ देखिये—

मध्यन्दिनेऽर्धरात्रे वा विश्रान्तो विगतक्लमः ।
चिन्तयेद्धर्मकामार्थान्सार्धं तैरेक एव वा ॥१५१
परस्परविरुद्धानां तेषां च समुपार्जनम् ।
कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥१५२

मनु० अ० ७

दिन के मध्याह्न में और अर्धरात्रि में जब चित्त में कोई खेद न हो और थकावट न हो उस समय मंत्रियों के साथ में बैठ कर या एकला राजा धर्म, अर्थ, काम इनका चिन्तन करे (इनके ऊपर विचार करे) ॥१५१॥ और ये धर्म, अर्थ, काम जो परस्पर विरुद्ध हैं इनका विरोध दूर करके उनके अर्जन का उपाय, अपने कुल की

कन्याओं का दान अर्थात् किस स्थान में विवाह करना चाहिये और कुमारों का रक्षण अर्थात् विनयाधान और नीति की शिक्षा का प्रबन्ध सोचे ।१५२।

वेद में अनेक प्रमाण ऐसे हैं जो अध्ययन का उपदेश करते हैं उन सब को छोड़कर राजधर्म के आधे श्लोक से जो पठन पाठन विधि निकाली इस द्रविड़ प्राणायाम (चक्करदार जाल बनाने) का प्रयोजन यह है कि ऐसा करने से कन्याओं का वेद पढ़ना सिद्ध हो जाय क्योंकि आज तक कन्याओं के वेद पढ़ने का वेद और धर्मशास्त्र में निषेध है उस निषेध विधायक वेद, धर्मशास्त्र का संसार से काला मुँह हो।

यहाँ पर लड़कों का उपनयन करवा कर गायत्री मंत्र का याद करवाना लिखा और कन्याओं को बिना उपनयन ही गायत्री पढ़ाने की आज्ञा दे दी, लड़कियों पर यह रियायत क्यों ? जब इस पर शास्त्रार्थ होता है तब घबराया हुआ आर्यसमाजी पंडित आनासागर अजमेर की तरफ को मुँह फेर लेता है।

गायत्री का अर्थ

स. प्र. पृ. ३२ पं. २५–"इस मंत्र में जो प्रथम (ओ३म्) है उसका अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है वहीं से जान लेना। अब तीन महा व्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं "भूरिति वै प्राणः–यः प्राणयति चराऽचरं जगत्स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत् के जीवन का आधार प्राण से भी प्रिय और स्वयंभू है उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर का नाम है। "भुवरित्यपानः–यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः" जो सब दुःखों से रहित, जिसके संग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम "भुवः" है। "स्वरिति व्यानः–यो विविधं जगद्व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः" जो नाना विध जगत् में व्यापक होके सबका धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक [प्रपा० ७ अनु० ५] के हैं (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत्स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सब सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) "वर्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अतिश्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्ध स्वरूपः" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला

चेतन ब्रह्म स्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धीः" बुद्धियों को (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ा कर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

वि०—षोडस कलात्मक पुरुष को छोड़ कर सर्वत्र ही "भूर्भुवः स्वः" इन व्याहृतियों के अर्थ क्रम से पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग होते हैं किन्तु सम्पादक ने "भूर्भुवः स्वः" इनके अर्थ किये प्राण, अपान, व्यान। और प्राण, अपान तथा व्यान इन तीनों के अर्थ "ईश्वर" कर दिये एवं फिर लिखते हैं कि "यः प्राणयति चराऽचरं जगत्स भूः स्वयम्भूरिति" "यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः" "यो विविधं जगद्व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः"। आर्यसमाजी चाहे इन मिथ्या व्युत्पत्तियों को वेद ही क्यों न मान लें किन्तु लघुकौमुदी का पढ़ा हुआ भी इन व्युत्पत्तियों को देख कर और संपादक की योग्यता को जान फौरन कह देगा कि व्युत्पत्तियां गलत हैं एवं संपादक में व्युत्पत्ति करने की योग्यता ही नहीं।

इसकी पुष्टि में सत्यार्थप्रकाश निर्माता तैत्तिरीयारण्यक का भी प्रमाण देते हैं कि "भूर्भुवः स्वः" इनका अर्थ तैत्तिरीयारण्यक में प्राण, अपान, व्यान किया है किन्तु लेखक यह नहीं बतलाते कि प्राण, अपान, व्यान का 'ईश्वर' अर्थ कहां लिखा है। तैत्तिरीयोपनिषद् में षोडस कलात्मक पुरुष बनाया है यहां पर तीन के बजाय चार व्याहृति रक्खी हैं और उनके नाम "भूः, भुवः, स्वः" एवं "महः" ये हैं तथा एक एक व्याहृति के चार चार अर्थ किये हैं। "भूः" के पृथिवी, अग्नि, ऋक्, प्राण और "भुवः" के अन्तरिक्ष, वायु, साम, अपान तथा "स्वः" के स्वर्ग, आदित्य, यजु, व्यान एवं "महः" के आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्न नाम बतलाये हैं। "महः" को ब्रह्म कह के शेष पन्द्रह को उस साकार ब्रह्म के अंगी बतलाया है, इस ब्रह्म को समस्त देवता "बलि" देते हैं यह वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद् के पंचम अनुवाक की "भूर्भुवः स्वः" और "महः, इत्यादित्यः" तथा "मह इति ब्रह्म" इन श्रुतियों में लिखा है।

एक एक व्याहृति के चार चार अर्थ किये। सत्यार्थप्रकाश के सम्पादक ने तीन तीन अर्थ छोड़ दिये और एक एक अर्थ "भूः" का "प्राण", "भुवः" का "अपान", "स्वः का "व्यान" ले लिया। चतुर्थ व्याहृति "महः" का जिक्र ही दबा गये! "महः" व्याहृति में प्राण, अपान, व्यान के राजा "अन्न" का वर्णन है अर्थात् प्राण, अपान, व्यान ये तीनों ही अन्न से वृद्धि पाते हैं और यहां पर "प्राण" नाम हृदय के वायु

का और "अपान" गुदा के वायु का तथा "व्यान" समस्त शरीर में रहनेवाले वायु का है किन्तु लेखक ने आर्यसमाजियों को धोका देने के लिये झूठ ही प्राण, अपान, व्यान ईश्वर के नाम लिख दिये और यह प्रमाण न दिया कि प्राण, अपान, व्यान इनका अर्थ "ईश्वर" किस ग्रन्थ में लिखा है। इस तरह की काट छांट से काम लेना ग्रन्थ लिखना नहीं वरन् संसार को धोका देना है।

यजुर्वेद अध्याय ३ का मंत्र ३५वां गायत्री है और सामवेद में यही गायत्री उत्तरार्चिक के तृतीयोर्ध प्रपाठक में आई है तथा ऋग्वेद मंड० ३ अ० ५ सू० ६२ मं० १० में गायत्री मंत्र आता है, तीनों ही वेदों में गायत्री मंत्र का देवता "सविता" है और निरुक्त लिखता है कि "यातेनोच्यते सा देवता" मंत्र में जिस विषय का वर्णन हो उसको देवता कहते हैं। जब गायत्री मंत्रका वर्णनीय विषय "सविता" है तब उसमें ईश्वर का वर्णन कैसे निकलेगा? "सविता" देवता होने से गायत्री मंत्र के अर्थ में सविता देवता का ही कहनेवाला अर्थ निकलेगा।

सम्पादक ने अपनी जबर्दस्ती से सविता का अर्थ 'ईश्वर' कर दिया। 'सविता' शब्द 'ईश्वर' का वाचक नहीं वरन् देवता का वाचक है। देखिये—

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं
मया पत्या जरदष्टिर्यथा सः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधि-
र्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

अथर्व० कां० १४ अनु० १ सू० १ मं० ५०

हे कन्ये! जिस प्रकार तू मुझ पति के साथ बुढ़ापे तक रहे इस प्रकार मैं तेरे हाथ को सौभाग्य के लिये ग्रहण करता हूँ। भग देवता, अर्यमा देवता, सविता देवता और लक्ष्मी ने तुझको गृहस्थाश्रम के लिये मुझे दिया है।

इसी प्रकार "देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु अथर्व० कां० १४ अनु० १ सू० १ मं ४६" और "भगस्ते हस्तमग्रहीत अथर्व० कां० १४ अनु० १ सू० १ मं० ५१" तथा "त्वष्टावासः अथर्व० कां० १४ अनु० १ सू० १ मं० ५३" इत्यादि बीसियों मंत्रों में "सविता" शब्द देवता का वाचक है किन्तु गायत्री मंत्र में आये हुये 'सविता' शब्द का सत्यार्थप्रकाश ने "ईश्वर" अर्थ कर दिया, यह शब्द ईश्वरार्थ का कहनेवाला नहीं है तो भी अपनी जबर्दस्ती से 'सविता' का 'ईश्वर' अर्थ कर देना क्या न्याय है?

गायत्री मंत्र और उसका अर्थ यह है—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

यजु० अ० ३ मं० ३५

देवस्य-सवितुः-सूर्यस्य-तत्-भर्गः-तेजः-वयं धीमहि-ध्यायेम-यः-भर्गः-नः-अस्माकम्-धियः-प्रचोदयात् ।

देव सविता सूर्य का जो भर्ग तेज है उसका हम ध्यान करते हैं जो तेज हमारी बुद्धि को प्रेरणा करे। बुद्धि का कारण तेज है, तेज से ही बुद्धि तीव्र होती है इसलिये यहां पर सविता से उसके तेज द्वारा बुद्धि वृद्धि की प्रार्थना की गई है। सत्यार्थप्रकाश लिखने का प्रयोजन धर्मरक्षा नहीं, वरन् वेद के अर्थ की हत्या करना है।

आचमन और मार्जन का ज्ञान

स. प्र. पृ. ३५ पं. १७—आचमन उतने जल को हथेली में लेके उसके मूल और मध्य देश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कंठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न उससे अधिक न न्यून, उससे कंठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। पश्चात् मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के उससे आलस्य दूर होता है, जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे।

वि०—आर्यसमाजी कहते हैं कि हमारा मत वैदिक है, वेद को छोड़ कर हम और प्रमाण नहीं मानते, एवं यह केवल कथन ही नहीं वरन् इसी तृतीय समुल्लास में आगे लिखेंगे। इन वैदिकधर्मियों से हम पूछते हैं कि यह आचमन के जल की तादाद किस वेद में लिखी है ? क्या समस्त आर्यसमाजियों को कफ का रोग हो गया है जो संध्या नहीं करने देता। जिसको कफ का रोग ही नहीं वह आचमन करे या न करे यह सत्यार्थप्रकाश ने नहीं लिखा जब थोड़े से आचमन से थोड़े कफ की निवृत्ति तो त्रैराशिक के कायदे से दो तीन लोटे जल से भयंकर कफ का नाश हो जावेगा। जल तो कफ को बढ़ाता है वैद्यक देख कर हुक्म नहीं लिखा। रही बात मार्जन की, वेदादि सच्छास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा कि, 'मार्जन से आलस्य दूर होता है'। जो मनुष्य स्नान करके संध्या पर बैठा उसको आलस्य कहां ? स्नान से भी जिसका

आलस्य दूर न हुआ ऐसे कुम्भकर्ण का मार्जन से आलस्य दूर कैसे होगा ? इन आलसी आर्यसमाजियों का आलस्य दूर करने के लिये संध्या पर बैठते ही इनके नाक में मिर्च भरनी चाहिये तब आलस्य दूर होगा।

परिक्रमा

स. प्र. पृ. ३५ पं. २२—पुनः समंत्रक प्राणायाम, मनसा परिक्रमण-उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे।

वि०—परिक्रमा की खूब कही, यह परिक्रमा किसकी, आपकी या निराकार ईश्वर की ? अपरिच्छिन्न (ला महमूद) ईश्वर की परिक्रमा करने की शक्ति भौतिक पदार्थ अन्न से उत्पन्न हुये मन में मौजूद भी है कि जबर्दस्ती परिक्रमा करवाते हो। इस परिक्रमा का वर्णन किसी वेद के किसी मंत्र में है या यह परिक्रमा आपके दिमाग से पैदा हुई है ? शास्त्रार्थ में इस परिक्रमा से मूर्तिपूजा सिद्ध हो जाती है तब आर्य-समाजी पंडित की वही दशा होती है कि "भइ गति सांप छछूंदर केरी"।

संध्या-अग्निहोत्र

स. प्र. पृ. ३६ पं. ५—संध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे, दो ही रात्रि दिन की सन्धि बेला हैं—अन्य नहीं।

वि०—संध्या और अग्निहोत्र दो बार हो या तीन बार इसका निर्णय तो फिर करेंगे, पहिले तो यह कहना है कि आर्यसमाज के माने हुये लंगड़े वेद में संध्या और अग्निहोत्र करना कहीं भी नहीं लिखा। आज सनातनधर्मी ग्रन्थों से संध्या करनी बतलाई जाती है, कल को पार्सियों की धर्मपुस्तक जिन्दावस्था से इन अज्ञ आर्य-समाजियों को अग्नि का पूजन करना बतलाया जायगा, आर्यसमाज मत क्या है चूं चूं का मुरब्बा है।

तैत्तिरीयारण्यक में तो मध्याह्न संध्या का आचमन लिखा है—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवीपूता पुनातु माम्।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम् ॥

यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम ।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳ स्वाहा ॥

तैत्ति० आ० अनु० २३

वेद मध्याह्न संध्या का आचमन लिखता है और सत्यार्थप्रकाश मध्याह्न संध्या को उड़ाता है ऐसी दशा में सत्यार्थप्रकाश की रक्षा के लिये आर्यसमाजियों को वेद का काला मुँह कर देना चाहिये ।

स्वाहा शब्दार्थ

स. प्र. पृ. ३७ पं. २–"स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले, विपरीत नहीं ।

वि०—वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, वेदों के छः अंग, दर्शन, पुराण, इतिहास प्रभृति जितना भी संस्कृत साहित्य है उसमें स्वाहा शब्द का "जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले" यह विलक्षण अर्थ कहीं नहीं लिखा, मालूम होता है कि यह अर्थ सत्यार्थप्रकाश ने गयासुलुगत से लिया है । वैदिक शब्दों के अर्थों की हत्या करनेवाले ग्रन्थ का सत्यार्थप्रकाश नाम रखना यह निर्माता की निर्लज्जता का चित्रपट है। स्वाहा शब्द का अर्थ तो देवताओं को आहुतिदान है ।

हवन से वायुशुद्धि

स. प्र. पृ. ३७ पं. ६–"सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है और पृ. ३७ पं० १३ अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गंध की निवृत्ति करता है ।

वि०—प्रथम तो यज्ञ के पात्र जो सत्यार्थप्रकाश ने लिखे हैं ये मनमाने हैं वैदिक यज्ञपात्रों से नहीं मिलते (२) हवन की प्रणाली (तरीका) बिल्कुल मनमाना लिखा है, क्या कोई आर्यसमाजी इनके फर्जी पात्रों और हवन के तरीके को वैदिक सिद्ध कर सकता है ? शाम के मरे को कोई कहां तक रोवे, जब वेद को दूर फेंक कर हवनपात्र और हवन का तरीका मनमाना लिखा जावे तब कोई आर्यसमाजी कैसे वैदिक सिद्ध कर सकता है ।

यह खूब लिखा कि हवन से वायु शुद्ध होता है, यदि ऐसा ही है तो फिर स्नान की क्या जरूरत, बिना स्नान किये, कपड़ा पहिने हुये, कुछ हवन की औषधियां और घी आग में झोंक दे, वायुशुद्धि को कौन रोक लेगा ? हवन के पात्रों की क्या जरूरत, एक तसला ले ले, क्या तसले के हवन से वायु शुद्ध न होगा ? घर में हवन करने की क्या जरूरत, जहां का वायु दुर्गंधित हो वहां ही हवन होना चाहिये। हम देखते हैं कि पाखानों का वायु दुर्गंधित होता है, काम उपकार का है, आर्यसमाजियों को चाहिये कि हवन की सामग्री और घी तथा लकड़ी एवं एक तसला लेकर घर से चल दें और सब के पाखानों में हवन कर आवें बस वायु शुद्ध हो जावेगा। जब से यह हवन चला तभी से वायु शुद्ध होकर भारतवर्ष में प्लेग और इन्फ्लूएंज़ा आ गया। फिर अग्निहोत्र में प्रातःकाल और सायंकाल का समय ही क्यों ? यदि कोई तीन बजे दिन के हवन कर दे तो क्या वायु शुद्ध न होगा।

अग्निहोत्र से तो दो लाभ हैं एक स्वर्गप्राप्ति और दूसरे संसार का उपकार।

स्वर्ग के विषय में ब्राह्मण की श्रुति लिखती है कि—

स्वर्गकामो जुहुयात।

स्वर्ग की कामनावाला हवन करे। लोकपोकार के विषय में लिखा है कि—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥

मनु० अ० ३ श्लो० ७६

अग्नि में छोड़ी हुई आहुति सूक्ष्म परमाणुओं से सूर्यलोक को जाती है फल इसका यह होता है कि सूर्य से उत्तम वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है उस अन्न को खाकर प्रजा सुखी होती है।

कई एक मनुष्य यह कहते हैं कि जैसे डाक्टर अग्नि में गन्धक को डालते हैं और उसके धूम से विषैले कीटाणु मर कर वायु शुद्ध हो जाता है ऐसे ही हवन में भी होता होगा ? इसका उत्तर यह है कि हवन की सामग्री में ऐसा कोई द्रव्य नहीं जो दूसरे जीवों को कष्ट पहुँचावे, ऐसा द्रव्य डाल देने पर हवन संसार का उपकार न करेगा वरन् कसाईखाना होकर कीटाणुओं की हत्या करेगा।

होम में मंत्रोच्चारण का फल

स. प्र. पृ. ३७ पं. २१—"मंत्रों में वह व्याखान है कि जिससे होम

करने के लाभ विदित हो जांय और मंत्रों की आवृत्ति होने से कंठस्थ रहें"।

वि०—झूठ बोले बिना आर्यसमाजियों का काम ही नहीं चलता "ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा, भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा, स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा, भूर्भुवः स्वरग्नि-वाय्वादित्येभ्यः प्राणापानेभ्यः स्वाहा" और "विश्वानि देव" तथा गायत्री से हवन करना लिखा है। इन छः मंत्रों से हवन करवाया गया है क्या इनमें से किसी मंत्र के अर्थ से हवन के गुण कभी निकल सकते हैं?

रही मंत्र कंठ करने की बात, जिसने मंत्र कण्ठ कर लिया हो या जिसको पहिले से ही कण्ठ हो हवन के समय उसका मंत्र बोलना तो व्यर्थ ही हुआ। आर्यसमाजी इनका कभी जवाब देंगे या हमेशा कुंभकरणी नींद में ही सोते रहेंगे।

शूद्राध्ययन

स. प्र. पृ. ३८ पं. १५—" शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मंत्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके"। जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मंत्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे यह मत अनेक आचार्यों का है।

वि०—सत्यार्थप्रकाश यहां पर ठीक लिखता है किन्तु आर्यसमाजी नहीं मानेंगे सत्यार्थप्रकाश का लेखक न्याय दर्शन नहीं पढ़ा इसी से यहां पुनरुक्त दोष आ गया। जब द्वितीय समुल्लास में शूद्र के उपनयन और वेद पढ़ने का निषेध लिखा ही है फिर यहां लिखना पुनरुक्ति है। जब शास्त्रार्थ होता है तब इस लेख को लेकर सनातनधर्मी सत्यार्थप्रकाश को आर्यसमाजियों के आगे रख देते हैं उस समय आर्यसमाजी इस लेख और सत्यार्थप्रकाश को झूठा कहने लगते हैं।

वेदाध्ययन

स. प्र. पृ. ३८ पं. २४ में लिखा है कि—

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा॥

मनु० अ० ३। १

आठवें वर्ष से आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् एक एक वेद के सांगोपांग पढ़ने में बारह बारह वर्ष मिलके छत्तीस और आठ मिलके चवालीस अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ पूर्व के मिलके छब्बीस वा नौ वर्ष तथा जब तक विद्या पूरी ग्रहण न कर लेवे तब तक ब्रह्मचर्य रक्खे।

वि०—हमको जहां कहीं भी आर्यसमाजी मिलते हैं संस्कृताक्षरों के शत्रु मिलते हैं, जब हम उनसे कहते हैं कि सत्यार्थप्रकाश ने छत्तीस वर्ष तक वेदाध्ययन लिखा किन्तु तुम एक वर्ष भी न पढ़े तब वे जवाब देते हैं कि ऐसे तो लिखा ही करते हैं। जब गुरुकुल खुले तब गुरुकुल के प्रचारकों ने यह आशा दिलाई कि इन गुरुकुलों से अभूतपूर्व विद्वान् निकलेंगे, ये गुरुकुल पब्लिक का पचास साठ लाख रुपया खा गये किन्तु आज तक इन्होंने एक भी वेद का विद्वान् न निकाला इतने पर भी हरिश्चन्द्र, चन्द्रमणि, रामगोपाल, मंगलदेव तडित्कान्त आदि स्नातकों ने सत्यार्थप्रकाश के सिद्धान्तों को असत्य ही लिखा।

ब्रह्मचर्य से आयुवृद्धि

स. प्र. पृ. ४० पं. १७—उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ।

वि०—सत्यार्थप्रकाश ने अड़तालिस वर्ष के ब्रह्मचर्य रखने से चार सौ वर्ष की आयु बतलाई, इस लेख के पूर्व "पुरुषोवाव यज्ञः" इत्यादि छान्दोग्योपनिषद् की छः श्रुतियां लिख कर ऐसा धोका दिया कि मानो इन छः श्रुतियों में ही अड़तालिस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य रखनेवाले की आयु चार सौ वर्ष की होती है। संसार को धोका दे देना यह साधारण बात नहीं है, आर्यसमाज के सिद्धान्त में मोक्षप्राप्ति का उद्योग है किन्तु वेद, दर्शन, पुराण में यह कहीं भी लिखा नहीं मिलता कि अड़तालिस वर्ष ब्रह्मचर्य रखनेवाले की आयु पूरी चार सौ वर्ष की होती है, सत्यार्थप्रकाश की दृष्टि में न तीन सौ वर्ष की हो और न पांच सौ वर्ष की। आर्यसमाजी कहते हैं कि स्वामी दयानन्द जी बालब्रह्मचारी थे और मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे, फिर इनकी उम्र चार सौ वर्ष की क्यों नहीं हुई? फिर इनसे भिन्न ज्वालादत्त, गिरिधर आदि किसी भी तो आर्यसमाजी की चार सौ वर्ष की आयु होती। चार सौ वर्ष की आयु कहना असत्य है।

शास्त्रार्थों में यह प्रकरण जब आता है तब आर्यसमाजी पंडित चार सौ वर्ष की आयु में शास्त्रीय प्रमाण नहीं दे सकते और कहने लगते हैं कि सनातनधर्म में तो दश दश हजार वर्ष की आयु लिखी है फिर सनातनधर्मी पंडित चार सौ वर्ष की आयु से क्यों घबराते हैं? उस समय सनातनधर्मियों का कथन होता है कि ऋषि-मुनियों की आयु तो योग से बढ़ी थी, योग के विषय में लिखा है कि—

पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते
पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

श्वेताश्व० अ० २ श्रु० १२

(पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते) अपने शरीरस्थ पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश रूप पंचतत्वों के निकृष्ट मलिनांश का नाश होकर शुद्धांश की प्रबलता वा उन्नति होने से इस प्रकार (पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते) दिव्य गंधादि विषयों में प्रकृष्ट साक्षात् वृत्ति होने पर अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म व्यवहित और अति दूर के शब्दादि विषयों का साक्षात् बोध होने की शक्ति प्रकट होने पर (तस्य योगाग्निमयं प्राप्तस्य न रोगो न जरा न मृत्युः) पंचतत्व की शुद्धि द्वारा योगाप्तिरूप शरीर को प्राप्त हुये उस योगी पुरुष को न रोग, न निर्बलता न मृत्यु सताता है।

"भावार्थ यह है कि प्रत्येक का सार ही दृढ़ व चिरस्थायी होता है इसी से औषधि में बनस्पतियों के सार निकाले जाते हैं। सार सर्वत्र ही शुद्धांश कहाता व चिरस्थायी होता है। वैसे ही तपोबल व योगाभ्यासादि के द्वारा शरीर के मल नष्ट होकर सारभूत अंश रह जाते हैं। सारभूत अविनाशी हीरा आदि के तुल्य होकर योगी के शरीर को रोग, जरा और मृत्यु आदि बाधा नहीं पहुंचा पाते"। सनातन-धर्मियों के इस प्रमाण को सुन कर आर्यसमाजियों को नीचा देखना पड़ता है।

विवाह काल

स. प्र. पृ. ४१ पं. ५–"वही चालीसवां वर्ष उत्तम समय विवाह का है अर्थात् उत्तमोत्तम तो अड़तालिस वर्ष में विवाह करना (प्रश्न) क्या

यह ब्रह्मचर्य का नियम स्त्री वा पुरुष दोनों का तुल्य ही है ? (उत्तर) नहीं, जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो १६ वर्ष पर्यन्त कन्या, जो पुरुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री १७ वर्ष, जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २२ वर्ष जो पुरुष ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे ।

वि०—कन्याओं के विवाहकाल का निर्णय चतुर्थ समुल्लास में लिखा है वहां ही पढ़ो।

कन्या वेदाध्ययन

स. प्र. पृ. ४५ पं. १४–

अनेनक्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ।
गुरौ वसन्संचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥

मनु. २।१६४

इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे धीरे वेदार्थ के ज्ञान रूप उत्तम तप को बढ़ाते चले जायें ।

वि०—यहां पर द्विज शब्द से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लड़कों का ग्रहण था किन्तु सत्यार्थप्रकाश ने कन्याओं को भी शामिल कर लिया इसको यह पता न लगा कि द्विज शब्द पुल्लिंग है इससे लड़कों का ही ग्रहण होगा, लड़कियों का नहीं। शोक तो यह है कि जिस सत्यार्थप्रकाश के सम्पादक को लिंग का भी ज्ञान नहीं वह धर्म पर व्यवस्था लिखे और फिर जनता उसको मान ले, ये सब खेल भारतवर्ष की अविद्या के हैं। सत्यार्थप्रकाश ने पहिले कन्याओं के उपनयन किये बिना ही गायत्री कंठ करने की आज्ञा दे दी देखिये "अध्ययनाध्यापन"। अब मनु का नाम लेकर

कन्याओं का उपनयन करवाते हैं और मनु जी क्या लिखते हैं—

वैवाहिको विधिस्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः ।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥

मनु० अ० २ श्लो० ६७

विवाहविधि ही स्त्रियों के लिये वैदिक संस्कार (उपनयन) है, पतिसेवा ही गुरुकुल वास और वेदाध्ययन तथा गृहकृत्य जो है वही सायं प्रातःकाल का अग्निहोत्र है। कहो आर्यसमाजियो ! सत्यार्थप्रकाश ने कैसी हजामत बनाई ?

वर्ण-व्यवस्था

स. प्र. पृ. ४३ पं. ६—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

मनु० अ० २ । २८

अर्थ—(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने पढ़ाने (व्रत) ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होम) अग्निहोत्रादि होम, सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञानविद्या के ग्रहण (इज्यया) पक्षेष्टयादि करने (सुतैः) सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियों के सेवन रूप पंच महायज्ञ और (यज्ञैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधारभूत ब्राह्मण का शरीर किया जाता है। इतने साधनों के विना ब्राह्मणशरीर नहीं बन सकता।

वि०—[क] 'स्वाध्याय' का अर्थ जो 'सकल विद्या पढ़ने पढ़ाने' किया गया है यह मनमाना अर्थ है, वेद पढ़ने का नाम स्वाध्याय है। 'व्रत' का अर्थ जो 'ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि नियम पालना' बतलाया यह बनावटी है, व्रत का अर्थ तो मधु मांसादि वर्जन करवानेवाले नियमों का है। होम का अर्थ 'अग्निहोत्रादि होम, सत्य का ग्रहण,

असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देना' जो कर दिया है यह जाल है, होम का अर्थ गायत्री चरु सायं प्रातःकाल का हवन है, और त्रैविद्य पद का जो यह अर्थ कहा है कि 'वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञानविद्या के ग्रहण' यह नहीं होता वरन् त्रैविद्याख्य एक व्रत होता है जिसका वर्णन वेदों में आता है। इज्या का जो 'पक्षेष्ट्यादि करना' यह अर्थ दिखलाया, यह सर्वथा ही अशुद्ध है, इज्या का अर्थ ब्रह्मचर्यावस्था में देवर्षि पितृ तर्पणरूप कर्तव्य है। यज्ञ का 'अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञों के सेवन' यह जो अर्थ लिखा यह चालबाजी का है इसका ठीक अर्थ ज्योतिष्टोमादि यज्ञ है। जिसको इन अर्थों का निर्णय करना हो वह मनु के सात टीके देख ले। [ख] यजुर्वेद में यज्ञों का विधान है इसी कारण उसका नाम यजुः है "यजनाद्यजुः" जिसमें यजन हो उसका नाम यजु है उस यजु में ही पक्षेष्टि (दर्श-पौर्णमास) और अग्निष्टोम प्रभृति यज्ञें लिखी थीं किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने जो यजुर्वेद पर भाष्य किया नये कल्पित अर्थ बना कर सब यज्ञों को उड़ा दिया अब न तो कहीं यज्ञों की विधि है और न कहीं यज्ञें हैं, जब वेद में यज्ञें ही नहीं रहीं तो फिर कोई यज्ञ करके ब्राह्मण कैसे बनेगा, न यज्ञ होगी न ब्राह्मण बनेगा, झगड़ा निवट गया [ग] 'ब्राह्मी' का अर्थ 'ब्राह्मण' न आजतक हुआ है, न आगे होगा, 'ब्राह्मी' शब्द का अर्थ 'ब्रह्म प्राप्ति योग्य' है। इस श्लोक पर जब पं० तुलसीराम स्वामी टीका करने लगे तब उनको घबराहट पैदा हुई, वह यह थी कि 'ब्राह्मी' शब्द का अर्थ 'ब्राह्मण' लिख दें तब तो विद्वन्मण्डलि यह कहेगी कि पं० तुलसीराम जी भी मूर्ख ही हैं और यदि 'ब्रह्म प्राप्ति योग्य शरीर' अर्थ कर दें तो सत्यार्थप्रकाश का अर्थ हवा हो जाय इसलिये उन्होंने 'ब्राह्मी' का कोई अर्थ ही नहीं किया भाषा में लिख दिया कि 'यह शरीर ब्राह्मी किया जाता है' [घ] सत्यार्थप्रकाश का लेखक लिखता है कि 'स्वाध्यायेन' इस श्लोक में मनु जी इतने कर्म करने से मनुष्य का ब्राह्मण हो जाना मानते हैं किन्तु मनु जी इस के विरुद्ध कहते हैं और वह कथन यह है—

अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत्॥

मनु० अ० ६ श्लो० ३१७

जिस प्रकार आहित और अनाहित (संस्कार की हुई वा संस्काररहित) दोनों ही अवस्थाओं में अग्नि देवता है उसी प्रकार ब्राह्मण चाहे पढ़ा हो या न पढ़ा हो दोनों ही दशाओं में वह देवता है। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भगवन! तुम आर्य-

समाजियों को विद्या दो जिससे सत्यार्थप्रकाशकर्ता के जाल में ये न फंसें। मनु के श्लोक का ठीक अर्थ यह है—

(स्वाध्यायेन) वेद के पढ़ने (व्रतैः) मधु मांसादि वर्जनरूप नियमों (होमैः) सावित्र चरु होम और सायं प्रातःकाल के हवनों (त्रैविद्येन) त्रैविद्याख्य व्रत (इज्यया) ब्रह्मचर्य अवस्था में देवर्षि पितृ तर्पण (सुतैः) पुत्रोत्पादन (च) और (महायज्ञैः) धर्मशास्त्र विहित ब्रह्मयज्ञादि (च) तथा (यज्ञैः) ज्योतिष्टोमादि से (ब्राह्मी) ब्रह्मप्राप्ति योग्य (इयम्) यह (तनुः) शरीर (क्रियते) किया जाता है।

अभिवादन

स. प्र. पृ. ४४ पं. २०—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥
मनु० २।१२१

जो सदा नम्र सुशील विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है उसका आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते।

वि०—मनु जी लिखते हैं कि अभिवादनशील मनुष्य जो नित्य वृद्धों की सेवा करता है उसके आयु, विद्या, यश और बल बढ़ते रहते हैं। इसका अर्थ करते हुये सत्यार्थप्रकाश ने अभिवादनशील का कुछ भी भाषा नहीं लिखा। द्वितीय समुल्लास में 'नमस्ते' करना लिखा था तो तृतीय में अभिवादन-प्रत्यभिवादन लिख दिया, कहीं पर कुछ और कहीं पर कुछ लिखना लेखक की खूबी है। शेरसिंह अपनी नमस्ते की किताब में लिखते हैं कि 'नमस्ते करना अभिवादन और प्रत्यभिवादन है' आर्यसमाजियों को झूठ लिखने में तनिक भी लज्जा नहीं होती। (१) अभिवादन करनेवाला छोटा और प्रत्यभिवादन करनेवाला बड़ा होता है, इसमें छुटाई बड़ाई का व्यवहार है, यह व्यवहार नमस्ते में नहीं, नमस्ते में दोनों के दर्जे बराबर हैं। (२) अभिवादन प्रणाम को कहते हैं और प्रत्यभिवादन आशीर्वाद है, नमस्ते के जवाब में जो नमस्ते कही जाती है यह आशीर्वादात्मक अर्थ को नहीं देती क्योंकि प्रणाम करना, अन्न देना, और वज्र मारना तीन ही अर्थ में 'नमः' अव्यय रहता है अतएव 'नमः' से

आशीर्वाद नहीं लिया जाता तो भी संसार की आंख में धूल झोंक कर नमस्ते का अर्थ आशीर्वाद करना साधारण मनुष्यों को धोके में फांसना है।

शूद्रसमाज

स. प्र. पृ. ४५ पं. २२–"जो वेद को न पढ़के अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है"।

वि०—आजकल प्रायः सभी आर्यसमाजी वेद को दूर फेंक इंगलिश पढ़ते हैं ऐसी अवस्था में उनको शूद्र कहना ही धर्म है। जब हम आर्यसमाजियों को शूद्र और आर्यसमाज को शूद्रसमाज कहते हुये सत्यार्थप्रकाश का लेख उनके अगाड़ी रखते हैं तब वे बिगड़ उठते हैं और हमको तथा सत्यार्थप्रकाश बनानेवाले को गालियां देने लगते हैं।

इस श्लोक में "शूद्रत्वम्" पाठ है जिसका अर्थ है "शूद्र जैसा"। भाव यह है कि न शूद्र वेद जानता है और न यह द्विज, दोनों ही वैदिकज्ञान में मूर्ख हैं अतएव यह द्विज शूद्र के तुल्य है। यदि आर्यसमाजी अपठित द्विज को शूद्रतुल्य न मान कर साक्षात् शूद्र मानते हैं तो

साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।

भर्तृहरि के इस लेख पर क्या करेंगे? इस लेख में कहा गया है कि जो साहित्य और संगीत की कलाओं को नहीं जानता वह सींग पूछ रहित साक्षात् पशु है। यदि किसी आर्यसमाजी का पिता साहित्य संगीत की कलाओं को नहीं जानता तो क्या वह आर्यसमाजी अपने पिता को पशु समझ कर उसे खाने के लिये घास, कटिया, भूसा देगा? बनावटी अर्थों से तो यही दुर्दशा होगी!

नास्तिक

स. प्र. पृ. ४८ पं. ८–

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥ मनु० २।११

जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति पंक्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिये।

वि०—इस लेख के ऊपर आर्य प्रतिनिधि सभायें और प्रादेशिक सभा ध्यान दें। आज सहस्रों आर्यसमाजी अपनी दलीलों से वेद और धर्मशास्त्रों की धज्जियां उड़ाते हैं फिर उनको जाति पांति और इस पवित्र भारतवर्ष से निकाल बाहर क्यों नहीं किया जाता? इस श्लोक के नियम की पाबन्दी आर्यसमाजें न करेंगी तो क्या ईसाई-मुसलमान करेंगे?

सृष्टिज्ञान

स. प्र. पृ. ४९ पं० २५–जो जो सृष्टिक्रम के विरुद्ध है वह सब असत्य है जैसे कोई कहे कि बिना माता पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ तथा पृ. ४९ पं. २३ जो जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है।

वि०—अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ ईश्वर के बनाये हुये सृष्टिक्रम को जान सकता है इसको कोई भी विचारशील मनुष्य मानने को तैयार नहीं। निराकार ईश्वर ने ब्रह्मा का अवतार धारण करा तो क्या ब्रह्मा की कोई माता भी थी। उस परमात्मा से घोड़े तथा अन्य पशु जिनके दांत नीचे ऊपर श्रेणी बांध कर रहते हैं गौ आदि तथा भेड़ बकरियां उत्पन्न हुईं, इन सब की माताओं का पता चलाना सत्यार्थप्रकाश के लेखक या आर्यसमाजियों के जिम्मे है। आज भी समय समय पर सृष्टि की विलक्षणता प्रकट होती है जैसे कि पांच छः वर्ष हुये यूरोप में एक मनुष्य पत्थर का बन गया था और अमेरिका में फोड़ा होने की आशंका से एक लड़की की जांघ चीरी गई, चीरने पर जांघ से लड़की निकली, सृष्टि के ये सब नियम सत्यार्थप्रकाश के लेखक और आर्यसमाजी जानते होंगे। यज्ञावतार बिना मां बाप के पैदा किये लोगों को दीखा और थोड़ी देर में छिप गया यह वेद ने लिखा है। देवताओं का इच्छानुसार शरीर धारण करना और अपने शरीर से अपने सुख की सब सामग्रियां बना लेना यह वेद में है। हमारी समझ में यही आया है कि ईश्वर के बनाये हुये वेदों की ये घटनायें जब सत्यार्थप्रकाशकर्ता के सामने जायंगी तब मिथ्या हो जायंगी। मूर्ख मनुष्यों में अपना रोब जमाने के लिये सृष्टिक्रम के जानने का दावा करना है और इसका

कोई प्रयोजन नहीं। इसी प्रकार ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव जानने की भी शक्ति जीव में नहीं हो सकती।

संभव

स. प्र. पृ. ५२ पं. २०—"संभवति यस्मिन्स सम्भवः" माता-पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया इत्यादि सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं।

वि०—सम्भव और असम्भव का निर्णय करना बहुत कठिन है, संभव की कोई सीमा ही नहीं पाई जाती। पुराने जमाने में जब तार नहीं था तब यदि कोई मनुष्य कह देता कि लोहे के तार से हमारे पास खबर आई है तब मनुष्य कहते थे कि तुम झूठे हो यह सम्भव नहीं। तार के जारी होने पर संसार ने संभव मान लिया। उस समय यदि कोई यह कहता कि हमारे यहां बिना तार के तार द्वारा अमेरिका से खबर आई है, तो सुननेवाले यही कहते कि तुम बकवाद करते हो क्या तार के बिना खबर का आना कभी सम्भव है। कुछ दिन बाद बिना तार का तार चला, खबरें आने जाने लगीं संसार ने संभव मान लिया। जो आज असंभव है वह आगामी शताब्दी में संभव हो जावेगा। अब मृतकों का जिला देना असंभव है किन्तु कोई दिन ऐसा भी आवेगा कि युवावस्था में मरे हुये प्राणी जीवित कर दिये जाया करेंगे। जो साधारण मनुष्य की बुद्धि में असंभव है वह ज्ञाता की बुद्धि में संभव है। योगदर्शन बतला रहा है कि—

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद्भूतजयः।

योग० विभूति पा० ३ सू० ४३

पृथिव्यादि महाभूतों के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्व में संयम करने से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी जीते जाते हैं।

इसी शक्ति से अगस्त्य ने समुद्रपान किया, इसी शक्ति से कृष्ण ने गोवर्द्धन और महावीर ने द्रोणाचल उठाया, इसी शक्ति से नल नील के हाथ के पत्थरों से सेतु बंधा और बानरी सेना उससे उतर के लंका में पहुँची, भगवान् कृष्ण ने मृतक

पुत्रों को जिला कर अपने गुरु जी को दिया, शंबुक के तप से मरे हुये ब्राह्मण के लड़के को भगवान् राम ने जिलाया। यदि ईश्वरावतार असम्भव है तो फिर वेद का सारा लेख असंभव है। वेद कहता है कि—

ब्रह्म ज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे
तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः॥

अथर्व० कां० १९ अनु० ३ सू० २३ मं० ३०

ब्रह्म ने बड़े बल धारण किये हैं। ब्रह्म ने ही सृष्टि के आरंभ में बड़े द्युलोक का विस्तार किया है, सब प्राणियों में पहिले वही ब्रह्मा रूप से प्रकट हुआ, उस ब्रह्म से स्पर्धा करने को कौन समर्थ है।

लेखक न योगदर्शन जानते हैं, न वेद। उनकी समझ में यह आया है कि जिसको हमारी बुद्धि मान ले वही सृष्टिक्रम और वही संभव है। बोनापार्ट ने लिखा है कि असंभव शब्द मूर्खों की डिक्शनरी में रहता है।

पठन पाठन विधि

स. प्र. पृ. ६५ पं. ८—आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना। पृ. ६३ पं. १२ अष्टाध्यायी पृ. ६४ पं. २४ तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावे। पृ. ६५ पं. ९ यास्क मुनि कृत निघंटु पृ. ६५ पं. ११ तदनन्तर पिंगलाचार्य कृत छन्दोग्रन्थ पं. १४ तत्पश्चात् मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे अच्छे प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता सभ्यता प्राप्त हो वैसे को काव्यरीति से अर्थात् पदच्छेद पदार्थोक्ति अन्वय विशेष्य विशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें। पृ. ६६ पं. २३ आयुर्वेद अर्थात् जो चरक सुश्रुत··· चार वर्ष के भीतर पढ़ें। पृ. ६७ पं. ८ और नारदसंहिता आदि जो जो आर्षग्रन्थ हैं उनको पढ़ें। पं. १३ ज्योतिषशास्त्र सूर्यसिद्धा-

न्तादि जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है इसको यथावत् सीखें तत्पश्चात् पं. २४ पूर्व मीमांसा पर व्यास मुनि कृत व्याख्या, वैशेषिक पर गौतम मुनि कृत, न्यायसूत्र पर वात्स्यायन मुनि कृत भाष्य, पतंजलि मुनि कृत सूत्र पर व्यास मुनि कृत भाष्य, कपिल मुनि कृत सांख्यसूत्र पर भागुरि मुनि कृत भाष्य, व्यास मुनि कृत वेदान्तसूत्र पर वात्स्यायन मुनि कृत भाष्य अथवा बौधायन मुनि कृत भाष्य वृत्ति सहित पढ़ें पढ़ावें इत्यादि सूत्रों को कल्प अंग में भी गिनना चाहिये जैसे ऋग्यजु साम और अथर्व चारो वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारो ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघंटु, निरुक्त छन्द और ज्योतिष्, छः वेदों के अंग, मीमांसादि छः शास्त्र, वेदों के उपांग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये ग्रन्थ हैं इनमें भी जो जो वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस उसको छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतःप्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है। पृ. ६५ पं. २१ ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़े।

वि०—क्या मजा है, प्रथम तो सत्यार्थप्रकाश ने पृ० ६७ पं० २१ में लिखा कि "ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान्, सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे" फिर अब पृ० ६८ पं० ४ में लिखा कि "इनमें भी जो जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो उस उसको छोड़ देना" यहां पर पहिले ऋषियों की प्रशंसा की और उनको विद्वान् तथा धर्मात्मा बतलाया। फिर लिख दिया कि "इनके लेख में भी जो वेदविरुद्ध हो उसे छोड़ देना" जब ऐसा है तब ऋषियों की विद्वत्ता और धर्मात्मापन कहां रहा? ऋषि भी वेदविरुद्ध लिख जाते हैं यह विलक्षण सूझ है, फिर इनके लेखों का वेदविरोध कौन टटोले। यहां पर धर्मनिर्णय नहीं हो रहा वरन् घुसने निकलने की कुंजी बनाई जा रही है इस कुंजी के अवलम्ब से आर्यसमाजी ऋषिप्रणीत ग्रन्थों के प्रमाण को आवश्यकता पड़ने पर अपने पक्ष की पुष्टि में ग्रहण कर लेंगे और जब चाहेंगे यह वेद से नहीं मिलता इतना कह कर आर्षप्रमाण को छोड़ भी देंगे।

जालग्रन्थ

स. प्र. पृ. ६८ पं. १०—"जो जो नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह वह जाल-ग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरण में का तंत्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्ध-बोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में "अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा" इत्यादि। ज्योतिष् में शीघ्रबोध, मुहूर्त चिन्तामणि आदि। काव्य में नायिका भेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्व कौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ पंचदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तंत्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषा रामायण, रुक्मिणी-मंगलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित् मिथ्या ग्रन्थ हैं।

वि०—सिद्धान्तकौमुदी ने अष्टाध्यायी को स्पष्ट करके दिखलाया है या अष्टा-ध्यायी का खण्डन किया है, यदि स्पष्ट करके दिखलाया है तो कौमुदी जालग्रन्थ कैसे? यहां तो आप कौमुदी को जालग्रन्थ बतलाते हो किन्तु जिस समय स्वामी दयानन्द जी का स्वर्गवास हुआ उस समय उनके बस्ते में सिद्धान्तकौमुदी और वैयाकरण सर्वस्व ये दो ही ग्रन्थ निकले थे, क्या स्वामी जी कौमुदी इसीलिये साथ रखते थे कि यह जालग्रन्थ है? कौमुदी के बिना कोई व्याकरण का पंडित भी नहीं बनता। कांगड़ी गुरुकुल के स्नातक व्याकरण में कमजोर और महाविद्यालय ज्वालापुर के व्याकरण के उत्तम ज्ञाता जो होते हैं इसका करण यही है कि गुरुकुल कांगड़ी में कौमुदी पढ़ाई नहीं जाती और महाविद्यालय ज्वालापुर में पढ़ाई जाती है। जब आप कौमुदी को मिथ्या कहते हैं तब कौमुदी की भांति सूत्र-वृत्ति लिखनेवाला तुम्हारा बनाया वेदांगप्रकाश भी जालग्रन्थ ही रहेगा। गुरुकुल के स्नातकों को जब योग्यता नहीं होती तब योग्यता के लिये वे गुप्त या प्रत्यक्ष कौमुदी ही पढ़ते हैं। सारस्वत-चन्द्रिका का तंत्र तथा मुग्ध-बोध इनमें क्या खराबी है उनकी खराबी बतलाये बिना आपके कथन मात्र से उनको जालग्रन्थ कौन मान लेगा? जालग्रन्थ होने का सबूत तो कोई देना नहीं केवल लेखनी से जालग्रन्थ लिख देना। वैदिक कोश निघंटु तो पढ़े किन्तु लौकिक कोश अमरकोशादि

न पढ़े इससे क्या मतलब निकला कि लौकिक शब्दों के ज्ञान में चौपटानन्द बना रहे। काव्य न पढ़े तो लौकिक व्यवहार किससे जाने इस सत्यार्थप्रकाश से ? मालूम होता है कि आप आर्यसमाजियों को मूर्ख रखना चाहते हैं, आपको यहां पर यह चिन्ता सता रही है कि आर्यसमाजी पढ़ जायंगे तो हमारे हथकंडे से निकल जायंगे। आप तर्कसंग्रह को जालग्रन्थ भी बतलाते हैं और इस तृतीय समुल्लास में तर्कसंग्रह के प्रमाण भी लिख रहे हैं यह भी आपकी घुसने निकलने की कुंजी है किन्तु जिस समय कोई यह प्रश्न कर देगा कि तर्कसंग्रह जालग्रन्थ है तो सत्यार्थप्रकाश में इसके उद्धरण कैसे दिये गये ? इसके जवाब में आर्यसमाजियों की चालबाजियां नेस्तनाबूद होकर चेहरे उतर जावेंगे।

जागदीशी आदि ग्रन्थों को जालग्रन्थ बतलाया, इनके जालग्रन्थ होने में क्या प्रमाण दिया ? कुछ नहीं, केवल हुक्म चढ़ा दिया, इस अनुचित हुक्म को कोई विचारशील मनुष्य नहीं मान सकता, यह बात दूसरी है कि विद्या के अभाव में तुम्हारे इस लेख को आर्यसमाजी मान लें।

मनुस्मृति में जो आप प्रक्षिप्त श्लोक बतला रहे हैं वे प्रक्षिप्त श्लोक कितने हैं और कौन कौन अध्याय में हैं इसका पता न आपने लिखा, न आज तक आर्यसमाज ने मनु के प्रक्षिप्त श्लोकों की लिस्ट तैयार की। यहां पर तो आपका इतना ही मतलब है कि जितने श्लोकों को आप और आर्यसमाजी पेश करें वे तो वेदानुकूल और जिन श्लोकों को सनातनधर्मी प्रमाण में दें वे प्रक्षिप्त, क्या तुम्हारी यह चालाकी संसार में हमेशा ही रह सकेगी।

सब भाषाग्रन्थ मिथ्या हैं तो तुम्हारा यह सत्यार्थप्रकाश तथा स्वामी दयानन्द जी की बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, यजुर्वेद भाष्य आदि जो जो ग्रन्थ भाषा में लिखे गये हैं वे असत्य क्यों नहीं ? क्या इन बातों का उत्तर लिखनेवाला कोई आर्यसमाजी किसी समय में पैदा होगा या आर्यसमाज जवाब लिखने में हमेशा मुंह चुराती ही रहेगी।

पुराण-इतिहास

स. प्र. पृ. ६८ पं. २५–

ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानिकल्पान्गाथा नाराशंसीरिति।

यह गृह्यसूत्रादि का वचन है। जो ऐतरेय, शतपथादि ब्राह्मण लिख

आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम है, श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के निर्माता को क्या बढ़िया सूझ सूझी है जो ब्राह्मणों को पुराण लिखते हैं। यह कौन मानेगा कि डाक्टरी की किताब जाब्ता फौजदारी है। जैसे डाक्टरी की किताब और जाब्ता फौजदारी का विषय भिन्न भिन्न है इसी प्रकार ब्राह्मणों का विषय (सबजेक्ट) यज्ञ और पुराणों का विषय लोकवृत्त है। इसकी पुष्टि में पहिला प्रमाण यह है कि—

अन्यो मंत्रब्राह्मणस्य विषयोऽन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति। यज्ञो मंत्रब्राह्मणस्य लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः।

यह समारोपणादात्मन्य प्रतिषेधः न्यायदर्शन ४।६२ के सूत्र पर महर्षि वात्स्यायन का भाष्य है। इसका अर्थ यह है कि मंत्र ब्राह्मण का विषय और है और धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास का विषय और है। यज्ञ मंत्र और ब्राह्मण का और लोकवृत्तान्त इतिहास पुराण का तथा लोकव्यवहार व्यवस्थापन धर्मशास्त्र का विषय है। ब्राह्मण ग्रन्थों का विषय यज्ञ ही है, इस विषय में ऋग्वेद लिखता है कि—

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महोदेवो मर्त्यां आविवेश॥

निरुक्त—चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयोद यनीये सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मंत्रब्राह्मण कल्पैर्वृषभोरोरवीति। रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिर्यदेन मृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति। महोदेव इत्येष हि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आविवेशेत्येष हि मनुष्यानाविशति यजनाय। तस्योत्तरा भूयसे निर्वचनाय।

निरुक्त परिशिष्ट अ० १

चार वेद चार सींग हैं तीन सवन ही तीन पाद हैं, प्रायणीय और उदयणीय ये दो शिर हैं, सात छन्द हाथ हैं, मंत्र-ब्राह्मण-कल्प इन तीन से बंधा हुआ शब्द करता हुआ बैल महादेव नाम यज्ञ यजमान के लिये मनुष्यों में प्रवेश करता है।

इस मंत्र में स्पष्ट बतलाया गया है कि यज्ञ तीन जगह से बंधा है अर्थात् मंत्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन से यज्ञ की क्रियायें बनती हैं। अब दो प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों का विषय यज्ञ है। जब ब्राह्मणों का विषय यज्ञ है तो फिर ब्राह्मण पुराण-इतिहास कैसे होंगे? धर्म का निर्णय करते हो या अन्धेर मचाते हो?

रही बात यह कि 'अठारह पुराण मानने के लायक नहीं' यह लिखना सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक को ही शोभा देता है। छोटे ग्रन्थ से लेकर वेदों पर्यन्त वह कौन संस्कृत साहित्य का ग्रन्थ है जो पुराण और इतिहास के महत्व को न लिखता हो, पाठक क्रम से पढ़ें—

सहोवाच ऋग्वेदं भगवोध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेद-माथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदम्।

छा० प्र० ७ खंड १

नारद बोले ऋग्वेद को स्मरण करता हूँ तथा साम-यजु-अथर्व वेद को जानता हूँ और इतिहास-पुराण पाँचवां वेद पढ़ा है।

इन प्रमाणों से पुराण का विषय लोकवृत्त और ब्राह्मण का विषय यज्ञ यह जाना गया। अब वेद यह बतलाता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ पुराण नहीं, पुराण ब्राह्मणों से भिन्न हैं और ब्राह्मण पुराणों से भिन्न हैं। इस प्रकार का ज्ञान देनेवाली श्रुति यह है—

एवमिमे सर्वे वेदा निर्मितास्सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्याताः सपुराणाः सस्वराः ससंस्काराः सनिरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः सवाकोवाक्यास्तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिद्यते नामधेयं यज्ञमित्येवमाचक्षते।

गोपथ पूर्वभागः द्वितीय प्रपाठकः

इस श्रुति में ब्राह्मण पृथक् और पुराण पृथक् लिये हैं इसलिये ब्राह्मणों से भिन्न ब्राह्मणादि ग्रन्थों का नाम ही पुराण है और इन पुराणों की पुष्टि समस्त वैदिक साहित्य

करता है। पुष्टि के प्रमाण पाठक नीचे देखें—

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् ।
श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणेषु मया श्रुतम् ॥

वाल्मी० बालकाण्ड

यह सुनकर सूत ने एकान्त में राजा से कहा सुनो महाराज ! यह प्राचीन कथा है जो पुराणों में मैंने सुनी है इसके अनन्तर सम्पूर्ण रामजन्म का चरित्र जो भविष्य था सब राजा को सुनाया कि रामचन्द्र तुम्हारे यहाँ उत्पन्न होंगे श्रृङ्गी ऋषि को बुलाइये और वैसा ही हुआ। व्याकरण के महाभाष्य को भी सत्यार्थप्रकाश ने आर्ष मान कर प्रमाणकोटि में लिया है। महाभाष्य लिखता है कि—

सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यक मित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषय इति ।

आह्निक १

सात द्वीप सहित पृथ्वी तीनों लोक शिक्षा कल्पादि अङ्ग सहित चारो वेद (सरहस्याः) उपनिषद् एक सौ एक शाखा यजुर्वेद की, सहस्र शाखा सामवेद की, इक्कीस शाखा ऋग्वेद की, नौ शाखा अथर्ववेद की (वाकोवाक्यम्) तर्कादि इतिहास पुराण वैद्यक इनमें शब्दप्रयोग होता है। और भी देखिये—

स यथार्द्रेन्धनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि ।

शत० कां० १४ प्र० ब्रा० ४ कं० १०

जिस प्रकार से गीले इन्धन के संयोग से अग्नि में नानाविध धूम प्रकट होते हैं इसी प्रकार उस परमात्मा के ऋक्, यजु, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान ये सब श्वासभूत हैं। और देखिये—

अरेस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेवैतद्यद्दग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकासूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानीष्टꣳ हुतमाशितं पायितमयञ्च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि।

बृह० अ० ४ कं० ११ ब्रा० ५

उस परमेश्वर के निश्वसित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान हैं। अथर्ववेद कहता है कि—

स वृहतीं दिशमनुव्यचलत्। तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशꣳसीश्चानुव्यचलन्। इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशꣳसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद।

अथर्व० कां० १५ अनु० १ सू० ६ मं० १०।११।१२

वह बड़ी दिशा को गया और उसके पीछे इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी चली, जो ऐसा जानता है वह इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसियों का प्यारा घर बनता है। फिर अथर्ववेद लिखता है कि—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥

अथर्व० कां० ११ अनु० ४ सू० ७ मं० २४

ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद सहित पुराण ये सब प्रलयकाल में अवशिष्ट ईश्वर से उत्पन्न हुये।

जिन लोगों ने पुराणों को नहीं पढ़ा वे लोग यहां पर यह शंका करते हैं कि "ऋचः सामानि" इस मंत्र में पुराणों का प्रादुर्भाव ईश्वर से कहा गया है और ब्राह्मादि पुराण

वेदव्यास ने बनाये ? इसका उत्तर यह है कि पुराणों का प्रादुर्भाव तो ईश्वर ही से हुआ है व्यासदेव जी ने तो केवल श्लोक बनाये और संहिता विभाग किया। सृष्टि के आरंभ में व्यासदेव पर्यन्त पुराण गद्य रूप में थे और उनके पृथक् पृथक् भाग शिवपुराण, विष्णुपुराणादि विभक्त नहीं थे, व्यासजी ने गद्य के श्लोक बना दिये और पृथक् पृथक् भाग कर दिये।

गला पकड़नेवाला झूठ

स. प्र. पृ. ६८ पं. १९-(प्रश्न) क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ? (उत्तर) थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है इससे "विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः" जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं। और स. प्र. पृ. ६९ पं. २-जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले चिपट जावे इसलिये "असत्यमिश्रंसत्यं दूरतस्त्याज्यमिति"।

वि०—मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण, उपनिषद्, दर्शन, वेदांग और वेद का ब्राह्मण भाग सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इन सब में वेदविरुद्ध माना है, जब यह आर्यसमाजियों का गला धरेगा तब इनके छुड़ानेवाला कौन ? यदि झूठ के कारण पुराण, इतिहास मानने के योग्य नहीं तो फिर आर्यावर्त के आरंभिक राजाओं की गणना क्यों ली गई ? इसका वर्णन पुराणों में ही है, जिसको यह गणना देखनी हो वह अष्टम समुल्लास का "पुराण इतिहास की सृष्टि" नामक लेख पढ़ ले और राजा युधिष्ठिर से लेकर यशपाल तक का इतिहास जो सत्यार्थप्रकाश के एकादश समुल्लास में विद्यार्थी सम्मिलित हरिश्चन्द्रचन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका से लिया गया है यह श्रीमद्भागवत के नवम स्कंध का है। सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास वर्णव्यवस्था में विश्वामित्र तथा मतंग की कथा एवं नियोग में पाण्डु की कथा और षष्ठ समुल्लास के "राजधर्म" प्रकरण में शुक्रनीति तथा महाभारत जो प्रमाण में लिये गये तो क्या ये आर्यसमाज का गला न धरेंगे ? सत्यार्थप्रकाश के लेखक का जब काम अटक जावे तब तो पुराण और महाभारत वेद से भी अधिक प्रमाण हो जावें और जब सनातनधर्मी इन ग्रन्थों को पेश करें तब ये ग्रन्थ अमान्य विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्य झूठ से भरे हुये हो जायं, वह सत्यार्थप्रकाश का इन्साफ है !

वैदिक मत

स. प्र. पृ. ६९ पं. ५-(प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हमको मान्य है इस-लिये हमारा मत वेद है।

वि०—वेद दो विभागों में विभक्त है, एक मंत्रभाग और दूसरा ब्राह्मणभाग। प्रथम लेखक ने अपनी जबर्दस्ती के आधार पर ब्राह्मणों को वेदों से निकाल बाहर किया जिसका विवेचन हम "पुराण इतिहास" शीर्षक देकर इसी समुल्लास में पीछे लिख आये। यद्यपि सत्यार्थप्रकाश के लेखक के पास ऐसा कोई प्रमाण न था कि जिससे ब्राह्मण ग्रन्थ वेदत्व को छोड़ कर इतिहास और पुराणों की पदवी पा जाते तो भी इन्होंने अपनी चालाकी से ब्राह्मणभाग को वेद से निकाल दिया, अब इनकी दृष्टि में केवल मंत्रभाग वेद रह गया, मंत्रभाग का विपुल विस्तार देख कर अब इन्होंने उसके ऊपर भी कैंची उठाई। मंत्रभाग की ग्यारह सौ इकत्तीस शाखायें (पुस्तकें) हैं इसके ऊपर महर्षि पतंजलि पसपसाह्निक महाभाष्य में लिखते हैं कि—

चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बाह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदः।

चार वेद और उनके छः अंग, वेदों के रहस्य, एक सौ एक यजुर्वेद और एक सहस्र सामवेद, इक्कीस ऋग्वेद एवं नौ अथर्ववेद की शाखायें (पुस्तकें) हैं। सब का जोड़ लगाने से चारो वेदों की ग्यारह सौ इकत्तीस शाखायें होती हैं।

यहाँ पर क्या चालाकी चली कि ऋग्वेद की शाकल और यजुर्वेद की माध्य-न्दिनी, साम की कौथुमी और अथर्व की शौनकी इन चार शाखाओं से "शाखा" पद उड़ा उनको असली वेद बना दिया और शेष चारों वेदों की जो ग्यारह सौ सत्ताइस शाखा रह गईं उनको वेद का व्याख्यान बतला प्रमाणकोटि से निकाल दिया।

इन्हीं चार शाखाओं को वैदिक यंत्रालय अजमेर में छपवा दिया, इन्हीं चार पुस्तकों को लेकर आर्यसमाजी कहते हैं कि ये हमारे चार वेद हैं, इस मिथ्या कतर-ब्योंत से आर्यसमाज की क्या क्या हानि हुई इसको ये नहीं समझते, संख्या गई क्योंकि

इसमें संध्या की विधि नहीं, हवन उड़ गया क्योंकि इस वेद में हवन की आज्ञा नहीं, षोड़स संस्कार गये, साथ ही साथ यज्ञोपवीत और शिखा भी जाती रही। इस वेद में न तो कहीं पर यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है एवं न शिखा रखने का हुक्म, अब ठीक रहा आर्यसमाजी और ईसाइयों में कोई भेद का चर्चा ही नहीं, इस मिथ्या कल्पना ने सत्यार्थप्रकाश की तो सफाई कर दी इसको आप इसी ग्रन्थ के 'वेद सिद्धान्त परिचय' में आये हुये "वेद परिमाण" को पढ़ें।

तिलक-कंठी

स. प्र. पृ. ७० पं. १०—ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, माला धारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना।

वि०—क्या इन सब बातों का निषेध वेदों में पाया जाता है? यदि वेदों में निषेध नहीं तो सत्यार्थप्रकाश के लेखक के कहने पर कौन मान लेगा। स्वामी दयानन्द जी ने गंगा के तट पर विचरते हुये बहुत दिन गंगा की बालू और भस्म लगाई है, आज भी आर्यसमाजी टोपी में प्रणव की पीतल की मूर्ति लगाते हैं, उत्सव के समय समस्त आर्यसमाजी केशरिया चन्दन मत्थे पर पोतते हैं क्या यह वेद का हुक्म है? हमारी समझ में तो ॐ का टोपी में लगाना, केशरिया चन्दन पोतना और परस्पर में नमस्ते करना ये आर्यसमाजी सिद्ध करने के चिन्ह हैं।

तुम तो किसी ग्रन्थ को मानते ही नहीं, हम तो वैद्यक को भी मानते हैं, देखिये क्या लिखा है—

श्रीखण्डं कटुतिक्तशीतलगुणं स्वादे कषायं कियत्-
पित्तभ्रान्तिवमिज्वरक्रिमितृषासन्तापशान्तिप्रदम्।
वृष्यं वक्त्ररुजापहं प्रतनुते कीर्तिं तनोर्देहिनां
लिप्तं सुप्तमनोजसिन्धुरमदारंभातिसंरंभदम्॥

राजनिघंटु

चन्दन के गुण ये हैं—कटु, तिक्त, शीतल, स्वादिष्ट, कसैला है और पित्त, भ्रान्ति, वमन, ज्वर, गर्मी, कृमि, तृषा, संताप इनकी शान्ति करनेवाला, वृष्य, मुखरोगहारक, देह में लगाने से कान्ति का देनेवाला और सुगन्धि करनेवाला एवं रुचिकारक है।

"कश्यपस्त्र्यायुषं जमदग्ने" इस श्रुति से भस्म और "युंजन्ति यजुः २३।५" से चन्दन लगाने की आज्ञा वैदिक पद्धति में पाई जाती है संस्कारभास्कर और गृह्यसूत्र के भाष्य

टटोल कर मन भर लीजिये। रही बात ऊर्ध्वपुण्ड् और त्रिपुण्ड् की, ये तो सम्प्रदाय पहचानने के चिन्ह हैं। जैसे तुम्हारे यहां नमस्ते है, नमस्ते के कहते ही मालूम हो जाता है कि यह पुरुष दयानन्दीय मत का है इसी प्रकार ऊर्ध्वपुण्ड् से जाना जाता है कि यह विष्णु का भक्त है। ऊर्ध्वपुण्ड् में तीन रेखायें रहती हैं इन तीन रेखाओं से यह ज्ञान होता है कि यह ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन पदार्थों को माननेवाला है, नीचे तीनों रेखा एक पड़ी लकीर में मिली रहती हैं इससे यह सिद्ध है कि इसके मत में जीव, ईश्वर, प्रकृति मिल कर ही अद्वैत ब्रह्म है।

त्रिपुण्ड् में तीन रेखायें होती हैं और आरंभ तथा अन्त में सब का मिलान होता है। इस तिलक से यह बोध होता है कि इसके मत में केवल एक ब्रह्म है और वही संसार का उपादानकारण है, उसी से ईश्वर, जीव, प्रकृति ये तीन पदार्थ प्रादुर्भूत हुये हैं। ऊपर की रेखा ईश्वर, मध्य की प्रकृति और नीचे की जीव है, यह जतलाता है कि ब्रह्म प्रकृति से ऊँचा है, प्रकृति के ऊपर ब्रह्म का शासन है और जीव प्रकृति से नीचे रहता है अर्थात् माया के पंजे में फंसा है। मध्य रेखा जिसको प्रकृति की रेखा माना है उसके बीचोबीच एक विन्दु रहता है, यह सिद्ध करता है कि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब प्रकृति में पड़ कर संसार रच देता है।

रही बात कंठी की। हिन्दुओं के शिखा रखने से यह अभिप्राय है कि जो शिखा स्थानीय ब्रह्मरंध्र को फोड़ कर इस संसार से गमन करता है वह मोक्ष को जाता है। इसी प्रकार कंठी धारण करने का प्रयोजन यह है कि जो ईश्वर की शरण आता है भक्ति के अनुष्ठान में ग्रीवाबद्ध होकर चिपटता है वह मोक्षप्राप्ति का भागी है। एकादशी बहुत खटकी। क्या सत्यार्थप्रकाश के लेखक को एकादशी के दिन किसी विष्णुभक्त के यहां पहुँचने पर भूक ने सता दिया? स्वामी दयानन्द जी ने भी तो उपनयन को तैयार हुये बटुक के लिये व्रत करना लिखा है देखिये संस्कारविधि "जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये"। अब रही देवी, देवताओं और तीर्थों की बात, इसका विचार एकादश समुल्लास में किया जावेगा।

वेदे शूद्रानधिकार

स. प्र. पृ. ७० पं. २७—सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं, और सब मनुष्यों के

वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मंत्र है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥

यजु० अ० २६।२

हे मनुष्यो मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुये अन्त्यज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमाम्) इस प्रकट की हुई (कल्याणीम्) सुख देनेवाली (वाचम्) चारो वेद रूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें।

वि०—इस लेख में व्याघात दोष है। सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लेखक लिख आया कि शूद्र को न उपनयन का अधिकार है और न ही वेद पढ़ने का, जो लोग इस लेख को देखना चाहें वे हमारे लिखे "शूद्राधिकार" को पढ़ लें। फिर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इसी समुल्लास में लिखा कि कुलगुणसम्पन्न शूद्र को पढ़ाया जावे किन्तु उसका उपनयन न हो और वेदमंत्र न पढ़ाये जावें, इस लेख को देखने के लिये हमारा लिखा "शूद्राध्ययन" शीर्षक लेख पढ़ें। इस प्रकार दो जगह शूद्र को वेदाध्ययन का निषेध कर अब वेद पढ़ने की आज्ञा देते हैं यह व्याघात दोष है। जिस ग्रन्थ में व्याघात दोष आ जावे वह ग्रन्थ मानने योग्य नहीं है यह महर्षि गौतम ने न्यायदर्शन में लिखा है।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक लिखते हैं कि "तुम कुआ में पड़ो"। वाणी अत्यन्त मीठी है जब तक इस प्रकार के बोलचाल का व्यवहार आर्यसमाजियों में न होगा तब तक देश का उत्थान न होगा। ऐसे ऐसे लेखों से सिद्ध होता है कि शान्त संसार में कटु शब्दों से अशान्ति पैदा कर लड़ा मारना सत्यार्थप्रकाश के लेखक का मुख्य कर्तव्य है।

अब "यथेमां वाचम्" की कथा सुनिये। इस छब्बीस के अध्याय में 'खिल' संज्ञक मंत्र हैं इन मंत्रों का अश्वमेधादि यज्ञों में ही काम पड़ता है अतएव 'यथेमाम्" यह श्रुति यज्ञ के कृत्य का ही वर्णन करेगी। इस मंत्र के पहिले "अग्निश्च पृथिवी च०

२६।१" यह मंत्र है इसमें "भूतसाधनी" यह पद है, इस पद का "यथेमां वाचम्" में अधिकार आता है, इस अधिकार को लेकर मंत्र का अर्थ यह है—

(यथा) जैसे (इमाम्) इस (भूतसाधनीम्) समस्त मनुष्यों को प्रसन्न करने वाली (कल्याणीम्) कल्याणकारक "दीयताम्–भुज्यताम्" भोजन दो (वाचम्) वाणी को (जनेभ्यः) जनों के लिये (आवदानि) मैं कहता हूँ वैसे तुम भी करो।

इसमें यज्ञकर्ता अपने भृत्यों को सद्व्यवहार का उपदेश करता है किन्तु सत्यार्थ-प्रकाश का लेखक चाहता है कि इसमें से शूद्रों का वेद पढ़ना निकल आवे इसलिये इसने अर्थ में मंत्र के पदों की काट छांट आरंभ की [क] भूतसाधनी पद को छोड़ दिया [ख] 'आवदानि' का कर्ता जो 'मैं' है उसका अर्थ मंत्र के विरुद्ध होने पर भी 'ईश्वर' किया। इस अध्याय और इसके पहिले अध्याय में ईश्वर का वर्णन नहीं फिर "मैं" शब्द से ईश्वर कहां से कूद बैठेगा [ग] 'वाचम्' पद के पीछे सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने "चारो वेदरूप" इतना अपनी तरफ से मिलाया तब यह अर्थ हुआ कि "चारो वेदरूप वाणी" वेद के पदों के साथ अपनी तरफ से पद मिलाना अन्याय है। यदि कोई मौलवी सत्यार्थप्रकाश के लेखक की भांति 'वाचम्' से पहिले "कुरानरूप" यह पद मिला कर इसका अर्थ "कुरानरूप वाणी" कर दे या कोई पादरी 'वाचम्' से पहिले "बाइबिलरूप" इतना मिला कर "बाइबिलरूप वाणी" करे तो क्या आर्यसमाज इस मही मिलावट को मान लेगी ? यदि नहीं मानेगी तो मंत्र का अर्थ बदलने के लिये सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जो मिलावट की है उसको हम कैसे मान लें ? इसका जवाब आर्यसमाजियों के खाते में हम लिखे देते हैं।

ये सब चालाकियां करके तब अर्थ किया कि 'जैसे मैं ईश्वर सब को वेद पढ़ाता हूँ वैसे ही हे मनुष्यो तुम भी पढ़ाओ'। झूठ बोलना, झूठ लिखना, वेदों से झूठे अर्थ निकालना आर्यसमाजियों का सर्वोच्च धर्म है, इसी धर्म में बंध कर यहां पर प्रत्यक्ष विरुद्ध सर्वथा झूठा अर्थ लिखा है।

ईश्वर कहता है कि "मैं सबको वेद पढ़ाता हूँ" यह सुफेद झूठ है। निराकार ईश्वर ने सृष्टि के आरंभ से आज तक एक भी मनुष्य को वेद नहीं पढ़ाया और वह आज भी किसी को वेद नहीं पढ़ाता एवं न आगे को पढ़ावेगा इतने पर भी ईश्वर का वेद पढ़ाना यह सर्वथा झूठ, प्रत्यक्ष विरुद्ध अर्थ जो वेद से निकाला यह सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक की घोर नास्तिकता है। महर्षि गौतम कहते हैं कि यदि वेद में झूठ है तो ऐसे वेद को भी मत मानो।

आर्यसमाजी हमारे इस कथन को सुन चिढ़ जाया करते हैं किन्तु जब हम शास्त्रार्थ करते समय यह कहते हैं कि इसमें क्रोध होने की कोई बात नहीं, यदि ईश्वर वेद पढ़ाता है तो तुम सबूत दो कि ऐसी पाठशाला कहां है और इस पाठशाला में कितने विद्यार्थी हैं ? साथ ही साथ तुम्हें यह भी बतलाना होगा कि वेद पढ़ानेवाला निराकार ईश्वर गद्दे पर बैठ कर वेद पढ़ाता है या कुर्सी पर ? हमारे इस प्रश्न पर आर्यसमाजी उत्तर तो कोई देते नहीं या तो क्रोध कर लड़ाई ठान देते हैं या शास्त्रार्थ छोड़ भाग जाते हैं। आर्यसमाजियों को याद रखना चाहिये कि इस प्रकार के वेदों के झूठे अर्थ आर्यसमाज की अन्त्येष्टि कर के ही रहेंगे। "यथेमाम्" के दयानन्दकृत अर्थ को वेदतीर्थ नरदेव शास्त्री जी ने भी झूठ बतलाया है।

मूर्ख का नाम शूद्र

स. प्र. पृ. ७१ पं. २४–"जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है।

वि०—[क] इसी शूद्र के पढ़ाने की आज्ञा "यथेमां वाचम्" मंत्र से निकाली है, क्या इसी शूद्र को ईश्वर पढ़ाता है और इसी के बाबत कहता है कि जैसे मैं पढ़ाता हूँ वैसे इसे तुम भी पढ़ाओ ? [ख] द्वितीय समुल्लास के "शूद्राधिकार" प्रकरण में इसी के यज्ञोपवीत का निषेध किया, मालूम होता है कि सत्यार्थप्रकाश का लेखक ज्योतिष् पढ़ा है पहिले ही समझ गया कि इसको पढ़ाने से कुछ आवेगा नहीं फिर इसका यज्ञोपवीत क्यों करें ? क्या इसीके लिये "शूद्राधिकार" में वेद पढ़ने का निषेध और विद्याओं के पढ़ने की आज्ञा दी है ? जब यह मूर्ख है तो इसको और विद्या कैसे आ जावेंगी ? [ग] इसी तृतीय समुल्लास में "शूद्राध्ययन" प्रकरण में इसी शूद्र के लिये "कुल गुण सम्पन्नम्" लिखा है ! क्या ऐसे मूर्खों के कुल खान्दान भी भारतवर्ष के किसी हिस्से में रहते हैं, क्या ये मूर्ख शूद्र गुणसम्पन्न होते हैं, यहां पर भी ऐसे मूर्ख का मंत्र छोड़ कर पढ़ना लिख दिया इसका विचार आर्यसमाजी क्यों नहीं करते। बेहोशी में आकर कहीं पर कुछ और कहीं पर कुछ लिखना और फिर चालबाजी से संसार की आँख में धूल झोंकना इस निन्दित कर्तव्य से सत्यार्थप्रकाश का लेखक त्रिकाल में भी मूर्ख को शूद्र सिद्ध नहीं कर सकता। दो जगह तो शूद्र की जाति मानी और अब जाति को छोड़ कर बिना लिखे पढ़े को शूद्र मानते हो इन चालाकियों को तो आर्यसमाजी भी समझते हैं।

वेदे कन्यानधिकार

स. प्र. पृ. ७१ पं. २८—देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

अथर्व० कां० ११ प्र० २४ अ० ३ मं० १८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति विदुषी अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे।

वि०—[क] इस लेख में पुनरुक्त दोष है। इसी समुल्लास में कन्याओं का वेदाध्ययन पहिले लिख आये इसको हमने "कन्या वेदाध्ययन" शीर्षक देकर दिखलाया है। सत्यार्थप्रकाश का सम्पादक करे क्या, ईश्वर ने उसको इतना दिमाग ही नहीं दिया कि जिससे उसको यह स्मरण रहे कि इसका निर्णय हम पीछे कर आये हैं। बार बार व्याघात और बार बार पुनरुक्त दोष आने से दोषदूषित इस सत्यार्थप्रकाश को आर्यसमाजी भले ही मान लें, विचारशील मनुष्यों के मानने योग्य तो यह नहीं रहा [ख] यहाँ पर जो "ब्रह्मचर्येण" यह मंत्र दिया है आधा ही दिया पूरा नहीं लिखा क्योंकि पूरा लिखने से बनावटी अर्थ की चालाकी ऊपर आ जाती है। हम उस छिपी हुई चालाकी को खोल कर जनता के आगे रखने के लिये समस्त मंत्र लिखते हैं—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान्ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति॥

अथर्व० कां० ११ अनु० ३ सू० ५ मं० १८

कन्या ब्रह्मचर्य से युवान हुये पति को प्राप्त होती है और ब्रह्मचर्य से ही बैल अच्छे पति को प्राप्त होता है तथा अश्व भी ब्रह्मचर्य से मजबूत होकर घास को खाता है।

सत्यार्थप्रकाश के सम्पादक ने [ग] 'ब्रह्मचर्येण' इस हेतु को कन्यापरक लगाया कि 'ब्रह्मचर्येण कन्या' यहाँ पर ब्रह्मचर्य इस हेतु ने कन्या का कुछ भी उत्कर्ष

सिद्ध नहीं किया, निष्प्रयोजन रह गया, यदि इसी हेतु को हम पति में लगा दें तो यह सार्थक हो जाता है जैसे 'ब्रह्मचर्येण युवानम्' ब्रह्मचर्य से युवान हुये पति को [घ] ब्रह्मचर्य स्त्रीजाति में नहीं होता स्त्री में तो रज होता है और ब्रह्मचर्य कहते हैं वीर्य को वह पुरुष में ही रहता है इसकी पुष्टि करनेवाले "ब्रह्मचर्येण अनड्वान्" और "ब्रह्मचर्येणाश्वः" ये पद पड़े हैं फिर जबरदस्ती से ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध कन्या के साथ करना धर्मनिर्णय में अन्धेर मचाना है।

दुर्जनतोषन्याय से हम यह भी मान लें कि कन्या में भी ब्रह्मचर्य होता है तब यहां पर ब्रह्मचर्य का अर्थ होगा कि "बलवान् दशा पर पहुंचानेवाली वीर्यात्मक शक्ति" किसी हालत में भी यहां पर 'ब्रह्मचर्य' का अर्थ 'वेद पढ़ना' नहीं है, चाहे तो यह अर्थ कर लें कि 'वीर्यशक्ति द्वारा कन्या युवान् पति को पाती है' और चाहे यह अर्थ समझ लें कि 'ब्रह्मचर्य से युवान् पति का कन्या लाभ करती है'। अब सिद्ध हो गया कि यहां पर ब्रह्मचर्य का अर्थ वेदाध्ययन नहीं है। यदि कोई मनुष्य अपने अज्ञान से यह अर्थ करे कि वेदाध्ययन द्वारा कन्या पति को पाती है तो जो 'ब्रह्मचर्येण' पद कन्या के साथ लिखा है वही 'ब्रह्मचर्येण' पद अनड्वान् और अश्व के साथ लगा है इन दोनों का वेद पढ़ना भी सिद्ध होगा इसलिये यहां पर आये हुये 'ब्रह्मचर्येण' पद का अर्थ वेदाध्ययन नहीं हो सकता, क्या विद्वान् आर्यसमाजी अपनी जिद को छोड़ इसका विचार करेंगे ? मनु ने कन्याओं के वेद पढ़ने का निषेध किया है वह हम "कन्या वेदाध्ययन" में लिख आये।

इति तृतीय समुल्लासः।

अथ चतुर्थ समुल्लासः

विवाह के नियम

स. प्र. पृ. ७४ पं. १८–

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥

मनु० ३।५

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है । इसका प्रयोजन यह है कि—

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः । शतशथ०

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्ष में नहीं । जैसे किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है, जैसे किसी परोक्षवस्तु की प्रशंसा सुन कर मिलने की उत्कट इच्छा होती है वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये । निकट और दूर विवाह करने में गुण ये हैं (१) एक–जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते हैं परस्पर क्रीड़ा लड़ाई और प्रेम करते एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और जो नंगे भी एक दूसरे को देखते हैं उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता (२) दूसरा–जैसे पानी में पानी मिलाने से विलक्षण गुण–दोष नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुल में विवाह होने में धातुओं में अदल बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती (३) तीसरा–जैसे दूध में मिश्री या शुण्ठयादि ओषधियों के योग होने से उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ पितृकुल से पृथक् वर्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है (४) चौथा–जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और खान-पान के बदलने से रोगरहित होता है वैसे

ही दूर देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है (५) पाँचवें–निकट सम्बन्ध करने में एक दूसरे के निकट होने में सुख दुःख का भान और विरोध होना भी संभव है दूर देशस्थों में नहीं और दूरस्थों के विवाह में दूर दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है निकटस्थ विवाह में नहीं (६) छठे–दूर दूर देश के वर्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है निकट विवाह होने में नहीं इसीलिये

दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति । निरु० ३।४

कन्या का नाम दुहिता इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है निकट रहने में नहीं (७) सातवें–कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है क्योंकि जब जब कन्या पितृकुल में आवेगी तब तब इसको कुछ न कुछ देना ही होगा (८) आठवां–कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने अपने पितृकुल के सहाय का घमंड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिता के कुल में चली जायगी एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी, क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है इत्यादि कारणों से पिता के एक गोत्र माता की छः पीढी और समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं ।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक वेद–धर्मशास्त्रों से अनभिज्ञ हैं इसलिये "सपिण्ड" का अर्थ "छः पीढ़ी" करते हैं । मनुस्मृति के ऊपर जितने प्राचीन और नवीन टीका हैं यहाँ तक कि पं० तुलसीराम स्वामी आदि आर्यसमाजियों ने भी टीका किये हैं, सभी ने 'सपिण्ड' का अर्थ 'सात पीढ़ी' लिखा है । [ख] जो "परोक्षप्रिया इव हि देवाः" का उदाहरण देकर दूर देश में विवाह लिखा यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने धोका दिया है । यहां पर मनुष्यों को परोक्षप्रिय नहीं बतलाया—देवताओं को बतलाया है । वेद में देवजाति मनुष्यजाति से भिन्न है इसके लिये "वेद सिद्धान्त परिचय" का 'देवता' शीर्षक लेख पढ़ना चाहिये । यहाँ पर पूरी श्रुति नहीं लिखी, जितना टुकड़ा लिखा वह भी गलत है । श्रुति यह है—

तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इत्याचक्षते
तं वा एतं मृत्युं सन्तं मृत्युरित्याचक्षते

तं वा एतमंगरसं सन्तमंगिरा इत्याचक्षते ॥गोपथ०॥
अग्निर्ह वैतमग्निरित्याचक्षते ॥शतपथ०॥
तत इन्द्रो मखवानभवन्मखवान्ह वैतं मघवा-
नित्याचक्षते परोक्षं परोक्षकामाहिदेवाः ।

शत० १४ । १ । १ । १३

गोपथ ब्राह्मण के प्र० प्रपा० कारि० ७ में लिखा है कि देवता परोक्षप्रिय हैं प्रत्यक्ष से द्वेष करते हैं इस कारण वरुण शब्द को वरुण और मृत्यु को मृत्यु एवं अंगरस को अङ्गिरा कहते हैं। शतपथ में लिखा है कि देवता परोक्षकाम हैं इस कारण परोक्ष में अग्नि को अग्नि और अश्व को अश्व एवं मखवान् को मघवान् कहते हैं।

श्रुति को दबाया, श्रुति के अर्थ को छिपाया तब दूर देश का विवाह सिद्ध किया। इस प्रकार की कतरब्योंत से तो 'गोबर' का अर्थ 'हलुवा' भी कर सकते हैं। अब रही बात 'दुहिता' की, इसका हिन्दी अर्थ यही होता है कि 'दूर रह कर हित करने वाली कन्या विवाहकाल में गोत्र और कुटुम्ब दोनों से दूर कर दी जाती है'। मनु ने लिखा है कि विवाह की समाप्ति पर कन्या में जो पिता का गोत्र है वह दूर हो जाता है और पति का गोत्र उसमें आ जाता है, तथा कुटुम्ब से दूर हो जाती है यह प्रत्यक्ष ही है। जब दूर देश का विवाह ही श्रुति ने काट डाला तब तो श्रुति के आधार से लिये गये दूर देश के आठ गुणों की अपने आप सफाई हो गई। एक लाभ आर्यसमाजियों को अवश्य हुआ, यदि कोई आर्यसमाजी कलकत्ते में रहता है और उसकी बुआ एवं बुआ की लड़की दिल्ली में रहती है तो दूर देश होने के कारण बुआ की लड़की के साथ में विवाह हो सकता है।

विवाह-काल

स. प्र. पृ. ७७ पं. १०—सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाहसमय उत्तम है। इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो निकृष्ट, अठारह बीस की स्त्री, तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम, चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है।

पृ. ७७ पं. २० प्रश्न–

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २

पृ. ७८ पं. १ ब्रह्मोवाच–

एक क्षणा भवेद्गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी ।
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २

पृ. ७९ पं. ९–

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ मनु. ९ । ९०

कन्या रजस्वला हुये पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे । जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ बार रजस्वला हुये पश्चात् विवाह करना योग्य है ।

पृ. ७८ पं. २५–

ऊनषोडशवर्षायाम प्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान्गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ ४७
जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ ४८
सुश्रुत शारीरस्थान अ. १०

सोलह वर्ष से न्यून वयवाली स्त्री में पचीस वर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष जो गर्भस्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्णकाल तक गर्भाशय में रह कर उत्पन्न नहीं होता ।४७। अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो इस कारण से अति बाल्यावस्थावाली स्त्री में गर्भस्थापन न करे ।४८।

वि०—[क] सोलह से चौवीस वर्ष तक कन्या का विवाहकाल सत्यार्थप्रकाश ने तृतीय समुल्लास में भी लिखा है। सत्यार्थप्रकाश का लेखक भारतवर्ष को यूरोप और हिन्दुओं को ईसाई बनाने का उद्योग करता है एवं वह इस रीति से कि हिन्दुओं के नियमों को झूठे सिद्ध कर हिन्दूधर्म के प्रमाणों की मिट्टी पीट अन्य हिन्दूधर्म के प्रमाणों के अर्थ बदल उनसे ईसाई संस्कृति निकाल ली जावे, इसी चालबाजी का फोटू इस लेख में दिखलाई देगा। [ख] संसार की अन्य जातियों में जो विवाह होता है उसका मतलब कामपूर्ति है और हिन्दुओं का जो विवाह है उसका मतलब इससे भिन्न है और वह यह है कि यह मनुष्य धार्मिक विवाह के द्वारा ऋणों से मुक्त होकर संसारबन्धन तोड़ दे। इस विषय में मनु जी लिखते हैं कि—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः॥ मनु० अ० ६ श्लो० ३५

ऋषिऋण, देवऋण और पितृऋण इन तीनों ऋणों को उतार मोक्ष में चित्त को लगाना चाहिये, ऋणत्रय से मुक्त न होकर मोक्षधर्म का आश्रय लेने से पतन होता है।

यह मनु की आज्ञा है इतिहास इसकी पुष्टि करता है। महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि वेदाध्ययन में तत्पर तपस्वी नित्य यज्ञ करते हुये महर्षि मन्दपाल की मृत्यु होगई किन्तु उसको भावी उपार्जित दिव्यलोक न मिले। एक दिन इस ऋषि ने धर्मराज के यहां इकट्ठे हुये देवताओं से यह प्रश्न किया कि मुझे तपार्जित लोकों की प्राप्ति क्यों नहीं हुई? देवताओं ने इसका उत्तर दिया कि वेदाध्ययन से तुमने ऋषिऋण और यज्ञों से देवऋण उतार दिया किन्तु विवाह करके सन्तान उत्पन्न नहीं की, पितृऋण तुम्हारे ऊपर ज्यों का त्यों बना है इस कारण तुमको तपार्जित लोकों की प्राप्ति न होगी।

तीन ऋणों का दूरीकरण कर देना यह प्रत्येक द्विजाति मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। यह ऋण कैसे दूर होता है इसका विवेचन करते हुये महर्षि मनु लिखते हैं कि—

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥
मनु० अ० ६ श्लो० ३६

ब्रह्मचर्य व्रत को स्वीकार कर विधिवत् वेदों के अध्ययन से ऋषिऋण और धर्मपूर्वक विवाह करके अपनी धर्मपत्नी में पुत्रों के उत्पन्न करने से पितृऋण एवं

अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञों द्वारा देवताओं का यजन करके फिर मन को मोक्ष में लगावे ऐसा करने से मनुष्य को सद्गति की प्राप्ति होती है।

मनु जी लिखते हैं कि कुछ काम हैं जिनको अविवाहित पुरुष करही नहीं सकता और वे ये हैं—

अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्चह ॥

मनु अ० ६ श्लो० २८

सन्तानोत्पत्ति, धर्मकार्य, सेवा, उत्तम अनुराग और पितरों की तथा अपनी स्वर्गप्राप्ति ये सब स्त्री के आधीन हैं।

अविवाहित कोई भी पुरुष पितरों को सद्गति नहीं दे सकता एवं न आप ही सद्गति पर पहुँच सकता है इस कारण सद्गति की प्राप्ति के लिये और पितृऋण उतारने के हेतु विवाह करना प्रत्येक द्विजाति मनुष्य का काम है।

इस पवित्र विवाह के लिये मनुजी ने सवर्णा स्त्री बतलाई है "सवर्णाग्रे मनु० अ० ३ श्लो० १२" द्विजातियों को सवर्णा स्त्री से विवाह करना चाहिये और वह सवर्णा स्त्री कैसी हो इसके विषय में धर्मशास्त्र ने लिखा है कि—

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥

याज्ञवल्क्य० अ० १ श्लो० ५२

अखंडित ब्रह्मचर्य द्विज अच्छे लक्षणोंवाली सुन्दर रूपवती छोटी कन्या के साथ विवाह करे कि जिसका अन्य किसी पुरुष के साथ संयोग न हो चुका हो।

ऋणत्रय के उतारने में यह आवश्यकीय है कि जिस प्रकार स्त्री सब प्रकार से पवित्र हो उसी प्रकार से पुरुष भी पवित्र हो तभी तो याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि पुरुष भी अखंडित ब्रह्मचर्य हो।

पुरुष का ब्रह्मचर्य पचीस वर्ष तक का कहा है किन्तु कन्या का नहीं कहा इसका कारण यह है कि जब कन्या रजस्वला होती है तब उसमें स्त्री की पूरी ताकत आ जाती है जैसे मैथुन की शक्ति, कामबाण की पीड़ा और गर्भ धारण करने की योग्यता। इतना ही नहीं उसको कामबाण पीड़ा भी देने लगता है। इसके ऊपर शाक्तानन्द तरंगिणी लिखती है कि—

रजस्वला च या नारी विशुद्धा पञ्चमे दिने ।
पीडिता कामबाणेन ततः पुरुषमीहते ॥

ऋतुस्नाता नारी पांचवें दिन कामपीड़िता होकर पुरुष सम्बन्ध को चाहती है। इसके ऊपर मनु जी लिखते हैं कि—

नैता रूपं परीक्षन्ते नाऽऽसां वयसि संस्थितिः ।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥

मनु० अ० ९ श्लो० १४

स्त्रियाँ पुरुष के रूप को नहीं देखतीं और न यही देखती हैं कि इस पुरुष की आयु क्या है, चाहे मनुष्य रूपवान् हो या कुरूप किन्तु हो पुमान, उसका पुन्सत्व नष्ट न हुआ हो ऐसे मनुष्य के साथ सम्बन्ध कर बैठती हैं।

रजस्वला होने के पश्चात् कामपीड़िता होने के कारण स्त्री का पतन होना संभव है, यह न हो, स्त्री पवित्र बनी रहे, कामवेग यदि न रुक सके तो अपने पति से ही सहवास कर ले। इन सब बातों को समझ वेद ने रजस्वला होने से पहिले कन्या का विवाह लिखा है।

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४०

"सोमः प्रथमो विविदे" इस मंत्र का अर्थ यह है—ऋग्वेद के नवम खण्डस्थ पवमान सूक्तों में लिखा है कि "सोमो गौरी अधीश्रितः" आठ वर्ष की कन्या पर चन्द्रमा का अधिकार होता है, कन्या पर चन्द्रतत्व का अधिकार होने से कन्या की कान्ति, रूप, लावण्य की वृद्धि होती है, इन गुणों को लेकर ही यहां कन्या को गौरी कहा है। फिर "गन्धर्वो विविद उत्तरः" चन्द्रमा अपना भोग समाप्त कर नवम वर्ष के आरंभ में कन्या गंधर्व को देता है, गन्धर्व का अधिकार होने से नवम वर्ष में कन्या की वाद्य और गान में रुचि जाती है, यदि इस समय इसको गाना बजाना सिखाया जावे तो जल्दी सीख जाती है और कंठ की मधुरता भी विलक्षण होती है, ये ही गन्धर्व के अधिकार के चिह्न हैं। "तृतीयो अग्निष्टे पतिः" यह गन्धर्व अपना अधिकार समाप्त कर दशवें वर्ष के आरंभ में इस कन्या को अग्नि के सपुर्द करता है, अग्नि के अधिकार से इस वर्ष में कन्या के चेहरे पर प्रकाश, लावण्य और लाली

आती है, गर्भाधान की शक्ति जो जन्म से इस कन्या के साथ आ रही है वह बढ़ जाती है, उस स्थान में रुधिर का विशेष संचय होता है, यह अग्नि एकादश वर्ष के आरंभ में अपना अधिकार समाप्त कर मनुष्य को देता है, बस यही काल विवाह का है। इसी श्रुति के भाव को लेकर मनु जी लिखते हैं कि—

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः ॥

मनु० अ० ९ श्लो० ९४

तीस वर्ष का लड़का हो तो बारह वर्ष की कन्या हो, यदि लड़का चौबीस वर्ष का हो तो कन्या आठ वर्ष की होनी चाहिये, इससे जल्दी न करे, जो जल्दी करता है वह धर्म में दुःख पाता है।

आठ वर्ष से पहिले जो विवाह करेगा उसको मनु जी ने लिख दिया कि "धर्मे सीदति सत्वरः" आठ वर्ष से कन्या पर देवताओं का अधिकार आता है अतएव अष्टम, नवम और दशवें वर्ष में कन्या के साथ विवाह करने की आज्ञा आम लोगों को नहीं है, हां, जो विवाह होते ही अग्निहोत्र स्वीकार करे उसको अष्टमादि वर्षों में विवाह कहा है, कारण इसका यह है कि अष्टमादि वर्षों में विवाह होने से विवाह करनेवाले पर देवताओं के द्वारा दैवी आपत्ति आती है किन्तु जो अग्निहोत्र करता है वह अग्निहोत्र के द्वारा सोम, गन्धर्व और अग्नि प्रभृति देवताओं को प्रसन्न करता है इसलिये उसके ऊपर दैवी आपत्ति नहीं आती। जो अग्निहोत्र करे वह अष्टम वर्ष से और आम लोग ग्यारहवें वर्ष से कन्या के साथ विवाह कर सकते हैं, इसकी अवधि कन्या के रजस्वला होने से पूर्व है अर्थात् रजस्वला होने से पहिले विवाह होना चाहिये।

विवाह के विषय में वेद को लेकर जो सिद्धान्त मनु ने स्थिर किया है उसी सिद्धान्त को "अष्टवर्षा" आदि दो श्लोकों में अंगिरास्मृति ने और "अष्टवर्षा" आदि चार श्लोकों में पराशर ने तथा "अष्टवर्षा" आदि तीन श्लोकों में संवर्तस्मृति ने और "ऊर्ध्वं दशाब्दाद्याकन्या" से देवलस्मृति ने एवं "पितुः प्रमादात्तु" इत्यादि सत्रहवें अध्याय के तीन पद्यों में वसिष्ठस्मृति ने तथा "प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन्दोषी" गौतम स्मृति ने, इसी प्रकार "अप्रयच्छन्समाप्नोति" पद्य से याज्ञवल्क्यस्मृति ने एवं संस्कृत साहित्य के समस्त ग्रन्थों ने मनु के लिखे हुये विवाहकाल की पुष्टि की है। इतने पर

भी सत्यार्थप्रकाश का लेखक "एक दण' श्लोक गढ़ कर वेद और धर्मशास्त्रों की मसखरी करता है यह इसका पादरीपन है।

यहां तक तो सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने वेद, धर्मशास्त्र की मिट्टी कूटी और अब मनु को लेकर सोलह वर्ष से चौबीस वर्ष तक की उम्र में कन्या का विवाह "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" पद्य से सिद्ध करते हैं। हम "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" इस पद्य को लिख कर इसके असली भाव को पाठकों के आगे रखते हैं।

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

मनु० अ० ६ श्लो० ६०

पित्रादिकों से गुणवान् वर को नहीं दी गई और ऋतुधर्म हो गया है ऐसी कन्या तीन वर्ष तक इन्तजार करे कि अब हमारा पिता विवाह करता है, तीन वर्ष इन्तजार करके फिर वह कन्या समान जाति रखनेवाले गुणवान् वर को स्वयं प्राप्त करे।

चौबीस वर्ष की उम्र में जो कन्या का उत्तम विवाह लिखा था उसकी पुष्टि में कोई शास्त्रीय प्रमाण सत्यार्थप्रकाश के लेखक को नहीं मिला अतएव यह तो 'चण्डूखाने की गप हो गई और "त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत" से सिद्ध है कि जब पिता, माता, भाई, कोई भी विवाह न करे तब वह कन्या मजबूर होकर तीन वर्ष बाद विवाह के लिये अपना पति खोज ले। इस खास घटना को आम कन्याओं के विवाह के साथ लगाना संसार की आंख में धूल झोंकना है। रही बात सुश्रुत की, सुश्रुत को देखिये "ऊनषोडशवर्षायाम्" ये दो श्लोक विवाह के नहीं हैं वरन् गर्भाधानकाल के हैं, विवाह के विषय में तो सुश्रुत लिखता है कि—

अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय
द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत्। अ० १०

पचीस वर्ष के मनुष्य को बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करना चाहिये। फिर चौबीस वर्ष या सोलह वर्ष की उम्र में कन्या का विवाह कैसा?

स्वयंवर

स. प्र. पृ. ८० पं. ४—लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है, जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की

की प्रसन्नता के विना न होना चाहिये। पृ. ८२ पं. ८–जब तक इसी प्रकार सब ऋषि, मुनि, राजा, महाराजा, आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के स्वयंबर विवाह करते थे तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी, जबसे यह ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा तबसे क्रमशः आर्यावर्त देश की हानि होती चली आई है।

वि०—स्वयम्बर होने में श्रुति, स्मृति, अङ्ग, उपाङ्ग, पुराण और इतिहास में से किसी का भी प्रमाण नहीं दिया। हां, लोभ दिया है कि जब स्वयंबर होता था तब हम उन्नति के शिखर पर थे, अब गढ़े में गिर गये। हिन्दूसाहित्य के पन्ने पन्ने टटोल लो, ब्राह्मण वैश्य तथा शूद्र जाति में एक भी स्वयंबर का होना किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता केवल क्षत्रिय जाति में कुछ थोड़े से स्वयंबरों का होना पाया जाता है, वे भी वर के गुण की परीक्षा के लिये। जैसे सीता के स्वयंबर में धनुष को चढ़ा कर उस पर तीर रखना, और द्रोपदी के स्वयंबर में मत्स्यवेध करना। इस प्रकार के स्वयंबरों में कन्या को कुछ भी स्वतंत्रता नहीं है, जो इस काम को करेगा वही कन्या को विवाह लेगा। बाज बाज अवसर पर कन्या के विवाह को कई एक राजा मांग बैठते हैं कि इस कन्या का विवाह हमारे साथ या हमारे लड़के के साथ हो नहीं तो हम चढ़ाई करके तुम्हारा राज छीन लेंगे, इसके उदाहरण दमयन्ती और दिव्यादेवी के स्वयंबर हैं। यहां पर यह फैसला होता है कि कन्या जिसे चाहे उसके गले में माला डाल दे। आपत्ति की घटना को आम कन्याओं में प्रचलित करने से भारतवर्ष को अमेरिका बनाना है। अमेरिका आदि पाश्चात्य देशों में यह प्रणाली है कि कन्या अपने पति को अपनेआप खोज ले, फिर भारतवर्ष की कन्यायें पति की खोज क्यों न करें?

वर्ण व्यवस्था में इतिहास

स. प्र. पृ. ८२ पं. १४–(प्रश्न) क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्यवर्णस्थ हों उनका सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है (उत्तर) हां बहुत से हो गये, होते हैं और होंगे भी जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जावाल ऋषि अज्ञात-

कुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रियवर्ण और मातंग ऋषि चांडालकुल से ब्राह्मण हो गये थे ?

वि०—झूठ लिखना गरीब मूर्ख आर्यसमाजियों को धोके में फांसना यह सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक का मुख्य कर्तव्य है, ब्राह्मणवीर्य और ब्राह्मणी के रज से ही ब्राह्मण पुत्र पैदा हो सकता है एवं वह भी विवाहिता से। इसमें वैदिक साहित्य के अनेक लेख हैं, जैसे—

तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद्ब्राह्मणकारकम् ।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ।

महाभाष्य

तप, विद्या, यानि इन तीन से पूर्ण ब्राह्मण बनता है, विद्या और तप इन दो से हीन रहा ब्राह्मण जाति का ब्राह्मण है।

मनु जी क्या कहते हैं—

ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिजायते ।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये ॥

मनु० अ० १ श्लो० ९९

उत्पन्न हुआ ही ब्राह्मण भूलोक के मनुष्यों से श्रेष्ठ है यह धर्मकोश की रक्षा करने के कारण समस्त मनुष्यों का ईश्वर है। और भी देखिये—

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ।
विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव वा ॥

अत्रि० १३८

जन्म से ब्राह्मण जानना, संस्कारों से द्विज, विद्या पढ़ कर विप्र और इन तीनों से युक्त होने पर श्रोत्रिय कहलाता है। इत्यादि अनेक स्मृतियां जन्म से वर्ण व्यवस्था की सिद्धि करती हैं, स्मृतियों के विरुद्ध इतिहास किस बल से गुण, कर्म, स्वभावोत्पन्न वर्ण व्यवस्था को मानेगा ? और यदि इतिहास ने ऐसा कर भी दिया तो स्मृतिविरुद्ध इतिहास प्रमाण ही नहीं होता। इस पर व्यासस्मृति लिखती है कि—

तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा । १ । ४

स्मृति और इतिहास में विरोध आ जावे तो इतिहास को छोड़ कर धर्मशास्त्र मानना होगा। अच्छा टटोलो इतिहास, जावाल की कथा सुनिये—

किं गोत्रोनु सौम्यासीति सहोवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोहमस्म्यपृच्छं मातरꣳ सामाप्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जवाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोहꣳ सत्यकामो जावालोस्मि भो इति तꣳ होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधꣳ सौम्याहरेति ॥

ॐ

छान्दोग्य० प्र० ४ खं० ४

सत्यकाम विद्याभ्यास और उपनयन के लिये महर्षि गौतम के पास गया और प्रार्थना की कि भगवन्! मेरा उपनयन करो तथा विद्या पढ़ाओ। गौतम ने पूछा सौम्य! तुम्हारा क्या गोत्र है? सत्यकाम बोला मैं नहीं जानता मेरा गोत्र क्या है, मैंने अपनी माता से पूछा था वह मुझसे बोली कि युवावस्था में घर आये अतिथिरूप ऋषियों की मैं सेवा किया करती थी, युवावस्था में तू उत्पन्न हुआ, फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये, मैं गोत्र नहीं पूछ पाई, मैं नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है, मैं इतना जानती हूँ कि मेरा नाम जवाला है और तेरा नाम सत्यकाम है। ऋषे! मैं सत्यकाम जाबाल हूँ। इतना सुन कर गौतम ने कहा कि ब्राह्मण से भिन्न अन्य कोई ऐसा बचन नहीं कह सकता मैं जान गया तू ब्राह्मण है, समिधा ले आ मैं तेरा उपनयन करूंगा। सत्यकाम अज्ञातकुल नहीं था, इसके पिता का नाम उपमन्यु और पितामह का नाम व्याघ्रपाद था, शतपथ पढ़िये—

अथ होवाच महाशालं जावालम्। औपमन्यव। कं त्वं वैश्वानरं वेत्थ।६। अथ होवाच बुडिलम्। वैयाघ्रपद्य! कं त्वं वैश्वानरं वेत्थ।७।

शत० कां० १० ब्रा० ४ अध्या० ६ श्रु० ७।८

विश्वामित्र की कथा यह है कि गाधि राजा की पुत्री महर्षि ऋचीक को विवाही थी किन्तु न तो गाधि राजा के ही पुत्र हुआ और न ऋचीक के। एक दिन गाधि की रानी ने अपनी लड़की से कहा कि तुम्हारे पति ब्रह्मनिष्ठ, तपस्वी, शक्तिशाली ऋषि हैं।

सत्यवती ने ऋषि से प्रार्थना की, ऋषि ने स्वीकार कर लिया, दो बर्तनों में चरु पका कर दिया, गाधि की रानी के लिये जो चरु पकाया था उसमें क्षात्रतेज था और सत्यवती के चरु में ब्रह्मतेज था। चरु का व्यत्यय हो गया और केवल चरु से गर्भ रहा, सहवास नहीं हुआ, चरु का व्यत्यय होने से गाधि की रानी के विश्वामित्र जन्म से ब्राह्मण हुये। महाभारत लिखता है कि—

विश्वामित्रं चाजनयद्गाधिभार्या यशस्विनी।
ऋषेः प्रसादाद्राजेन्द्र ब्रह्मर्षिं ब्रह्मवादिनम्॥

अनुशासन प० अ० ४ श्लो० ४७

हे राजेन्द्र युधिष्ठिर! यशवती गाधि की पत्नी ने ऋषि के प्रसाद से वेद को कथन करनेवाले ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को उत्पन्न किया। इनको सभी जन्म का ब्राह्मण मानते थे किंतु वसिष्ठ कहते थे कि वीर्य तो ब्राह्मण का है—तो भी माता क्षत्राणी है इसलिये यह ब्राह्मण नहीं है। विश्वामित्र ने पन्द्रह हजार वर्ष तप करके मातृरज को निकाल दिया, वसिष्ठ ने भी इनको ब्राह्मण मान लिया।

अब मतंग की कथा सुन लें। मतंग ब्राह्मणी में नाई से उत्पन्न हुआ था जब इसको यह पता लगा तब इसने यह प्रण किया कि मैं इसी शरीर से ब्राह्मण बनूंगा इसके लिये इसने तप करना आरम्भ किया, इस तप से इन्द्र प्रसन्न हुआ इन्द्र ने कहा कि जो तुम चाहते हो सो मांग लो? इसने कहा मैं इसी शरीर से ब्राह्मण बन जाऊँ, इसको सुन कर इन्द्र बोल उठा कि—

ब्राह्मण्यं प्रार्थयानस्त्वमप्राप्यमकृतात्मभिः।
विनशिष्यसि दुर्बुद्धे तदुपारम मा चिरम्॥२८
श्रेष्ठतां सर्वभूतेषु तपोऽर्थं नातिवर्तते।
तदग्र्यं प्रार्थयानस्त्वमचिराद्विनशिष्यसि॥२९
देवतासुरमर्त्येषु यत्पवित्रं परं स्मृतम्।
चाण्डालयोनौ जातेन न तत्प्राप्यं कथंचन॥३०

अनुशासन प० अ० २७

मतंग! जिन्होंने पुण्यपुञ्ज का संग्रह नहीं किया उनसे अप्राप्य ब्राह्मणत्व की तू प्रार्थना करता है, तू दुर्बुद्धि है इस कारण ब्राह्मणत्व की इच्छा से उपराम कर नहीं तो तू विनाश को प्राप्त हो जावेगा। २८। सब प्राणियों में श्रेष्ठ ब्राह्मणजाति तप से

प्राप्त नहीं हो सकती उस ब्राह्मणजातीय उत्तमता को चाहता हुआ तू शीघ्र नष्ट हो जायगा। २६। देवता, असुर और मनुष्यों में ब्राह्मणपन परमपवित्र माना गया है उस ब्राह्मणपन को चाण्डालयोनि में उत्पन्न हुआ कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

मतंग ने दो तीन बार उग्र तप किया और इन्द्र ने वैसा ही आ समझाया। अन्त में इन्द्र ने कहा कि—

तदुत्सृज्येह दुष्प्राप्यं ब्राह्मण्यमकृतात्मभिः ।१२
अन्यं वरं वृणीष्व त्वं दुर्लभोऽयं हि ते वरः ।१३

अनुशासन प० अ० २६

इस कारण से अशुद्ध शरीरवालों को जो प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे ब्राह्मणपन के वर को छोड़ के तुम अन्य वर मांगो तुम्हारे लिये यह वर दुर्लभ है तुम किसी प्रकार ब्राह्मण नहीं हो सकते। इतना कह कर इन्द्र चला गया मतंग ने भी तप छोड़ दिया। यह पूर्ववत् चाण्डाल ही बना रहा फिर सत्यार्थप्रकाश में इसका ब्राह्मण होना जो लिखा यह अपठित जनता को धोका देना नहीं तो और क्या है।

वेदादि शास्त्र

स. प्र. पृ. ८२ पं. २३–"स्वाध्यायेनजपैर्होमैः"। स. प्र. पृ. ८४ पं. १०–(प्रश्न)—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

यह यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय का ११ वां मंत्र है इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदि न मुख होते हैं इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते (उत्तर) इस मंत्र का अर्थ जो तुमने किया वह ठीक नहीं क्योंकि यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अंग नहीं हो सकते, जो मुखादि अंगवाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान्, जगत् का स्रष्टा, धर्ता, प्रलयकर्ता, जीवों के पुण्यपापों की जान के व्यवस्था

करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) "बाहुर्वैबलं बाहुर्वैवीर्यम्" शतपथ ब्राह्मण, बल-वीर्य का नाम बाहु है वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का ऊरू नाम है, जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि में भी इस मंत्र का ऐसा ही अर्थ किया है जैसे–

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि

जिससे ये मुख्य हैं इससे मुख से उत्पन्न हुवे ऐसा कथन संगत होता है अर्थात् जैसा मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अंग ही नहीं हैं तो मुख आदि से उत्पन्न होना असंभव है जैसा कि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना और जो मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोल-माल है वैसे ही उनके शरीर का भी गोलमाल मुखाकृति के समान होना चाहिये, क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकारवाले होने चाहिये।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक धर्म का रक्षण नहीं करते वरन् धर्म को मिटा देना चाहते हैं। जिन प्रमाणों को ये लेते हैं उन प्रमाणों में पाठ बदल लेना इनके बायें हाथ का कर्तव्य है, मौका पड़ने पर ये महात्मा वेद के नाम के झूठे मंत्र भी बना लेते हैं 'स्वाध्यायेन' मनु के इस श्लोक को ही देख लें, मूल श्लोक में "व्रतैः" पाठ है उसको बदल कर इन्होंने "जपैः" कर लिया, इस श्लोक का अर्थ हम "वर्ण-व्यवस्था" शीर्षक लेख देकर तृतीय समुल्लास में लिख आये वहीं देख लें [ख] 'निरा-कार ईश्वर साकार नहीं होता' यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक की बनावट है। ईश्वर

कैसा है इस ज्ञान के लिये 'वेद सिद्धान्त परिचय' का 'ईश्वर स्वरूप' शीर्षक लेख पढ़ लें। वर्णों की उत्पत्ति ईश्वर के रूप विराट् से हुई है। ब्रह्माण्ड को विराट् कहते हैं और यह ईश्वर का साकार रूप है। मंत्र का सीधा सीधा अर्थ यह है कि "विराट् के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न हुये। गुण, कर्म, स्वभाव मंत्र में नहीं हैं; यह नया मसाला तैयार करके मंत्र के अर्थ में मिलाया जाता है। जो अर्थ हमने किया है इस मंत्र का वही अर्थ मनु जी लिखते हैं, देखिये—

लोकानान्तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्॥

मनु० अ० १ श्लो० ३१

लोकों की वृद्धि के लिये प्रजापति ने मुख, बाहू, ऊरु, पाद से क्रमपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को उत्पन्न किया। इसके ऊपर महर्षि हारीत लिखते हैं कि—

यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत्।
असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यानप्यूरुदेशतः॥ १२
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः।
यथा प्रोवाच भगवान्ब्रह्मयोनिः पितामहः॥ १३

हारीत० अ० १

यज्ञ की सिद्धि के लिये मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और पैरों से शूद्र रच कर ब्रह्मा बोले। [ग] सत्यार्थप्रकाश के मत में भी सृष्टि के आरंभ में ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भेद सिद्ध है और फिर ब्राह्मण से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय से क्षत्रिय इस प्रकार जातियां संसार में कायम रहीं। [घ] शतपथ का जो प्रमाण यह दिया है कि "बाहुर्वैबलं बाहुर्वैवीर्यम्" इसका यहां कोई प्रसंग नहीं और "यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त" यह जो शतपथ दिया है इससे तो हमारे ही पक्ष की पुष्टि होती है। अर्थ इसका यह है कि "ब्राह्मण सब जातियों में मुख्य है इसलिये इस को शरीर के मुख्य अंग मुख से रचा"। [ङ] यदि गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था मानोगे तब तो हिन्दू जाति में चार ही जातियां रहेंगी, किन्तु यजुर्वेद ने तो अनेक जातियां मानी हैं पढ़िये "अतिक्रुष्टाय मागधम् ३०।५" अत्यन्त निन्दा करने के लिये भाट को दूर पहुँचाइये, और "नृत्ताय सूतम् ३०।६" नाचने के लिये क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुये सूत को, तथा "गीताय शैलूषम् ३०।६" गाने के

अर्थ गानेहारे नट को, एवं "धैर्याय तक्षाणम् ३०।६" धीरज के लिये महीन काम करनेवाले बढ़ई को, इसी प्रकार "तपसे कौलालम् ३०।७" बर्तन पकाने के ताप को झेलने के अर्थ कुम्हार के पुत्र को, और "मृत्यवे मृगयुम् ३०।७" मृत्यु करने को प्रवृत्त हुये व्याध को, एवं "नदीभ्यः पौंजिष्ठम् ३०।८" नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हुये धानुक को, तथा "ऋक्षीकाभ्यो नैषादम् ३०।८" गमन करनेवाली स्त्रियों के अर्थ प्रवृत्त हुये निषाद के पुत्र को, इसी प्रकार "वीर्यायाविपालम् ३०।११" वीर्य बढ़ाने के अर्थ गड़रिये को, और "सरोभ्यो धैवरम् ३०।१६" बड़े तालाबों के लिये धीमर के लड़के को, तथा "वैशन्ताभ्यो वैन्दम् ३०।१६" छोटे छोटे जलाशयों के प्रबन्ध के लिये निषाद के अपत्य को, एवं "स्वनेभ्यः पर्णकम् ३०।१६" शब्दों के लिये रक्षा करने में निन्दित भील को, इसी प्रकार "गुहाभ्यः किरातम् ३०।१७" गुहाओं के अर्थ बहेलियों को, और "वीभत्सायै पौल्कसम् ३०।१७" धमकाने के लिये प्रवृत्त हुये भंगी के पुत्र को, एवं "वर्णाय हिरण्यकारम् ३०।१७" सुन्दर रूप बनाने के लिये सुनार वा सूर्य्य को। आज हम यजुर्वेद और दयानन्द के इस भाष्य से इन जातियों को आगे रखते हुये आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि गुण, कर्म, स्वभाव से जातियों की उत्पत्ति मानी जावेगी तो इन जातियों के गुण, कर्म, स्वभाव बतलाओ ? [च] 'गुण' माने 'रज, सत्व, तम' प्रकृति के इन तीन विभागों का नाम है और इन्द्रिय तथा इन्द्रियों के विषय को भी वेदादि सच्छास्त्रों ने गुण लिखा है, इससे भिन्न शिल्प आदि कार्यों का नाम और रस्सी जिसको संस्कृत में रज्जु कहते हैं उसका भी नाम गुण है, आर्यसमाज वर्णव्यवस्था में किसका ग्रहण करता है ? कर्म सात्विक, राजस, तामस एवं प्रारब्ध, क्रियमाण और संचित छः प्रकार के हैं, किस कर्म को आर्यसमाज मनुष्य की उत्पत्ति में लेता है ? स्वभाव शब्द का अर्थ उत्पत्ति के साथ आनेवाली प्रकृति का है, वर्णव्यवस्था के तबादले के साथ इसका तबादला कैसे होगा ? इनका जवाब देनेवाला आर्यसमाजी भूतल पर न मिलता है, न आगे को मिलेगा। [छ] यहां पर यह बहस उठाई है कि यदि ये मुखादि अंगों से उत्पन्न हुये हैं तो इनकी आकृति भी वैसीही होनी चाहिये, भला कहीं इस मूर्खता का भी ठिकाना है ? पुराणों को दूर फेंक जब वेदों के अर्थ किये जावेंगे तब तो इसी प्रकार भटकना होगा। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि "ब्रह्माननम् स्कं० २ अध्याय ३ श्लो० ३७" उस विराट् का मुख ब्रह्मा है, बस ब्राह्मणों की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही हुई है। फिर आगे श्रीमद्भागवत लिखता है कि "इन्द्रादयो बाहव आहुरुक्षाः स्कं० २ अ० १ श्लो० २६" इन्द्रादिक जो देवता हैं वे विराट् ईश्वर की भुजा हैं, क्षत्रियों की उत्पत्ति चन्द्र और

सूर्य इन दो देवताओं से हुई है दोनों ही विराट् ईश्वर की भुजा हैं। अब ब्राह्मणों के लुढ़कने और क्षत्रियों के लम्बे लम्बे ताल कैसे लट्ठों आदि की तर्क धूल में मिल गई।

धर्मशास्त्रीय निर्णय

स. प्र. पृ. ५ पं. २०–"जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य हो जाय, वैसेही जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय, वैसे क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है अर्थात् चारो वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो जो पुरुष वा स्त्री हो वह वह उसी वर्ण में गिनी जावे"।

वि०—सत्यार्थप्रकाश में पहिले "शूद्रो" यह श्लोक लिखा फिर उसका अर्थ लिखा, हमने श्लोक इसलिये छोड़ दिया कि वह श्लोक यहाँ हमको भी लिखना पड़ेगा केवल अर्थमात्र ले लिया। यहाँ पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जो चालाकी की है वैसी चालाकी तो कोई जघन्य मनुष्य भी नहीं कर सकता। चालाकी यह है कि—

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते।
अश्रेयान्श्रेयसीं जातिं गच्छत्या सप्तमाद्युगात् ॥६४
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५

मनु० अ० १०

शूद्रा में ब्राह्मण से जो सन्तान पैदा हो वह पारशवाख्य वर्ण होता है, यदि वह कन्या हो और उसको ब्राह्मण विवाहे, फिर उसके भी कन्या हो इसी प्रकार सात पीढ़ी तक कन्या होती जाय तथा उसका ब्राह्मण से सम्बन्ध होता जाय तो पारशववर्ण में जो शूद्रत्व है उसका नाश होकर सप्तम कन्या शुद्ध ब्राह्मणी हो जायगी इस प्रकार "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" शूद्रवर्ण ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। यदि शूद्रा में ब्राह्मण से लड़का उत्पन्न हो और उसका सम्बन्ध शूद्रों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी

में ब्राह्मणत्व का नाश हो जायगा और वह ब्राह्मणवीर्य शूद्रता को प्राप्त होगा ऐसे "ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्" ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होगा। इसी प्रकार शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न हुई कन्या सप्तम पीढ़ी तक यदि उसका सम्बन्ध बराबर क्षत्रिय से होता रहे तो सप्तम कन्या शुद्ध क्षत्रिय कन्या हो जावेगी। यदि शूद्रा स्त्री में क्षत्रिय से लड़का हुआ हो और उसका सम्बन्ध बराबर शूद्रों में होता जाय तो वह सप्तम पीढ़ी में शूद्र हो जावेगा ऐसे शूद्र क्षत्रिय और क्षत्रिय शूद्र होता है। इसी प्रकार शूद्रा स्त्री में वैश्य से कन्या उत्पन्न हुई हो और उसका सम्बन्ध बराबर सात पीढ़ी तक वैश्यों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में वह वैश्यकन्या होगी। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुआ पुत्र सात पीढ़ी तक शूद्रों में सम्बन्ध करता जावे तो वह शूद्र हो जावेगा इस प्रकार वैश्य शूद्र और शूद्र वैश्य बनेगा।

कोई कोई धर्मशास्त्र का यह कथन है कि ब्राह्मण सात पीढ़ी में होता है और क्षत्रिय पांच में तथा वैश्य तीन में, इस प्रकार की व्यवस्था तभी होगी जब स्त्री हीन वर्ण की और पुरुष उत्तम वर्ण का होगा।

जात्युत्कर्षो युगे ज्ञेयः पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।
व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम्॥

याज्ञ० वर्णजा० प्र० श्लो० ९६

मूर्द्धावसिक्तादि पुरुषों का जात्युत्कर्ष अर्थात् ठीक ठीक अपने पिता के वर्णों में आ जाना पांचवीं, छठी वा सातवीं पीढ़ी में ऐसे हो सकता है कि जब आगे मूर्द्धावसिक्त के वंश में उत्पन्न होनेवाली कन्याओं का विवाह शुद्ध ब्राह्मणों के साथ पांच छः वा सात पीढ़ी तक होता जावे तो आगे आगे शुद्ध ब्राह्मण उत्पन्न होने लगेंगे, विपरीत करने से ब्राह्मणत्व का नाश होकर जिस वर्ण से सम्बन्ध करेंगे उसी वर्ण को प्राप्त होंगे।

कुल्लूक भट्ट प्रभृति जितने भी मनुस्मृति के संस्कृत टीकाकार हैं उन सब ने यही अर्थ किया है। इन श्लोकों पर बद्ध व्याख्यान भी है उसका भी यही अर्थ होता है, भाषा के टीकाकार भी यही अर्थ करते हैं।

प्रत्यक्ष में देखा गया है कि बकरी के साथ जब हिरण का संयोग होता है तब बकरी को गर्भ रह जाता है उस गर्भ का जो बच्चा पैदा होता है वह दोनों के रूप रंग को लेकर संसार में आता है यदि उस बच्चे (मादा) का सम्बन्ध बकरीजाति में होता रहे तो क्रम से हिरण के रूप को छोड़ता जाता है और सप्तम सन्तान शुद्ध

बकरी हो जाती है, इसी प्रकार यदि उस बच्चे का सम्बन्ध हिरणजाति में हो जाय तो बकरी के रूप रंग को क्रम से छोड़ता हुआ सातवीं पीढ़ी में वह शुद्ध हिरन बन जाता है। इसी आधार पर ये मनु के दो श्लोक हैं, यहां वीर्य और रज के प्रभाव से सम्बन्ध विच्छेदवाली जाति के परमाणु दूर होते जाते हैं और सम्बन्ध रखनेवाली जाति के रज-वीर्य से उसी की बाहुल्यता होती है।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने [क] दो श्लोकों में से एक चुरांया और एक का मनमाना अर्थ किया [ख] गुण, कर्म, स्वभाव श्लोक में नहीं हैं अपनी तरफ से मिला कर जाली अर्थ किया, निश्चय धर्मनिर्णायक के लिये ऐसा करना पाप है इस अनुचित कर्तव्य पर शास्त्रार्थ में आर्यसमाजियों को पश्चात्ताप करना पड़ता है।

स. प्र. पृ. ८६ पं. ३–धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम उत्तम वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस जिस के योग्य होवे ।१। वैसे ही अधर्माचरण से पूर्व पूर्व अर्थात् उत्तम उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचेवाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे।

वि०—सूत्रों का पाठ ऐसा है—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।१
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।२

आपस्तम्ब

प्रथम तो सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने आपस्तम्ब को प्रमाणकोटि में नहीं लिया, तृतीय समुल्लास में जहाँ आर्षग्रन्थ लिखे हैं वहां इसको छोड़ दिया अतएव सत्यार्थप्रकाश के लेखक का कोई हक नहीं कि आज इसको प्रमाण माने, जिस ग्रंथ को मानने से इन्कार कर दिया उसको फिर मान लेना यह साधारण भूल नहीं है भयंकर भूल है (२) यहाँ पर जो दोनों सूत्रों का अर्थ लिखा इस अर्थ में "जातिपरिवृत्तौ" पद का अर्थ नहीं किया यह दूसरी चालबाजी है। शुद्ध अर्थ यह है—

"धर्म के आचरण से छोटा वर्ण अपने अग्रिम उच्च वर्ण को प्राप्त होता है जन्म बदलने पर ।१। और अधर्म के आचरण से पूर्व वर्ण अपने से हीन वर्ण को प्राप्त होता है जन्म बदलने पर ।२।"

"जातिपरिवृत्तौ" पद का अर्थ होता है "जन्म बदलने पर" इसको उड़ा दिया, भला ऐसी ऐसी चालबाजियों से कभी धर्म का निर्णय होता है ? आर्यसमाजियो ! तुम विद्याध्ययन पर उतरो नहीं तो यह सत्यार्थप्रकाश तुम्हारी धार्मिक नाव को सूखे में डुबा कर छोड़ेगा।

वर्णव्यवस्था पर तर्क

स. प्र. पृ. ८४ पं. ५—जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन मुसलमान होगया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये।

वि०—आपके यहां एक भोज है, आप अपने इष्ट मित्रों को भोजन कराने के लिये बाजार से लड्डू लाये, दरवाजे की ठोकर खाके एक लड्डू नीचे नारदान में गिर गया, नारदान सूखा था, लड्डू भी फूटा नहीं इस कारण लड्डू की जाति नहीं बिगड़ी. उस लड्डू को आप खाओगे ? इसका यही जवाब मिलता है कि लड्डू भ्रष्ट हो गया। मिट्टी के घड़ों में दो ही दिन पानी पिया है इत्तिफाक से उन घड़ों में पेशाब के छींटे लग गये घड़ों का पानी खिड़ा दिया, घड़ों को खूंटी पर रख दिया दो वर्ष सूखते रहे, अब तुम उनका पानी पिओगे ? यही जवाब मिलता है कि नहीं पियेंगे, घड़े भ्रष्ट हैं। जो ब्राह्मण मुसलमान या ईसाई हो गया है वह जाति का अब भी ब्राह्मण है किन्तु भ्रष्ट हो गया, व्यवहार के लायक नहीं रहा।

काशी में एक हिरण मर गया, जो देखता है वही कहता है कि हिरण मर गया, मरने पर भी हिरणजाति ने पिण्ड नहीं छोड़ा, शरीर के परमाणु जब बिखर जायँगे तब जाति के पंजे से छूटेंगे। भेड़िया के चमड़े की ढोलक के थाप देने से बकरे के चमड़े की ढोलक उतर जाती है यह जन्मसिद्ध जाति का प्रभाव है तभी तो योग-दर्शन लिखता है कि—

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।

पाद० २ सू० १३

सब का मूल प्रारब्ध कर्म जब तक मौजूद है तब तक जाति, आयु, भोग ये तीन नहीं बदल सकेंगे।

अनोखी वर्णसंकरता

स. प्र. पृ. ८६ पं. ८–इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने अपने गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी।

वि०—वेदादि सच्छास्त्रों में यह माना है कि जब कोई स्त्री सौभाग्यवती हो या विधवा, परपुरुष से सहवास करके जो सन्तान पैदा करे वह सन्तान वर्णसंकर है जैसे—

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः ॥

गीता० अ० १ श्लो० ४१

हे वृष्टिवंशज कृष्ण ! जब स्त्रियाँ दुष्ट हो जाती हैं तब वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होती है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इस वर्णसंकरता को तो नियोग प्रकरण में पवित्र माना किन्तु एक घर में यदि दो भाई हों एक पढ़ा हो और एक न पढ़ा हो ये दोनों इकट्ठे रहें तो कुटुम्ब में वर्णसंकरता आ गई, इस नवीन वर्णसंकरता में कोई भी आर्यसमाजी शास्त्रीय प्रमाण नहीं दे सकता तब भी आर्यसमाज को माननी ही पड़ेगी। अभी विद्यासभा राजसभा कायम होकर वर्णों की तब्दीली नहीं होती इसलिये सत्यार्थप्रकाश के संसार में आने के दिन से आज तक जितने आर्यसमाजी मौजूद हैं वे सब वर्णसंकर हैं और इनकी बनाई हुई आर्यसमाज वर्णसंकर समाजें हैं। आर्यसमाजियों के पक्षपात को धन्य है सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने बहाने से उनको क्या बनाया यह सुनकर विचारशील मनुष्यों को दुःख है किन्तु आर्यसमाजी "हम वर्णसंकर हैं, हम वर्णसंकर हैं" इस राग को गाते हुये संसार में नाचते फिरते हैं।

जन्म से वर्णव्यवस्था

आर्यसमाज चाहे कुछ भी माने किन्तु स्वामी दयानन्द जी वर्णव्यवस्था जन्म से मानते हैं। कुछ नमूने देखिये—

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् । १। गर्भाष्टमे वा । २।
एकादशे क्षत्रियम् । ३। द्वादशे वैश्यम् । ४।

संस्कारविधि उपनयन संस्कार

इस आश्वलायन गृह्यसूत्र का स्पष्ट अर्थ यह है कि अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन करना। १। या गर्भ से अष्टम वर्ष में। २। और ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का। ३। तथा बारहवें वर्ष में वैश्य का। ४। यहां पर जन्म से ब्राह्मण और जन्म से क्षत्रिय तथा जन्म से वैश्य लिया है, स्वामी दयानन्द जी के माने हुये इस आश्वलायन गृह्य-सूत्रों के अर्थ को आर्यसमाजी कहां तक दबावेंगे ? अर्थ बदलने की चालबाजी मूर्खों के अगाड़ी चलेगी विद्वानों के आगे न चलेगी। सभी विचारशील मनुष्यों को यह मानना पड़ेगा कि यहां पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो माने गये हैं ये जन्म से माने गये हैं गुण, कर्म, स्वभाव से नहीं।

नामकरण संस्कार में स्वामी जी लिखते हैं कि—

शर्म ब्राह्मणस्य, वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य।

यदि लड़का ब्राह्मण हो तो उसके नाम के अन्त में शर्म, क्षत्रिय हो तो वर्म और वैश्य हो तो गुप्त लगाना। अब आर्यसमाजी बतलावें कि यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों का ग्रहण गुण, कर्म, स्वभाव से है या जन्म से ? क्या आर्य-समाजियों के दश दिन के लड़के विद्यासभा और राजसभा से वर्ण का सार्टीफिकेट लेकर आते हैं ? जिस समय ये प्रमाण शास्त्रार्थ में रक्खे जाते हैं उस समय आर्य-समाजी पंडितों को छठी का दूध याद आता है। षष्ठ समुल्लास के राजधर्म प्रकरण में बार बार कुलीनता ली है, कुल और कुलीनता का आधार जन्म है।

वर्णव्यवस्था का धोका

गुण, कर्म, स्वभाव का धोका देकर सनातनधर्मियों को गिराना है, यद्यपि इस वर्णव्यवस्था को आर्यसमाज आज तक अमल में न ला सकी है और न आगे को ला सकेगी। इसको इस प्रकार समझें कि आज आर्यसमाज में सहस्रों ब्राह्मण ऐसे हैं कि जिनकी सात पीढ़ी ने भी वेद और धर्मशास्त्र को नहीं पढ़ा, इनमें से कितने ही ग्रेजुएट हैं और कितने ही उर्दू के ज्ञाता हैं, कई एक रईस होने पर भी मूर्ख हैं इनको इतने पर भी आर्य प्रतिनिधि तथा परोपकारिणी आदि समस्त संस्थायें शर्मा लिखती हैं, इनको शूद्र क्यों नहीं बनाया जाता ? यदि आर्यसमाज इनको शूद्र बना दे तो धड़ाधड़ इस्तीफे लग जायं, इस कारण बिना लिखे पढ़े ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को आर्यसमाज शूद्र नहीं बना सकती। हां, एक लाभ अवश्य है वह यह कि गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था का बहाना करके कुछ धोबी, तेली, भंगी, चमार आर्यसमाजी अपने को

शर्मा लिखने लग गये अतएव गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था का धोका दे धर्म निर्णय करना नहीं वरन् गिरोह बढ़ाना है। जब शास्त्रार्थ में यह बात कही जाती है कि जो वेद नहीं पढ़े उन आर्यसमाजियों को तुम शूद्र बनाओ और तुम भी शूद्र बनो क्योंकि तुम लेक्चर देना जानते हो किन्तु वेदज्ञानशून्य हो। तब आर्यसमाजी पंडित घबरा कर यह कहने लगता है कि तुम तो आर्यसमाज पर कटाक्ष करते हो। बिन लिखे पढ़े ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आर्यसमाजियों को आज तक शूद्र क्यों नहीं बनाया ? क्या इसका जवाब कोई आर्यसमाजी देगा ?

विद्यासभा और राजसभा

स. प्र. पृ. ८६ पं. ११–(प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जाय तो उसके मां बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये? (उत्तर) न किसी की सेवा का भंग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक को राजसभा और विद्यासभा के निर्माण में कोई मंत्र न मिला और शास्त्रार्थों में सनातनधर्मी राजसभा तथा विद्यासभा के बनाने का प्रमाण मांगने लगे, तब आर्यसमाजियों ने "अहं रुद्रेभिः" इस सूक्त को सनातन-धर्मियों के सन्मुख रक्खा। इसमें न राजसभा का और न विद्यासभा का वर्णन है वरन् यह सूक्त ईश्वरशक्ति की महिमा का उपदेश करता है। इसमें शक्ति बतलाती है कि रुद्रादिक समस्त देवताओं के बनानेवाली मैं हूँ। इनमें जो नाम आये हैं वे देवताओं के नाम हैं इसके लिये "वेद सिद्धांत परिचय" का 'देवता' शीर्षक लेख पढ़ना चाहिये, एवं जिसको यह सूक्त पूरा पढ़ना हो वह 'वेद सिद्धांत परिचय' के 'मूर्तिपूजा' शीर्षक लेख को पढ़ ले, वहां पर यह सूक्त और इसका अर्थ लिखा हुआ है।

इस सूक्त के ऊपर निरुक्त लिखता है कि—

अथाध्यात्मिक्य उत्तमपुरुषयोगा अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना यथैतदिन्द्रो वैकुंठो लवसूक्तं वागाम्भृणीयमिति।

निरुक्त० दैवत कां० अ० १ पा० १

इसका भाषा करते हुये पं० गंजाराम जी शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर लिखते हैं कि "अब आध्यात्मिकी ऋचायें कहते हैं, वह आध्यात्मिकी हैं, जैसे यह हैं इन्द्र वैकुण्ठ (विकुण्ठ का पुत्र) "अहं भुवं सुनः पूर्व्यस्पतिः" इत्यादि से अपना वर्णन करता है, देखो [१०।४७-४८] और लवसूक्त जिस में लव इन्द्र ने "इति वा इतिमे मनो गामश्वं सनुयामिति" इत्यादि से अपना वर्णन किया है देखो [१०।१६६] और वागाम्भृणीय सूक्त जिसमें अंभृण ऋषि की कन्या वाक् ने "अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि" इत्यादि से अपना वर्णन किया देखो [१०।१२५]। यहां पर वाक् कन्या जब जीव से ब्रह्म बन गई तब वह अपनी ब्रह्मशक्ति का वर्णन करती हुई कहती है कि रुद्रादिक देवताओं के साथ मैं विचरती हूँ और इन सब का मैं ही निर्माण करती हूँ।

"अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि" इसके ऊपर भाष्य करते हुये सायण लिखते हैं कि—

अहमित्यष्टर्चं त्रयोदशं सूक्तं अंभृणस्य महर्षेर्दुहिता वाङ्-नाम्नी स्वात्मानमस्तौत्। अतः सा ऋषिः सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता तेन हि एषा तादात्म्यमनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वस्याधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं भवामीति स्वात्मानं स्तौति।

"अंभृण ऋषि की लड़की वाक् नामवाली ब्रह्मविद्या में निष्णात अपने आत्मा की स्तुति करती है इस वास्ते वह वाक् नाम की कन्या इस सूक्त की ऋषि है और सत्चित् सुखात्मक (आनन्दरूप) सर्वव्यापक परमात्मा इस सूक्त का देवता है उसी परमात्मा से यह तादात्म्य सम्बन्धवाली अनुभव करती हुई सर्व जगत्स्वरूप परमात्मा और सर्वाधिष्ठान रूप से कहती है कि मैं ही सब बनती हूँ। यहां पर उसका यह कथन जीवभाव को लेकर नहीं है वरन् ब्रह्म बनने की अवस्था का भाव है, मैं ही सब कुछ बनती हूँ इस भाव से आत्मा की स्तुति करती है"। निरुक्त और सायणभाष्य से सिद्ध है कि "अहं रुद्रेभिः" सूक्त में न राजसभा है, न विद्यासभा, यहां तो ईश्वर-शक्ति का महत्व है।

रही बात लड़के बदलने की, लड़के बदलने में वेद का विरोध है। देखिये —

न हि ग्रभायारणः सुशेवो
ऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ।

अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या
नो वाज्यभीषालेतु नव्यः ।

निरुक्त—न हि ग्रहीतव्योऽरणः सुसुखतमेऽप्यन्योदर्यो मनसापि न मन्तव्यो ममायं पुत्र इत्यथ स ओकः पुनरेव तद्देति यत आगतो भवत्योक इति निवास नामोच्यते । ऐतु नो वाजी वेजनवानभिवमाणः सपत्नान्नवजातः स एव पुत्र इति ।

"नहीं ग्रहण करने योग्य है दूसरे का पुत्र चाहे वह कितना भी सुखदायी क्यों न हो, दूसरे के उदर से उत्पन्न हुये पुत्र को कभी मन से भी न मानना चाहिये कि यह मेरा पुत्र है, वह कभी न कभी अपने उस कुटुम्ब को जाता है जिससे उसकी उत्पत्ति हुई है, हमको शत्रुओं को दबानेवाला प्रभावशाली अपने नवीन पुत्र की आवश्यकता है, वही हमारा पुत्र है" । पुत्र का परिवर्तन वेद ने साफ कर दिया ।

फोटू और जीवनचरित्र

स. प्र. पृ. ९० पं. ३—"जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको फोटोग्राफ कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें, जिस जिस का रूप मिल जाय उस उस के इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवा के देखें, जब दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव सदृश हों तब जिस जिस के साथ जिस जिस का विवाह होना योग्य समझें उस उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना, जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे, जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहां, नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है ।

वि०—अब तो सत्यार्थप्रकाश के लेखक हिन्दुओं को ईसाई बनाने पर ही तुल गये, किसी वेद या अङ्ग, दर्शन अथवा धर्मशास्त्र में यह आज्ञा नहीं कि विवाह होने के लिये वर कन्या के फोटू उतरें या जीवनचरित्र लिखे जावें। इतिहास और पुराणों में भी कोई घटना नहीं मिलती कि जिसमें वर कन्या के फोटू और जीवनचरित्र का उल्लेख हो एवं इनको देख कर विवाह हुआ हो, ऐसा यूरोप और अमेरिका में होता है, बस यह आर्यसमाज का वैदिक धर्म है!

गुप्त प्रश्न

स. प्र. पृ. ९० पं. १६—जो गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखं के एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।

वि०—गुप्त बातों की चोखी कही। सत्यार्थप्रकाश के लेखक यहां उन गुप्त बातों को लिख देते तो संसार का बड़ा उपकार हो जाता। खैर, वे भूल गये, अब कोई आर्यसमाजी कृपा करके लिखे। वर क्या गुप्त बात पूछे, क्या यही पूछे कि तुम्हारे आतशक कितने बार हुई? कभी सुजाक तो नहीं हुआ? तू बन्ध्या तो नहीं? तैंने कितने मनुष्यों के साथ सहवास किया? कन्या क्या पूछे कि तुम स्त्री के योग्य हो या नहीं? तुमने कितनी स्त्रियों के साथ हम-बिस्तरी की? हम-बिस्तरी करने पर स्त्रियां तुम से प्रसन्न रहीं? तुम्हारी हम-बिस्तरी का नतीजा क्या निकला? आदि आदि पूछे। यदि इनको नहीं पूछे तो और गुप्त बातें कौन हैं जिनको लिख लिख पूछे? इन गुप्त बातों के पूछने की विधि किस वेदमंत्र में है? यदि वेद में नहीं है तो आर्यसमाजियों ने इस चण्डूखाने की बकवाद को वैदिक कैसे माना? आर्यसमाजियों का सत्यार्थप्रकाश पर विश्वास बड़ा विकट है, विश्वास विकट नहीं है अविद्या महारानी का जबर्दस्त पंजा आर्यसमाजियों के शिर पर है वही पंजा सत्यार्थप्रकाश की ऊलजलूल बातों को वैदिकधर्म बतलाता है!

विवाह और गर्भाधान

स. प्र. पृ. ९० पं. २१—"जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तब वेदी और मंडप रच के पृ. ९० पं. २३ जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उसी दिन संस्कारविधि पुस्तकस्थ विधि के अनुसार सब कर्म करके मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सब के सामने पाणि-

ग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्त सेवन करें, पुरुष वीर्य-स्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसी के अनुसार दोनों करें।

वि०—रजस्वला होने पर जब विवाह धर्मशास्त्र से सिद्ध ही नहीं होता तो क्या यह आज्ञा कुरान से ली गई ? गृह्यसूत्रों में विवाह होने के पश्चात् कम से कम छः महीने और अधिक से अधिक तीन वर्ष विवाह करनेवाले पुरुष को ब्रह्मचारी रहना लिखा है, फिर उसी दिन गर्भाधान कैसा ? कई एक आर्यसमाजी कहेंगे कि हम गृह्यसूत्रों को नहीं मानते, यदि ऐसा है तो स्वामी दयानन्द की संस्कारविधि को फेंक दो जिसमें गृह्यसूत्रों की ही भरमार है, और यह भी बड़े मजे की बात है कि विवाह होते ही एकान्त स्थान ! अभी तो लड़कीवाले के नाते रिश्तेदार भी बिदा नहीं हुए, वे सब वहां ही पड़े रहें किन्तु दूल्हा दुलहिन का काम शुरू हो जाय। सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक यहां पर इतना और लिख देते कि समस्त औरतें मिलकर गर्भधारण करने के गीत गावें, इस अद्भुत विवाह (भयंकर निर्लज्जता) का भी कुछ ठिकाना है ? ऐसा तो नट और बेड़िया भी नहीं करते ! मेरी समझ में तो आज तक एक भी आर्यसमाजी ने ऐसा न किया होगा। फिर यह भी खूब लिखा कि स्त्री वीर्याकर्षण करे और पुरुष वीर्यस्थापन, सत्यार्थप्रकाश में जो इनकी विधि बतलाई है वह कहां है, क्या उसकी कोई पुस्तक आर्यसमाज ने छपवाई है ? नहीं छपवाई तो "विधि के अनुसार" तुम्हारा यह लिखना झूठा ठहरा; क्या लड़की वीर्याकर्षण को गुरुकुल से ही सीख कर आवे और लड़का भी गुरुकुल से ही वीर्यस्थापन का पंडित होकर आवे, क्या गुरुकुलों में इन दोनों कार्यों की शिक्षा का काफी प्रबन्ध है ? सत्यार्थप्रकाश क्या लिख रहे हैं, रसिक आर्यसमाजियों के लिये कोकसार तैयार कर रहे हैं।

जिस दिन विवाह उसी दिन सहवास और वीर्याकर्षण तथा वीर्यस्थापन किस वेदमंत्र में लिखा गया है कि जिसका अनुवाद सत्यार्थप्रकाश का यह लेख है जल्दी से जल्दी आर्यसमाजी इसका जवाब दें।

चांदमारी और सालम मिश्री का नुसखा

स. प्र. पृ. ९० पं० २९—जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्न चित्त रहें—डिगें नहीं, पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य प्राप्ति समय अपान

वायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें। गर्भ स्थिति होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को तो उसी समय हो जाता है परन्तु इसका निश्चय एक मास के पश्चात् रजस्वला होने पर सब को हो जाता है। सोंठ, केसर, असगन्ध, सफेद इलायची और सालम मिश्री डाल गर्म कर रक्खा हुआ जो ठण्डा दूध है उसको यथा रुचि दोनों पीके अलग अलग अपनी अपनी शय्या में शयन करें।

वि०—नासिका के सामने नासिका और नेत्र के सामने नेत्र करके पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री अपानवायु को ऊपर ले जाय यह चांदमारी (अद्भुत कवायद) आर्यसमाज के लंगड़े[1] वेद में तो कहीं है नहीं, मालूम होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक अनुभूत शिक्षा का उपदेश करते हैं और क्या कहा जा सकता है?

सालम मिश्री का नुसखा भी आर्यसमाज के लंगड़े वेद में हमको कहीं नहीं मिला, मिले तो तब जब उसमें हो। वैद्य लोग कहते हैं कि सुश्रुत चरकादि वैद्यक ग्रन्थों में भी इसका चर्चा कहीं नहीं। इस नुसखे को भी आप अनुभूत ही समझें और यह मामूली अनुभूत नहीं है नुसखा क्या है रामबाण है और यह भी मजे की बात लिख दी कि बाज बाज स्त्री को उसी समय गर्भ होने का ज्ञान हो जाता है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इसको स्त्रियों से पूछा होगा नहीं तो स्त्रियों के मामले का अनुभव पुरुष कैसे कर सकते हैं? एक दो स्त्री से पूछो तो इसका पता भी न चलेगा, बीसियों स्त्रियों से जब पूछो तब इस बात का ज्ञान हो सकता है, मालूम होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक के पास जब जब स्त्रियां आती थीं तब तब वे उन स्त्रियों से यही प्रश्न पूछा करते थे, यदि आर्यसमाज के लंगड़े वेद में ये सब बातें मौजूद हैं तब तो हम उसको रंगीला जायकेदार वेद कहेंगे।

लड़का क्या है वेद है

स. प्र. पृ. ९२ पं. १—"उस स्थान को शुद्ध करके उसके द्वार के भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादि का होम करे तत्पश्चात् सन्तान के कान में

[1] दयानन्द ने इस झूठी बात को सत्य करने के लिये यजुर्वेद भाष्य में एक मंत्र का यही अर्थ किया है जो अर्थ देवता विरुद्ध है।

पिता वेदोसीति अर्थात् तेरा नाम वेद है सुना कर घी और शहद को ले के सोने की शलाका से जीभ पर ओ३म् अक्षर लिख कर मधु और घृत को उसी शलाका से चटवावे।

वि०—लड़के को जो यह सुनाया जाता है कि 'तेरा नाम वेद है' क्या इस वाक्य को लड़का सुनकर समझ लेता है और लड़के के ऊपर इसका क्या प्रभाव पड़ता है? यह तो बतलाया कि तेरा नाम वेद है किन्तु यह नहीं बतलाया कि यह लड़का कौन वेद है, ऋग्वेद है या यजुर्वेद अथवा सामवेद किम्वा अथर्ववेद, संभव है कि आर्यसमाज का यह लंगड़ा वेद हो। हम यह सुना करते थे कि वेद चार ही हैं मगर अब तो हमें इस कथन से ज्ञान हो गया कि वेद कम से कम चालिस पचास हजार होंगे। क्या भूतल के आर्यसमाजियों के समस्त लड़के जोड़े जावें तो चालिस पचास हजार से कम बैठेंगे? ये सभी तो वेद हैं। फिर यह कहना कि हे लड़के तू वेद है यह कौन वेदमंत्र की आज्ञा है इसका आर्यसमाजी जरूर पता लगावें।

धायी का दूध और योनि का संकोचन

स. प्र. पृ. ९२ पं. ८–"छः दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर की पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनि संकोचादि भी करे छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिये कोई धायी रक्खे।

वि०—छः रोज माता का दूध पिलाना और सातवें दिन से धायी रखना यह द्वितीय समुल्लास में आ चुका है देखो "दुग्धपान" शीर्षक लेख। योनि संकोचन का विधान भी द्वितीय समुल्लास में आ गया है, देखो "स्त्री का योनि संकोचन और पुरुष का वीर्यस्तम्भन" किन्तु दिमाग की कमजोरी से सत्यार्थप्रकाश का लेखक पहिले लिखी बातों को भूल दुबारा लिख देता है यह पुनरुक्त दोष है।

संध्या

स. प्र. पृ. ९६ पं. २२–(प्रश्न) त्रिकाल संध्या क्यों नहीं करना? (उत्तर) तीन समय में सन्धि नहीं होती, प्रकाश और अन्धकार की सन्धि भी सायं प्रातः दो ही बेला में होती है जो इसको न मान कर मध्याह्न-

काल में तीसरी संध्या माने वह मध्यरात्रि में भी सन्ध्योपासन क्यों न करे ? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहे तो प्रहर प्रहर घड़ी घड़ी पल पल और क्षण क्षण की भी सन्धि होती है उनमें भी संध्योपासन किया करे।

वि०—लेखक ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में भी संध्या लिखी है और वहां भी दो ही वक्त करने का नियम बतलाया है; यहां फिर संध्या करना लिखते हैं और दो वक्त करने का नियम रखते हैं। हमने उत्तर में यह लिखा कि तैत्तिरीयारण्यक में मध्य संध्या का भी आचमन है इसलिये होनी चाहिये। यहां पर लेखक ने यह बतलाया कि जो मध्याह्न संध्या करेगा उसको अर्धरात्रि और घड़ी घड़ी पर संध्या करनी होगी, आपकी यह हुज्जत वेदशास्त्रानभिज्ञ आर्यसमाजियों के लिये भले ही रामबाण हो किन्तु आस्तिकों के सन्मुख यह कोई चीज नहीं। महाभाष्य लिखता है कि—

शब्दप्रमाणका वयं यच्छब्द आह
तदस्माकं प्रमाणम्।

हम शब्द के माननेवाले हैं जो वेद कह देगा वही हमको प्रमाण होगा, वेद ने मध्याह्न काल की संध्या बतलाई है इसलिये करनी होगी और आधीरात एवं घड़ी घड़ी पर वेद संध्या नहीं बतलाता—सत्यार्थप्रकाश बतलाता है इसलिये आर्यसमाजी करें।

यह भारत की कथा है कि द्रोपदी के भोजन करने पर दश हजार शिष्यों सहित दुर्वासा युधिष्ठिर के यहां काम्यबन में पहुँचा, युधिष्ठिर ने स्वागत के पश्चात् ऋषि से भोजन करने की प्रार्थना की, दुर्वासा स्नान-संध्या के लिये नदी पर चले गये, जब बहुत काल बीत गया तब कृष्ण ने सहदेव को भेजा कि बहुत देर हो गई ऋषियों को बुला लाओ।

स्नातुं गतान्देवनद्यां दुर्वासः प्रभृतीन्मुनीन्।
ते चावतीर्णाः सलिले कृतवन्तोऽघमर्षणम्॥

महाभा० वनप० अ० २६३ श्लो० २८

देवनदी के तट पर स्नान करने को गये हुये दुर्वासा आदि मुनियों को भोजन करने के लिये बुलाने गया उस समय मुनि जल में खड़े खड़े अघमर्षण कर रहे थे।

देवता

स. प्र. पृ. ९६ पं. ५–दूसरा देवयज्ञ विद्वानों का संग सेवा पवित्रता दिव्य गुणों का धारण दातृत्व विद्या की उन्नति करना है। स. प्र. पृ. ९७ पं. ५–तीसरा पितृयज्ञ अर्थात् जिसमें देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने पढ़ानेहारे, पितर जो माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी। स. प्र. पृ. ९७ पं. १७–'विद्वाꣳसो हि देवाः, यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं।

वि०—यद्यपि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में इन्द्रादिक देवों का अस्तित्व लिखा तो भी अब पितरों का अर्थ किया "विद्वान् माता पिता आदि" इस चालाकी से इन्द्रादि देव तथा पितरों को उड़ा कर शतपथ का प्रमाण लिख दिया कि "विद्वान् को ही देवता कहते हैं"।

यजुर्वेद अ० ६ मं० ७ "उपावीरस्युप" इस मंत्र पर शतपथ ने यह श्रुति लिखी है कि—

उशिजो वन्हितमानिति। विद्वाꣳसो हि देवा स्तस्मादाहोशिजो वन्हितमानिति।

शतपथ कां० ३ अध्या० ७। ३। १०

बुद्धिमान् यजमान को स्वर्ग में पहुँचानेवाले देवताओं में श्रेष्ठ। देवता बुद्धिमान् क्यों हैं इसके ऊपर श्रुति कहती है कि देवता जन्म से ही विद्वान् होते हैं इस कारण से ही देवताओं को बुद्धिमान् और वन्हितम कहा गया। श्रुति स्पष्ट कहती है कि समस्त देवता स्वभावसिद्ध बुद्धिमान् होते हैं। वेद के इस कथन को उखाड़ फेकने के लिये सत्यार्थप्रकाश के लेखक श्रुति के दो पद पहिले छोड़ और दो अन्त के छोड़ "विद्वाꣳसो हि देवाः" इस श्रुति का मनमाना अर्थ करते हैं यह खुल्लमखुल्ला धोका देना है। मनुष्यों से भिन्न देवजाति का वर्णन वेद में स्पष्ट है। देवों के वर्णन में वेद के एक दो मंत्र नहीं वरन् सैकड़ों मंत्र हैं इसके लिये पाठक "वेद सिद्धान्त परिचय" का "देवता" शीर्षक लेख पढ़ लें।

जाली वेदमंत्र

स. प्र. पृ. ९७ पं. १४–

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम् ।

स. प्र. पृ. ९७ पं. २३–

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम् ।

वि०—मृतक पितरों के तर्पण को उड़ा कर जावित पितरों का तर्पण करवाने के लिये सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने ये झूठे मंत्र बना कर तैयार किये। इन जाली मन्त्रों को मूर्ख मनुष्य भले ही वेद मान लें किन्तु वेदज्ञ इसकी निन्दा ही करते हैं।

बनावटी वेदमंत्र

स. प्र. पृ. ९८ पं. ५–

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् । अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् । वर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् । सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् । हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम् । आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम् । सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम् ।

वि०—सत्यार्थप्रकाश जीवित पितरों का तर्पण मानता है। हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि सोमसद् किस आर्यसमाजी का जीवित पितर है और अग्निष्वात्त किस का पितर है एवं कहां रहता है, यह कुशा पर बैठनेवाला वर्हिषद् भी किसी आर्यसमाजी का बाप होवेगा ही तथा सोमपाः जीवित आर्यसमाजी कौन है जो गुर्च का अर्क पीकर ही रह जाता है और कुछ खाता ही नहीं ? हविर्भुज् अग्नि में दी हुई आहुति को उड़ा जानेवाला आर्यसमाजियों का पितर क्या किसी कालेज का प्रेंसिपल है ? ओ हो, यह घी खाके रह जानेवाला आज्यपा क्या कोई उपदेशक है या चपरासी, दुनियाँ में इसको रोटियाँ ही नहीं मिलतीं। और सुकालिन पितर कौन हैं एवं आर्यसमाजी इनका तर्पण क्यों करते हैं ? आर्यसमाजियो ! तुम्हारा तो यह संकल्प है कि हम संस्कृत न पढ़ेंगे और सत्यार्थप्रकाश का यह संकल्प है कि हम आर्यसमाजियों को

मनुष्य न रहने देंगे-इनको पशु बनावेंगे। कितने अफसोस की बात है कि तुमको हैवान बनना स्वीकार किन्तु संस्कृत पढ़ना स्वीकार नहीं।

मनु जी इनके ऊपर क्या लिखते हैं जरा इसको तो पढ़ लो "विराट् सुताः सोमसदः ३। १९५" सोमसद विराट् के पुत्र हैं और "अग्निष्वात्ताश्च ३। १९५" में अग्निष्वात्त पितरों को मरीचि के पुत्र बतलाया है, "दैत्यदानव० ३। १९६" इस श्लोक में वर्हिषदों को अत्रि का पुत्र बतलाया है। फिर मनु जी लिखते हैं कि—

सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः।
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः।

मनु० अ० ३ श्लो० १९८

भृगु के पुत्र सोमपा और अंगिरा के पुत्र हविष्मन्त एवं पुलस्त्य के पुत्र आज्यपा तथा वसिष्ठ के पुत्र सुकालिन हैं।

आर्यसमाजियो, तुम इनको अपने जीवित बुजुर्ग समझ कर इनका तर्पण करते हो और ये पितृगण मृतक पितरों के देवता हैं, कहो सत्यार्थप्रकाश ने चक्करदार लेख लिख कर मृतक पितरों के देवताओं का तुमसे तर्पण करवा लिया या नहीं? जरा अक्ल से काम लो, अब तो नहीं कहोगे कि हम मृतक पितरों का श्राद्ध तर्पण नहीं करते?

यम तर्पण

स. प्र. पृ. ९८ पं. ८–"यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि।

वि०—हम आर्यसमाजियों से पूछते हैं कि इस लेख से जो तुम यम का तर्पण करते हो क्या वह यम भी तुम्हारा कोई जीवित पितर है? संस्कारविधि के अन्त्येष्टि संस्कार में "यमाय स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ कर यम के नाम की आहुति देनी लिखी और संस्कारविधि के नामकरण प्रकरण में चतुर्थी तिथि का देवता और भरणी नक्षत्र का देवता यम बतलाया। इसी सत्यार्थप्रकाश में दो पृष्ठ आगे बढ़ कर "सानुगाय यमाय नमः" इस मंत्र से यम के लिये एक ग्रास भोग दक्षिण की तरफ रखना लिखा और वेद कहता है कि—

यमाय पितृमते स्वधा नमः

अथर्व० कां० १८ अनु० ४ सू० ४ मं० ७४

पितरों के अधिपति यमदेव को यह आहुति प्राप्ति हो और मैं उनको प्रणाम करता हूँ। क्या अब भी आर्यसमाजी यम तर्पण पर विचार न करेंगे ?

श्राद्ध

स. प्र. पृ. ९७ पं. ७–श्राद्ध अर्थात् "श्रत" सत्य का नाम है। "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन्तत्तर्पणम्" जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि. पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायं उसका नाम तर्पण है परंन्तु यह जीवितों के लिये है मृतकों के लिये नहीं।

वि०—जीवित श्राद्ध की पुष्टि में एक भी वेदमंत्र न मिला, निरर्थक और अशुद्ध संस्कृत लिख दिया कि "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्"। और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन्तत्तर्पणम्"। इस संस्कृत को वेदमंत्र समझ आर्यसमाजी जीवित पितरों का श्राद्ध मानने लग गये। "श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्" यह श्राद्ध का लक्षण नहीं वरन् 'शाठ्यायनमुनि' "श्राद्धकल्प" में श्राद्ध का लक्षण यह लिखते हैं कि—

प्रेतान्पितॄंश्च निर्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः।
श्रद्धया दीयते यत्र तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्॥

मरे हुये पितरों के उद्देश्य से अपनेआप को प्यारे भोज्य पदार्थ जिस कृत्य में दिये जायं उसका नाम श्राद्ध है।

इस लक्षण से मृतक का श्राद्ध सिद्ध होता है जीवित का नहीं। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वलिवैश्वदेव प्रकरण में

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः

इस मंत्र से एक ग्रास अन्न रख कर जो भोग लगाया है क्या वह भोग जीवित पितरों का है ? दयानन्दकृत संस्कारविधि के "नामकरण प्रकरण" में मघा और अमावस्या के देवता लिख कर जो पितरों के नाम की आहुतियां दिलाई क्या इन आहुतियों को भी जीवित पितरों ने ही खाया ? 'संस्कारविधि' के "समावर्तन" प्रक-

रण में लिखा है "कि ब्रह्मचारी हाथ में जल ले अपसव्य और दक्षिण मुख हो के तथा बायां घुटना जमीन में डाल "ओं पितरः शुन्धध्वम्" इस मंत्र को पढ़ जल जमीन में छोड़ दे"। क्या यह तर्पण जीवित पितरों का ही है? यदि जीवितों का ही है तो अपसव्य, बायां घुटना तोड़ना क्यों? और फिर एक चुल्लू जल क्यों? दक्षिण को मुख कैसा? क्या आर्यसमाजियों के जीवित पितर नवाब हैदराबाद के यहां नौकर हैं जो दक्षिण को मुख करवाया जाता है? आर्यसमाज के ग्रन्थों में अब भी अनेक स्थलों पर मृतक पितरों का ही श्राद्ध-तर्पण लिखा है।

रही बात वेद की; जिस मनुष्य के सन्तान न होती हो उसको सन्तान उत्पन्न करने के हेतु श्राद्ध करना लिखा है। इस श्राद्ध में तीन पिण्ड होते हैं, मध्यम पिण्ड को पत्नी खाती है। इसके ऊपर ब्रह्मसूत्र लिखता है कि—

आधत्त पितरोगर्भमिति मध्यमं पिण्डं पत्नी प्राश्नीयात्।

आचार्य तो "आधत्त पितरोगर्भम्" इस वेदमंत्र को पढ़े और श्राद्ध करनेवाले की पत्नी मध्यम पिण्ड को भक्षण करे।

इसके ऊपर मनु जी लिखते हैं कि—

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूजनतत्परा।
मध्यमं तु ततः पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी॥ २६२
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम्।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्मिकं तथा॥ २६३

मनु० अ० ३

पितृपूजन में श्रद्धा रखनेवाली पतिव्रता विवाहिता स्त्री सुत की प्रार्थना करती हुई मध्यम पिण्ड को खावे। २६२। वह स्त्री आयुवाले, यशवान्, बुद्धिमान्, धनी, सात्विक, धर्मात्मा पुत्र को उत्पन्न करती है।

इसके ऊपर यही कातीय श्रौतसूत्र लिखता है कि—

आधत्तेति मध्यमं पिण्डं पत्नी प्राश्नाति पुत्रकामेति।

का० ४।१।२२

"आधत्त" इस मंत्र को आचार्य के उच्चारण करते समय 'मेरे पुत्र उत्पन्न हो' इस कामनावाली स्त्री मध्यम पिण्ड को खावे।

इस श्राद्ध में पिण्ड भक्षण के समय आचार्य जिस मंत्र का उच्चारण करता है वह मन्त्र यह है—

आधत्त पितरोगर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् ।
यथेह पुरुषोसत् ॥

यजु० अ० २ मं० ३३

हे पितरो ! पुष्पमाला पहिननेवाला पुत्र जिससे उत्पन्न हो तुम ऐसे गर्भ को सम्पादन करो ।

आज तक मृतक श्राद्ध होता रहा इसलिये मृतक पितरों से अपनी स्त्री में गर्भ सम्पादन की प्रार्थना की जाती थी किन्तु अब जीवित पितरों का श्राद्ध होगा तो अब यह प्रार्थना जीवित पितरों से की जायगी कि आप लोग इतनी मेहरवानी करें जिससे हमारी स्त्री के गर्भ रहे । संसार की दृष्टि में श्वशुर के द्वारा वधू में गर्भस्थापन भले ही पाप हो किन्तु आर्यसमाजियों को तो यह काम करवाना पड़ेगा । जीवित श्राद्ध के विधान से यही फल तो निकला है ।

जिस समय श्राद्ध में पितरों का आवाहन होता है उस समय यह मन्त्र बोला जाता है—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्नआवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥

अथर्व० कां० १८ अनु० २ सू० २ मं० ३४

जो पितर भूमि में गाड़ने के संस्कार से संस्कृत हुये हैं और जो दूर देश में काष्ट के समान त्याग देने से संस्कृत हुये हैं एवं जो अग्नि से संस्कृत हुये हैं तथा जो संस्कार के अनन्तर ऊपर के लोक पितृलोक में स्थित हैं ऐसे अनेक प्रकार के पितरों को हे अग्निदेव ! आप हवि का भक्षण करने के लिये लाइये । इन पितरों का जो श्राद्ध में आह्वान किया गया है यदि ये जीवित पितर हैं तब तो हम को यही कहना पड़ेगा कि आर्यसमाजियों की बुद्धि तरक्की कर गई ।

कठ० शाखा का काठीय श्रौतसूत्र बतलाता है कि—

पिता प्रेतः स्यात्पितामहो जीवेत्पित्रे पिण्डं निधाय
पितामहात्पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यादिति ।

जिसका पिता मर गया हो और पितामह जीवित हो तो पिता का पिण्ड रख कर पितामह को छोड़ कर पितामह से ऊपर के जो दो पितर हैं उनके नाम से पिण्ड रक्खे।

इसकी पुष्टि में मनु जी लिखते हैं—

पिता यस्य निवृत्तः स्याज्जीवेच्चापि पितामहः।
पितुः स नाम संकीर्त्य कीर्तयेत्प्रपितामहम्॥

मनु० अ० ३ श्लो० २२१

जिसका पिता मर गया हो और पितामह (बाबा) जीता हो वह मनुष्य श्राद्ध में पिता का नाम लेकर प्रपितामह (परबाबा) का नाम उच्चारण करे अर्थात् जो पितामह जीवित है उसके निमित्त पिण्डदान न दे। वेद लिखता है कि—

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामावेशयामि
देवो नो धाता प्रतिरात्यायुः।
परापरैता वसुविद्वो अ—
स्त्वधा मृताः पितृषु संभवन्तु॥

अथर्व० कां० १८ अनु० ४ सू० ४ मं० ४८

पृथिवी की विकार कुम्भी में हे पृथिवि! मृत्तिके! मैं तुझको प्रवेश कराता हूँ अर्थात् मिट्टी गोबर आदि के लेप से तुझ चरुस्थाली को कुछ दृढ़ करता हूँ, धाता देवता हम सब शव यज्ञ का अनुष्ठान करनेवालों की आयु को बढ़ावें, हे दूरदेश में गये हुये पितरो! यह मिट्टी गोबर से लिपी हुई चरुकुम्भी तुमको अन्न रूपी धन की प्राप्ति करनेवाली होवे, चरु स्वाहाकार के अनन्तर यह मृत पुरुष अपने पूर्वज पितरों से संयुक्त हो जावे। मृतक श्राद्ध की विधि को कहनेवाले मंत्र वेद में दो हजार के ऊपर हैं उन सब को इस ग्रन्थ में नहीं लिख सकते जिसको जानना हो वह यजुर्वेद का अध्याय १९ और अथर्ववेद का काण्ड १८ पढ़े या "यम और पितर" नामक पुस्तक मंगवा कर देखे।

वैश्वदेव

स. प्र. पृ. ९९ पं. १३—जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने उसमें से खट्टा लवणान्न और क्षार को छोड़ के घृत मिष्टयुक्त अन्न

लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित मंत्रों से आहुति और भाग करे—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहेऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

मनु० ३ । ८४

जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो उसका दिव्य गुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मंत्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे। ओं अग्नये स्वाहा। सोमाय स्वाहा। अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। विश्वेभ्यो-देवेभ्यः स्वाहा। धन्वन्तरये स्वाहा। कुह्वै स्वाहा। अनुमत्यै स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। सह द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा। स्विष्टकृते स्वाहा। इन प्रत्येक मंत्रों से एक एक वार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मंत्रों से भाग रक्खे। ओं सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक यहां पर ठीक लिख रहे हैं किन्तु इस ठीक लिखने को आर्यसमाजी नहीं मानते, आर्यसमाजी इसका खण्डन करते हैं और यदि आर्यसमाजियों से बहस करो कि यह तुमको मानना पड़ेगा, तो वे सत्यार्थप्रकाश के लेखक को भी गालियां देने लगते हैं, ऐसे आर्यसमाजियों के आगे अब कोई कहे तो क्या कहे। हां, विचारशील मनुष्य इस लेख की सत्यता के लिये नीचे के प्रमाणों को पढ़ें—

अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरयएव च ॥ ८५
कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजापतयएव च ।
सह द्यावा पृथिव्योश्च तथा स्विष्टकृतेऽन्ततः ॥ ८६

एवं सम्यग्घविर्हुत्वा सर्वादिक्षु प्रदक्षिणम् ।
इन्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानुगेभ्यो बलिं हरेत् ॥ ८७
मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेदप्स्वद्भ्यइत्यपि ।
वनस्पतिभ्य इत्येवं मुसलोलूखले हरेत् ॥ ८८
उच्छीर्षके श्रियै कुर्याद्भद्रकाल्यै च पादतः ।
ब्रह्मवास्तोष्पतिभ्यां तु वास्तुमध्ये बलिं हरेत् ॥ ८९
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ।
दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्यएव च ॥ ९०
पृष्ठवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये ।
पितृभ्यो बलिशेषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेत् ॥ ९१

मनु० अ० ३

पं० तुलसीराम स्वामी लिखते हैं कि 'वे देवता ये हैं' श्लोकों में कहीं कहीं चतुर्थी विभक्ति लगा कर फिर आगे स्वाहा शब्द जोड़ कर हवन करे। हम यहां स्वाहा सहित ठीक चतुर्थ्यन्त रूप लिखे देते हैं, देखिये। अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, धन्वन्तरये स्वाहा। ८५। कुह्वै स्वाहा, अनुमत्य स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, सह द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा, स्विष्टकृते स्वाहा। ८६। पहिले इस प्रकार हवन करके फिर चारों दिशाओं में प्रदक्षिणा के क्रम से सानुग, इन्द्र, यम, वरुण और सोम इनके लिये बलि दे। ८७। मरुद्भ्यः इससे द्वार पर और अद्भ्यः इससे जल में छोड़ दे। वनस्पतिभ्यः यह कह कर ओखली मूसल के पास। ८८। मकान के शिरप्रदेश में श्रिय कह कर रक्खे, मकान के पैर भूमि में भद्रकाली के लिये, ब्रह्म और वास्तोष्पति के लिये घर के बीच में। ८९। विश्वेभ्यो देवेभ्यः यह पढ़ कर ऊपर को बलि फेंक दे, दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यः और नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यः इन से भी आकाश में। ९०। मकान के पीछे सर्वात्म भूत के लिये और शेष बलि पितरों को दक्षिण में देवे। ९१।

यह भोग और बलिदान सत्यार्थप्रकाश ने उत्तम रीति से लिखा तथा यह सत्यार्थप्रकाश की मिथ्या कल्पना नहीं वरन् मनु इसकी पुष्टि करता है। आर्य-समाज के प्रसिद्ध पं० तुलसीराम स्वामी मेरठ ने इसको स्वीकार कर लिया। मूर्ति-

पूजा के शास्त्रार्थ में जब यह प्रकरण रक्खा जाता है तब आर्यसमाजी पंडित सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक और मनु तथा तुलसीराम इन तीनों को झूठा सिद्ध करने पर टूट पड़ता है।

सन्देह निवृत्ति

स. प्र. पृ. १०१ पं. २५–बिना अतिथियों के सन्देह निवृत्ति नहीं होती।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक बड़े स्वार्थी हैं पाव भर अन्न खिलाके अतिथि को सब रात नहीं सोने देते, यदि वह भ्रमण करता हुआ रात को कहीं जा कर ठहरे और सभी ठहरानेवाले रात भर न सोने दें तो इसकी तो मौज आ गई! इसका नाम अतिथिसेवा है या अतिथिहत्या? जो समस्त शास्त्र न पढ़ा हो या सन्देह न दूर कर सके उसकी तुम सेवा भी न करोगे यही तो स्वार्थ है। अतिथि नाम महिमान (पाहुने) का है वह चाहे पढ़ा हो या न पढ़ा हो उसकी सेवा करना गृहस्थ का धर्म है।

विधवाविवाह की विधि

स. प्र. पृ. ११० पं २६–(प्रश्न) स्त्री और पुरुष का बहुविवाह होने योग्य है वा नहीं? (उत्तर) युगपत् न, अर्थात् एक समय में नहीं! (प्रश्न) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहिये? (उत्तर) हां जैसे

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति॥

मनु० ९। १७६

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये।

वि०— [क] द्वितीयावृत्ति में "या चेत्" पाठ था सन् १८९८ में "सा चेत्" किया गया मगर भाषा "या चेत्" का ही रहा [ख] यह श्लोक विवाह प्रकरण का नहीं वरन् उस प्रकरण का है जहां मनु जी ने बारह प्रकार के पुत्र गिनवाये हैं [ग]

प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में इसका ठीक अर्थ लिखा था कि पौनर्भव (नियोग से उत्पन्न पुरुष) के साथ इसका विवाह होना चाहिये, द्वितीयावृत्ति में इसको उड़ा दिया [घ] ये युग्म श्लोक हैं उन में से एक को छोड़ दिया दूसरे को ले लिया इस चक्करदार चालबाजी से द्विजों में अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष का विवाह सिद्ध किया। अब इसका ठीक निर्णय देखिये—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भवउच्यते ॥ १७५
सा चेदक्षतयोनिः स्यादगतप्रत्यागतापि वा।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ १७६

मनु० अ० ६

जो पति की छोड़ी हुई वा बिधवा स्त्री अपनी इच्छा से दूसरे की भार्या होकर पुत्र को जने उसको पौनर्भव पुत्र कहते हैं। १७५। वह पौनर्भव स्त्री भाग गई हो और फिर लौट आई हो एवं अक्षतयोनि हो तो पौनर्भव पति के साथ उसका पुनः विवाह संस्कार हो सकता है। १७६। यह श्लोक का असली अर्थ था, यही असली अर्थ प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में लिखा था, पं० तुलसीराम जी स्वामी जो अपने समय में लासानी थे जिनके बराबर उस समय आर्यसमाज में कोई विद्वान् न था उनके स्वर्गवास होने पर भी इस सोसाइटी में आज तक वैसा विद्वान् और वैसा लेखक नहीं हुआ उन्होंने भी मनुस्मृति में यही अर्थ किया है। हम यह कह सकते हैं कि पंडित जी ने कुल्लूक भट्ट के अर्थ का ही भाषा किया है किन्तु इस सत्य अर्थ को आर्यसमाजी नहीं मानते ऐसे जिद्दियों को कोई कैसे मनवा सकता है। आजकल के आर्यसमाजी जिद्द के जोर पर ही स्वामी दयानन्द जी और पं० तुलसीराम जी से बड़ा बनना चाहते हैं।

द्विजों में विधवाविवाह का निषेध

स. प्र. पृ. १११ पं. ५–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये (प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है ? (उत्तर) (पहिला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून होना क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़कर दूसरे के साथ सम्बन्ध करले (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति व स्त्री के मरने के

पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पति के पदार्थों को उड़ा ले जाना और उनके कुटुम्बवालों का उनसे झगड़ा करना (तीसरा) बहुत से भद्रकुल का नाम वा चिह्न भी न रह कर उसके पदार्थ छिन्न भिन्न हो जाना (चौथा) पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये। पुनः स. प्र. पृ. ११४ पं० १०—द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय वार नहीं।

वि०—पहिले क्षतयोनि स्त्री के विवाह में सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने चार दोष दिखलाये, फिर उनको मालूम पड़ी कि ये दोष तो अक्षतयोनि स्त्री के विवाह में भी रहेंगे अतएव उन्होंने "इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः" इस मंत्र के नीचे क्षतयोनि और अक्षत-योनि दोनों प्रकार की स्त्रियों के विवाह का निषेध लिख दिया और इस निषेध में यह भी बतलाया कि द्विजों में स्त्री पुरुष का विवाह वेदादि सच्छास्त्रों ने एक ही वार करना लिखा है।

जिस प्रकार से सत्यार्थप्रकाश द्विजों में विधवाविवाह या पुनर्विवाह का निषेध करता है उसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि विवाह प्रकरण के "इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः" इस मन्त्र के नीचे लिख दिया कि "एक स्त्री के लिये एक पति से एक वार विवाह और पुरुष के लिये भी एक स्त्री से एक ही वार विवाह करने की आज्ञा है" फिर स्वामी दयानन्द जी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नियोग विषय के "कुहस्विदोषा" मंत्र के नीचे लिखते हैं कि—

"कुमारयोः स्त्रीपुरुषयोरेकवारमेव विवाहः स्यात्। पुनरेवं नियोगश्च नैव द्विजेषु द्वितीयवारं विवाहो विधीयते। पुनर्विवाहस्तु खलु शूद्रवर्णएव विधीयते तस्य विद्याव्यवहार-राहित्यात्।

इसका भाषा यह है कि लड़का लड़की का एक बार ही विवाह होता है और फिर नियोग होता है, द्विजों में द्वितीय वार विवाह का विधान नहीं है, पुनर्विवाह का तो शूद्र वर्ण में ही विधान किया गया है क्योंकि शूद्र को विद्याव्यवहार की शून्यता है।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने विधवाविवाह का खण्डन किया और साथ ही साथ यह भी दिखलाया कि वेदादि सच्छास्त्र इस विवाह का निषेध करते हैं, स्वामी

[illegible] इन्होंने विधवाविवाह का खण्डन कर लिख दिया कि द्विजों में विधवाविवाह का विधान ही नहीं किन्तु आर्यसमाजी इन दोनों महानुभावों के लेखों को चण्डूखाने की गप्प समझ द्विजों में विधवाविवाह करते हैं। पं० सूर्यप्रसाद जो पहिले आर्यसमाज कानपुर के मंत्री थे एक दिन उनसे हमने कहा कि स्वामी दयानन्द जी ने भी तो द्विजों में विधवाविवाह का खण्डन कर दिया है? इसके उत्तर में उन्होंने जवाब दिया कि क्या हम दयानन्द के लड़के हैं या चेले, हमारी दृष्टि में जैसे आप बेवकूफ वैसे स्वामी दयानन्द जी बेवकूफ। हम विचारशील आर्यसमाजियों से पूछते हैं तुम सच बतलाओ क्या तुम्हारी दृष्टि में आर्यसमाज धार्मिक सोसाइटी है?

नियोग के नवीन नियम

स. प्र. पृ. १११ पं. १८–जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें (प्रश्न) पुनर्विवाह और नियोग में क्या भेद है? (उत्तर) (पहिला) जैसे विवाह करने में कन्या अपने पिता का घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है (दूसरा) उसी विवाहिता स्त्री के लड़के उसी विवाहित पति के दायभागी होते हैं और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र कहलाते न उसका गोत्र होता, न उसका स्वत्व उन लड़कों पर रहता किन्तु वे मृतपति के पुत्र बजते, उसी का गोत्र रहता और उसी के पदार्थों के दायभागी होकर उसी घर में रहते हैं (तीसरा) विवाहित स्त्री पुरुष को परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है और नियुक्त स्त्री पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता (चौथा) विवाहित स्त्री पुरुष का सम्बन्ध मरणपर्यंत रहता और नियुक्त स्त्री पुरुष का कार्य के पश्चात् छूट जाता है (पांचवां) विवाहित स्त्री पुरुष आपस में गृह के कार्यों की सिद्धि करने में यत्न किया करते और नियुक्त स्त्री पुरुष अपने अपने घर के काम किया करते हैं (प्रश्न) विवाह और नियोग के नियम एक से हैं वा पृथक् पृथक्? (उत्तर) कुछ थोड़ासा भेद है, जितने पूर्व कह आये और यह कि विवाहित स्त्री पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिल के दश सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री पुरुष दो

वा चार से अधिक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते अर्थात् जैसा कुमार कुमारी ही का विवाह होता है वैसे जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाता है उन्हीं का नियोग होता है कुमार कुमारी का नहीं। जैसे विवाहित स्त्री पुरुष सदा संग में रहते हैं वैसे नियुक्त स्त्री पुरुष का व्यवहार नहीं किन्तु विना ऋतुदान के समय एकत्र न हों, जो स्त्री अपने लिये नियोग करे तो जब दूसरा गर्भ रहे उसी दिन से स्त्री पुरुष का सम्बन्ध छूट जाय और जो पुरुष अपने लिये करे तो भी दूसरे गर्भ रहने से सम्बन्ध छूट जाय परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्यन्त उन लड़कों का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती और एक मृत-स्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिये और दो दो अन्य चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है ऐसे मिलकर दश दश सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है।

वि०—[क] यह खूब रही कि 'जो ब्रह्मचर्य न रख सकें वे नियोग करके दूसरे की स्त्री में पुत्र पैदा कर लें'। जब कुतिया के पीछे एक कुत्ता कामातुर होकर लगता है उस समय यदि दूसरा कुता उस कुतिया के पीछे दौड़े तो वह प्रथम पीछे लगा हुआ कुत्ता इसको नहीं आने देता; जब प्रकृति इस बात को स्वीकार नहीं करने देती कि हमारी पत्नी के पास अन्य मनुष्य आजावे तो आर्यसमाजी मनुष्य सत्यार्थप्रकाश के लेखक के इस नवीन कानून को कैसे मान लेंगे [ख] यह नियोग उस दशा के लिये है कि जब ब्रह्मचर्य न रख सकें; यदि कोई स्त्री पुरुष दश सन्तान पैदा करने पर भी ब्रह्मचर्य न रख सकें तो वह फिर आगे को नियोग क्यों न करे? इसका उत्तर सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक ने नहीं दिया, क्या कोई आर्यसमाजी यह उत्तर देकर कामातुर मनुष्यों को कृतार्थ करेगा (१) नियम प्रथम में यह खूब कहा कि स्त्री अपने घर में रहे और नियोग करनेवाला उसी के घर पहुँच जावे; उस स्त्री के सास, श्वशुर, देवर जेठ सब घर में रहें उनके उस घर में रहने पर भी यह अपने नियोग का काम चालू कर दे ऐसा करने पर क्या स्त्री की लज्जा का स्वाहा न होगा? क्या यह नियोग चोरियां नहीं बढ़ावेगा। जब पुलिस चोर से पूछेगी कि तुम इनके घर में घंसे क्यों? इसके उत्तर में चोर कहेगा कि हम नियोग करने आये थे, यह सुन और नियोग को धार्मिक समझ पुलिस को चुप हो जाना पड़ेगा। (२) लेखक कहता है कि ये लड़के

नियोग करनेवाले के न होंगे, यह तो भाड़े का टट्टू है जब चाहो कान पकड़ कर इस नियुक्त पुरुष को निकाल दो। वेदादि सच्छास्त्र कहते हैं कि नियोग करनेवाली स्त्री के विवाहित पति के ये लड़के हो ही नहीं सकते, इसी व्यभिचारी के हैं। इस विषय में निरुक्त लिखता है—

अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायसे।
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥

निरुक्त ३।४

हे पुत्र! तू अंग अंग से उत्पन्न हुये वीर्य से हृदय द्वारा उत्पन्न होता है इसलिये तू मेरा आत्मा है, तू सौ वर्ष तक जी। नियोगज लड़के का जो शरीर बना उस शरीर के अंग नियोगी पुरुष के शरीर के अंगों से बने और उसी का वह आत्मा है इसीलिये इस निरुक्त में इस लड़के को "हे पुत्र" यह सम्बोधन दिया गया अब वह अपने इस पिता को छोड़ कर नियोगिनी स्त्री के पति का पुत्र कैसे होगा? इस प्रकार के हरामी पिल्लों में गोत्र कब होता है? और धर्मशास्त्र की दृष्टि से इनको पूरा दायभाग न मिल कर कुछ परवरिश के लिये मिलता है। (३) लेखक बतलाता है कि नियुक्त स्त्री पुरुष का सेवादि सम्बन्ध नहीं रहता, यह तो ठीक है—स्वार्थी मनुष्यों में प्रेम कहां? गणिका में ही देख लो, जब प्रेम नहीं तब सेवा शुश्रूषा भी नहीं। (४) बतलाया जाता है कि नियोगी पति और नियोगिनी स्त्री में विवाहित स्त्री पुरुषों कैसा सम्बन्ध नहीं होता; इन दोनों में सम्बन्ध हो तो क्या हो यहां तो वह मसल है कि "दम भाई किस के, दम लगाई खिसके" काम किया और चल दिये। (५) ये नियोगी स्त्री पुरुष अपने अपने घर का काम न करें तो क्या करें और परस्पर में एक दूसरे के घर का काम करें तो क्यों करें जब कि इनमें भोग को छोड़ अन्य किसी प्रकार का सम्बन्ध ही नहीं। (६) यह कौन कानून है कि विवाहित स्त्री पुरुष मिल कर दश लड़के पैदा करें और नियोगिनी स्त्री एवं नियोगी पुरुष दो चार ही करें इसका उत्तर देना आर्यसमाजियों के जिम्मे है। (७) एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती है और एक मृतस्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिये और दो दो अन्य चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है ऐसे मिल कर दश दश सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है।

वेद में न नियोग शब्द है, न नियोग की चर्चा, न नियोग करने की आज्ञा, न पुत्रों की तादाद; वेद की तो कौन कहे यह नवीन नियोग तो वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन,

वेद के अंग, पुराण, इतिहास में भी कहीं नहीं। अपने मन से मनुष्य चाहे कितना ही पाप करे किन्तु इस पाप की आज्ञा तो कुरान और बाइबिल में भी न होगी। सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक का मन बिगड़ गया अतएव वह इस व्यभिचार को सुखदाता और धर्म बतला इसका अनुष्ठान करना कराना चाहते हैं इसलिये उन्होंने इस भयंकर पाप को वेदसम्मत लिखा है

वेद में नियोग की आज्ञा

स. प्र. पृ. ११४ पं. २१-

कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना
कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतु ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं
मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥

ऋ० मं० १० सू० ४० मं० २

हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! जैसे (देवर विधवेव) देवर को विधवा और (योषा मर्यन्न) विवाहिता स्त्री अपने पति को (सधस्थे) समान स्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानोत्पत्ति को (आकृणुते) सब प्रकार से उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहां रात्रि और (कुहवस्तः) कहां दिन में बसे थे ? (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थों की प्राप्ति (करतः) की और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास करते थे? (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयन स्थान कहां है ? तथा कौन वा किस देश के रहनेवाले हो ? इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री पुरुष संग ही में रहें और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे (प्रश्न) यदि किसी का छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे ? (उत्तर) देवर के साथ परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसा तुम समझते हो वैसा नहीं, देखो निरुक्त में—

देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्यते । निरु० अ० ३ खं० १५

देवर उसको कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्णवाला हो जिससे नियोग करे उसी का नाम देवर है।

स. प्र. पृ. ११५ पं० २२–

अदेवृघ्न्यपतिघ्नी हैधि
शिवा पशुभ्यः सुयमाः सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा
स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥

अथर्व० कां० १४ अनु० २ मं० १८

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवर को दुःख न देनेवाली स्त्री तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करने हारी (सुयमाः) अच्छे प्रकार धर्म नियम में चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्र विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादि से सहित (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को जनने (देवृकामा) देवर की कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवर को (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्र को (सपर्य) सेवन किया कर।

वि०—वेदों के काल्पनिक (मिथ्या) अर्थ करना यह आजकल आर्यसमाजियों का स्वाभाविक धर्म है। इस मंत्र पर यास्क ने निरुक्त दिया है यह अर्थ उसके भी विरुद्ध है, ठीक अर्थ यह है "हे अश्विनौ तुम दोनों रात्रि में कहां थे और (वस्तोः) नाम दिन में कहां थे जिससे न रात्रि में, न दिन में तुम्हारा दर्शन हमें मिला, स्नान भोजनादि की प्राप्ति कहां की, कहां निवास करा, सर्वथा तुम्हारी आगमन प्रवृत्ति नहीं जानी जाती (को वां शयुत्रा विधवा देवरं योषा मर्यं इव) शयन में जैसे विधवा देवर की और स्त्री अपने पति की परिचर्या करती है ऐसे कौन तुम्हारी परिचर्या करता था जिससे तुम्हारा आगमन नहीं हुआ।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक के किये बनावटी अर्थ और हमारे असली अर्थ दोनों को टटोलिये किसी भी अर्थ में नियोग शब्द या नियोग की विधि नहीं है केवल उपमा उपमेय को लेकर इस मंत्र से नियोग सिद्ध किया जाता है और "विधवा देवरं योषा मर्यं इव" ये जो दो दृष्टान्त हैं ये छिपने में हैं, विधवा के साथ देवर का नियोग और

पति के साथ स्त्री के विवाह करने में नहीं। निरुक्त ने देवर के विषय में दो प्रकार का विवेचन लिखा है एक तो "देवरः कस्माद्द्वितीयो वर उच्यते" पति के छोटे भाई को देवर क्यों कहा गया इसलिये कि वह दूसरा वर है। और निरुक्त का दूसरा विवेचन यह है कि "देवरो दीव्यतिकर्मा" भाष्ये–"स हि भर्तृ भ्राता नित्यमेव तया भ्रातृभार्यया देवनार्थं क्रीयत इति देवर इत्युच्यते" अर्थात् भाई की स्त्री की सुश्रूषा करने से इसका नाम देवर है–यह "दीव्यतिकर्मा" का अर्थ है। निरुक्त के दोनों प्रवचन परस्पर में विरोध रखते हैं यह सभी की समझ में आता है किन्तु मनु जी कहते हैं कि दोनों ही ठीक हैं; कन्या का वाग्दान हो जाने पर विवाह से पहिले यदि उसका पति मर जावे तो ऐसी विधवा के साथ देवर का विवाह हो सकता है, इसी को लेकर निरुक्त ने देवर को दूसरा वर कहा है, निरुक्त का एक पक्ष ठीक हो गया। फिर मनु जी लिखते हैं कि यदि स्त्री के साथ पुरुष का पूर्ण विवाह हो जावे तो उस पुरुष का छोटा भाई स्त्री का देवर "दीव्यतिकर्मा" होगा, उसको अपने बड़े भाई की स्त्री की सेवा करनी होगी। इन दोनों भावों का स्पष्टीकरण करते हुये मनु जी पहिले पक्ष की पुष्टि में लिखते हैं कि—

यस्या म्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।
तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः॥

मनु० अ० ६ श्लो० ६६

जिस कन्या का वाग्दान हो गया हो और विवाह न हुआ हो, यदि उसका पति मर जावे तो उस कन्या को उस लड़की का देवर विवाह ले। दूसरे पक्ष की पुष्टि में मनु जी कहते हैं कि—

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्यायां गुरुपत्न्यनुजस्य सा।

मनु० अ० ६ श्लो० ५७

ज्येष्ठ भाई की जो स्त्री है वह छोटे भाई की माता है। द्वितीय पक्ष की आज्ञा में इतिहास भी मिलता है—

कुण्डले नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

लक्ष्मण कहते हैं कि भगवन्! मैं कुण्डलों को नहीं पहचानता, कंकणों को भी नहीं जानता, केवल पैरों के आभूषण नूपुरों को जानता हूँ क्योंकि मैं नित्य ही माता जी का चरणाभिवादन करता था।

अब उपमा को लगाइये; जैसे देवर को विधवा स्त्री, कौन विधवा ? वाग्दत्ता विधवा और पति को पत्नी एकान्त में छिप कर सेवन करती है वैसे ही तुम कहां छिपे ? और तुम्हारी परिचर्या कौन करता रहा ? धर्मशास्त्र के विरुद्ध एवं निरुक्त के एक पक्ष को छोड़ कर जो बलात्कार इस मंत्र से नियोग निकाला गया उसको संसार में कोई भी मनुष्य मान नहीं सकता।

"अदेवृघ्न्यपतिघ्नी" इस मंत्र के अर्थ को हम छोड़ते हैं, अर्थ नियोग नहीं कहता, इस मंत्र से जो नियोग सिद्ध किया जाता है उसका आधार "देवृकामा" पद है, देवृकामा से ही मार कूट के नियोग निकाला गया है। देवृकामा का यह अर्थ किया कि 'देवर मेरा पति हो ऐसा चाहनेवाली स्त्री' किन्तु देवृकामा का यह अर्थ नहीं होता, देवृकामा का तो यह अर्थ होता है कि मेरे देवर हो ऐसा चाहनेवाली। शास्त्र में इसी अर्थ के उदाहरण मिलते हैं—

(१) स्वर्गकामो यजेत (२) पुत्रकामः स्त्रियं गच्छेन्नरो युग्मासु रात्रिषु (३) पुत्रकामा (४) धनकामा (५) पशुकामा। स्वर्ग की कामनावाला यज्ञ करे, यहां पर यह अर्थ नहीं है कि स्वर्ग हमारा पति हो जाय, पुत्र कामनावाला पुरुष युग्म रात्रियों में स्त्री के पास गमन करे, यहां पुत्रकामः का यह अर्थ नहीं है कि पुत्र ही हमारा पति हो। 'पुत्रकामा' पुत्र को चाहनेवाली 'धनकामा' धन को चाहनेवाली और 'पशुकामा' पशुओं को चाहनेवाली जिस तरह अर्थ होता है कि मेरे पुत्र हो, मेरे धन हो, मेरे पशु हों इसी प्रकार मंत्र में "देवृकामा" का यह अर्थ है कि मेरे देवर हो या रहे। दोनों ही मंत्रों में नियोग नहीं है, नियोग का होना बलात्कार अपने मन से मान लिया।

स्त्री के नियुक्त पतियों की संख्या

स. प्र. पृ. ११२ पं. १७–

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४५

हे (मीढ्व इन्द्र) वीर्य सिंचने में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्ययुक्त कर, विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान।

हे स्त्री ! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पतिको समझ ।

स. प्र. पृ. ११६ पं. ८–[प्रश्न] एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं और विवाहित नियुक्त पतियों का नाम क्या होता है [उत्तर]

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

ऋ० मं० १० सू० ८५ मं० ४०

हे स्त्रि ! जो [ते] तेरा [प्रथमः] पहिला विवाहित [पतिः] पति तुझको [विविदे] प्राप्त होता है उसका नाम [सोमः] सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से सोम, जो दूसरा नियोग से [विविदे] प्राप्त होता वह [गन्धर्वः] एक स्त्री से संयोग करने से गन्धर्व, जो [तृतीय उत्तरः] दो के पश्चात् तीसरा पति होता है वह [अग्निः] अत्युष्णता युक्त होने से अग्नि संज्ञक और जो [ते] तेरे [तुरीयः] चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं वे [मनुष्यजाः] मनुष्य नाम से कहाते हैं । जैसे [इमां त्वमिन्द्र] इस मंत्र से ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है ।

वि०—जिस समय विवाह का अन्तिम समय आता है उस समय वर इन्द्र से प्रार्थना करता है कि हे (इन्द्र) इन्द्रदेव (मीढ्वः) वर्षा करने में श्रेष्ठ (इमाम्) इसको (सुपुत्राम्) सुन्दर पुत्रोंवाली (सुभगाम्) सौभाग्यवती (कृणु) कर (अस्याम्) इसमें (दश) दश (पुत्रान्) पुत्र (आधेहि) दो (एकादशम्) ग्यारहवें (पतिम्) पति को (कृधि) बनाये रक्खो । अब वर्षा करनेवाले इन्द्रदेव को तो मार भगाया और वर का नाम इन्द्र रक्खा एवं (मीढ्वः) का अर्थ था वर्षा करनेवाला अब लिख दिया कि वीर्य सेचने में समर्थ वर तू इसमें दश तो लड़के उत्पन्न कर और इसके ग्यारह पति कर [क] यह मंत्र विवाह में बोला जाता है विवाह में ही कन्या उससे कहती है, विवाहकाल में ही पति का बुरा चेतना कितनी खराब बात है । यदि आर्यसमाजियों को यह मंत्र और सत्यार्थप्रकाश के लेखक द्वारा किया गया इसके अर्थ का ज्ञान हो जाय तो आर्यसमाजी इस मंत्र को संस्कारविधि से निकाल कर फेंक दें ।

विवाह पर बैठे हुये ही ग्यारह पति की आज्ञा मांगना इसको कन्या और कन्या के माता पिता, वर और वर का पिता बहुत ही बुरा समझेंगे।

कई एक मनुष्य कहेंगे कि इसमें ग्यारह पति तो नहीं लिखे, वे आंख खोल कर देखें। आगे लिखा है कि "इमां त्वमिन्द्र मीढ्व" इस मंत्र से ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है। और स्त्री के ग्यारह पति होने में "सोमः प्रथमो विविदे" यह एक दूसरा मंत्र भी प्रमाण में दे दिया। "सोमः प्रथमो विविदे" इस मंत्र का अर्थ यह है, ऋग्वेद के नवम खण्डस्थ पवमान सूक्तों में लिखा है कि "सोमो गौरी अधीश्रितः" आठ वर्ष की कन्या पर चन्द्रमा का अधिकार होता है कन्या पर चन्द्रतत्व का अधिकार होने से कन्या की कान्ति-रूप-लावण्य की वृद्धि होती है इन गुणों को लेकर ही यहां कन्या को गौरी कहा है फिर "गन्धर्वो विविद उत्तरः" चन्द्रमा अपना भोग समाप्त कर नवम वर्ष के आरम्भ में कन्या गन्धर्व को देता है, गन्धर्व का अधिकार होने से नवम वर्ष में कन्या की वाद्य और गान में रुचि जाती है, यदि इस समय इसको गाना बजाना सिखाया जावे तो जल्दी सीख जाती है और कंठ की मधुरता भी विलक्षण होती है ये ही गन्धर्व के अधिकार के चिन्ह हैं "तृतीयो अग्निष्टे पतिः" यह गन्धर्व अपना अधिकार समाप्त कर दशवें वर्ष के आरम्भ में इस कन्या को अग्नि के सपुर्द करता है, अग्नि के अधिकार से इस वर्ष में कन्या के चेहरे पर प्रकाश, लावण्य और लाली आती है, गर्भाधान की शक्ति जो जन्म से इस कन्या के साथ आ रही है वह बढ़ जाती है उस स्थान में रुधिर का विशेष संचय होता है यह अग्नि एकादश वर्ष के आरंभ में अपना अधिकार समाप्त कर मनुष्य को देता है इसी के ऊपर लिखा है कि "तुरीयस्ते मनुष्यजाः" वेद कन्या से कहता है कि तेरा चतुर्थ पति मनुष्य है। देवता शरीर की रक्षा करते हैं इसलिये उनको पति कहा है, कन्या के तीन पति देव हैं और चतुर्थ मनुष्य है यह वेदमंत्र का अभिप्राय है।

इस मंत्र में नियोग का नाम तक नहीं, आर्यसमाजी वेद शास्त्र में कुछ नहीं समझते, जो कुछ लिख दिया जायगा अविद्या के कारण वे उसी को वेदार्थ मान लेंगे, इस अभिप्राय से इस मंत्र से नियोग निकाला गया है और बड़ी भारी गलती यह है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक "मनुष्यजाः" को जो एकवचन है बहुवचन समझते हैं यहां तक कि "मनुष्यजाः" का विशेषण 'तुरीयः' एकवचन है तो भी 'मनुष्यजाः' को बहुवचन समझ लिया, जिस प्रकार "विडौजाः" एकवचन है उसी प्रकार "मनुष्यजाः" भी एकवचन है।

सोम, गन्धर्व, अग्नि ये मनुष्य नहीं हैं वरन देवता हैं। विवाह में वर कहता है कि—

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥

अथर्व० कां० १४ अनु० २ सू० २ मं० ४

सोम ने गन्धर्व को दिया और गन्धर्व ने अग्नि को दिया अग्नि ने इस धन एवं पुत्रों को मुझे दिया। इस मंत्र से सिद्ध है कि सोम-गन्धर्व-अग्नि ये देवता हैं, देवताओं को मनुष्य बना साधारण मनुष्यों को धोका दे पाप के गढ़े में ढकेलना यह धर्मनिर्णायक का काम नहीं। नियोग के नवीन नियमों में एक स्त्री के पाँच नियुक्त पति लिखना और यहां पतियों की संख्या ग्यारह कर देना ऐसी मोटी भूल तो हिन्दी दर्जा दो का लड़का भी नहीं कर सकता। सिद्ध हो गया कि एक स्त्री के पांच पति या ग्यारह पति वेद नहीं बतलाता।

प्रथम नियोग

सत्यार्थप्रकाश द्वितीयावृत्ति पृ. १२० पं. २५—

"गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे।

वि०—सन् १८९६ अप्रैल के महीने में मिश्र ज्वालाप्रसाद जी का व्याख्यान छंगामलवालों की धर्मशाला दिल्ली में हो रहा था, बीच के दिन चावड़ीबाजार की आर्यसमाज प्रश्न करने के लिये आई और एक मनुष्य ने नियोग विषय का ही प्रश्न किया। मिश्र जी ने इस नियोग की ऐसी भयंकर मिट्टी पीट जनता का समझा दिया कि स्त्री से न रहा जाय तो अपने पति को तो छोड़ दे किसी अन्य से नियोग करके एक लड़का पैदा कर उसको दे दे। न रहा जाय तो पति से भोग क्यों न करे क्या पति में अब वह आनन्द नहीं रहा? दूसरे से भोग कर ले इसको देख प्रत्येक मनुष्य यह कहेगा कि आर्यसमाज की स्त्रियों में और रंडियों में कोई अन्तर नहीं। जब स्त्री पेट में गर्भ लिये है तो दूसरा गर्भ कहां रक्खेगी जो नियोगी को पुत्र पैदा करके दे देगी? मिश्र जी के इस कथन का ऐसा असर पड़ा कि आर्यसमाजी भी शरमिन्दा हो गये। सन् १८९७ में पाठ बदल कर ऐसा कर दिया कि—

"गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घरोगी

पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति कर दे"।

यह प्रथम नियोग किस वेदमंत्र में लिखा है शास्त्रार्थ में जब यह प्रश्न खड़ा होता है उस समय आर्यसमाजी या तो लड़ाई कर बैठते हैं या प्रश्न का उत्तर छोड़ भिन्न विषय में चले जाते हैं। क्या कोई आर्यसमाजी वह मंत्र पेश करेगा कि जिसमें यह नियोग है ?

द्वितीय नियोग

स. प्र. पृ. ११४ पं. २४–

उदीर्ष्व नार्यभिजीवलोकं
गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं
पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ ॥

ऋ० मं० १० सू० १८ मं० ८

स. प्र. पृ. ११५ पं. १४–हे [नारी] विधवे तू [एतं गतासुम्] इस मरे हुये पति की आशा छोड़ के [शेषे] बाकी पुरुषों में से [अभिजीवलोकम्] जीते हुये दूसरे पति को [उपैहि] प्राप्त हो और [उदीर्ष्व] इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो [हस्तग्राभस्य दिधिषोः] तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो [इदम्] यह [जनित्वम्] जना हुआ बालक उसी नियुक्त [पत्युः] पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान [तव] तेरा होगा ऐसे निश्चय युक्त [अभिसम्बभूथ] हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे।

वि०—इस मंत्र का अन्त्येष्टि कर्म (मुर्दे के फूकने) में विनियोग है और पितृमेध इसका देवता है, जब इसका पितृमेध देवता है तब फिर इससे नियोग कैसे निकलेगा। जिस समय कोई मनुष्य मर जाता है तब उसकी पत्नी शिर की तरफ बैठ कर लेती है उस समय से पितृमेध की क्रिया आरंभ हो जाती है। मरते हुये मनुष्य के पैर दक्षिणा दिशा में किये जाते हैं इसलिये शिर की तरफ उत्तर दिशा में

बैठ कर उसकी पत्नी जब रोती है और घर के मनुष्य मुर्दे को श्मशान ले जाने को तैयार होते हैं तब क्या क्रिया होती है इसके ऊपर आश्वलायन गृह्यसूत्र लिखता है—

उत्तरतः पत्नीम् । १६

मृतक के उत्तर की तरफ पत्नी को बिठलाया जावे।

धनुश्च क्षत्रियाय । १७

यदि मृतक शरीर क्षत्रिय है तो मृतक के उत्तर की तरफ धनुष रक्खे और पत्नी न बैठे।

तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोन्तेवासी ।
जरद्दासो वोदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकमिति । १८

मृतक पति के समीप से उसका देवर और देवर के अभाव में कोई पड़ोसी या बूढ़ा नौकर 'उदीर्ष्व नारी' इस मंत्र को बोल के उस स्त्री को उठावे।

कर्ता वृषले जपेत् । १९

यदि उठानेवाला शूद्र है तब मंत्र को न बोले क्योंकि शूद्र को वेद का अधिकार नहीं इस सन्देह को दूर करने के लिये यह सूत्र है इसका अर्थ यह है कि कर्ता शूद्र हो तो इस मंत्र को एकान्त में बैठ कर आचार्य जपे। जो लोग इस मंत्र में नियोग मानते हैं क्या वे धनुष का भी नियोग करवावेंगे ? मंत्र का ठीक अर्थ यह है—

(नारि) हे नारि मृतक की पत्नी (जीवलोकम्) जीवित विद्यमान पुत्र पौत्रादि के निवास स्थान घर को (अभि) देख कर (उदीर्ष्व) इस स्थान से उठ, तेरे बिना पुत्रादि का पालन कौन करेगा (एतम्) इस (गतासुम्) मृतक के (उपशेषे) समीप लेटी है यहां से (एहि) आओ कारण कि (हस्तग्राभस्य) विवाह समय हाथ ग्रहण करनेवाले (दिधिषोः) गर्भाधान करनेवाले (पत्युः) इस पति के सम्बन्ध से प्राप्त हुये (तव) तुम्हारे (इदम्) इस (जनित्वम्) पत्नीपन को (अभि) देख कर (सम्बभूथ) पति के साथ मरने का निश्चय तैंने किया है सो निश्चय छोड़ कर उठ।

यह दारुण अवसर भी नियोग का नहीं। जिस जाति में विधवाविवाह होता है उसमें भी पहिले मुर्दा उठाया जाता है फिर उसका दहन होता है इसके पश्चात् मृतक की जाति के अनुसार क्रियायें होती हैं इस सब कृत्य होने के पश्चात् कुछ दिन स्त्री विधवा होकर रहती है तत्पश्चात् वह पत्यन्तर ग्रहण करती है किन्तु यहां तो न

मृतक की जातिक्रियायें हुईं, न मुर्दे को दाग दिया, अधिक कौन कहे अभी तो मृतक-शरीर घर में ही पड़ा है उसकी स्त्री लाश के पास पड़ी रो रही है, लोगों के कहने सुनने पर भी उसके हृदय में धैर्य नहीं आता। जब स्वर्गरूपी गृह उसकी दृष्टि में भयंकर नरक हो गया है, जब वह स्त्री पति के बिना इस संसार में रहना भी नहीं चाहती उस समय उसको यह कौन कहेगा कि तू मेरे साथ नियोग कर ले। ऐसे भयंकर समय में जब आर्यसमाजी उस स्त्री से यह कहते हैं कि यह मर गया तो मर जाने दे, इन आये हुये मनुष्यों में से किसी से नियोग कर ले—इस दुष्ट व्यवहार से हम आर्यसमाजियों को दयाहीन निर्लज्ज कहे बिना नहीं रह सकते।

तृतीय नियोग

स. प्र. पृ. ११७ पं. १६–(प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पति के भी ? (उतर) जीते भी होता है।

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्। ऋ. मं. १० सू. १०

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू [मत्] मुझसे [अन्यम्] दूसरे पति की [इच्छस्व] इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी।

वि०—आर्यसमाजियों में जो साहस है उसकी प्रशंसा किये बिना हम नहीं रह सकते जैसे आर्यसमाजी अपनी स्त्री को आज्ञा दे देते हैं कि अब हम में सामर्थ्य नहीं है तू किसी और से मजे उड़ा। इतना साहस अन्य मजहब के मनुष्यों में न निकलेगा। यहां पर ½ मंत्र की तो चोरी कर ली केवल ½ मंत्र जनता के आगे रख उससे नियोग सिद्ध कर दिया। यह मंत्र यम-यमी सूक्त का है और पूर्ण मंत्र इस प्रकार है –

आघातागच्छानुत्तरा युगानि
यत्र जामयः कृणवन्नजामि।
उपबर्बृहि वृषभाय बाहु
मन्य मिच्छस्व सुभगे पतिं मत्॥

ऋ० मंड० १० अ० १ सू० १० मं० १०

वे युग (समय) आगे आयेंगे जब कि बहिनें न बहिनोंवाला काम करेंगी, सो हे सुभगे ! तू मुझ से भिन्न पति को ढूंढ़. उसी पूर्ण युवा के लिये अपनी भुजा को तकिया बना। जिस मंत्र में भाई बहिन के विवाह का निषेध था उस में से नियोग निकाल लेना यह क्या कम बुद्धिमत्ता है ? कई एक मनुष्य इस नियोग के कारण आर्यसमाज को बुरा बतलाते हैं। बतलाया करें, है काम परोपकार का। जब से यह नियोग चला है कई एक रंडुओं के मजे छनने लगे हैं।

चतुर्थ नियोग

स. प्र. पृ. ११८ पं. ३–

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षड्यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥

मनु० ९।७६

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले, जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे।

वि०—आर्यसमाजी सिविल सर्विस परीक्षा के लिये वलायत जाया करते हैं कहीं छठे वर्ष पास न हों और सातवें वर्ष पास हों, सार्टीफिकेट लेकर घर आवें तो एक सार्टीफिकेट स्त्री के पास भी तैयार मिलेगा। मनु जी लिखते हैं कि—

विधायवृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः।
अवृत्तिकर्षिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि ॥ ७४
विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता।
प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः ॥ ७५
प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।
विद्यार्थं षड्यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ ७६

मनु० अ० ९

जब पति परदेश को जाय तो स्त्री के खानपान का प्रबन्ध करके जाय क्योंकि जीविका के प्रबन्ध विना (स्थितमति) नेक स्त्री भी दूषित हो जाती है। ७४। यदि पति खानपान का प्रबन्ध कर जाय तो स्त्री पति के परदेश रहते उबटना, तेल, इतर न लगावे, अधिक पुष्ट भोजन न खाय इत्यादि नियमों में स्थित होकर अपना काल-क्षेप करे। और यदि पति वृत्ति का कुछ प्रबन्ध न कर जावे तो फिर स्त्री को चाहिये कि अनिन्दित दस्तकारी (अपने हाथ के काम सीना पिरोना या काढ़ना आदि) से गुजर करे किन्तु कोई निन्दा का काम न करे। ७५। यदि पति धर्म के लिये परदेश गया हो तो आठ, विद्या और यश के लिये गया हो तो छः, यदि किसी और काम को गया हो तो तीन वर्ष उसकी प्रतीक्षा करे। इसके बाद क्या करे, वसिष्ठस्मृति लिखती है कि "अतऊर्ध्वं पति सकाशं गच्छेत्" इसके पश्चात् फिर वह अपने पति के पास वहां चली जावे कि जहां उसका पति है। मनु ने इस श्लोक में न नियोग करना लिखा और न पति के पास जाना लिखा किन्तु मनु के समस्त टीकाकार वसिष्ठस्मृति के पाठ को लेकर इसका अर्थ पति के पास जाना ही करते हैं। अगर सनातनधर्मियों के कहने में आकर आर्यसमाजी बेवकूफ बन इस नियोग को बन्द कर देते तो आर्य-समाज मनुष्यगणना में इतनी उन्नति न पाती।

नियोग की अप्रमाणिकता

इन नियोगों को तो आर्यसमाजी भी नहीं मानते। पं० बदरीदत्त जोशी भूतपूर्व उपदेशक कानपुर ने सन् १९१२ में सत्यार्थप्रकाश के समस्त नियोगों का खण्डन सनातनधर्मपताका मुरादाबाद में छपवाया। वेदतीर्थ श्री नरदेव शास्त्री ने आर्य इतिहास में लिखा कि इस नियोग के जिम्मेदार वेद नहीं हैं, सत्यार्थप्रकाश है। श्रद्धानन्द उर्फ मुंशीराम ने नियोग के ऊपर यह लिखा कि यह द्विजों के लिये नहीं है वरन् शूद्रों के लिये है, देखिये उनका रचा "आदिम सत्यार्थप्रकाश"। आर्यसमाजियों ने इस नियोग को चालू भी नहीं किया। ऐसे नियोग का नाम सुन कर आर्यसमाजी घबरा जाते हैं। अदालतों ने भी इस नियोग को 'जिनाकारी' के नाम से लिखा है। देखिये—

मुकदमे की नकल

गंगाप्रसाद सनातनधर्मी ने नियोग का खण्डन करके मजा देख लिया है भला यह कोई बात थी गंगाप्रसाद ने नियोग का खण्डन कर दिया। गंगाप्रसाद के लिखे हुए ग्रन्थ का खण्डन कोई आर्यसमाजी नहीं कर सकता था आखिर धर्मरक्षा के लिये मुकदमा चलाना पड़ा।

मुकदमा—

मुद्दई—मेहरचन्द मेम्बर आर्यसमाज, पेशावर।

मुद्दाअलेह—गंगाप्रसाद सनातनधर्मी।

अदालत—

मौलवी अंजामअलीखां साहब मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल, पेशावर।

ज़ेर दफा ५०५

तारीख ८ दिसम्बर सन् १८९१ ई०

इस मुकदमे के दो अदालतों के फैसले सुनिये—

"इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि दयानन्द की खास पुस्तक सत्यार्थ-प्रकाश में व्यभिचार की तालीम मौजूद है, मुद्दई खुद इस बात को स्वीकार करता है कि वह उन नियमों पर जिनमें विवाहिता स्त्री को अपने असली पति के जीते जी. किसी अन्य पुरुष विवाहित के साथ भोग करने की आज्ञा है विश्वास रखता है। यह रिवाज बेशुभह व्यभिचार है इस वास्ते यह जिक्र करते हुये कि दयानन्द के शिष्य इन उपरोक्त नियमों पर विश्वास लाये हुये रस्म व्यभिचार का आरम्भ कर रहे हैं और अगर इन नियमों पर इनका विश्वास इसी तरह रहा तो ये इस व्यभिचार को ज्यादा उन्नति देंगे मुद्दाअलेह ने सचाई से एक प्रकट बात को प्रकाशित किया है"।

आर्यसमाजियों ने इस फैसले की अपील साहब जज के यहाँ की। जज साहब बहादुर ने इस अपील को खारिज कर दिया और खारिज करते हुये यह रिमार्क दिया—

"दयानन्द के नियम ऐसे नियम हैं कि वे हिन्दूधर्म तथा दूसरे मजहबों की निन्दा करते हैं और इस किताब (सत्यार्थप्रकाश) के चन्द हिस्से खुद भी निहायत फुहश (घृणित) हैं"।

आर्यसमाजी वास्तव में सत्यार्थप्रकाश में लिखे हुये नियोग से घृणा करते हैं। सत्यार्थप्रकाश का लेख झूठा न हो जाय इस हेतु से यह कह चलते हैं कि सनातन-धर्मियों के यहाँ भी तो नियोग लिखा है। इसका उत्तर यही है कि सनातनधर्म में नियोग अवश्य है किन्तु सनातनधर्मी वेदों में नियोग नहीं मानते, धर्मशास्त्र और इतिहास में नियोग का लिखा रहना मानते हैं। धर्मशास्त्र, पुराण और इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया कि ब्राह्मण तथा वैश्य जाति में सृष्टि के आरम्भ से आज तक कभी नियोग नहीं हुआ, यह केवल क्षत्राणियों के लिये है। सभी क्षत्राणियों के लिये नहीं, केवल रानियों के लिये। वह भी काम-भावना से नहीं, संसार की रक्षा के लिये राजवंश

पुत्रोत्पन्न करने के लिये। नारदस्मृति ने नियोग पर लिखा है कि—

मुखान्मुखं परिहरन्गात्रैर्गात्राण्यसंस्पृशन्।
कुले तदवशेषे च सन्तानार्थं न कामतः॥

मनु० अ० ६ श्लो० १४७ कुल्लूक भट्ट टीका में

मुख से मुख न लगे और शरीर से शरीर न भिड़े, इस विधि से कुल नष्ट होने पर केवल सन्तान प्राप्ति के लिये यह नियोग है, काम-भावना के लिये नहीं। मनु जी लिखते हैं कि कामी चक्रवर्ती राजा वेन ने नियोग के इस पवित्र नियम को तोड़ सहवास का नियोग बनाया, इस सहवास की सन्तानें भी इतिहास में मिलती हैं किन्तु धर्मशास्त्रों का यही नियम है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर इन तीन युगों में ऐसे ऋषि मौजूद थे कि जो बिना सहवास के सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति रखते थे। कलियुग में ऐसे ऋषि नहीं मिलते अतः कलियुग में नियोग न होना चाहिये।

उक्तो नियोगो मनुना निषिद्धः स्वयमेव तु।
युगक्रमादशक्योऽयं कर्तुमन्यैर्विधानतः॥१
तपो ज्ञानसमायुक्ताः कृतत्रेतायुगे नराः।
द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हिनिर्मिता॥२
अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्च पुरातनैः।
न शक्यन्तेऽधुना कर्तुं शक्तिहीनैरिदंतनैः॥३

बृहस्पतिस्मृति लिखती है कि मनु ने नियोग का विधान किया और स्वयं ही नियोग का खंडन भी कर दिया, युग के ह्रास से यह नियोग सब लोग कर सकें यह अशक्य है। १। सतयुग, त्रेता, द्वापर में जो मनुष्य थे वे तप और ज्ञान दोनों से युक्त थे किन्तु कलियुग में तप और ज्ञान न होने के कारण मनुष्यों की शक्ति की हानि हो गई। २। पुरातन ऋषियों ने अनेक प्रकार के जैसे माण्डूक्य, ऋष्य, शृङ्ग, आदि पुत्र उत्पन्न किये। शक्तिहीन इस कलियुग में पैदा हुये मनुष्य अब उस प्रकार के पुत्र पैदा नहीं कर सकते। ३। सनातनधर्म में यह नियोग का लब्बेलुबाब है।

॥ इति चतुर्थ समुल्लासः ॥

❀ अथ पञ्चम समुल्लासः ❀

सन्यास का उपदेश

स. प्र. पृ. १२५ पं. ७—

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥
मनु. ६ । ३३

इस प्रकार वन में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से लेके पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे । (प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके संन्यासाश्रम करे उसको पाप होता है वा नहीं (उत्तर) होता है और नहीं भी होता है ।

वि०—यह मनु का लेख लोगों को दिखला, संन्यास का महत्व बतला, उनके ठगने की कुंजी है । आर्यसमाज में जितने भी संन्यासी हैं वे प्रायः पलंग पर सोते, षड्रस भोजन खाते, सभाओं से रुपये ले जाते आदि आदि सब काम करते हैं । इन गरीबों की कथा कौन कहे स्वामी दयानन्द जी को ही लीजिये—इनकी रसोई में षड्रस भोजन बनता था, रबड़ी और मलाई खूब खाते थे, लक्षों रुपया संचय किया, सीधे में आये हुये दाल आटे को भी बेच लेते थे, हुक्का पीते थे, भंग छानने की आदत ही थी, अंग्रेजी लिबास रखते थे, कोट पहिनते थे, पांच पांच जोड़े अंग्रेजी जूता साथ चलते थे, महर्षि और रमाबाई के पत्र-व्योहार को भी पढ़ लें । जब आर्यसमाज के जन्मदाता ही संन्यासी बन कर समस्त विषयों का सेवन करते थे तब इन गरीब संन्यासियों का कौन दोष है । आर्यसमाज में जितने भी सिद्धान्त हैं वे सब दिखलाने के हैं आचरण के लिये एक भी नहीं । यह संगत्याग का नमूना है ।

ब्रह्मप्राप्ति

स. प्र. पृ. १२५ पं. २५—

नाविरतोदुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥
कठ० वल्ली २ मं० २३

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है वह संन्यास लेके भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता ।

वि०—जिस संन्यासी में ये दुर्गुण नहीं हैं उसको ब्रह्म प्राप्त होता है यह सत्यार्थ-प्रकाश के लेख का भाव है। जबकि आर्यसमाज के मत में ब्रह्म के कोई स्वरूप नहीं तब वह प्राप्त कैसे होगा ? यदि हम जीव का ब्रह्म हो जाना मान लें तब भी ब्रह्म प्राप्त होना असम्भव है क्योंकि आर्यसमाज के मत में जीव, ईश्वर, प्रकृति तीनों ही अनादि हैं अतएव अनादि जीव ब्रह्म बन नहीं सकेगा अब यह लेख नशे की तरंग नहीं तो और क्या है। आर्यसमाजी बतावें कि ब्रह्म की प्राप्ति कैसे होगी ?

पण्डितमानी

स. प्र. पृ. १२६ पं. १८–

अविद्यामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीरा पंडितम्मन्यमानाः ।
जंघन्यमानाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

मुण्ड० खं० २ मं०८

जो अविद्या के भीतर खेल रहे अपने को धीर और पंडित मानते हैं वे नीच गति को जाने हारे मूढ़ जैसे अन्धे के पीछे अन्धे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं वैसे दुःखों को पाते हैं ।

वि०—यह घटना आर्यसमाज में सोलह आने चौसठ पैसे घट रही है। स्वामी दयानन्द के संस्कृत को पढ़ कर लघु पढ़े हुये विद्यार्थियों को भी हँसी आ जाती है। स्वामी जी ने व्याकरण में पण्डित बनाने के लिये 'वेदाङ्गप्रकाश' और 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' आदि ग्रन्थ बनाये थे, आर्यपण्डितों ने इन ग्रन्थों को कूड़ा करकट समझ कर पठन पाठन से उड़ा दिये। इस योग्यतावाले स्वामी जी अपने को महर्षि लिखते हैं। हिन्दी का अक्षर न जाननेवाले आर्यसमाजी सत्यार्थप्रकाश के लेख को वैदिक सिद्धांत मानते हैं, बस 'अन्धेन नीयमाना यथान्धा' की घटना आर्यसमाज में परिपूर्ण रूप से पाई जाती है फिर यह आर्यसमाज दूसरों को सुमार्ग पर लावेगी यह दुराशा मात्र है, यह तो अपने ही को सुमार्ग पर नहीं ला सकती।

मुक्ति से लौटना

स. प्र. पृ. १२७ पं. ३–

वेदान्तविज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
मुड० खं० २ मं० ६

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेदमन्त्रों के अर्थज्ञान और आचार में अच्छे प्रकार निश्चित संन्यास योग से शुद्धांतःकरण संन्यासी होते हैं वे परमेश्वर में मुक्तिसुख को प्राप्त हो भोग के पश्चात् जब मुक्ति में सुख की अवधि पूरी हो जाती है तब वहां से छूट कर संसार में आते हैं, मुक्ति के बिना दुःख का नाश नहीं होता ।

वि—[क] यह प्रमाण मुण्डक का है । मुण्डकोपनिषद् आर्यसमाज का धार्मिक ग्रन्थ नहीं यह बात सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखी जा चुकी है देखो "वैदिक-मत" नामक लेख । जब मुण्डक आर्यसमाज का धार्मिक ग्रन्थ नहीं है फिर उसका प्रमाण लेकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि करना यह पागलपन नहीं है ? [ख] यह खूब कहा कि "मुक्ति से छूट जाते हैं" अभी तो आप नवम समुल्लास में मुक्त जीवों के लिये स्वेच्छाचारी शरीर धारण करना लिखेंगे और अब छूटना लिखते हैं, आर्यसमाज की मुक्ति क्या है एक प्रकार का जेलखाना है जैसे मनुष्य जेल से छूटते हैं वैसे ही आर्य-समाजी मुक्ति से छूटते हैं, छूटने का यही अर्थ होगा कि विवश रह कर छुटकारा पाना । [ग] 'परमेश्वर में मुक्तिसुख को प्राप्त हो' यह एक विचित्र लेख है यदि जीव का परमेश्वर में मिलना मान लें तो यह असम्भव है क्योंकि आर्यसमाज के मत में कभी भी जीव ब्रह्म में मिलता नहीं और यदि अनन्त ब्रह्म के अन्दर वह जीव सुख का अनुभव करता है तो मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग सभी तो ब्रह्म के अन्दर सुख दुःख का भोग करते हैं फिर यहां 'ब्रह्म में सुखपूर्वक' इस लेख लिखने का अभिप्राय क्या है ? इस अभिप्राय को वे ही आर्यसमाजी समझेंगे कि जिन्होंने अभी तक हिन्दी के अक्षरों को शत्रु समझ रक्खा है । [घ] जीव मोक्षसुख को भोग कर जो फिर संसार में आता है वह किनके कर्मों से आता है, आर्यसमाज सुसाइटी के कर्मों से या पड़ोसियों के कर्मों से ? क्योंकि वह अपने कर्मों को तो मोक्ष में भोग कर ही समाप्त कर देता है । मुण्डक में 'परिमुच्यन्ति' का अर्थ है कि कर्मबन्धन से छूट

ब्रह्म में लय होना। इस वेदसिद्धान्त को सत्यार्थप्रकाश का लेखक गपोड़ा समझ उड़ा देना और मोक्ष से लौटना यह नया सिद्धान्त निर्माण करना चाहता है इसलिये कुछ का कुछ लिखता है। मोक्ष का पूर्ण विवेचन नवम समुल्लास में होगा।

संन्यासी का कर्तव्य

स. प्र. पृ. १२७ पं. १६–

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथभिक्षाचर्यं चरन्ति

शत० कां० १४ प्र० ५ ब्रा० २ कं० १

लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ, धन से भोग वा मान्य पुत्रादि के मोह से अलग होके संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं।

वि०—[क] "पुत्रैषणा" यह प्रमाण शतपथ का है और शतपथ को सत्यार्थ-प्रकाश ने पुराण माना है देखो तृतीय समुल्लास में "पुराण इतिहास" शीर्षक लेख और आर्यसमाज के लिये केवल वेद ही प्रमाण हैं इसके लिये तृतीय समुल्लास का "वैदिक मत" शीर्षक लेख को पढ़ लें। जब शतपथ आर्यसमाज का धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं तब उस शतपथ से धर्म का निर्णय करना मनुष्यों की आँखों में धूल झोकना है। [ख] इस प्रकार के संन्यासी आर्यसमाज में पाये नहीं जाते, टके सब लेते हैं और पूछने पर यह कह देते हैं कि क्या करें आजकल टके लिये बिना काम ही नहीं चलता, यदि "वित्तै-षणा" संन्यासी के लिये बुरी है तो फिर आगे चल कर इसी समुल्लास में संन्यासी को धन देने के लिये "विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्" यह श्लोक बना कर क्यों लिखा? [ग] हम अन्य संन्यासियों की क्या कहें आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी ही "वित्तैषणा" से न बच पाये! वित्त इकट्ठा करने के लिये सीधे में मिला हुआ आटा दाल भी और भेंट में मिले हुये वस्त्र तक बेंच लेते थे। उनका धन जो मनुष्यों के पास रह गया उसका तो हम चर्चा ही नहीं करते किन्तु मरने के पश्चात् जो बैंक में जमा था और वह धन आर्यसमाज को मिला क्या यह "वित्तैषणा" के बिना ही संग्रह हो गया था? जब स्वामी जी की यह दशा है तो अन्य आर्यसमाजी संन्यासी धन संग्रह करें तो वे निन्दित कैसे?

ब्राह्मण का ही संन्यासी होना

स. प्र. पृ. १२७ पं. २०—

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा
ब्राह्मणः प्रव्रजेत् ॥१॥ यजुर्वेद ब्राह्मणे
प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥

मनु० ६ । ३८

प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत शिखादि चिह्नों को छोड़ आहवनीयादि पांच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणों में आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकल कर संन्यासी हो जावे ।

वि०—[क] प्राजापत्येष्टि तो स्वामी दयानन्द जी ने वेदों से उड़ा दी, अब आर्यसमाजी इस इष्टि को क्या कुरान से करेंगे ? यही तो वेद के अर्थ बदलने का मजा है । [ख] फिर परमेश्वर की प्राप्ति कैसी ? क्या इस इष्टि से निराकार परमेश्वर मिल जाता है या जीव ईश्वर बन जाता है, यदि ऐसा नहीं तो परमेश्वरप्राप्ति चण्डूखाने की गप्प है । [ग] आहवनीयादि अग्नियों को पंचप्राण में आरोपण करना आर्यसमाज के साकल, माध्यन्दिनी. कौथुमी और शौनकी शाखारूप वेद में कहीं लिखा ही नहीं और इस क्रिया को एक भी आर्यसमाजी जानता नहीं, क्या इसके लिये आर्यसमाजी सनातनधर्मियों को गुरु बनावेंगे ? [घ] ब्रह्मवित् के क्या मानें ? ब्रह्म करके ईश्वर का ग्रहण करें तो एक भी आर्यसमाजी ब्रह्मवित् नहीं हो सकता क्योंकि आर्यसमाज के मत में परमेश्वर निराकार है और निराकार को न मन जान सकता है और न वाणी बतला सकती है । यदि ब्रह्म शब्द से हम वेद लें तो आर्यसमाज के मत में ब्राह्मण तथा उपनिषदें एवं ग्यारह सौ सत्ताईस शाखायें वेद नहीं, आर्यसमाजीवेद से कोई आज तक ब्रह्मवेत्ता हुआ नहीं और आगे को हो सकता नहीं फिर ब्रह्मवित् का अर्थ क्या होगा ? इसको आर्यसमाजी जानें । [ङ] अनेक दूकानदार बढ़िया चीज दिखा कर गंवार ग्राहक को घटिया दे देते हैं ऐसे दूकानदारों को संसार ठग के नाम से याद करता है । आर्यसमाज यहां पर ब्राह्मणों को संन्यास का अधिकार बतलाता है किन्तु इस समाज ने जितने भी संन्यासी बनाये हैं उनमें एक भी ब्राह्मण नहीं । पूर्णानन्द

कुम्हार, आत्मानन्द कुर्मी, विवेकानन्द जोगी, नारायण स्वामी कायस्थ, ब्रह्मानन्द बनियां। जब सत्यार्थप्रकाश ने ब्राह्मण को ही संन्यास लेने का अधिकारी लिखा तो ब्राह्मणेतर मनुष्यों को जो आर्यसमाज ने संन्यासी बनाया तो क्या इनको कुरान की आज्ञा से संन्यासी बनाया या इञ्जील के हुकुम से ? इसका जवाब आर्यसमाजी क्या देते हैं। [च] जब हम यह कहते हैं कि वेद पढ़ने का अधिकार द्विजों को ही है शूद्रों को नहीं, तब आर्यसमाजी कहते हैं कि क्या तुम्हारा ईश्वर पक्षपाती है जो शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं देता। यहां पर यही हुज्जत हमारी है कि क्या सत्यार्थप्रकाश का लेखक पक्षपाती नहीं है जो ब्राह्मणों को संन्यास लेने की आज्ञा देता और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को संन्यास लेने के अधिकार से दूर भगा रहा है।

संन्यासी का आचरण

स. प्र. पृ. १२८ पं. १९–

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥५॥ मनु. ६

इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, रागद्वेष को छोड़ सब प्राणियों से निर्वैर बर्त कर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे।

वि०—[क] बात तो ठीक है, मनु की कही हुई है, किन्तु आर्यसमाजी संन्यासी इससे साढ़े नौ फिट दूर रहते हैं, स्वामी दयानन्द जी जो आर्यसमाज के प्रवर्तक हुये हैं उनका मुंह तो गालियों का हेडकार्टर था। रही अधर्माचरण की बात, स्वामी दयानन्द जी ने सेकेंड क्लास का किराया देना कर पत्र भेज रमाबाई को क्यों बुलाया ? संन्यासी को तो स्त्री के पास बैठने का भी निषेध है। सम्वत् १९४२ में हम मेरठ गये थे। वहां कई एक मनुष्यों से यह सुना था कि स्वामी दयानन्द जी का आचरण अच्छा नहीं। यहां पर कई महीने स्वामी दयानन्द और रमाबाई एक मकान में इकट्ठे रहे हैं। स्वामी पूर्णानन्द जी वेश्या रखते थे। ब्रह्मानन्द जी बम्बई से एक स्त्री भगा लाये थे जो दश बारह वर्ष उनके साथ रहती हुई हमने आंख से देखी। स्वामी आत्मानन्द जी यू० पी० की एक ब्राह्मणी को भगा ले गये जो अब मध्य हिन्द में रहते हैं। आर्यसमाज इन घटनाओं पर जबान क्यों नहीं खोलती। आर्यसमाजी संन्यासी जब व्यभिचार पर टूट पड़ेंगे तो संन्यासियों के श्रेष्ठ धर्मों का आचरण क्या मौलवी करेंगे ? आर्यसमाजी लिखें कुछ और करें कुछ, इनके दूषित आचरणों को दृष्टि में

रख आज संसार आर्यसमाज के लिये धिक्कार के नारे लगा रहा है किन्तु आर्यसमाजी सुनते ही नहीं।

संन्यासी का लक्षण

स. प्र. पृ. १३३ पं. २४–"सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन्यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी" जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मों का त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिसमें वह संन्यासी कहाता है।

वि०—संस्कृत का यदि भाषा करवाना हो तो आर्यसमाजियों से करवावे और किसी का लक्षण (तारीफ) करवानी हो तो भी आर्यसमाजियों से ही करवावे। लक्षण में ब्रह्म का त्याग नहीं किन्तु भाषा में ब्रह्म का त्याग है, संन्यासी ब्रह्म का त्याग कर दे फिर मोक्ष के लिये पकड़े किसको? इसका यही जवाब होगा कि गधे की पूंछ पकड़ ले बस बेड़ा पार है। संन्यासी का यह लक्षण एक नया लक्षण है, संन्यासी का तो यह लक्षण है कि "संन्यासो विद्यते यस्मिन्स संन्यासी" उत्तम रीति से न्यास माने त्याग किया है जिसने उसका नाम संन्यासी है। त्याग किसका? काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, शिखा, सूत्र, कर्म-उपासना का फल, संसारी पदार्थों की प्रीति इन सब का त्याग जो कर दे उसका नाम संन्यासी है नकि ब्रह्म का त्याग! आर्यसमाज के संन्यासी पूरे नास्तिक होते हैं। हम सोचा करते थे कि यह क्या बात है। आज पता लगा कि सत्यार्थप्रकाश के लेख के अनुसार ये ब्रह्म ईश्वर और ब्रह्म वेद दोनों का त्याग कर शुतर बेमुहाल हो जाते हैं।

संन्यासी को दान

स. प्र. पृ. १३४ पं. २३–

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्। मनु०

नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवे।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक प्रत्येक लेख में गिरगिट की भाँति रंग बदला करते हैं। इसी समुल्लास के 'संन्यासी का कर्तव्य' नामक लेख में संन्यासी को द्रव्य लेने का निषेध लिख दिया और अब संन्यासी को दान लेना और पब्लिक को संन्यासी के लिये दान देने की आज्ञा देते हुये मनु जी का नाम बदनाम करने के लिये श्लोकार्ध

बना कर लिखते हैं कि "विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्—विविध प्रकार के रत्न संन्यासी को दान दे" मनु के नाम से झूठा श्लोकार्थ बनाने में स्वामी जी को न तो लज्जा हुई और नही इस कुकृत्य को पाप समझा। मनु का श्लोक यह है—

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥

मनु० अ० ११ श्लो० ६

वेद के जाननेवाले, पुत्र पौत्रादि कुटुम्ब रखनेवाले ब्राह्मणों को धन देना चाहिये। जो इस प्रकार के ब्राह्मणों को धन देता है वह मर कर स्वर्ग का भोग करता है। आर्यसमाजी मूर्ख होते हैं उनमें श्लोक पढ़ने और अर्थ समझने की शक्ति होती नहीं धोके में आकर हमीं को दान दिया करेंगे हम मालामाल होकर विविध संसारी विषयों का भोग भोगेंगे, यही समझ आर्यसमाज के प्रवर्तक ने यह भयंकर पाप किया है।

इति पञ्चम समुल्लासः

❀ अथ षष्ठ समुल्लासः ❀

राजधर्म

स. प्र. पृ. १४३ पं. ५–"इस सभा में चारो वेद, न्याय शास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद हों"। और स. प्र. पृ. १६५ पं. ३–"जो विशेष देखना चाहे वह चारो वेद मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारतादि में देखकर निश्चय करे और जो प्रजा का न्याय करना है वह व्यवहार मनुस्मृति के अष्टम और नवमाध्याय आदि की रीति से करना चाहिये"।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक एक स्थान में जिस बात को लिखते हैं दूसरे स्थान में उस अपने लेख को अपनेआप असत्य सिद्ध कर देते हैं। तृतीय समुल्लास में यह लिखा कि "हमारा मत वेद है अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है" अब उसके विरुद्ध यहां पर न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र को स्वतःप्रमाण माना और चारों वेदों को जो लिया है उसका लेना केवल मूर्ख आर्यसमाजियों को धोके में फांसना है क्योंकि वेदों में राजधर्म और राजनीति का कहीं वर्णन ही नहीं? जब न्याय और निरुक्त तथा समस्त धर्मशास्त्र आर्यसमाजियों को प्रमाण हैं तो तृतीय समुल्लास में लिखा वेदमत ऐसे उड़ गया जैसे कि गधे के शिर से सींग चले जायँ। यदि सचमुच आर्यसमाज का मत वेद ही है तो फिर सत्यार्थ-प्रकाश का लेखक भंग के नशे में आके अब न्याय, निरुक्त और समस्त धर्मशास्त्रों को प्रमाण क्यों मानता है? ऐसे ऐसे परस्पर विरोधी सत्यार्थप्रकाश के लेख आर्यसमाज को कब्र में दफनाये बिना नहीं रह सकते इसके ऊपर आर्यसमाजी आंख बन्द करे क्यों बैठे हैं? क्या इनमें तनक भी मनुष्यता नहीं जो लेखों के परस्पर विरोध को दूर करें।

तृतीय समुल्लास में लिख दिया कि "पुराण इतिहास को मत मानियो। इनको ऐसे त्याग देना जैसे विष मिला अन्न त्यागा जाता है" उस लेख को झूठा सिद्ध करने के लिये यहां पर शुक्रनीति और महाभारत को स्वतःप्रमाण माना। आर्यसमाजियो! तुम्ह इतना भी ज्ञान नहीं कि यह सत्यार्थप्रकाश पागलों की भांति कहीं पर कुछ और कहीं पर कुछ लिखता है ऐसे परस्पर विरोधी लेख रखनेवाले सत्यार्थप्रकाश को तुम क्यों मानते हो?

मंत्री और दूत

स. प्र. पृ. १४६ पं. १९–"और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर 'सचिवान्' अर्थात् मंत्री करे"। और स. प्र. पृ. १४७ पं. ८–"जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर पवित्र हाव भाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत में होनेवाली बात को जाननेहारा सब शास्त्रों में विशारद चतुर है उस दूत को भी रक्खे"।

वि०—प्रत्येक राजा को आठ मंत्री करने बतलाये और वे आठ मंत्री कैसे हों जो कुलीन हों, कुलीन तबही होंगे जब वर्णव्यवस्था जन्म से मानी जायगी। चतुर्थ समुल्लास में गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था का लम्बा चौड़ा राग गाया किन्तु यहां आकर इसका स्वाहा कर दिया। बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजी सत्यार्थप्रकाश के शिकार होते हैं। जहां पर सत्यार्थप्रकाश गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था लिख दे उस पन्ने में आर्यसमाजी वैसीही वर्णव्यवस्था मानते हैं और जहां सत्यार्थप्रकाश कुलीन लिख दे वहां पर आर्यसमाजी जन्म से वर्णव्यवस्था मान लेते हैं। अविद्या जितना अनर्थ करवा दे उतना थोड़ा है। क्या किसी आर्यसमाजी की लेखनी में इतनी शक्ति है कि जो गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था में कुलीनता सिद्ध करे? यदि ऐसी शक्ति वाला कोई आर्यसमाजी हो तो उसको लेखनी उठानी चाहिये।

दूत के बाबत सत्यार्थप्रकाश लिखता है कि 'जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न' गुण, कर्म, स्वभाव की वर्णव्यवस्था रहने पर क्या कोई कुल प्रशंसित रह सकता है? यदि किसी आर्यसमाजी की दृष्टि में रह सकता हो तो वह वैदिक प्रमाण से सिद्ध करके दिखावे। "सब शास्त्रों में विशारद" यहां बेद जाता रहा, यहां पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक को उन शास्त्रों को स्वतःप्रमाण मानना पड़ा कि जिन शास्त्रों के कथन वेद से मिलने पर सत्य होने लिखे थे। ऐसी ऐसी बेसमझी के लेख लिखनेवाले को धर्म-प्रचारक की डिगरी देना भयानक पाप करना है।

रानी

स. प्र. पृ. १४८ पं. २४–"बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न सुन्दर लक्षण-युक्त अपने क्षत्रिय कुल की कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण, कर्म, स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे"।

वि०—हम पहिले लिख आये हैं कि गुण. कर्म. स्वभाव की वर्णव्यवस्था में कुल की उत्तमता नहीं रहती और यहां लिखा है कि 'राजा जिस कन्या से विवाह करवावे वह बड़े उत्तम कुल की हो' यह लिखना जन्म से वर्णव्यवस्था सिद्ध करना है। फिर आगे लिखा कि 'जिस कन्या से विवाह किया जावे वह क्षत्रियकुल की कन्या हो', यहाँ पर 'क्षत्रिय' शब्द का समन्वय कुल के साथ है कन्या के साथ नहीं जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 'क्षत्रियकुल और उसमें उत्पन्न हुई कन्या' यह घटना तब ही हो सकती है जब जन्म से वर्णव्यवस्था मानी जावेगी। सत्यार्थप्रकाश के लेखक यहां पर जन्मसिद्ध वर्णव्यवस्था की पुष्टि लिख आर्यसमाजियों की आँखों के आँसू पोंछने के लिये फिर गुण, कर्म, स्वभाव लिखते हैं, यह भंग की तरंग नहीं तो और क्या है ?

लोकान्तरसिद्धि

स. प्र. पृ. १६९ पं. १३-"जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है"।

वि०—आर्यसमाज के सिद्धान्त में स्वर्ग नरकादि लोकान्तर है ही नहीं फिर इस लेख में स्वीकार किये हुये लोकान्तर को क्या आर्यसमाजी मान लेंगे ?

नवीनवेद का निर्माण

स. प्र. पृ. १६६ पं. १०-"और जो जो नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके होने की आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बांधें"।

वि०- सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखा है कि 'हमारा मत वेद है जो कुछ वेद में करना और छोड़ना लिखा है उसका हम करना और छोड़ना मानते हैं'। इससे सिद्ध है कि आर्यसमाज शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी और शौनकीय शाखा से भिन्न किसी ग्रन्थ का एक अक्षर भी प्रमाण नहीं मानती। अब जो यह नवीन नियम बनेंगे इनको किस शाखा में स्थान मिलेगा या इन नियमों को पंचम वेद के नाम से याद किया जावेगा, इसका फैसला हम आर्यसमाजियों के जिम्मे छोड़ते हैं।

॥ इति षष्ठ समुल्लासः ॥

❀ अथ सप्तम समुल्लासः ❀

देवता

स. प्र. पृ. १७८ पं. ४–"त्रयस्त्रिंशत्त्रिंशता०" इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं इसकी व्याख्या शतपथ में की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से [ये] आठ वसु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। विजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल, औषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं इनका स्वामी और सब से बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवां उपास्य देव शतपथ के चौदहवें कांड में स्पष्ट लिखा है।

वि०— [क] प्रथम समुल्लास में स्वर्ग में रहनेवाले इन्द्रादिक देवता सत्यार्थप्रकाश ने लिख दिये इसके लिये "देवजाति" शीर्षक लेख पाठक पढ़ें। [ख] चतुर्थ समुल्लास में लिखा कि :"विद्वान् ही देवता होते हैं, विद्वानों से भिन्न कोई देवता नहीं" और इसमें शतपथ का प्रमाण भी दे दिया इसके लिये चतुर्थ समुल्लास में "देवता" शीर्षक लेख पढ़ लें। [ग] अब यहां लिखा जाता है कि "तेंतीस देवता हैं" और इस देवसंख्या में लकड़ी, पानी, पत्थर, आग, गुदरव आदि की गिनती की है इस विरोध का भी कुछ ठिकाना है। [घ] प्रमाण में "त्रयस्त्रिंशत्त्रिंशता" पाठ है जिसका अर्थ होता है कि 'तीस और तेंतीस' किन्तु सत्यार्थप्रकाश का लेखक इसका अर्थ 'तेंतीस' करता है और समस्त आर्यसमाजी इस मिथ्या अर्थ को ठीक मान इस प्रमाण से तेंतीस ही देवता बतलाते हैं, क्या मजा है "अन्धेन नीयमाना यथान्धाः"। [ङ] प्रथम समुल्लास में इन्द्र को स्वर्गस्थ देवता माना, फिर प्रथम समुल्लास में ही इन्द्र ईश्वर का

नाम बतलाया और अब इन्द्र शब्द से यहां बिजली का ग्रहण करते हैं इस प्रकार के परस्पर विरोधी लेख कौन कहता है कि विचारशील मनुष्यों के मानने के योग्य होते हैं। [च] इस प्रमाण में तो तीस और तेंतीस देवता हैं इतना ही लिखा है, यह नहीं लिखा कि वसु, रुद्र आदि उनके नाम हैं, नाम बतलानेवाला "अग्निर्देवता० यजु० १४। २०" मंत्र है इसमें स्पष्ट लिखा है कि अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत, विश्वेदेव, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण ये देवता हैं किन्तु इस मंत्र में तेंतीस की संख्या नहीं, शतपथ और यजुर्वेद के प्रमाणों ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, नक्षत्र को देवता नहीं बतलाया वरन् सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने अपनी तरफ से पृथिव्यादिकों को देवता बतलाया है इसके ऊपर आर्यसमाजी विचार करें। [छ] प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। यहां पर जो ग्यारह रुद्र गिनवाये हैं यह लेख वेदविरुद्ध है। वेद का कोई भी मंत्र यह नहीं बतलाता कि प्राणादि ग्यारह रुद्र होते हैं, सत्यार्थप्रकाश-कर्ता के दिमाग से निकले ये फर्जी ग्यारह रुद्र आर्यसमाजी ही मानेंगे और वे इसलिये मानेंगे कि ईश्वर ने झूठ सत्य के निर्णय करने की उनको बुद्धि नहीं दी। [ज] यज्ञ का नाम प्रजापति है यह किसी वेदमंत्र में नहीं लिखा, यहां पर सत्यार्थप्रकाशी दिमाग से काम लिया जाता है। [झ] इन सब का स्वामी चौंतीसवां ईश्वर उपास्य देव है इसका भाव यह है कि ये देवता उपास्य नहीं हैं। [ञ] सत्यार्थप्रकाशकर्ता भले ही इनको उपास्य न माने किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि के नाम-करण प्रकरण में लिखा है कि पूर्वाषाढ़ नक्षत्र का देवता जल है और कृतिका नक्षत्र का देवता अग्नि तथा द्वादशी तिथि एवं स्वाती नक्षत्र का देवता वायु है तथा मृगशिर नक्षत्र का देवता चन्द्रमा और हस्त नक्षत्र का देवता सूर्य अथच अष्टमी तिथि और धनिष्ठा नक्षत्र का देवता वसु है, एकादशी तिथि और आर्द्रा नक्षत्र का देवता रुद्र है, ज्येष्ठा नक्षत्र का देवता इन्द्र और रोहिणी नक्षत्र का देवता प्रजापति है इस प्रकार लिख कर फिर स्वामी जी लिखते हैं कि जिस तिथि और जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि एवं उसके देवता तथा जन्म नक्षत्र और जन्म नक्षत्र के देवता के नाम की एक एक आहुति देना। आर्यसमाजियो! अपने कल्याण के लिये जिन देवताओं के नाम की आप आहुतियां दें क्या वे देवता तुम्हारी और स्वामी दयानन्द जी की दृष्टि में उपास्य नहीं हैं? जिन देवताओं को संस्कारविधि में तुम उपास्य मानो, सत्यार्थप्रकाश में उनकी उपासना का खण्डन करो क्या यह तुम्हारी

बुद्धिमत्ता है ? [ट] स्वामी दयानन्द जी ने ही इन देवताओं के नाम की आहुतियां दिलाईं इतनी ही बात नहीं वरन् इस विषय में वेद लिखता है कि—

सविता प्रथमेऽहन्नग्निद्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ।

यजु० अ० ३९ मं० ६

प्रथम दिन का सविता, दूसरे दिन का अग्नि, तीसरे दिन का वायु, चौथे दिन का आदित्य, पांचवें का चन्द्रमा, छठे का ऋतु, सातवें का मरुत, आठवें का बृहस्पति, नवमें का मित्र, दशमें का वरुण, ग्यारहवें का इन्द्र, बारहवें का विश्वेदेवा देवता है। इन देवताओं के निमित्त बारह दिन तक प्रायश्चित्त के अर्थ आहुति दी जाती है। क्या अब भी आर्यसमाजी यह कहेंगे कि देवता उपास्य नहीं हैं ? देवताओं का विशेष विवरण "वेदसिद्धान्त परिचय" के "देवता" प्रकरण में देखो।

दयालु और न्यायकारी

स. प्र. पृ. १८० पं० ८–(प्रश्न) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं ? (उत्तर) है। पृ० १८० पं० १३–न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हों। पुनः पृ० १८० पं० १६–जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये उसी का नाम न्याय है। पुनः पृ० १८० पं० २१–दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना।

वि०—[क] संसार में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो दयालु और न्यायकारी इन दोनों शब्दों के एक ही अर्थ समझता हो। मालूम होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने निराकार ईश्वर से यह पाठ पढ़ा है कि दयालु और न्यायकारी इन दोनों

पदों के एक ही अर्थ हैं। [ख] यदि न्याय करने का नाम दया है तब तो दया शब्द की संसार को आवश्यकता ही नहीं। दया शब्द का उदाहरण वेद में यह है कि—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य·
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳस्वाम् ॥

कठ० अ० १ वल्ली २ श्रु० २२

बहुत बकवाद करने से यह आत्मा जगदीश्वर नहीं मिलता। बुद्धि के जोर से भी तुम इस आत्मा की प्राप्ति नहीं कर सकते, 'बहुश्रुत' वेदोपनिषद्, पुराण, इतिहास के श्रवण द्वारा यदि तुम इस परमात्मा को पाना चाहो तो न मिलेगा, जो जीव सब तरफ से प्रेम को हटाकर इसकी शरण में पहुँचेगा उसी को ईश्वर की प्राप्ति होगी और फिर यह ईश्वर इस मनुष्य पर दया कर इसको अपने दिव्य शरीर के दर्शन करवाता है। दर्शन होने पर क्या होता है इसके ऊपर वेद लिखता है कि—

भिद्यतेहृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥

मुण्डक० द्वितीय मु० खं० १ श्रु० ८

उस परावर जगदीश्वर के दर्शन होते ही हृदय की ग्रंथियां टूट जाती हैं, समस्त संशय कट जाते हैं, समस्त शुभाशुभ कर्मों का क्षय हो जाता है और यह जीव मोक्ष को चला जाता है।

रही बात न्यायकारी की, जो जितना पाप या पुण्य करे उसके मुताबिक उसको उतना ही दण्ड और कल्याण दे, यह न्यायकारी शब्द का अर्थ है। इसका उदाहरण वेद में यह है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्यापिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

यजु० अ० ४० मं० ३

जो कोई एक अपने आत्मा का हनन करनेवाले (निष्काम कर्म छोड़ कर काम्यकर्मकर्ता) जन हैं वे मर कर उन लोकों को जाते हैं जो लोक असुरों को मिलने योग्य और गाढ़ अन्धकार से आवृत हैं।

वेद के इन विशद उदाहरणों को दबा कर 'दयालु' और 'न्यायकारी' का एक ही अर्थ करना एवं उसमें भी वेदादि सच्छास्त्रों में से किसी का प्रमाण न देकर अपने दिमाग से फैसला लिख देना इस अन्याय को वे ही आर्यसमाजी मानेंगे कि जिन्होंने अपनी बुद्धियों को बेच खाया।

ईश्वर संख्या

स. प्र. पृ. १७८ पं. १६–जो ये इन शास्त्रों को देखते तो वेदों में अनेक ईश्वर मानने रूप भ्रमजाल में गिर कर क्यों बहकते।

वि०—यहां पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने यह समझ लिया कि विष्णु, ब्रह्मा, शंकर आदि जो ईश्वर के अनेक रूप मानते हैं मानो वे अनेक ईश्वर मानते हैं ऐसे विचित्र भाव को विचारशील मनुष्य नहीं जान सकता। अग्नि एक है किन्तु दिन छिपने पर दीप, लालटेन, गैस का हण्डा, बिजली आदि अनेक स्वरूपों को धारण करती है। भारतवर्ष के समस्त शहरों के अग्नि के रूप जोड़े जावें तो करोड़ों से कम नहीं होते, दिन निकलने पर जब वे अग्नि के प्रकाश खतम कर दिये जाते हैं तब यह सवाल उठता है कि वे अग्नि के रूप कहां गये? यही जवाब होगा कि निराकार अग्नि में मिल गये। फिर वह अग्नि तत्व एक है या अनेक? यही कहना पड़ेगा कि एक सैकड़ों रूपों को धारण करनेवाला अग्नि जब एक ही है तो फिर सैकड़ों स्वरूपों को धारण करने पर ईश्वर एक क्यों नहीं रहेगा? इसका आर्यसमाजियों के पास क्या जवाब है?

ईश्वर सिद्धि

स. प्र. पृ. १७९ पं. १२—(प्रश्न) आप ईश्वर ईश्वर कहते हो परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार मानते हो? (उत्तर) सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। स. प्र. पृ. १७९ पं. २१--जैसे चारो त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।

वि०—इन्द्रियों से जब विषय का प्रत्यक्ष होता है तब विषय को उत्पन्न करने वाले पंच महाभूतों का भी प्रत्यक्ष हो जाता है यह आज तक संसार के किसी मनुष्य ने नहीं माना था ऐसी अनोखी सूझ सत्यार्थप्रकाश के लेखक के दिमाग में ईश्वर ने भर दी कि जिस सूझ के जोर पर वे अनुमान को प्रत्यक्ष कहने लगे। 'पर्वतो वह्निमान् धूमत्वात्' इस वाक्य में धूम को देख कर वह्नि का अनुमान होता है या प्रत्यक्ष? छोटे बड़े सभी विद्वान् यह कहेंगे कि धूम को देख कर वह्नि का अनुमान होता है फिर सत्यार्थप्रकाश के लेखक गन्ध से पृथिवी का प्रत्यक्ष कैसे बतलाते हैं। फिर ईश्वर को किस इन्द्रिय का प्रत्यक्ष माना? मन का। स्थूल मन को सूक्ष्म ईश्वर का प्रत्यक्ष कैसे होगा? इतना पूछने पर ही आर्यसमाज का दिवाला हो जायगा। देखिये वेद क्या लिखता है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन॥

तैत्ति० ब्रह्मानन्द व० २ अनु० ६

जिस ब्रह्म की खोज में मन को साथ लेकर वाचा जाती है किन्तु उसको न प्राप्त होकर वापिस लौट आती है ऐसे आनन्दघन ब्रह्म को जान कर ब्राह्मण कहीं से भी भय नहीं खाता। इस श्रुति में स्पष्ट दिखला दिया गया कि ब्रह्म मन का विषय ही नहीं, वेदविरुद्ध ब्रह्म को मन का प्रत्यक्ष मानना यह लेख पागल के कथन से अधिक कुछ गौरव नहीं रखता।

जगत्कर्ता

स. प्र. पृ. १८० पं. ५—(प्रश्न) ईश्वर व्यापक है वा किसी देश विशेष में रहता है? (उत्तर) व्यापक है क्योंकि जो एक देश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्ता और प्रलयकर्ता नहीं हो सकता।

वि०—वह व्यापक ईश्वर निराकार है या साकार? यदि निराकार है तो उसमें क्रिया नहीं रह सकती, वह कर्तापने से हमेशा शून्य रहेगा। इसके ऊपर एक जैनाचार्य लिखता है कि—

कर्तृत्वसिद्धौ परमेश्वरस्य
साकारसिद्धिः स्वत एव जाता।

घटस्य कर्ता खलु कुम्भकारः
कर्ता शरीरी न च नाशरीरी ॥

यदि परमेश्वर को तुम कर्ता मानोगे तो कर्ता के सिद्ध होते ही ईश्वर के साकार रूप की सिद्धि हो जावेगी क्योंकि घड़े का बनानेवाला कुलाल साकार है, निराकार नहीं। संसार में जितने भी कर्ता हैं वे सब साकार हैं निराकार किसी पदार्थ का कर्ता आज तक सिद्ध नहीं हुआ फिर यह कौन मान लेगा कि संसार का कर्ता ईश्वर निराकार है ?

बड़े बड़े शहरों में जब बिजली लगाने का प्रयत्न होता है तब पहिले पावर हाउस बनता है, उस पावर हाउस में स्टीम से चलनेवाली मशीनें लगती हैं, फिर सड़कों पर खंभे गाड़े जाते हैं उन खंभों पर तार फैलाया जाता है, जब इतना काम हो लेता है तब इंजन के जरिये से मशीनें चल कर निराकार बिजली को साकार बनाती हैं, जब निराकार बिजली खुद साकार बन लेती है तब शहर में प्रकाश देती है किन्तु निराकार बिजली ने आज तक किसी देश के किसी शहर में भी प्रकाश नहीं दिया, नहीं मानो तो दिन छिपने पर अपनी छत पर चढ़ कर चिल्लाओ कि ओ निराकार बिजली ! हमारे घर में अंधेरा पड़ा है तुम प्रकाश कर जाओ। चिल्लाते चिल्लाते तुम्हारा गला पड़ जायगा किन्तु घर में प्रकाश न होगा क्योंकि निराकार बिजली में कर्तृत्व शक्ति नहीं है, फिर निराकार ईश्वर संसार को कैसे रच सकेगा ? निराकार ईश्वर जब पहिले खुद साकार बन लेता है तत्वों के रूप में आ जाता है तब वह सृष्टि की रचना करता है इसके लिये आर्यसमाजी "तस्माद्वा एतस्मादात्मन० तैत्ति० ब्रह्मा० ब० अनु० १ देखले।

ईश्वर स्वरूप

स. प्र. पृ. १८१ पं. ७-(प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? (उत्तर) निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमिति वस्तु में गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा, और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिये

क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेवाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने ईश्वर और ईश्वर के रूप को समझा ही नहीं, केवल यह समझा कि जैसे भारतवर्ष में अनेक आर्यसमाजी मनुष्य हैं ऐसे ईश्वर भी एक मनुष्य है, मगर है वह निराकार, तभी तो शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा आदि की शंका खड़ी कर दी! ईश्वर निराकार है यह वेद के किस मंत्र में लिखा, वह मंत्र अभी यहां नहीं दिया और निराकार शब्द का क्या अर्थ है यह भी नहीं बतलाया? जब हम निराकार शब्द का समास करते हैं तब यह विग्रह होता है कि "निर्गता आकारा यस्मात्स निराकारः" निकले हैं आकार जिससे इसी से उसका नाम निराकार है। पृथ्वी, नदियां, पहाड़, सूर्य, चन्द्र, तारे सब उसी में से निकले हैं,। निकलेंगे तब जब उसमें पहिले होंगे। इस से मालूम होता है कि उसमें पहिले भी आकार थे फिर सर्वांश में निराकार कैसा? इसके लिये 'वेद सिद्धान्त परिचय' का 'अभिन्न निमित्तोपादान कारण' देखो।

सर्वशक्तिमत्व

स. प्र. पृ. १८१ पं. १७—(प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है या नहीं? (उत्तर) है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नहीं किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथा योग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है। पुनः स. प्र. पृ. १८१ पं. २३—जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार—अनेक ईश्वर बना—अविद्वान्, चोरी, व्यभिचारादि पापकर्म कर और दुःखी भी हो सकता है।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश ने जो संसार की उत्पत्ति, पालन, प्रलय में ईश्वर को सर्वशक्तिमान् माना यह आर्यसमाज के मत में चण्डूखाने की गप्प है क्योंकि आर्यसमाज के मत में ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन पदार्थ अनादि हैं। जिस प्रकार कुंभ-

कार मिट्टी को लेकर घट बनाता है उसी प्रकार ईश्वर प्रकृति को लेकर संसार रचता है। जैसे कुंभकार मिट्टी का मुहताज है उसी प्रकार संसार बनाने में ईश्वर प्रकृति का मुहताज है फिर सर्वशक्तिमानपन कहां रहा? हाँ, वैदिक सिद्धान्त में ईश्वर सर्वशक्तिमान् अवश्य है, उसकी इच्छा हुई कि हम संसार बनावें किन्तु संसार बनाने की सामग्री नहीं थी अतएव ईश्वर ही आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी बन गया। अब विचारशील मनुष्य बतलावें कि ईश्वर का सर्वशक्तिमत्व आर्यसमाज के मत में है या वैदिक सिद्धान्त में? [ख] सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यह जीव जैसे कर्म करता है ईश्वर उसको वैसे ही फल देता है। आर्यसमाज के मत में कर्माधीन फल देने में ईश्वर मजबूर है, कर्म के विरुद्ध इतना भी नहीं कर सकता जितना कि उर्द पर सुफेदी अतएव संसारपालन में भी ईश्वर का सर्वशक्तिमत्व नहीं रहा! हां, वैदिक सिद्धान्त में यह बात पाई जाती है कि ईश्वर अपनी दया से मनुष्यों के कर्मबन्धनों को तोड़ देता है इसमें "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः" और "भिद्यते हृदयग्रन्थिः" ये दो श्रुतियां प्रमाण हैं, इन श्रुतियों का विवेचन "दयालु और न्यायकारी" शीर्षक लेख इसी समुल्लास में देख लें। बस आर्यसमाज के मत में ईश्वर को सर्वशक्तिमत्व नहीं है इसको आर्यसमाजी खूब विचार लें। [ग] सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने लिखा है कि 'परमेश्वर अपने को मार—अनेक ईश्वर बना—अविद्वान्, चोरी, व्यभिचारादि पापकर्म कर और दुःखी भी हो सकता है' यहां पर ईश्वर का अपने को मारना और अनेक ईश्वर बनाना यह बन्दिश अवतार के खण्डन में है। सत्यार्थप्रकाश की दृष्टि में यह समाया है कि राम, कृष्ण आदि अवतार जब परमधाम को गये तब वे मर कर गये और ईश्वर ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि जो अनेक स्वरूप धारण किये बस अनेक ईश्वर बन गये! इसका उत्तर यह है कि अग्नि ईश्वर की भांति एक है और वह निराकार एवं सर्वव्यापक है। उस निराकार अग्नि को जब हम अरणी या चकमक अथवा दियासलाई के द्वारा रूपवान् बना लेते हैं तब एक अग्नि सहस्रों स्वरूपों को धारण कर लेती है और जब वह शान्त होकर निराकार अग्नि में जा मिलती है तब फिर एक रह जाती है, तो अग्नि पर कभी यह प्रश्न उठा कि एक अग्नि की सैकड़ों अग्नियां कैसे बन गईं, और अब अग्नि अदृश्य हो गई, मर कैसे गई? सत्यार्थप्रकाश के लेखक ईश्वर को एक मनुष्य समझे हैं इसलिये बार बार मनुष्य की उपमा देते हैं और वेद ईश्वर को अग्नि की उपमा देता है, पढ़िये—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥

कठ० वल्ली ५ श्रु० ६

जैसे एक अग्नि रूपरहित होकर समस्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान है तो भी वह जैसा और जितना लम्बा चौड़ा मोटा रूप पाती है उसी शकल की बन जाती है इसी प्रकार सर्व भूतों का आत्मा ईश्वर जैसी इच्छा करता है वैसा रूप ग्रहण कर लेता है और अग्नि की भाँति उस रूप से बाहर भी बना रहता है।

रही बात अविद्वान् की. सत्यार्थप्रकाश का लेखक ईश्वर को भले ही अविद्वान् न माने किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने नीच और मूर्खत्वादि गुण ईश्वर में माने हैं। "ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्" इस मंत्र के भाषा टीका में स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि "मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्रवर्ण सिद्ध होता है देखो 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' जिसमें मूर्खादि नीच गुण होते हैं वही मूर्ख होता है, यहाँ पर ये गुण स्वामी जी ने ईश्वर में बतलाये हैं इसलिये आर्यसमाज की दृष्टि में ईश्वर मूर्ख है. ईश्वर को मूर्ख न मानना स्वामी जी के लेखों को बूटों से कुचलना है। चोरी की कथा सुनिये, स्वामी जी ईश्वर को चोर भी मानते हैं, प्रमाण और भाषा टीका नीचे पढ़ें—

मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा
मा नः प्रिया भोजनानि प्रमोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भे-
न्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥

ऋ० १।७।१६।८

आर्याभिविनय प्रथम प्रकाश मं० ४६

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर! हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावे। हम से अलग आप कभी मत हो। हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै। हमारे गर्भों का विदारण मत कर। हे सर्वशक्तिमन्! समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर। हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर। जो जो हमारे सहज अनुषक्त स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो'। स्वामी दयानन्द जी

प्रार्थना करते हैं कि 'हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै' इस लेख से सिद्ध है कि ईश्वर मनुष्यों के प्रिय भोगों को चुरा लेता है अतएव वह चोर है।

सत्यार्थप्रकाश ने बतलाया था कि वह अविद्वान् और चोरादि नहीं बन सकता, स्वामी दयानन्द ने सिद्ध कर दिया कि बन सकता है, ईश्वर का सर्वशक्तिमत्व तो सिद्ध न हुआ, हां, सत्यार्थप्रकाश के लेखक और स्वामी दयानन्द जी ये दोनों आपस में लड़ मरे! वेद का कथन है कि "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थः, ईश्वरः" जो करने को और न करने को तथा विरुद्ध करने को समर्थ है वही ईश्वर है। ईश्वर जो चाहे सो कर सकता है इसी से उसको सर्वशक्तिमान् कहा जाता है, आर्यसमाज के लंगड़े वेद में तो ईश्वर को कहीं सर्वशक्तिमान् लिखा ही नहीं फिर अपने वेद के विरुद्ध सर्वशक्तिमान्पने की आफत सत्यार्थप्रकाश का लेखक क्यों अपने शिर लादता है।

अघनाशन

स. प्र. पृ. १८२ पं. ५-(प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करनेवाले का पाप छुड़ा देगा? (उत्तर) नहीं। (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना? (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है। (प्रश्न) क्या है? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। स. प्र. पृ. १९१ पं. २७-(प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक अधिक बड़े बड़े पाप करें क्योकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा हो जाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर

पाप करने में प्रवृत्त हो जायंगे इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है क्षमा करना नहीं ।

वि०—[क] ईश्वर पाप नहीं छुड़ाता यह जबानी जमा खर्च है, क्या कोई आर्यसमाजी इस जमा खर्च में लंगड़े वेद का मंत्र पेश कर सकता है ? यदि नहीं कर सकता तो फिर इस लेख को मूर्खता के कारण आर्यसमाजी भले ही प्रमाण मान लें किन्तु लिखे पढ़े मनुष्य नहीं प्रमाण मान सकते । स्वामी दयानन्द जी ने आर्याभिविनय में यह माना है कि प्रार्थना करने पर ईश्वर मनुष्य के पापों का क्षय कर देता है, पढ़िये—

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि ।
एनस एनसोऽवयजनमसि ।
यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार ।
यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥

यजु० ८ । १३

आर्याभिविनय द्वितीय प्रकाश मं० १६

हे सर्वपाप प्रणाशक ! इन्द्रिय विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के दुःख के नाशक एक ही आप हो अन्य कोई नहीं एवं मनुष्य (मध्यस्थ जन) पितृ (परम विद्यायुक्त जन) और जीव के पापों तथा पापों से भी बड़े पापों से आप ही अवयजन हो अर्थात् सर्व पाप से अलग हो और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखनेवाले एक आप ही दयामय पिता हो । हे महानन्तविद्य ! जो जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् होके पाप किया हो उन सब पापों का छुड़ानेवाला आपके बिना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हमको शुद्ध करो । अब आर्यसमाजी ही बतलावें कि सत्यार्थप्रकाश का लेख झूठा है या कि स्वामी दयानन्द जी का ? [ख] जब ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता और सुख नहीं देता तो ऐसे निकम्मे ईश्वर से प्रीति करने का क्या फल होगा । [ग] ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव सुधारना यह बड़े मजे की बात है क्या ईश्वर में गुण हैं? रज, सत्व, तम तीन ही गुण हैं और तीन ही प्रकृति से पैदा हुये हैं,

यदि ईश्वर प्रकृति से सम्बन्ध न करे, अवतार धारण न करेगा तो रूपरहित, अनिर्वचनीय, निश्चेष्ट ईश्वर में गुण कैसे चिपट जावेंगे, ये थोथी जबानी बातें हैं, वेद यह नहीं मानता कि ईश्वर में गुण हैं। रही बात कर्म की, क्या ईश्वर में कर्म भी होते हैं ? यदि ईश्वर में कर्म मानोगे तो ईश्वर को कर्मों का फल भी भोगना होगा, निराकार ईश्वर में न कोई कर्म है और न उसका फल। स्वभाव किसको कहते हैं, स्वभाव नाम आदत का है, आदत शरीर के साथ पैदा होती है। निराकार ईश्वर जब कभी पैदा नहीं हुये फिर स्वभाव कैसा ? जब निराकार ईश्वर में गुण, कर्म, स्वभाव हैं ही नहीं तब कोई मनुष्य ईश्वर की भक्ति करके अपने गुण, कर्म, स्वभावों को ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के तुल्य कैसे बना लेगा ? [घ] निराकार ईश्वर से क्या निराकार जीव का मेल हो जाता है ? इसको आर्यसमाज मानती है ? मेल हो जायगा तब तो जीवपन ही इसमें न रहेगा, जब गंगा समुद्र में मेल करती है क्या उस समय गंगाजल अपने रूप में रहता है ? जैसे गंगा समुद्र में मिल कर अपने नाम रूप को खो समुद्र बन जाती है क्या इसी प्रकार ब्रह्म में मिल के जीव ब्रह्म नहीं हो जायगा ? देखिये वेद क्या लिखता है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽ
स्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

मुण्डक० तृतीय मुं० खं० २ श्रु० ८

जैसे नदियां बहती हुईं अपने नाम रूप को मिटा कर समुद्र में मिल जाती हैं वैसेही विद्वान् नाम और रूप जीवादि उपाधि से छूट परात्पर दिव्य पुरुष में मिल जाता है। यह अच्छी रही, मेल से लाभ तो कुछ न निकला किन्तु आर्यसमाज के एक सिद्धान्त का चकनाचूर होगया। आर्यसमाज यह मानता है कि जीव हमेशा ही पृथक् रहता है ब्रह्म में कभी नहीं मिलता। यहां सत्यार्थप्रकाश के लेखक की बेहोशी ने जीव ब्रह्म का मेल कर दिया। [ङ] साक्षात्कार कैसा होता है, आज लाखों आर्यसमाजी हैं किसी का ईश्वर से साक्षात्कार हुआ है ? आर्यसमाजी तो यह भी नहीं जानते कि साक्षात्कार कहते किसको हैं, क्या कोई संसार में एक भी आर्यसमाजी ऐसा है कि जो जीव ब्रह्म के साक्षात्कार को सिद्ध कर दे ? साक्षात्कार अद्वैत में होता है, जीव, ईश्वर, प्रकृति तीन को अनादि माननेवालों को कभी साक्षात्कार होता ही नहीं।

हमने मान लिया कि ईश्वर से मेल और ईश्वर का साक्षात्कार भी होगया, फिर इसके होने का फल क्या, जब ईश्वर हमारा कुछ कल्याण ही नहीं कर सकता ? आर्य-समाजी लोग पागलपन से भरे हुये सत्यार्थप्रकाश लेखक के लेखों पर विचार करें। [च] अपराधी को क्षमा मांगने पर पहिले पहिल के अपराध को राजा भी क्षमा कर देता है इसके लिये आर्यसमाजियों को "ज़ाब्ता फौजदारी" की दफा ५६२ देखनी चाहिये। [छ] सत्यार्थप्रकाश के लेखक को परोक्ष और प्रत्यक्षवाद की भी खबर नहीं राजा का माफी देना यह प्रत्यक्ष है इससे मनुष्यों को ज्ञान हो सकता है कि अमुक मनुष्य को राजा ने माफी दे दी किन्तु ईश्वर की माफी देना परोक्षवाद है। यदि कोई निर्धन मनुष्य धनी और दुःखी मनुष्य सुखी तथा रोगी मनुष्य निरोग हो जाय तो मनुष्यों को यह खबर नहीं पड़ सकती कि यह पूर्व प्रारब्ध से हुआ है या ईश्वर की कृपा से, जब ईश्वर की कृपा करने का मनुष्यों को ज्ञान ही नहीं होता तो फिर उसको देख कर मनुष्य पाप कैसे करने लगेंगे ? [ज] क्षमा मांगने पर पाप को समाप्ति होती है इस पर ऋग्वेद देखिये—

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यस्तोतारंते
शतक्रतो ! वित्तं मे अस्य रोदसी ॥

कुयें की पसलियें (ईंटें) चारो ओर से मुझे सौतिनों की नाईं तपाती हैं, तेरे स्तोता मुझको हे शतक्रतो ! मानसी व्यथायें खा रही हैं वा निचोड़ रही हैं जैसे चूहियें जुलाहों की आटा लगी नलियों को वा तेल से लिबड़ी अपनी पूछों को हे द्यावा पृथिवी ! तुम मेरे इस स्तोत्र वा दुःख को जानो। यह प्रार्थना कुये में पड़े हुये "त्रित" ने इन्द्र से की है और इन्द्र ने "त्रित" की समस्त आपत्ति का अपहरण किया है, विस्तार पूर्वक जिसको देखना हो वह निरुक्त देखले। इस विषय में सत्यार्थप्रकाश देखिये, इसमें लिखा है कि—

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मा–
न्विश्वानि देववयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

यजु० अ० ४० मं० १६
सत्यार्थप्रकाश समु० ७ पृ० १८४

हे सुख के दाता स्वप्रकाश स्वरूप सब को जाननेहारे परमात्मन्! आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हम में कुटिल पापाचरण रूप मार्ग है उससे पृथक् कीजिये इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुत सी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें। यजुर्वेद लिखता है कि—

यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमावयमिदन्तदवयजामहे स्वाहा॥

यजु० अ० ३ मं० ४५

हमने गांव में जो मन, वाणी, शरीर से परपीड़ारूप, बन में जो वृक्ष छेदन मृगवधादि, सभा में जो अनीति आदि, इन्द्रिय समूह में जो धर्म विरुद्ध भोजन पान मैथुनादि पाप किया उस पाप को हम आज नाश करते हैं ऐसे कहके हव्य पदार्थ अग्नि में छोड़ दे। पाप छुड़ाने में इससे अधिक प्रमाणों की और क्या आवश्यकता है?

सगुण-निर्गुण

स. प्र. पृ. १८२ पं. १०–(प्रश्न) इनको स्पष्ट करके समझाओ (उत्तर) जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायम व्रण-
मस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू-
र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजु० अ० ४० मं० ८

(ईश्वर की स्तुति) वह परमात्मा सब में व्यापक शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है यह सगुण स्तुति अर्थात् जिस जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना यह सगुण (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी

पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस जिस राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है।

वि०—[क] जबतक ईश्वर शरीर धारण न करे तब तक वह सगुण हो ही नहीं सकता। निराकार में प्रकृति के रज, सत्व, तम गुण कैसे चिपटेंगे इसका आर्य-समाजियों के पास कोई जवाब नहीं। [ख] ईश्वर शीघ्रकारी कैसे ? इसके क्या माने ? क्या सर्वव्यापक निराकार ईश्वर जल्दी दौड़ता है ? अच्छा लो इम्तिहान। अमरौधा में सर्वव्यापक निराकार ईश्वर है उसकी इच्छा हुई कि मैं प्रयागराज जाऊँ, इस इच्छा के अनुसार अमरौधे से चल दिया और फतेहपुर में पहुँच गया, अब निर्णय करो कि सर्वव्यापक निराकार ईश्वर अब अमरौधे में है या नहीं। सर्वव्यापक होने के कारण अमरौधे में अब भी है तो गई क्या खोपड़ी ? अब वह प्रयाग में पहुंचना चाहता है, अभी पहुंचा नहीं, सवाल उठा कि इसके पहुंचने से पहले प्रयाग में ईश्वर है या नहीं ? जवाब मिला कि सर्वव्यापक होने के कारण प्रयाग में पहिले ही मौजूद है। जब पहिले ही मौजूद है तो फिर पहुँचेगा क्या ? इसलिये चलने में तो शीघ्रकारी ईश्वर है नहीं, सभव है कि काम करने में शीघ्रकारी हो। काम करने में भी वह शीघ्रकारी नहीं क्योंकि वह निराकार है, निराकार कोई पदार्थ कार्य करता ही नहीं। क्या निराकार जल आर्यसमाजियों की प्यास दूर कर सकता है या निराकार अन्न आर्यसमाजियों की भूक भगा देगा ? कभी निराकार वस्त्र ने आर्यसमाजियों को शीत से बचाया ? क्या निराकार रुपया आर्यसमाजियों को मालामाल कर गया ? निराकार पदार्थ काम कर दे तो रुपया दो रुपये की सभी को बचत हो जाय क्योंकि निराकार अग्नि सब जगह फैली हुई है और वह चूल्हे में भी है, चूल्हे में दाल चढ़ा कर हाथ जोड़ कर आर्य-समाजी बैठें एवं कहें कि हे निराकार अग्नि ! मेरी दाल पका दे. तुम चाहे शिर फोड़ कर मर जाओ दाल के बर्तन का पानी भी गर्म न होगा। जब दियासलाई के जरिये से अग्नि को साकार बनाकर लकड़ियों में लगाया जायगा तब ही भोजन बनेगा। सिद्ध हुआ कि निराकार पदार्थ कोई काम नहीं करता फिर निराकार ईश्वर संसार कैसे बना देगा ? मनु जी लिखते हैं कि—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥

मनु० अ० १ श्लोक ८

विविध प्रकार की प्रजा के रचने की इच्छा करनेवाले ईश्वर ने पहिले ध्यान किया और फिर अपने शरीर से जल को रचा एवं उस जल में वीर्य रक्खा। कोई युक्ति और कोई शास्त्र का प्रमाण निराकार से साकार संसार का रचा जाना सिद्ध नहीं करता, फिर सत्यार्थप्रकाश के ऊल जलूल लेख से कोई यह कैसे मान लेगा कि निराकार ईश्वर ने सृष्टि रच दी ? सृष्टि रचने में भी ईश्वर को शीघ्रकारी नहीं कह सकते ? आर्यसमाज के लंगड़े वेद में 'शीघ्रकारी' शब्द ही नहीं आया, यह तो सत्यार्थ-प्रकाशलेखक के दिमाग से टपका, इस स्थल में इसका कोई सम्बन्ध नहीं। जब आर्यसमाज के सिद्धान्त से ईश्वर का सगुण होना ही उड़ गया तब सगुण प्रार्थना कैसी ? अब आई निर्गुण की कथा। सत्यार्थप्रकाश में "स पर्यगात्" मंत्र का ऐसा अर्थ किया जैसा कि पशु चरानेवाले लड़के किया करते हैं। इसका ठीक अर्थ देखिये। "स पर्यगात्" मंत्र से पहिले यह मंत्र है—

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

यजु० अ० ४० मं० ७

जिस अवस्था विशेष में यह समस्त जड़ चेतनात्मक संसार आत्मा (ब्रह्म) ही है ऐसा समझ में आता है तब आकाश की भांति विशुद्ध एक ब्रह्म के ज्ञान की उपलब्धि से सबको एक देखता है उस समय न शोक रहता है न मोह होता है। इसके आगे लिखा है कि—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण
मस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू
र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजु० अ० ४० मं० ८

वह ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म हो जाता है, ब्रह्म कैसा है अचिन्त्यशक्ति, अकाय, व्रणरहित, नस नाड़ी के बन्धन से शून्य, शुद्ध, पापरहित, कवि, मेधावी, परिभूः, स्वयंभू, वही ब्रह्म अनन्त वर्षों तक अर्थों को देता है।

इस मंत्र में जो ईश्वर को निराकार सिद्ध किया जाता है उसमें दो चालें हैं—(१) चाल तो यह है कि पूर्वार्द्ध का ठीक अर्थ न करके मनमाना अर्थ कर लेना, इनके

मनमाने अर्थ के दोष ये हैं—जब ईश्वर 'अकाय' शरीररहित है, शरीर उसके है ही नहीं तो फिर वेद ने यह क्यों कहा कि 'अव्रणम्, अस्नाविरम्, शुद्धम्, अपापविद्धम्' अर्थात् उसके फोड़ा फुन्सी नहीं, वह नस नाड़ी के बन्धन में नहीं, वह शुद्ध है और पापरहित है। खाली 'अकाय' शब्द कह देने से ही फोड़ा फुन्सी, नस नाड़ी, अशुद्धता, पापशून्यता स्वतः सिद्ध हो जाती थी, ये चार पद मंत्र में क्यों डाले जो 'अकाय' के विपरीत अर्थ को उत्पन्न कर देते हैं, इसको समझिये। एक मनुष्य ने अपने किसी मित्र से पूछा कि आपके कोई पुत्र भी है? मित्र ने उत्तर दिया कि मेरे पुत्र नहीं, उसके एक आंख नहीं, उसके दो अंगुली नहीं, वह मलीन नहीं रहता, वह मूर्ख नहीं, अब क्या समझे? अब तो यही समझना पड़ेगा कि आंखरहित, दो अंगुली रहित, मलीनता रहित, मूर्खतारहित दत्तक लड़का अवश्य है, यदि नहीं है तो ये चारो बातें कहना निष्प्रयोजन है। बस ऐसा ही हाल मंत्र में है। पहिले कहा ईश्वर के शरीर नहीं और फिर कहा फोड़ा फुंसी नहीं, नस नाड़ी का बन्धन नहीं, वह शुद्ध है, उसके पाप का लेश नहीं, इस चक्करदार वेद के उपदेश से जो मतलब निकलना था उसको पब्लिक के आगे नहीं आने दिया। अब हम समझाते हैं समझिये—'काय' कहते हैं शरीर को, शरीर को काय क्यों कहते हैं "चिनोति सुख दुःखादिकं यस्मिंस्तत्कायम्" इकट्ठे किये जाते हैं सुख दुःखादिक जिसमें उसका नाम है काय, यह वेद और शास्त्रों का सिद्धान्त है कि सुख दुःखादिक कर्म के भोगने के लिये ही शरीर होता है और ईश्वर कैसा है वह अकाय है सुख दुःख रूप शरीररहित है अर्थात् कर्मबन्धन युक्त उसका शरीर नहीं, इच्छा तनु है, जब स्वेच्छातनु है तो फोड़ा फुंसीरहित, नस नाड़ीरहित, शुद्ध और पापरहित है 'अकाय' पद से ईश्वर के सर्वथा शरीर धारण का निषेध न मान बैठें किन्तु कर्मबन्धन रूप ही शरीर का निषेध है इस बात को सिद्ध करने के लिये ये चार विशेषण डाले हैं। फोड़ा फुंसी, नस नाड़ी का बन्धन, पाप और अशुद्धता ये चारो कर्मबन्धन से होती हैं, ईश्वर के कर्मबन्धन है नहीं इस कारण परमात्मा के स्वेच्छातनु में इन चारो का अभाव है। मंत्र के गूढ़ अभिप्राय का गला घोट चार पदों को व्यर्थ करके मनमाना अर्थ कर लेना निःसन्देह संसार की आंख में धूल झोंकना है, यह तो कथा पूर्वार्द्ध की रही।

(२) अब उत्तरार्द्ध का हाल सुनिये—मंत्र के उत्तरार्द्ध में स्पष्टरूप से ईश्वर को साकार लिखा है जिसको ये छिपाते हैं इसको इस प्रकार समझिये—उत्तरार्द्ध में "परिभूः" शब्द आया है, यह शब्द भू धातु से बना है और इसमें "परि" उपसर्ग है जिसका अर्थ होता है कि "परितो भवतीति परिभूः" चारो तरफ से जो प्रकट हो उसका नाम

'परिभूः' है। प्रकट होनेवाला सर्वथा दृश्य होता है, 'परिभूः' के आगे 'स्वयंभूः' शब्द है जिसका अर्थ है 'स्वयं भवतीति स्वयंभूः' जो अपने आप शरीर धारण करे उसका नाम स्वयंभू है। 'स्वयंभूः' ईश्वर का प्रकट होना मनु ने लिखा है—

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यंजयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥

अनु० अ० १ श्लो० ६

प्रलयकाल के अनन्तर स्वयंभू भगवान् इस अव्यक्त संसार को प्रकट करने के निमित्त इस पंचमहाभूत और महतत्व अहंकार को रचता हुआ प्रकट हुआ।

पूर्वार्द्ध का अर्थ बदला, उत्तरार्द्ध में कहे हुये ईश्वर के साकार रूप को दबाया इस प्रकार मंत्र को मार कूट कचूमर निकाल बनावटी निराकार बना कर पबलिक के आगे रख दिया।

यदि हम सत्यार्थप्रकाश के गलत लेख को सही समझ ईश्वर को निराकार मान लें तो निराकार निर्गुण की उपासना नहीं हो सकती ऐसी उपासना का 'उभयं वा' यह श्रुति निषेध करती है, पाठक इस श्रुति को 'वेदसिद्धान्त परिचय' के 'ईश्वर स्वरूप' शीर्षक लेख में देखें।

अवतार

स. प्र. पृ. १९० पं. १६–(प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं, क्योंकि "अज एकपात् ३४ । ५३" "स पर्यगाच्छुक्रम-कायम् ४० । ८" ये यजुर्वेद के वचन हैं इत्यादि वचनों से सिद्ध है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता। और स. प्र. पृ. १९१ पं. १६ और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां हो सकता है जहां न हो, क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला?

ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा इसलिये परमेश्वर का जाना आना जन्ममरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता ।

वि०—[क] "अज एकपात्" जो मंत्र दिया है वह पूरा नहीं दिया बीच का एक पद दे दिया है, पूरा मंत्र यह है—

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज
एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वेदेवा ऋतावृधो हुवानाः
स्तुता मंत्राः कविशस्ता अवन्तु ॥

यजु० अ० ३४ मं० ५३

बुद्धिमानों से पूजित और मंत्रों से स्तुति किये तथा बुलाये हुये अहिर्बुध्न्य, अजैकपाद, पृथिवी, समुद्र, विश्वेदेव, ऋतावृध ये हमारी वाणी को सुनें ।

आर्यसमाजियों को इतना ज्ञान होता ही नहीं कि वे वेद के अर्थ लगा लें, मंत्रों के पदों को देख कर अपनी अक्ल से पदों के अर्थ करते हैं उसमें चाहे जो हो जाय, यही हाल यहां है । 'अज' का अर्थ ईश्वर किया है किन्तु मंत्र में 'अज' का विशेषण है 'एकपात्' वह अज कैसा है एक पैरवाला, क्या एक पैरवाला भी कभी ईश्वर होता है ? कहो कैसा अर्थ किया, वेदमंत्र को ही धूल में मिला दिया । 'अज एकपात्' ईश्वर नहीं वरन् एक देवता है, वेद में उसके नाम "अज एकपाद, अजैकपाद, अजचरण, अजैकचरण" आदि कहे हैं और यह पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र का देवता है, स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि की टिप्पणी में इसको पूर्वाभाद्रपद का देवता लिखा है इसको छिपाने के लिये यहां पर मंत्र और मंत्र का अर्थ नहीं लिखा । सत्यार्थप्रकाश का लेखक समझता है कि 'अज' पद से हम यह दिखला दें कि ईश्वर अजन्मा है, जब ईश्वर अजन्मा है तो फिर इस अजन्मा का जन्म कैसा ? बस इसी मतलब को लेकर यहां पर ½ भाग मंत्र का लिखा गया है !

जिस प्रकार वेदों में ईश्वर को अज अजन्मा कहा है उसी प्रकार जीव को भी अजन्मा लिखा है, पढ़िये—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

कठ० अ० १ वल्ली० २ श्रु० १८

जीव कभी पैदा नहीं होता और न कभी मरता है, यह किसी से उत्पन्न नहीं होता और न ही कोई इससे उत्पन्न होता है, यह अजन्मा है, नित्य है, सर्वदा रहने वाला और प्राचीन है, एवं शरीर के नष्ट होने पर यह नष्ट नहीं होता। जब अजन्मा जीव शरीर धारण करता है तब अजन्मा ईश्वर के शरीर धारण करने में कौन बाधा उपस्थित हो जायगी। मालूम होता है कि आर्यसमाज की दृष्टि में ईश्वर जीव से भी कमजोर है। जब अजन्मा ईश्वर का जन्म स्वतः वेद बतला रहा है तब वेद के लेख पर पानी फेरने का हक सत्यार्थप्रकाश के लेखक को मिल चुका है, वेदमंत्र पढ़िये—

प्रजापतिश्चरति गर्भे
अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा—
स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

यजु० अ० ३१ मं० १९

प्रजापति ईश्वर गर्भ के अन्दर आता है, है तो वह अजन्मा किन्तु अजन्मा होकर के भी अनेक प्रकार से जन्म धारण करता है, उसके योनिस्वरूप को धीर भक्त देखते हैं, वह कौन ईश्वर है जिसमें ये समस्त भुवन ठहरे हैं। जब वेद ने अजन्मा ईश्वर का जन्म लेना लिख दिया तब फिर निषेध को कौन मानेगा? [ख] एक प्रमाण की तो कलई खुल गई, द्वितीय प्रमाण दिया है 'स पर्यगात् यजु० ४०।८" इसका अर्थ हम अभी पीछे "सगुण-निर्गुण" शीर्षक लेख में लिख चुके हैं, इस मंत्र में ईश्वर को केवल निराकार नहीं कहा वरन् निराकार साकार दो प्रकार का लिखा है बस यह शस्त्र भी रण में जवाब दे गया। [ग] अब एक उपनिषद् का प्रमाण दिया है जिसको सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने 'अवतार प्रकरण' से पहिले लिखा है वह है 'अपाणिपादः' इससे यह दिखलाया है कि ईश्वर के हाथ और पैर नहीं किन्तु वह चलता और पकड़ता है उसके आंख नहीं हैं किन्तु देखता है, कान नहीं हैं सुनता है, वह सब जानने योग्य पदार्थ को जानता है किन्तु उसका जाननेवाला कोई नहीं।

इससे यह सिद्ध किया है कि ईश्वर निराकार है। जिस श्वेताश्वतरोपनिषद् में यह श्रुति है उसी में लिखा है कि—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः
पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः
प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतो मुखः॥

श्वेताश्व० अ० २ श्रु० १६

यह जो पूर्वोक्त देव परमात्मा सब दिशा विदिशाओं में नाना रूप धारण करके ठहरा हुआ है वही प्रथम सृष्टि के आरंभ में हिरण्यगर्भ रूप से उत्पन्न हुआ, वही गर्भ के भीतर आया, वही उत्पन्न हुआ और वही आगे को उत्पन्न होगा, जो सब के भीतर अन्तःकरणों में ठहरा हुआ है और जो नाना रूप धारण करके सब ओर मुखों-वाला हो रहा है। जिस श्वेताश्वतरोपनिषद् में "अपाणिपादः" श्रुति से ईश्वर को निराकार बतलाया था उसी उपनिषद् में "एषो ह देवः" श्रुति से साकार बतलाया फिर 'एषो ह देवः' यह श्रुति आर्यसमाज के लंगड़े वेद यजु० अ० ३२ में आ चुकी है और 'अपाणिपादः' श्रुति लंगड़े वेद में नहीं आई। यहां पर क्या चालाकी की कि जो श्रुति लंगड़े वेद में नहीं आई उसको तो प्रमाण मान लिया क्योंकि इसमें निराकार ईश्वर लिखा है और जो वेद में आ गई उसको दूर फेंक दिया क्योंकि वह साकार ईश्वर को कह रही है। ऐसी ऐसी चालाकियां किसी दिन आर्यसमाज की अन्त्येष्टि करे विना न रहेंगी। [घ] जब प्रमाणों से ईश्वर का निराकारत्व सिद्ध न हुआ तब सत्यार्थप्रकाश युक्तियों पर आया। प्रथम युक्ति यह दी कि 'जैसे आकाश अनन्त है अतएव उसका आना जाना नहीं बनता इसी प्रकार ईश्वर भी अनन्त है फिर उसका आना जाना कैसे बनेगा ? सत्यार्थप्रकाश के लेखक अवश्य ही कोई नशा करते हैं और उसी नशे में कुछ का कुछ लिखा करते हैं, यदि अनन्त होने से ईश्वर का आना जाना नहीं बनता था तो फिर 'अपाणिपादः' इस श्रुति से ईश्वर का दौड़ना कैसे लिख दिया ? कहीं तो ईश्वर का आना जाना लिख दें और कहीं आने जाने का निषेध कर दें यह नशे की बेहोशी नहीं तो और क्या है ? आकाश ही वायु का रूप धारण करता है और वायु बन कर उसका आना जाना प्रत्यक्ष है, आकाश वायु का रूप धारण करता है इसके लिये "तस्माद्वा तैत्ति० ब्रह्मा० वल्ली० अनु० १" में लिखा है कि "आकाशाद्वायुः" जब इन्द्रियातीत आकाश इन्द्रिय (त्वक्) गोचर बन कर

आता जाता है फिर इन्द्रियातीत ईश्वर का इन्द्रियगोचर रूप धारण करके आने जाने को कौन युक्ति रोक देगी ? एक दलील खतम। दूसरी तर्क यह है कि 'क्या ईश्वर गर्भ में नहीं था जो आया और क्या बाहर नहीं था जो गर्भ से निकल कर बाहर आ गया' जिस प्रकार ईश्वर व्यापक है उसी प्रकार निराकार रूप से अग्नि भी सर्वव्यापक है। एक आर्यसमाजी रोटी पकाने लगा दूसरे के यहां से आग ले आया, दाल पकने चढ़ा दी, दूसरा आर्यसमाजी उससे आग मांगने आया उसने उसको आग दे दी, अब यहां वही तर्क आर्यसमाजियों के शिर पर चढ़ बैठी। वह कहीं से आग मांग लाया तो क्या उसके चूल्हे में पहिले आग नहीं थी ? और उसने अपने चूल्हे से आग निकाल कर दूसरे को दी, क्या चूल्हे से बाहर पहिले आग नहीं थी ? आर्य-समाजियों के पास इसका क्या जवाब है ? यही उत्तर कह सकते हैं कि सब जगह जो आग थी वह निराकार थी और यह आर्यसमाजी जो मांग के लाया और इसने दूसरे को दी यह साकार थी। बस यही जवाब हमारा है कि गर्भ में ईश्वर निराकार था अब साकार होकर आया और गर्भ के बाहर भी ईश्वर निरा-कार था एवं अब जो गर्भ से बाहर आया वह साकार होकर आया। इस हमारी युक्ति की पुष्टि करनेवाली "अग्निर्यथैकः कठ० वल्ली ५ श्रु० ६" मौजूद है इसको हम "सर्व-शक्तिमत्व" प्रकरण में लिख आये पाठक वहां पर ही देख लें। [ङ] फिर सत्यार्थ-प्रकाश ने लिखा कि 'ईश्वर के विषय में साकार होना विद्याहीनों के सिवाय और कौन मान सकेगा' यहां पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने ईश्वर को विद्याहीन लिखा है क्योंकि ईश्वर का आना जाना, अवतार धारण करना, यह संसार को वेद ने बतलाया और वेद ज्ञान के देनेवाले ईश्वर हैं इसलिये यहां विद्याहीन का इशारा ईश्वर पर है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक का मंशा यह है कि मैं आर्यसमाजियों की दृष्टि में ईश्वर से अधिक विद्वान् बन जाऊं तो ये मेरी सब बातें मान लेंगे। स्वार्थवश ईश्वर को मूर्ख लिखनेवाले घोर नास्तिक आर्यसमाजियों के धर्म के प्रवर्त्तक बनें तो क्या यह अन्याय नहीं है ? आर्यसमाजी बेचारे क्या करें वे तो बिल्कुल पढ़े नहीं, सत्यार्थप्रकाश के लेखक यदि गधे को निराकार ईश्वर लिख दें तो वे उसी को सत्य मान लेंगे उनका क्या दोष।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक के समान चालबाज और नास्तिक मनुष्य संसार में यदि तुम दूसरा खोजोगे तो न मिलेगा। वेद के बीसियों मंत्रों में ईश्वर के अवतारों का वर्णन है उन सब को छिपा कर ये महात्मा ईश्वर को निराकार बतलाते हैं क्या यहां चालबाजी की हद नहीं होगई ? इनके मन में यह भरा है कि सनातनधर्मी जब

वेदों से अवतार सिद्ध करेंगे तब हम कह देंगे कि सत्यार्थप्रकाश के लेख से ब्राह्मणों को हानि पहुंचती है इसलिये ब्राह्मण हमारे सिद्धान्तों को गलत बतलाते हैं, और आर्यसमाजी कभी वेद पढ़ेंगे ही नहीं वे हमेशा हमारे लिखे निराकार को ही मानते रहेंगे। अवतार के लिये 'वेद सिद्धान्त परिचय' के 'ईश्वर स्वरूप' लेख को देखो।

जीव की परतंत्रता

स. प्र. पृ. १९२ पं. ६–(प्रश्न) जीव स्वतंत्र है वा परतंत्र? (उत्तर) अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतंत्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतंत्र है "स्वतंत्रः कर्ता" यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है जो स्वतंत्र अर्थात स्वाधीन है वही कर्ता है।

वि०—परमार्थिकसत्ता में तो न जीव कर्ता है न भोक्ता, करना और भोगना यह मन आदि इन्द्रियों का काम है किन्तु व्यवहारिकसत्ता में जीव कर्ता है और वह स्वतन्त्र नहीं, यदि कर्म करने में जीव स्वतंत्र होता तो राजा युधिष्ठिर तथा राजा नल वेदनिषिद्ध जुआ न खेलते और भरत जैसे ज्ञानी को हिरण के प्रेम में फँस कर हिरण न बनना पड़ता। दुर्योधन ने कहा है कि—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति·
र्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि॥

मैं धर्म को जानता हूँ किन्तु उसके अनुष्ठान में मेरी प्रवृत्ति नहीं होती, मैं अधर्म को भी जानता हूँ किन्तु उससे मेरी निवृत्ति नहीं होती, कोई देव मेरे हृदय में स्थित है और वह मुझे कार्य करने की प्रेरणा करता है, जिस कार्य के करने में वह मुझे लगाता है मैं उसी को करता हूँ। इस विषय में वेद का निर्णय यह है कि—

आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषया ꣳस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

कठ० अ० १ वल्ली ३ श्रु० ३। ४

मनुष्य के इस देह में जीवात्मा रथी, शरीर रथ, बुद्धि सारथी तथा मन बागडोर, इन्द्रियां घोड़े हैं, इन्द्रियों के विषय भोग्य पदार्थ हैं, आत्मा इन्द्रियादि से युक्त होकर कर्मों को करता हुआ भोग भोगता है। यहाँ पर कर्म करने में इन्द्रिय, मन और बुद्धि की प्रधानता है, इन्द्रियां प्रत्येक कर्म करने में अपने विषय की तरफ दौड़ती हैं यदि लगाम मन मजबूत है और सारथी बुद्धि होशियार है तो रथ को सुन्दर मार्ग सड़क पर चलावेगा और यदि इन दोनों मन और बुद्धि में मजबूती तथा होशियारी नहीं है ऐसी दशा में इन्द्रियरूप घोड़े हरा हरा घास देख कर सड़क छोड़ घास की तरफ को चले जायँगे और रथ गढ़े में गिर जायगा। यहाँ पर मन और बुद्धि की प्रधानता है। मन और बुद्धि ये दोनों ही प्राचीन कर्मों के अनुसार बनते हैं। पहिले जन्मों में शुभ कर्म किये हैं तो मन और बुद्धि पवित्र हैं वे शरीर को धार्मिक मार्ग से चलावेंगे और यदि इसके विपरीत कर्म किये हैं तो दूषित मन बुद्धि नरक को ले जायँगे। जाव न कर्म करता है और न वह स्वतन्त्र है, हां मन और बुद्धि के आधीन है। पिछले जन्मों में किये हुये कर्मों के अनुसार विषयासक्त मन और विवेक-शून्य बुद्धि जीव को कुमार्ग में ले जाती है किन्तु सत्सङ्गति तथा श्रवण आदि से जब मन और बुद्धि पवित्र होते हैं तब जीव को सुमार्ग से चलाते हैं।

ईश्वर के त्रिकालज्ञ का निषेध

स. प्र. पृ. १९४ पं. ४–ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है क्योंकि जो होकर न रहै वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न होके होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस अखंडित वर्तमान रहता है, भूत भविष्यत् जीवों के लिये हैं, हां जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है स्वतः नहीं।

वि०—यह शास्त्रशून्य सत्यार्थप्रकाश के लेखक के मुँह की चकचक है अतएव लंगड़े वेद का यहां कोई प्रमाण नहीं दिया गया। जिस प्रकार से ईश्वर को भूत, भविष्यत्, वर्तमान का ज्ञान रहता है उसी प्रकार से योगियों को भी रहता है। इसके ऊपर योगदर्शन लिखता है कि—

परिणामत्रयसंयमादतीताऽनागतज्ञानम्।

योगद० विभूतिपाद ३ सू० १६

तीनों परिणामों के संयम से योगी को भूत भविष्यत् का ज्ञान होता है। जब ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता है तो योगी को भी त्रिकालदर्शी कहना योग-दर्शन की मूर्खता है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक भूत का समन्वय ज्ञान में करते हैं इसी से गल्ती खाते हैं. भूत का समन्वय काल में करें और काल का समन्वय ज्ञान में करें तो 'भूतकाल का ज्ञान' यह उपलब्ध होगा, क्या ईश्वर को भूतकाल का ज्ञान नहीं है? आप दुनियाँ को अपनी विद्वत्ता दिखलाते हुये 'भूत' को 'ज्ञान' में जोड़ के जिरह करते हैं ऐसे ऐसे बनावटी जालों में मूर्ख आर्यसमाजी ही फंसेंगे और वे ही कहेंगे कि ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं है। कल्पना करो कि सन ८२ में स्वामी दयानन्द जी का वैकुण्ठवास हो गया और उनका मृतक शरीर घर से बाहर रक्खा. ईश्वर को भूतकाल का ज्ञान नहीं अर्थात् उसकी दृष्टि में कुछ भूत है ही नहीं, सब वर्तमान ही है तो क्या ईश्वर के ज्ञान में आज भी स्वामी दयानन्द जी का मृतक शरीर बाहर ही रक्खा है? यह ज्ञान ज्ञान नहीं कहलाता, यह तो अज्ञान है; बहाने बहाने से ईश्वर को अज्ञानी सिद्ध कर अपने को ज्ञानी जतलाना यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक की घोर नास्तिकता है।

जीव लक्षण

स. प्र. पृ. १९३ पं. ६–(प्रश्न) जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है? (उत्तर) दोनों चेतन स्वरूप हैं, स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय सब को नियम में रखना, जीवों को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं और जीव के सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, शिल्प विद्यादि अच्छे बुरे कर्म हैं।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक के किसी सिद्धान्त में जब कोई लंगड़े वेद का प्रमाण नहीं मिलता तब उनके जी में जो आता है सोई लिख चलते हैं ऐसे मिथ्या कल्पित सिद्धान्तों को चलाने के लिये सत्यार्थप्रकाशलेखक के पास यदि कोई बल है तो वह यह है कि आर्यसमाजी संस्कृत से अनभिज्ञ रहते हैं उनको कोई ज्ञान नहीं, जो कुछ हम लिख देंगे आर्यसमाजी उसी को वेद मान लेंगे इसी आधार पर असम्बद्ध प्रलाप लेख लिखे जाते हैं। पहिले तो आप लिखते हैं कि जीव का स्वभाव पवित्र अविनाशी और धार्मिक है और फिर लिखते हैं कि 'सन्तानोत्पत्ति' उनका पालन, शिल्प

विद्यादि अच्छे बुरे कर्म हैं' जब जीव पवित्र है फिर उसके अच्छे बुरे कर्म कैसे चिपट जायंगे ? यदि पवित्र के भी कर्म चिपटते हैं तो पवित्र ईश्वर के कर्म क्यों न चिपटेंगे ? सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जीव के जितने कर्म बतलाये ये कर्म जीव के नहीं वरन् इन्द्रियविशिष्ट शरीर के हैं, जीव तो कुछ भी नहीं करता इसको "आत्मानं रथिनं विद्धि० कठ० अ० १ वल्ली ३ श्रु० ३ । ४" श्रुति ने स्पष्ट कर दिया है इस श्रुति को "जीव की परतंत्रता" शीर्षक लेख में पढ़ लें । इसके ऊपर निरुक्त का कथन है कि—

अंगादंगात्संभवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥

निरु० नैगम कां० अ० ३ पाद १

पुत्र को आशीर्वाद देता हुआ पिता कहता है कि तू मेरे अंग अंग से पैदा हुआ है मेरे हृदय से ज्ञानेन्द्रियों को लेकर संसार में आया है, पुत्र नामवाला तू मेरा ही आत्मा शरीर है इसलिये सैकड़ों वर्ष तक जी । इससे सिद्ध है कि पुत्रादिक पैदा करना इन्द्रियविशिष्ट शरीर का धर्म है न कि जीव का, क्या आर्यसमाजी इस पर विचार करेंगे ?

जीव धर्म

स. प्र. पृ. १९३ पं. ११—"और जीव के

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिंगमिति ।

न्याय सू. अ. आ. १ सू. १०

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः
सुखदुःखेच्छाद्वेषौप्रयत्नाश्चात्मनोलिंगानि ।

वैशेषिक सू. अ. ३ आ. २ सू. ४

(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा बैर (प्रयत्न) पुरुषार्थबल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राणवायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना (निमेष) आँख को मीचना (उन्मेष) आँख को खोलना (मन) निश्चय स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब

इन्द्रियों का चलाना (अन्तर विकार) भिन्न भिन्न क्षुधा तृषा हर्ष शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं।

वि०—ये आत्मा के धर्म नहीं हैं, इन्द्रियविशिष्ट शरीर के धर्म हैं। आत्मा के तो ये ज्ञापक लिंग हैं अर्थात् इस शरीर में आत्मा है इस बात को जना देनेवाले हैं। जिस समय आत्मा का स्थूल शरीर पृथक् हो जाता है और केवल लिंग शरीर रह जाता है उस समय ये धर्म नहीं रहते, फिर जीव के धर्म कैसे हुये ? जैसे चुम्बक के अस्तित्व में लोहा भ्रमण करता है इसी प्रकार जीव के अस्तित्वमात्र से स्थूल शरीरस्थ इन्द्रियां अपना अपना काम करती हैं। एक राजा के यहां गान होना था, पहिले गैस के हंडे जलाये गये, फिर वाद्यवाले आये, मजलिस लगी, नटी आई, वाद्यों के स्वर-ताल मिलाये गये, नटी ने गायन आरंभ किया, बड़ी देर तक गान हुआ अन्त में गान समाप्त हो गया, सब अपने अपने घर को चले गये। यदि गैस के हंडे न होते तो कुछ भी न होता। यहां जो कुछ हुआ प्रकाश के आधार पर हुआ किन्तु प्रकाश सबसे अलग रहा इसने कोई काम नहीं किया यह तो साक्षीमात्र है फिर जीव के धर्म किस हेतु से कहे जाते हैं ? वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं जो इन धर्मों को जीव के धर्म बतला दे। सत्यार्थप्रकाश के लेखक की भूल ही आर्यसमाजियों की दृष्टि में सच्चा वेद है। क्या कोई आर्यसमाजी इस बात का सबूत दे सकता है कि ये जीव के धर्म हैं ?

जीव का विभुत्व

स. प्र. पृ. १९४ पं. १४–(प्रश्न) जीव शरीर में भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न ? (उत्तर) परिच्छिन्न, जो विभु होता तो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना आना कभी नहीं हो सकता।

वि०—जीव विभु है, विभु के न होने में यह हेतु दिया है कि यदि वह विभु होता तो उसमें जाना आना न बनता। सत्यार्थप्रकाश का लेखक हरदम नशे में चूर रहता है इसने सत्यार्थप्रकाश के पृ० १८८ पं० ४ में "अपाणि पादः" इस श्रुति को लिख कर विभु जगदीश्वर का चलना बतलाया और अब कहते हैं कि जीव चलेगा तो विभु न रहेगा। ईश्वर को चलाया और उस चलने से ईश्वर के विभुत्व में कोई बट्टा नहीं आया फिर यहां कैसे लिख दिया कि जीव चलेगा तो विभु न रहेगा ? भंग के नशे में लिखी हुई किताब आर्यसमाजियों की धर्मपुस्तक बन जाती है ! व्यवहारिकसत्ता में जीव परि-

च्छिन्न है और परमार्थिकसत्ता में विभु, जो परमार्थिकसत्ता में भी जीव को विभु नहीं मानते उनकी आपत्तियों को भी देखा है ? कल्पना करो कि एक जीव हाथी के शरीर में गया और अब वह चीटी के शरीर में जायगा, हाथी के शरीर के प्रत्येक अंग में व्यापक जीव लम्बा चौड़ा हाथी के बराबर है, जब उसको चीटी के शरीर में भेजा जायगा तब उसको चीटी के शरीर के बराबर कैसे बनाया जायगा क्या वह सिकोड़ा जायगा ? एक चूहे का शरीर धारण करनेवाला जीव ऊंट के शरीर में जानेवाला है तो क्या अब वह जीव खेंच कर लम्बा चौड़ा किया जावेगा ? एक हथिनी के बच्चा पैदा हुआ उसमें शरीरावच्छिन्न शरीर के बराबर जीव है, बच्चे का शरीर बढ़ने लगा, चालिस पचास वर्ष में पूरा हाथी बन गया तो क्या साथ ही साथ में जीव भी बढ़ गया ? यदि जीव केवल अन्तःकरण में है तो फिर पांव के दुःख का अनुभव उसको कैसे होगा ? इसका आर्यसमाजियों के पास क्या जवाब है ? एक घड़ा है और उसमें इस समय कोई पदार्थ नहीं, घट में केवल घटाकाश है उस घड़े को एक मनुष्य ले चला तो विभु आकाश भी साथ ही साथ चल दिया, बस यही दशा जीव की है। इन सब बातों को दृष्टि में रख वैशेषिक दर्शन लिखता है कि—

विभवान्महाकाशस्तथा चात्मा

वैशे० अ० ७ आ० १ सू० २२

विभवात् अर्थात् सर्व मूर्त संयोगरूप विभुत्व होने से आकाश (महान्) परम महत है (तथा) तैसे ही सर्व मूर्त संयोगित्व रूप विभुत्व होने से आत्मा भी परम महान् है।

अभिन्न निमित्तोपादानकारण

स. प्र. पृ. १९० पं. ३–"परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है।

वि०—इसके लिये "वेद सिद्धान्त परिचय" का "अभिन्न निमित्तोपादान-कारण" देखो।

महावाक्य

स. प्र. पृ. १९४ पं. २८–प्रज्ञानं ब्रह्म १। अहं ब्रह्मास्मि २। तत्वमसि ३। अयमात्मा ब्रह्म ४। वेदों के इन महावाक्यों का अर्थ क्या

है ? (उत्तर) ये वेदवाक्य ही नहीं हैं किन्तु ब्राह्मणग्रन्थों के वचन हैं और इनका नाम महावाक्य कहीं सत्य शास्त्रों में नहीं लिखा । अर्थ— (अहम्) मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूँ । यहां तात्स्थ्योपाधि है जैसे "मंचाः क्रोशन्ति" मंचान पुकारते हैं। मंचान जड़ हैं उनमें पुकारने का सामर्थ्य नहीं इसलिये मंचस्थ मनुष्य पुकारते हैं, इसी प्रकार यहां भी जानना । पुनः स. प्र. पृ. १९५ पं. ९–जीव का ब्रह्म के साथ तान्स्थ्य व तत्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्म का सहकारी जीव है इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं । जैसे कोई किसी से कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में प्रेमवद्ध होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं । जो जीव परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करता है वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ एकता कह सकता है । (प्रश्न) अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे ? (तत्) ब्रह्म (त्वं) तू जीव (असि) है । हे जीव ! (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है ? (उत्तर) तुम (तत्) शब्द से क्या लेते हो ? 'ब्रह्म' । ब्रह्म पद की अनुवृत्ति कहां से लाये ।

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयंब्रह्म ।

इस पूर्व वाक्य से । तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद् का दर्शन भी नहीं किया, जो वह देखी होती तो वहां ब्रह्म शब्द का पाठ ही नहीं है ऐसा झूठ क्यों कहते किन्तु छान्दोग्य में तो

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ।

छा० प्र० ६ खं० २ मं १

ऐसा पाठ है वहां ब्रह्म शब्द नहीं (प्रश्न) तो आप तच्छब्द से क्या लेते हैं ? (उत्तर)

स य एषोणिमा । ऐतदात्म्यमिदꣳसर्वं
तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेते । इति ।

छान्दो० प्र० ६ खं० ८ मं० ६।७

वह परमात्मा जानने योग्य है। जो वह अत्यन्त सूक्ष्म और इस सब जगत् और जीव का आत्मा है वही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आप ही है हे श्वेतकेतो प्रिय पुत्र

तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि।

उस परमात्मा अन्तर्यामी से तू युक्त है।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक की जिद्द की बलिहारी है। वे कहते हैं कि ये वेदों के वाक्य ही नहीं, ब्राह्मणों के हैं, इनसे पूछिये कि ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं तो क्या कुरान हैं? सहस्रों प्रमाण ब्राह्मणों को वेद बतला रहे हैं किंतु सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक की हठ के आगे आर्षप्रमाण और वेदप्रमाण ये सब झूठे हैं। जिनको ब्राह्मणों का वेदहोना जानना हो वे "वेदसिद्धान्त परिचय" का 'वेद परिमाण' शीर्षक लेख पढ़ लें। [ख] आप लिखते हैं कि 'इनका महावाक्य होना सत्य शास्त्रों में नहीं लिखा' ज्ञान करवानेवाले पदसमूह को वाक्य कहते हैं जिसमें सर्वोत्तम महाज्ञान हो उसका नाम महावाक्य क्यों न होगा, आर्यसमाजियों के पास इसका क्या जवाब है! [ग] "अहं ब्रह्मास्मि" इसमें तात्स्थ्योपाधि बतलाई, इस भरोसे पर कि आर्यसमाजी इस विषय में कुछ समझते तो हैं ही नहीं लाचारी से हमारे ही लेख को सत्य मान लेंगे। तात्स्थ्योपाधि असंभवता में होती है जैसे 'मंचाः क्रोशन्ति' मंच चिल्लाते हैं, मंचों का बोलना असंभव है अतएव यहां यह लिया जाता है कि मंचों के ऊपर बैठे हुये मनुष्य बोलते हैं, "अहं ब्रह्मास्मि" यहां कौन असंभवता है? और इसके तात्स्थ्य से क्या बोध होगा सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने यह कुछ नहींबतलाया; क्या कोई आर्यसमाजी इसके बतलाने की कृपा करेगा? [घ] 'ब्रह्म का सहकारी जीव है' यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक का जबानी जमा खर्च है, समस्त वेद ढूढ़ने पर भी ब्रह्म का सहकारी जीव सिद्ध नहीं होता, जब कुछ जवाब नहीं सूझा तब यहां पर आयँ बायँ सायँ बकना शुरू कर दिया। [ङ] ब्रह्म में गुण, कर्म, स्वभाव हैं कब, ये तो सत्यार्थप्रकाश की बनाई हुई नकली वर्णव्यवस्था में हैं, गुण प्रकृति के कार्य हैं अतएव ईश्वर में हैं नहीं, यदि ईश्वर में कर्म हों तो कर्मों का फल ईश्वर को भोगना पड़े, स्वभाव भी भौतिक पदार्थों से बनता है, ईश्वर सब से परे है, जब ईश्वर में गुण कर्म स्वभाव ही नहीं तो जीव अपने गुण कर्म स्वभाव को ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से कैसे मिलावेगा? जीव में भी गुण कर्म स्वभाव नहीं, रज सत्व तम तीन गुण हैं। ये प्रकृति के रचे हैं अतएव जीव से स्थूल हैं. फिर ये जीव के कैसे हुये? कर्म और

स्वभाव की गति लिंगशरीर और स्थूलशरीर तक क्रम से है, लिंगशरीर में कर्म और स्थूलशरीर में स्वभाव रहता है, जीव में तीनों का अभाव है फिर क्या मिलाया जावे, क्या कोई आर्यसमाजी इस अंडबंड लेख का जवाब दे सकता है ? [च] लेखक लिखता है कि ब्रह्म शब्द की अनुवृत्ति कहां से लाये ? "अग्रे आसीत्" पद पड़ा है और उसका यह अर्थ है कि ब्रह्म पहिले ही मौजूद था। जब इससे ब्रह्म का ज्ञान होता है तब अनुवृत्ति की कौन आवश्यकता ? [छ] 'तत्वमसि' का क्या विलक्षण अर्थ लिखा है ऐसा अर्थ तो हल जोतनेवाला भी नहीं कर सकता। सत्यार्थप्रकाश का लेखक कहता है कि वह परमात्मा जानने योग्य है, जो वह अत्यन्त सूक्ष्म तथा इस सब जगत् और जीव का आत्मा है वही सत्य स्वरूप और अपना आत्मा आप ही है 'तत्वमसि' के इस विलक्षण अर्थ को जान कर आर्यसमाजी भाई सत्यार्थप्रकाश के लेखक को मूर्ख समझेंगे या विद्वान् ? इस समझ का कोई आर्यसमाजी लेख लिख कर ज्ञान करा दे तो बड़ी कृपा हो।

महावाक्यों के तात्पर्य (जीव के ब्रह्म होने) को हम दूसरी रीति से सिद्ध करते हैं। जीव, ब्रह्म से प्रादुर्भूत हुआ है इसमें "यथा सुदीप्तात्०् मुण्डक० द्वितीय मुं० खं० १" श्रुति प्रमाण है, इस श्रुति को 'वेदसिद्धान्त परिचय' के 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' में देख लें। जब यह जीव कर्मशून्य हो जाता है तब क्या होता है इसके ऊपर वेद लिखता है कि—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽ
स्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

मुण्डक० तृतीय मुं० खं० २ श्रु० ८

जैसे नदियां बहती हुई अपने नाम रूप को मिटा कर समुद्र में मिल जाती हैं वैसे ही विद्वान् नाम और रूप जीवादि उपाधि से छूट परात्पर दिव्य पुरुष में मिल जाता है।

जीव आदि में ब्रह्म था और मोक्ष होने पर फिर ब्रह्म बन जायगा तो

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।

गौड़पादीय का० श्लो० ३१

जीव आदि में ब्रह्म था और अन्त में भी ब्रह्म होगा, अतएव मध्य दशा में भी यह ब्रह्म है। इसी बात को 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्वमसि' आदि महावाक्य जीव को यह ज्ञान सिखलाते हैं, तुम अपने को यह कहो कि वह ब्रह्म मैं हूँ और इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'तत्-त्वम्-असि' 'वह ब्रह्म तू है'। जब महावाक्यों का अभिप्राय जीव को ब्रह्म बतलाना है एवं यह कार्य भिन्न भिन्न श्रुतियों से भी सिद्ध होता है तब महावाक्यों पर आयँ बायँ सायँ लिखने से क्या कोई प्रयोजन निकलता है ? कुछ नहीं।

वेद प्राप्ति

स. प्र. पृ. २०३ पं० १०-(वेद) जीवों को अन्तर्यामी रूप से उपदेश किया है। पुनः पृ. २०३ पं. १५-किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया ? उत्तर-

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।

शत. ११।४।२।३

पृ. २०३ पं. १८-इन ऋषियों के आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया (प्रश्न)-

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

श्वेताश्व. अ. ६ मं. १८

यह उपनिषद् का वचन है। इस वचन से ब्रह्माजी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ? (उत्तर) ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया देखो मनु ने क्या लिखा है-

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥

मनु. १।२३

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारो महर्षियों के द्वारा चारो वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि-वायु-आदित्य और अंगिरा से ऋग्यजुः साम और अथर्व वेद का ग्रहण किया।

वि०—[क] अंगिरा ऋषि के द्वारा अथर्ववेद संसार में आया यह वेद, धर्म शास्त्र, दर्शन, अंग, पुराण, इतिहास कहीं पर नहीं लिखा, सत्यार्थप्रकाश का लेखक बिना प्रमाण ही अपने मन से चंडूखाने की गप्प बनाकर लिखता है कि अंगिरा से अथर्ववेद की उत्पत्ति हुई क्या आर्यसमाजी इस झूठे गपोड़े पर कभी लेखनी उठावेंगे ? [ख] सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने शतपथ के थोड़े लेख को लेकर उसका अर्थ बदल इस करामात से ऋषियों के द्वारा वेदप्राप्ति लिख दी। शतपथ के देखने से यह चालाकी समूल नष्ट हो जाती है। देखिये शतपथ—

प्रजापतिर्वाऽइदमग्रऽआसीत्। एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात्त्रयो लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः ॥१॥ स इमाँस्त्रींल्लोकानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निर्योऽयं पवते सूर्यः ॥२॥ स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः ॥३॥ स इमाँस्त्रीन्वेदानाभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद्भुव इति यजुर्वेदात्स्वरिति सामवेदात्तद्ऋग्वेदेनैव होत्रमकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवꣳ सामवेदेनोद्गीथं यदेव त्रय्यै विद्यायै शुक्रं तेन ब्रह्मत्वमथोच्चक्राम ॥४॥

शत० ११। ५। २ श्रु० १ से ४ तक

प्रजापति सृष्टि से पहिले अकेला वर्तमान था उसने इच्छा की कि मैं प्रजा बनूँ। उसने इसका निश्चय कर तप किया। उस श्रान्त और तपे हुये प्रजापति ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीन लोक रचे। १। फिर उसने इन तीन लोकों को तपाया, उन तपे हुये तीनों लोकों से अग्नि, पवन और सूर्य ये तीन ज्योतियाँ उत्पन्न हुईं। २। पश्चात् उसने अग्नि, पवन, सूर्य इन तीन ज्योतियों को तपाया, इन तीन तपी हुई ज्योतियों से क्रमशः अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद ये तीन वेद उत्पन्न हुये।३। बाद में उस प्रजापति ने इन तीन वेदों को तपाया, इन तपे हुये तीन वेदों से क्रमशः

ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः, सामवेद से स्वः ये तीन शुक्र उत्पन्न हुये। ऋग्वेद से होत्र, यजुर्वेद से अध्वर्यव, सामवेद से उद्गीथ उत्पन्न किया, यह वेदत्रयी से शुक्र उत्पन्न हुआ अतएव ब्रह्म कहलाया। ४। इसी की पुष्टि छान्दोग्योपनिषद् करता है—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाꣳ रसान्प्रा-
बृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः ॥१॥
स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासांतप्यमानानाꣳ
रसान्प्रावृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूꣳषि सामान्यादित्यात् । २।
स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रावृ-
हद्भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः । ३।

छान्दोग्य० प्रपा० ४ खं० १७ श्रु० १। २। ३

प्रजापति ने लोकों को तपाया, इन तप्यमान लोकत्रय के रसरूप अग्नि पृथ्वी से और अन्तरिक्ष से वायु एवं दिव से आदित्य प्रकट हुये। १। फिर प्रजापति ने अग्नि, वायु, आदित्य इन तीन देवों को तपाया, इन तप्यमान तीन देवों से क्रम पूर्वक अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद रसरूप प्रकट हुये। २। बाद में प्रजापति ने वेदत्रयी को तपाया, इस तप्यमान वेदत्रयी से रसरूप क्रमशः ऋक् से भूः और यजु से भुवः एवं साम से स्वः तीन लोक बने। ३।

यही बात ऐतरेय ब्राह्मण कहता है—

प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति।
स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इमांल्लोकानसृजत
पृथ्वीमन्तरिक्षं दिवम्। तांल्लोकानभ्यतपत्।
तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्त। अग्निरेव
पृथिव्या अजायत, वायुरन्तरिक्षादादित्यो दिवः।
तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो
वेदा अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत, यजुर्वेदो
वायोः सामवेद आदित्यात्।

ऐतरेय ब्रा० २५। ७

प्रजापति ने इच्छा की कि मैं प्रजा वनूं, उसने तप किया, तप करके पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव को सूक्ष्म रूप से रचा, फिर इन तीन लोकों को तपाया, इन तपे हुये तीन लोकों से पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु, दिव से आदित्य इन तीन ज्योतियों को उत्पन्न किया, पश्चात् इन तीन ज्योतियों को तपाया, तपी हुई इन तीन ज्योतियों से क्रमशः अग्नि से ऋग्वेद, पवन से यजुर्वेद, आदित्य से सामवेद इस प्रकार वेदत्रयी को प्रकट किया।

शतपथ, छान्दोग्य और ऐतरेय तीनों में ही अग्नि, वायु, रवि ज्योतियां हैं, रही बात मनुस्मृति की–मनु के "अग्निवायुरविभ्यस्तु० १।२३" में भी तीनों ज्योतियों का ही ग्रहण है। (१) मनुस्मृति के ऊपर संस्कृत के सात प्राचीन टीका हैं, सातों ने ही इस श्लोक के टीका पर शतपथ की श्रुति का प्रमाण दिया है। (२) मनु के श्लोक में ब्रह्मा का नाम ही नहीं सत्यार्थप्रकाशकर्ता ने अर्थ में जबरन् दिखलाया। (३) यह श्लोक १।२३ का है यहां पर मनुष्यसृष्टि पैदा ही नहीं हुई फिर ये चार ऋषि कहां से आ जावेंगे, मानवी सृष्टि की उत्पत्ति इसी अध्याय के श्लोक ३४ और ३५ से आरंभ हुई है इसलिये मनु में भी अग्नि, वायु, रवि शब्द से तीन ज्योतियों का ग्रहण है।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक में यह खूबी है कि जिस बात को ये एक स्थान में अपना सिद्धान्त बनाते हैं दूसरे स्थान में उसी का खण्डन कर देते हैं। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश में यह सिद्धान्त बनाया कि चारों वेदों की उत्पत्ति अग्नि, वायु, रवि एवं अंगिरा के द्वारा हुई किंतु सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में सृष्टि के आदि राजा दिखलाते हुये इन चारों ऋषियों की पैदाइश उड़ा दी, यह लिख दिया कि 'सृष्टि के आरंभ में सबसे पहिले ब्रह्मा पैदा हुआ, ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश, इनके स्वायंभवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त के प्रथम राजा हुये' जब ये चार ऋषि पैदा ही नहीं हुये तो उनके द्वारा वेदोत्पत्ति कैसी ?

शतपथ, छान्दोग्य और ऐतरेय से यह सिद्ध है कि अग्नि, वायु, रवि इन तीन ज्योतियों से प्रजापति ब्रह्मा ने वेद को दुहा। यही बात मनु जी कह गये, इसीके ऊपर लिखा है कि—

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव
विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥१॥
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा-
थर्वा तां पुरोवाचांगिरे ब्रह्मविद्याम् ।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह
भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥

मुण्डक० प्रथम मुं० खं० १

सम्पूर्ण देवताओं में पहिले ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, वह विश्व का रचयिता और त्रिभुवन का रक्षक था, उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को समस्त विद्याओं की आश्रयभूत ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। १। अथर्वा को ब्रह्मा ने जिसका उपदेश किया था वह ब्रह्मविद्या पूर्वकाल में अथर्वा ने अङ्गी को सिखाई, अङ्गी ने उसे भरद्वाज के पुत्र सत्यवाह से कहा तथा भरद्वाजपुत्र (सत्यवाह) ने इस प्रकार श्रेष्ठ से कनिष्ठ को प्राप्त होती हुई वह विद्या अङ्गिरा से कही ॥ २ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदाँश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तꣳ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं
मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

श्वेताश्व० अध्या० ६ श्लो० १८

जिसने प्रथम ब्रह्मा को उत्पन्न किया और जिसने ब्रह्मा को वेद दिये उस आत्मा और बुद्धि के प्रकाश करनेवाले देव की मुक्ति की इच्छा रखनेवाला मैं शरण में प्राप्त होता हूँ।

वेददृष्टा

स. प्र. पृ. २०५ पं. १९-धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब जब जिस जिस के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर

के स्वरूप में समाधिस्थित हुये तब तब परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये। पुनः पृ. २०५ पं. २३ और

ऋषयो (मन्त्रदृष्टयः) ..... मंत्रान्सम्प्रादुः। निरुक्त १। २०

जिस जिस मंत्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया, और दूसरों को पढ़ाया भी इसलिये अद्यावधि उस उस मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक जब लेख लिखते हैं तब बेहोशी के पंजे में आ जाते हैं, उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं रहता कि इस लेख से हमारा पक्ष पुष्ट होता है या हमारे ही पक्ष की जड़ कटती है। यहां पर लिखा है कि ऋषि समाधि में बैठे और उन्होंने ईश्वर के स्वरूप में समाधि लगाई। सब जगह तो ईश्वर निराकार रहा किंतु यहां उस ईश्वर ने स्वरूप बना लिया इस विरोध का भी कुछ ठिकाना है? [ख] "धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब जब जिस जिस के अर्थ की जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हों" यह चंडूखाने की गप्प सत्यार्थप्रकाशलेखक के दिमाग से टपकी है, आर्यसमाज के लंगड़े वेद में वेदार्थ जानने के लिये समाधि लगाना कहीं नहीं आता, सनातनधर्मियों के ग्रन्थों में भी कहीं नहीं लिखा फिर आर्यसमाजी बतलावें यह लेख बाइबिल का है या कुरान का? [ग] "परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये" इसका भी उल्लेख किसी ग्रन्थ में नहीं, जबानी जमा खर्च से आर्यसमाजियों को धर्म से गिराया जा रहा है इसपर आर्यसमाजी खुद विचार कर लें। [घ] "ऋषयो मंत्रदृष्टयः" यह प्रमाण जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है यह सत्यार्थप्रकाश की पुष्टि न कर हमारा पक्ष ले रहा है। निरुक्त इस प्रकार है—

साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽ
साक्षात्कृत धर्मस्य उपदेशेन मंत्रान्त्सम्प्रादुः।

नि० नैगम कां० अ० १ पा० ६

जिन्होंने धर्म का साक्षात्कार किया मंत्रकाल में ऐसे ऋषि हुये उन्होंने अपने से छोटों को जिनको धर्म का साक्षात्कार नहीं हुआ उन्हें मंत्रों का उपदेश किया। यहां पर धर्म के साक्षात्कार से मंत्रों का ज्ञान होना है। जिन ऋषियों को मंत्रों का ज्ञान हुआ था उन ऋषियों ने जो दूसरों को उपदेश किया वह अर्थ का उपदेश नहीं वरन् मंत्रों का उपदेश था। निरुक्तकार मंत्रों का उपदेश बतलाते हैं और सत्यार्थ-

प्रकाश के लेखक "मंत्रान्तसम्प्रादुः" इतने पद का अर्थ छिपा कर अपनी तरफ से वेदार्थ का उपदेश बतलाते हैं यह साक्षात् संसार को धोका देना है। इस निरुक्त पर पं० राजाराम जी शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर ने भाषा टीका किया है उनका लेख यह है कि "तप के बल से जिन्होंने धर्म को साक्षात् किया था ऐसे ऋषि मंत्रकाल में हुये हैं वह धर्म के साक्षात् दृष्टा ऋषि छोटों को जो कि धर्म को साक्षात् किये हुये न थे उपदेश द्वारा मंत्र देते भये" राजाराम के लेख से भी समाधि में मंत्रों की प्राप्ति और छोटों को मंत्रोपदेश का होना सिद्ध है फिर इस निरुक्त से वेदार्थ का ज्ञान तथा वेदार्थ का उपदेश लिखना निरी चालबाजी नहीं तो और क्या है ? जब ऋषियों को वेदार्थ का ज्ञान हुआ तो वेदार्थ के साथ उसका नाम लगना चाहिये था, मंत्र के साथ क्यों लगा ? इत्यादि सन्देहों का आर्यसमाजियों के पास कोई जवाब नहीं। आर्यसमाजी यह प्रश्न कर सकते हैं कि जब वेद ब्रह्मा ने बनाये तो वेदमंत्रों के साथ दृष्टा रूप से ऋषियों के नाम क्यों लगे ? इस प्रश्न का उत्तर हमारे जिम्मे है, सुनिये-- वेद कहता है कि जब सृष्टि के रचने का समय आया तब निराकार ईश्वर ने ब्रह्मा का रूप धारण कर सृष्टि रची उसी समय अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन ज्योतियों से ज्ञान द्वारा वेदों का प्रादुर्भाव किया और ये वेद उसने अपने लड़के को पढ़ाये, यह सृष्टि के आरम्भ की बात है। अब आगे की कथा सुनिये—जिस प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी दिन में काम करते हुये रात को शयन करते हैं उसी प्रकार ब्रह्मा ब्रह्मदिन में काम कर ब्राह्मी रात्रि में शयन करता है। जब वह शयन करता है तब "भूर्भुवः स्वः" इन तीन लोकों का प्रलय हो जाता है, शयन से उठ ब्रह्मा इन तीन लोकों को फिर रचता है, जब ये रचे गये तब मनुष्य और देवता आदि को वेद की आवश्यकता हुई क्योंकि लोकों के साथ वेदों का भी तिरोधान हो गया था, अब ऋषियों ने वेद जानने के लिये तप किया इसके ऊपर व्यासदेव जी लिखते हैं—

युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥

तप करते समय ब्रह्मा प्रसन्न हुये और उन्होंने बतलाया कि संसार में जितने भी शब्द होते हैं वे ज्यों के त्यों आकाश में अपनी स्थिति रखते हैं तुम तप से उनको जानो, इस आज्ञा से अधिक तप करते करते युगान्तर में अन्तर्हित हुये वेद तथा इतिहास को ऋषियों ने पूर्वकाल में पाया। जिस जिस मंत्र को जिस जिस ऋषि ने तप द्वारा प्राप्त किया वही वही ऋषि उस उस मंत्र का दृष्टा है फिर हम कैसे मान लें कि

ऋषियों ने वेदार्थ को देखा और वेदमंत्रों को नहीं देखा। जो यह कारिका हमने यहां लिखी है इसी कारिका को सायण ने अपनी बनाई 'वेदभाष्यभूमिका' में लिखा है और यही कारिका अच्युत में निकली है, समस्त वैदिकों ने इसी के आधार पर वेदों का संसार में आना माना है।

ब्राह्मणग्रन्थों को वेदत्व

स. प्र. पृ. २०६ पं. ३-(प्रश्न) वेद किन ग्रन्थों का नाम है ? (उत्तर) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मंत्रसंहिताओं का, अन्य का नहीं। (प्रश्न)

मंत्रब्राह्मणयोर्वेद नाम धेयम्।

इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रतिज्ञा सूत्रादि का अर्थ क्या करोगे ? (उत्तर) देखो संहिता पुस्तक के आरंभ, अध्याय की समाप्ति में, वेद शब्द सनातन से लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तक के आरंभ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा। और निरुक्त में

इत्यपि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम्। नि० अ० ५ खं० ३। ४
छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि। अष्टाध्या० ४। २।६६

यह पाणिनीय सूत्र है इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेदमंत्र भाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग है। इसमें जो विशेष देखना चाहें वे मेरी बनाई 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में देख लें वहां अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता ऐसा ही सिद्ध किया गया है क्योंकि जो माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें क्योंकि ब्राह्मणपुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है, वह ग्रन्थ में उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं किन्तु जिस जिस शब्द से विद्या का बोध होवे उस उस शब्द का प्रयोग किया है, किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

वि०—[क] कात्यायन सूत्र पर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में यही लिखा है कि एक कात्यायन को छोड़ अन्य किसी ऋषि ने ब्राह्मणों को वेद नहीं माना ? (उत्तर) यह कोई जवाब नहीं, कात्यायन ने तो माना है ? उसका जवाब देते, जवाब कुछ नहीं सूझा, रही बात यह कि अन्य ऋषियों ने ब्राह्मणों को वेद नहीं माना ? इसका उत्तर यह है कि सृष्टि के आरम्भ से अन्त तक जितने ऋषि हुये सभी ने ब्राह्मणों को वेद माना है। [ख] संहिता के आरंभ और अन्त में वेद शब्द रहता है तो ब्राह्मणों में भी ऋग्वेदीय यजुर्वेदीय आदि शब्द रहते हैं। [ग] "इत्यपि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम्" यहां पर निरुक्त में न तो मंत्रभाग को ही वेद बतलाया गया और न ही ब्राह्मण भाग को, सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने ये दोनों प्रमाण लिख संसार को धोके में डाला है। [घ] 'छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि' अष्टाध्यायी के इस सूत्र से ब्राह्मणों का वेद होना कैसे मिट जायगा इसका विवरण सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने नहीं लिखा और न ही इस सूत्र से ब्राह्मणों के वेद होने का खंडन होता है। [ङ] फिर यह लिखा कि ब्राह्मणों को वेद मानेंगे तो वेद सनातन नहीं हो सकेंगे, ब्राह्मणों की कौन कहे आप ने तो चार ऋषियों के द्वारा वेद का प्रकट होना माना है फिर आपके मत में वेद सनातन कैसे बने रहे ? इसके जवाब में आर्यसमाजी यह कहेंगे कि वह तो चार ऋषियों में ईश्वरीय ज्ञान आया था, ईश्वरीय ज्ञान का आना न तो आर्यसमाज के लंगड़े वेद से सिद्ध है और न ही सनातनधर्म के किसी ग्रन्थ से अतएव भंग की तरंग में लिखा गया सर्वथा झूठा लेख कि 'चार ऋषियों के अन्तःकरण में ईश्वरीयज्ञान आया, इसको कोई मान नहीं सकता। [च] 'ब्राह्मण ग्रन्थों में इतिहास है इसलिये वे वेद नहीं' यदि इतिहास होने से वे वेद नहीं तो मंत्रभाग में भी इतिहास है (१) देवापि का (२) त्वष्टा के पुत्र त्रत्रासुर का (३) विश्वामित्र (४) त्रित ऋषि आदि आदि अनेक इतिहास हैं और इन इतिहासों पर निरुक्त है इससे अधिक इतिहास के होने में और क्या प्रमाण होगा, जब कि इन इतिहासों पर निरुक्त मौजूद है और पं० राजाराम जी शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर ने जो निरुक्त पर भाषा टीका किया है उन्होंने इतना सुगम कर दिया है कि इन इतिहासों को हिन्दीवाले भी समझ लेते हैं, इतिहास के होने से वेद के महत्व पर धब्बा नहीं लगता वरन् उत्कर्ष अधिक बढ़ जाता है। यहां पर विचार यह है कि—

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥

लौकिक सज्जन मनुष्यों की लेखनी या वाणी इतिहास के पीछे पीछे चलती है अर्थात् पहिले घटना होती है और फिर लेखक उसका वर्णन करते हैं किन्तु सृष्टि के आरम्भ में होनेवाले आदि ऋषियों की लेखनी के पीछे पीछे इतिहास चलता है। वेद या आर्षग्रन्थों ने पहिले जैसा लिख दिया इतिहास में यह शक्ति नहीं कि उसके विरुद्ध जाय, जैसा लिखा वैसा ही होगा। [छ] यह लिखा था कि केवल कात्यायन ऋषि ही ब्राह्मणों को वेद मानते हैं, सत्यार्थप्रकाश में कैसे झूठे लेख लिखे जाते हैं, फिर इन झूठे लेखों पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक और आर्यसमाजियों को तनक भी लज्जा नहीं आती इससे अधिक शोक की दूसरी बात क्या होगी? ब्राह्मणग्रन्थ वेद हैं इस विषय में 'वेदसिद्धान्त परिचय' का 'वेद परिमाण' पढ़ लें।

मंत्रात्मक वेद

स. प्र. पृ. २०६ पं. २१--(प्रश्न) वेदों की कितनी शाखा हैं (उत्तर) ग्यारह सौ सत्ताइस। (प्रश्न) शाखा क्या कहाती हैं? (उत्तर) व्याख्यान को शाखा कहते हैं। (प्रश्न) संसार में विद्वान् वेद के अवयव भूत विभागों को शाखा मानते हैं? (उत्तर) तनिक सा विचार करो तो ठीक क्योंकि जितनी शाखा हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मंत्रसंहिता परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा चारो वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस उस ऋषिकृत मानते हैं और सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धर के व्याख्या करते हैं जैसे तैत्तिरीय शाखा में "इषेत्वोर्जेत्वेति" इत्यादि प्रतीकें धर के व्याख्यान किया है और वेदसंहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं धरी इसलिये परमेश्वरकृत चारो वेद मूलवृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि मुनिकृत हैं परमेश्वरकृत नहीं।

वि०—[क] यहाँ पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक को एक नई चाल चलाकर वेदों को कतल करना है इसलिये ग्यारह सौ सत्ताइस शाखा लिखते हैं, वास्तव में शाखा ग्यारह सौ इकत्तीस हैं। महाभाष्य के प्रथम आह्निक में महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि—

चत्वारो वेदाः सांगाः सरहस्या बहुधा भिन्ना
एकशतमध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेद
एकविंशतिधा वह्वृच्यन्नवधाऽथर्वणो वेदः।

चारो वेद और छः उनके अंग, उपनिषद्, अनेक विभागों में विभक्त वेद विभागों को गिनाते हुये लिखते हैं कि एक सौ एक शाखा यजुर्वेद की और एक सहस्र शाखा सामवेद की, इक्कीस ऋग्वेद की तथा नौ अथर्ववेद की कुल ग्यारह सौ इकत्तीस होती हैं किन्तु सत्यार्थप्रकाश का लेखक ग्यारह सौ सत्ताइस लिखता है इसका कोई विलक्षण कारण है और वह यह है कि ऋग्वेद की शाकल तथा यजुर्वेद की माध्यन्दिनी एवं सामवेद की कौथुमी और अथर्ववेद की शौनकी इन चार शाखाओं से शाखा पद उड़ा कर इनको असली वेद मानता है इस चालाकी से ग्यारह सौ सत्ताइस शाखायें लिखी हैं। इस चालाकी का मतलब यह है कि चार शाखाओं को हम वेद मान लें और ग्यारह सौ सत्ताइस को शाखा बतला उनका मानना छोड़ दें तो वेद थोड़ा सा रह जायगा और विस्तृत वेद मानने का बोझा शिर से उतर जायगा। [ख] यहां लिखा है कि वेद के व्याख्यान को शाखा कहते हैं, यह बिल्कुल झूठी बात है, शाखाओं में व्याख्यान नहीं वरन् मूलमंत्र हैं, व्याख्यान बतलाना चालबाजी से संसार की आँख में धूल झोकना है। [ग] आगे लिखते हैं कि 'जितनी शाखायें हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मंत्रसंहिता परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है' यह लेख सर्वथा ही झूठ है, जिस प्रकार से अन्य शाखायें ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं इसी प्रकार वे शाखायें जिनको आज वेद बनाया जा रहा है शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुम, शौनक इन चार ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। अजमेर में छपी हुई इन चार शाखाओं पर चार ऋषियों के नाम नहीं हैं। मुरादाबाद, बम्बई, पूना, जर्मन आदि में छपे हुये ग्रन्थों पर चारो ऋषियों के नाम बराबर मिलते हैं, इसी प्रकार समस्त भाष्यकारों ने इन चारो ग्रन्थों पर क्रम से शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुम और शौनक ये ऋषियों के नाम लिखे हैं जानबूझ कर उनको उड़ाना इसके क्या माने हैं ? [घ] सत्यार्थप्रकाश के लेखक लिखते हैं कि 'सर्व शाखाओं में प्रतीक धर के व्याख्यान करते हैं जैसे तैत्तिरीय शाखा में 'इषेत्वोर्जेत्वेति'। यदि प्रतीक धरने का नाम व्याख्या है तब तो आर्यसमाज के असली यजुर्वेद में भी प्रतीक धर के व्याख्यायें मिलती हैं, जैसे—

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न
जात इत्येषः।

यज० अ० ३२ मं० ३

इसमें 'हिरण्यगर्भः' यह 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे १३ । ४' मंत्र की प्रतीक है और 'मा मा हिꣳसीः' यह 'मा मा हिꣳसीज्जनितायः पृथिव्यायो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट् १२ । १०२' इस मंत्र की प्रतीक है, तथा 'यस्मान्न जातः' यह 'यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ८ । ३६' इसकी प्रतीक है। अब तो मूल वेद में प्रतीक निकली इसका आर्यसमाजियों के पास क्या जवाब है? जो हेतु चार शाखाओं के वेद होने में दिये थे वे सब कट गये, केवल जिद्द बाकी रही इसका कोई इलाज नहीं।

पण्डितप्रवर पं० गणपति शर्मा एवं पं० तुलसीराम जी स्वामी तथा स्वामी दर्शनानन्द जी और पं० भीमसेन जी प्रधानाध्यापक महाविद्यालय ज्वालापुर एवं वेद-तीर्थ पं० नरदेव शास्त्री तथा पं० राजाराम जी शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर सुविज्ञ आर्यसमाजी सत्य को मानते किन्तु आजकल के आर्यसमाजियों के पास ऐसे ऐसे लेखों का जवाब तो है नहीं और न ही वे सत्य का ग्रहण करना चाहते हैं, उन्हों ने यह सिद्धान्त रक्खा है कि आर्यसमाज का चाहे कोई जितना खंडन करे किन्तु आर्यसमाजी उसका जवाब न दें, फल इसका यह होता है कि दिनोंदिन आर्यसमाज की पोल खुलती है और आर्यसमाज रसातल को जा रही है किन्तु आर्यसमाजियों को इसकी कोई परवाह नहीं, यदि दश वर्ष और यही दशा रही तो चन्द स्थानों में आर्य-समाजी रहेंगे और उनकी कोई आवाज ही न सुनेगा।

वेद का कतल

पहिले सत्यार्थप्रकाश ने तृतीय समुल्लास में लिखा कि उपनिषद् वेद नहीं, फिर यहां लिखा कि ब्राह्मणग्रंथ वेद नहीं, इसके बाद लिख दिया कि ग्यारह सौ सत्ताइस शाखा वेद नहीं। आर्यसमाज ने शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी, शौनकी इन चार शाखाओं को वेद मान शेष समस्त वेद के मानने से पिण्ड छुड़ा लिया इसका सारांश यह है कि जब दूसरे मजहब वेद पर प्रश्न करेंगे तब सब का जवाब कोई कहां तक देगा। अब चार पुस्तक (चार शाखा) ही इनका वेद है इसलिये आर्यसमाज के वेद का नाम हमने 'लंगड़ा वेद' रक्खा है क्योंकि मंत्र और ब्राह्मण दोनों पैर इनके वेद के कट गये, अब आर्यसमाज का यह लंगड़ा वेद एक कदम नहीं चल सकता।

इति सप्तम समुल्लासः

❀ अथाष्टम समुल्लासः ❀

निमित्तकारण

स. प्र. पृ. २०८ पं. ११–

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

यजु. अ. ३१ मं. २

स. प्र. पृ. २०९ पं. ५–"हे मनुष्यो ! जो सब में पूर्णपुरुष और जो नाशरहित कारण और जीव का स्वामी, जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् को बनानेवाला है। पुनः स. प्र. पृ. २०८ पं. १३–

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ॥

तैत्तिरीयोपनि० भृगुवल्ली अनु० १

स. प्र. पृ. २०९ पं. ७–"जिस परमात्मा की रचना से ये सब पथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिससे जीव और जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं वह ब्रह्म है उसके जानने की इच्छा करो।

वि०—वेद ने ईश्वर को संसार का अभिन्न निमित्तोपादानकारण माना है, सत्यार्थप्रकाश के लेखक को वेद का यह लेख चण्डूखाने की गप्प मालूम होने लगा अतएव आप इस सिद्धान्त को बदल कर ईश्वर को सृष्टि का निमित्तकारण सिद्ध करना चाहते हैं। इस काम के लिये पहिले आप ने प्रमाणों के अर्थ बदलने आरंभ किये। 'पुरुष एवेदꣳ' इस मंत्र का सीधा और यथार्थ अर्थ यह है कि जो प्राचीनकाल में हुआ था और अब है तथा आगे को होगा यह सब पुरुष ही है। इसका ऊलजलूल वेद-विरुद्ध जो अर्थ बदला गया इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर संसार का निमित्तकारण सिद्ध हो जाय। 'यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते' इसका भी अर्थ बहुत बदला, जिसका स्पष्ट अर्थ यह था कि जिससे ये भूत पैदा हुये और जिससे पैदा होकर अपनी सत्ता को धारण करते हैं एवं अन्त में अपने रूप को खोकर फिर जिसमें मिल जाते हैं

उसको तुम ब्रह्म जानो। यहां पर भूतों की उत्पत्ति तथा फिर उनका लय ब्रह्म में कहा, प्रकृति में नहीं। जैसे सुवर्ण से कटक कुण्डल आदि जेवर बनते हैं और जैसे लोहे से कुठार, तवा, कड़ाही, कलसा आदि निर्माण होते हैं उसी प्रकार ईश्वर से ये भूत उत्पन्न होते हैं इसको उड़ा कर यहां पर सुनार से कटक कुण्डल और लुहार से कुठारादि की उत्पत्ति मानी यह संसार को धोका दिया। जब "नासदासीत्" मंत्र ने यह बतला दिया कि सृष्टि से पहिले केवल एक ब्रह्म को छोड़ कर अन्य सत्ता ही नहीं थी तब इसके विरुद्ध जीव और प्रकृति की भिन्न सत्ता मानना क्या धोका देना नहीं है ?

स. प्र. पृ. २०९ पं. १२–(प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से ? (उत्तर) निमित्तकारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादानकारण प्रकृति है। (प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ? (उत्तर) नहीं वह अनादि है। (प्रश्न) आदि किस को कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ? (उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं इसमें क्या प्रमाण ? (उत्तर)

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० २०

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजु० अ० ४० मं० ८

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूल व कारण और शाखा रूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र

प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं। १। (शाश्वती) अर्थात् अनादि सनातन जीव रूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है।२।

अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां
वह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥
श्वेताश्वतरोपनिषदि अ० ४ मं० ५

यह उपनिषद का वचन है। प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं, इनका कारण कोई नहीं, इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फंसता है और उसमें परमात्मा न फंसता और न उसका भोग करता है।

वि०—"याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" यह मंत्र यहाँ पर निष्प्रयोजन रक्खा गया और यह अद्वैत की सिद्धि करता है क्योंकि इसका देवता मुमुक्षु है अस्तु ठीक बैठे या न बैठे मंत्र लिखने से काम। सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में दश ही उपनिषदों को प्रमाण माना किन्तु यहाँ पर प्रमाणकोटि से बाहर किये हुये श्वेताश्वतरोपनिषद् की "अजामेकाम्" श्रुति को प्रमाण में दिखलाया। क्या ही मजे की बात है, सत्यार्थप्रकाश के लेखक की बेहोशी सर्वदा साथ रहती है। "द्वा सुपर्णा" यह मंत्र व्यवहारिकसत्ता का है, परमार्थिकसत्ता और व्यवहारिक सत्ता तथा ईश्वर संसार का कौन कारण है जिसको ये बातें जाननी हों वह "वेदसिद्धान्त परिचय" का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" पढ़ ले, इसके पढ़ते ही सत्यार्थप्रकाश के लेखक के निमित्तकारणरूप जाल में दियासलाई काम करती दिखलाई देगी।

ब्रह्मज्ञान

स. प्र. पृ. २१० पं. २५-(प्रश्न)—

सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। १। छान्दो० प्र० ६ खं० २

असद्वा इदमग्र आसीत् ।२। तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्द व० अनु० ७
आत्मैवेदमग्र आसीत् ।३। बृह० अ० १ ब्रा० ४ मं० १
ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ।४। शत० ११ । १ । ११ । १

ये उपनिषदों के वचन हैं। हे श्वेतकेतो ! यह जगत् सृष्टि के पूर्व सत् १, असत् २, आत्मा ३ और ब्रह्मस्वरूप था ४। पश्चात्

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति ।
सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति ॥
तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानंद वल्ली अनु० ६

वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया है।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।

यह भी उपनिषद् का वचन है, जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नानाप्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्म रूप हैं (उत्तर) क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो ? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में

[एवमेव खलु] सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छद्भि-
स्सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्यशुङ्गेन
सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ।
छान्दोग्य उपनि० प्र० ६ खं० ८ मं० ४

हे श्वेतकेतो ! अन्नरूप पृथिवी कार्य से जलरूप मूल कारण को तू जान, कार्यरूप जल से तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य प्रकृति है उसको जान। यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल धर और स्थिति का स्थान है। यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्तमान था, अभाव न था और जो (सर्वं खलु) यह वचन ऐसा है जैसा कि "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुंडवा जोड़ा" ऐसी लीला की है क्योंकि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत् ।
छान्दोग्य० प्र० ३ खं० १४ मं० १ और
नेह नानास्ति किंचन । कठोपनि. अ. २ वल्ली. ४ मं. ११

जैसे शरीर के अङ्ग जब तक शरीर के साथ रहते हैं तब तक काम के और अलग होने से निकम्मे हो जाते है वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक हो जाते हैं। सुनो इसका अर्थ यह है। हे जीव! तू ब्रह्म की उपासना कर जिस ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है जिसके बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है वा ब्रह्म से सहचरित है उसको छोड़ दूसरे की उपासना न करनी। इस चेतनमात्र अखंडैकरस ब्रह्मरूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है किन्तु ये सब पृथक् पृथक् स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं।

वि०—यहाँ पर तो सत्यार्थप्रकाश के लेखक की बुद्धि कपूर हो गई, जवाब न दे सके, दिवाला निकल गया। 'सदैव सोम्येदमग्रआसीत्' इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि 'हे सोम्य! सृष्टि के आरंभ में एक सद् (ब्रह्म) ही था, न तो इस प्रमाण का अर्थ किया और न कुछ जवाब दिया, केवल इतना लिख दिया कि "क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो" अनर्थ किया है और कैसा अनर्थ है इसमें कोई प्रमाण नहीं दिया, समझ लिया कि आर्यसमाजी लिखते पढ़ते हैं ही नहीं हमारे लिखने पर ही अनर्थ मान लेंगे किन्तु जो अर्थ हमने किया है यही अर्थ प्रथमावृत्ति सत्यार्थप्रकाश में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है, लेखक की दृष्टि में स्वामी दयानन्द जी भी अनर्थ करनेवाले अज्ञानी हैं। इस प्रकार के लेख छान्दोग्योपनिषद् में भरे पड़े हैं एक और लीजिये—

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्या-
द्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥

छान्दो० प्र० ६ खं० १ श्रु० १

जैसे हे सोम्य! एक ही मृत्पिंड से घट, शराव, मटका, नाद, हांडी, सकोरा और पुरुआ बनते हैं ये मिट्टी के विकार हैं, कथन मात्र ही ये अपना नाम रूप रखते हैं वास्तव में तो इनका कारण एक मिट्टी ही सत्य है। इसी प्रकार जीव, प्रकृति, पंचमहाभूत, इन्द्रियाँ कथन मात्र हैं वास्तव में तो इनका उपादानकारण ब्रह्म ही सत्य है। हमने माना कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक में विद्वत्ता का कोई बल नहीं था इसलिये वह छान्दोग्य का जवाब नहीं लिख सका क्या आजकल के आर्यसमाजी भी अक्षरशून्य हैं? नहीं हैं तो इसका जवाब दें। जवाब नहीं दे सकते तो फिर इनका

क्या हक है जो यह कहने फिरें कि ब्रह्म से संसार नहीं हुआ और यह मत नवीन वेदान्तियों का है, क्या आर्यसमाज की दृष्टि में सत्यार्थप्रकाश प्राचीन और छान्दोग्योपनिद् नवीन है ? इस प्रकार के झूठे धोके आर्यसमाज को गारत किये बिना न रहेंगे।

"असद्वा" यह जो तैत्तिरीय की श्रुति है यह भी यही सिद्धकरती है कि सृष्टि के आरम्भ में केवल एक ब्रह्म था, सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इसके जवाब देने से जान चुराई, जो ऐसी श्रुतियों का भी जवाब नहीं दे सकता वह आर्यसमाज के धर्म का प्रवर्तक हो तो इससे अधिक शोक क्या होगा। "आत्मैवेदम्" आत्मा (ब्रह्म) ही सृष्टि के आरम्भ में मौजूद था इस वृहदारण्यक की श्रुति के जवाब देने में सत्यार्थप्रकाश के लेखक थर थर कांपने लगे। जिनका धर्मप्रवर्तक ही कोई जवाब नही दे सकता वे आर्यसमाजी क्या जवाब देंगे। शतपथ ने लिखा कि सृष्टि के आरम्भकाल में केवल ब्रह्म ही था, इसका जवाब भी सत्यार्थप्रकाश के लेखक हजम कर गये। शास्त्रानभिज्ञ मनुष्य जिस मजहब को चलावेंगे उसकी यह दुर्दशा न होगी तो क्या संसार में कीर्ति फैलेगी ?

जाने दो उपनिषद् का अङ्गा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" उपनिषद् के इतने टुकडे का ही अर्थ लिख दिया होता ? यहां तो विवश हो गये, लेखनी थक गई, हाथ काँपने लगा, दिमाग ने जवाब पैदा करने से इस्तीफा दे दिया तब बातें बनाईं कि यह कई उपनिषदें मिला कर लेख लिखा। हमने तो एक ही उपनिषद् के जरा से टुकड़े को आगे रक्खा, उतने टुकड़े का भी जवाब सत्यार्थप्रकाश के लेखक से न हुआ और आगे को भी निरक्षर आर्यसमाजियों की लेखनी लिखने में असमर्थ रहेगी। अब [एवमेव खलु] की विवेचना सुनिये, श्रुतियाँ ये हैं—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायेत १ कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳ स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति सत्वेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम् ।२। तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत् ।३।

छान्दो० प्र० ६ खं० २

उद्दालक मुनि अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहने लगे कि हे सोम्य ! यह प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध वस्तु मात्र सृष्टि है इससे पूर्व केवल सद्रूप था उस सद्रूप ने इस संसार से तादात्म्यरूप सम्बन्ध किया, जैसे वृक्ष की उत्पत्ति से पहिले बीज रहता है इसी प्रकार समस्त संसार का बीज सद्रूप विद्यमान था। वह सत्पदार्थ क्या है ? इसके उत्तर में यही कह सकते हैं कि कार्यरूप में आया हुआ वह वस्त्वन्तर शून्य है निश्चय ही वह अद्वितीय है और दूसरे निमित्तकारण से वर्जित है। कई एक मनुष्यों का कथन है कि यह नाम रूपात्मक संसार पहिले अभाव (शून्य) मात्र था और यही कार्य वस्त्वन्तर रहित एवं निमित्तादि कारण से रहित था इसी असत् से यह सत् नाम रूपात्मक संसार उत्पन्न हुआ यह कहना ठीक नहीं हो सकता क्योंकि सोम्य ! असत् (नेस्ति) से सत् (हस्ती) कभी हो ही नहीं सकती इस कारण निमित्त कारण वर्जित एक जो सत् था वही कार्यरूप में आया, उसने सद्वस्तु का आलोचन किया (भविष्य संसार को अपने में देखा) और उसने इच्छा की कि मैं एक से अनेक रूपों में बनूं यह समझ उसने पहिले तेज को रचा। इस लेख से ही ईश्वर संसार का उपादानकारण सिद्ध है। यहां पर देखना और इच्छा करना ये दो घटना सत् में पाई जाती हैं अतएव सत् से प्रकृति का ग्रहण करना नहीं बनेगा क्योंकि प्रकृति में चेतनता नहीं है, सत्यार्थप्रकाश जो यहां सत् शब्द से प्रकृति का ग्रहण करता है वह अपनी बुद्धि की चटनी कर रहा है। अब दूसरी श्रुतियों का अभिप्राय सुनिये—

तत्रैतच्छुंगमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ।३। तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेन शुंगेनापोमूलमन्विच्छाद्भिः सोम्यशुंगेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्यशुंगेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः । ४।

छान्दो० प्र० ६ खं० ८

जब अन्न रसादिक कार्य देह में दर्शन देने लगा तब यह देह उत्पन्न हो गया जैसे वटबीज से वटवृक्ष उत्पन्न होता है वैसे ही यह भी उत्पन्न होता है यह मूलशून्य नहीं है, इसका भी मूल कुछ न कुछ अवश्य है। यह समझने की बात है कि इस देह का अन्न-से भिन्न कोई मूल नहीं है इसलिये अन्न इसका मूल है। इसी प्रकार अन्न का मूल कारण जल और जल का तेज तू समझ, तेज का मूल सत् जिसका वर्णन

पहिले हो चुका है इस कारण सत (ब्रह्म) मूल कारणवाली यह समस्त प्रजा है और सद्वस्तु ही इसका स्थिति (स्थान) है एवं सत् ही में इस प्रजा का लय होता है। यहां पर सत् शब्द से ईश्वर का ग्रहण है, प्रकृति का नहीं।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक इस समुल्लास में जगह जगह पर ईश्वर को सृष्टि का निमित्तकारण लिख रहे हैं इसलिये यह लिखा जाता है कि मनुष्य हमारे लेख की चालबाजी में फंस जायँ, लिखा करें किन्तु सत्यार्थप्रकाश के लेखक और समस्त आर्य-समाजी मिलकर भी ईश्वर को संसार का निमित्तकारण लिखें तो सब को मुंह की खा उपादानकारण मानना होगा। सत्यार्थप्रकाश का लेखक प्रमाणों के अर्थ तो करता नहीं, अपनी तरफ से लम्बी चौड़ी आल्हा गाया करता है, यहां पर भी आल्हा गाने का विस्तृत लेख है उसको हम अनभिज्ञ आर्यसमाजियों के लिये छोड़े देते हैं।

अभिन्न निमित्तोपादानकारण

स. प्र. पृ. २१३ पं. १–(प्रश्न) नवीन वेदान्ति लोग केवल परमेश्वर को ही जगत् का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" मानते हैं।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च। मुण्डको० खं० १ मं० ७।

पुनः पृ. २१३ पं. ९–

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।

गौड़पादीय का० श्लोक ३१

पुनः पृ. २१३ पं. १४–जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादानकारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे और उपादानकारण के गुण, कर्म, स्वभाव कार्य में भी आते हैं।

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणोदृष्टः। वैशेषिक सू. अ. २ आ. १ सू. २४

उपादानकारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप जगत्कार्य रूप से असत् जड़ और आनन्दरहित, ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है, ब्रह्म अखंड और जगत् खण्डरूप है, जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य उत्पन्न होवें तो पृथिव्यादि में कार्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ हो जाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा

पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होना चाहिये और जो मकरी का दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है क्योंकि वह जड़ रूप शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्तकारण है और यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीव तन्तु नहीं निकाल सकता। वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बनाकर बाहर स्थूल रूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय हो रहा है। पुनः पृ. २१४ पं. ८–"और जो यह कारिका है वह भ्रममूलक है क्योंकि सृष्टि की आदि अर्थात् प्रलय में जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से जब तक दूसरी बार सृष्टि न होगी तब तक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है क्योंकि–

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे। ऋ. मं. १० सू. १२९ मं. ३
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

मनु. १। ५

यह सब जगत् सृष्टि के पहिले प्रलय में अन्धकार से आवृत आच्छादित था और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है। उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था और न होगा किन्तु वर्तमान में जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त जानने के योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है पुनः उस कारिकाकार ने वर्तमान में भी जगत् का अभाव लिखा सो सर्वथा अप्रमाण है क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणों से जानता और प्राप्त होता है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश लिखता है कि 'नवीन वेदान्ती लोग केवल परमेश्वर को ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण मानते हैं' इसके लिखने का प्रयोजन यह है कि वेदान्तियों को संसार नवीन और अज्ञानी समझ ले। नवीन वेदान्ती नहीं मानते वरन् आर्यसमाज के चारों लंगड़े वेद तथा छान्दोग्य आदि उपनिषदें एवं मनुस्मृति मानती है, जिनके प्रमाणों से सत्यार्थप्रकाश की तोंद

फुलाई गई है। "ब्रह्मज्ञान" में आई हुई श्रुतियों के उत्तर न सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने लिखे हैं और न कोई आर्यसमाजी आगे को लिख सकता है, कलम बन्द हो गई, 'नीचे पड़े की ऊपर टांग' के न्याय से कुछ नहीं बना तो वेद के मुख्य सिद्धान्त को नवीन वेदान्तियों के नाम से लिख दिया यह आर्यसमाजियों के लिये घोर लज्जा की बात है। [ख] यहां पर लिखा कि 'जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी अवस्थान्तरयुक्त विकारी हो जावे' किसके कहने के अनुसार? इसका जवाब यही हो सकता है कि वेदों के कहने के अनुसार। ईश्वर को संसार का 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' वेद बतलाता है और कोई नहीं बतलाता। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि जो आर्यसमाजी अपने को वैदिक कहें उनके धर्म का प्रवर्तक वेदों की इस भयंकर रूप से धज्जियां उड़ावे कि जिस प्रकार आज तक किसी ईसाई मुसलमान ने भी न उड़ाई हों। यद्यपि इस पुस्तक में कई बार इसका विवेचन हो चुका है तो भी हम यहां कुछ लिखते हैं। इसके ऊपर वेदान्तदर्शन लिखता है कि—

दृश्यते तु। अ० २ पा० १ सू० ६

यहां पर जो 'तु' शब्द है यह तो पूर्वपक्ष की निवृत्ति के लिये है। सूत्र कहता है कि 'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः' इस श्रुति ने चेतन ब्रह्म से जड़ आकाश की उत्पत्ति बतलाई, अब तो चेतन से जड़ की उत्पत्ति हुई? सत्यार्थप्रकाश के लेखक वैशेषिक सूत्र देकर लिखते हैं कि 'कार्य में कारण के गुण देखे जाते हैं', ठीक है, सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने तृतीय समुल्लास में वेदानुकूल होने पर वैशेषिक को प्रमाण माना है किन्तु यहां पर वैशेषिक को आर्यसमाज का स्वतःप्रमाण ग्रन्थ मान उससे वेदों का खण्डन किया जा रहा है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक की इस चालबांजी को क्या आर्यसमाजी नहीं समझते। शास्त्रों में यह दिखलाया गया है कि चेतन शरीर से जड़ नख और केश का जन्म होता है और अचेतन भैंस का गोबर गधे का पेशाब मिलाने से चेतन बिच्छू बन जाते हैं यहां कारण का गुण कार्य में क्यों नहीं आता? आज तो बाबू जगदीशचन्द्र बोस के आविष्कारों ने यह सिद्ध कर दिया कि पत्थर में भी चेतनता है, क्या आर्यसमाजियों को इसका पता नहीं लगा? वेद का एक अक्षर न माननेवाले और वेद वेद चिल्लानेवाले आर्यसमाजियों! तुम एक दो मन्त्र वेद के ही देख लो।

स वै वायोरजायत तस्माद्वायुरजायत। ४
स वै भूमेरजायत तस्माद्भूमिरजायत। ७

स वा अग्नेरजायत तस्मादग्निरजायत । ८
स वा अद्भ्योऽजायत तस्मादापोऽजायन्त । ९

अथर्व० कां० १३ अनु० ४ सू० ४

वह वायु से प्रकट हुये और वायु उनसे प्रकट हुआ । ४ । वह भूमि से प्रकट हुये और भूमि उनसे प्रकट हुई । ७ । वह अग्नि से प्रकट हुये और अग्नि उनसे प्रकट हुई । ८ । वह जलों से प्रकट हुये और जल उनसे प्रकट हुआ । ९ । यहां पर वायु, पृथ्वी, अग्नि, जल से ईश्वर का प्रकट होना लिखा और ईश्वर से वायु, पृथ्वी, अग्नि, जल का प्रकट होना लिखा । जब वायु आदि जड़ पदार्थों से ईश्वर उत्पन्न हुआ तो वह जड़ क्यों नहीं हो गया और जब ईश्वर से वायु, पृथ्वी, अग्नि जल उत्पन्न हुये तो ये चेतन क्यों नहीं हो गये ? यहां लगाओ तुम जड़, चेतन निर्णय की बुद्धि । जब इसका विचार करोगे तो मालूम हो जायगा कि जड़ से चेतन और चेतन से जड़ पैदा हुआ ही करता है एवं सत्यार्थप्रकाश के लेखक को वेदों के प्रमाणों के खण्डन में जब कुछ अक्ल न सूझी तब वैशेषिक सूत्र का वह झूठा झगड़ा जो यहां नहीं लगता, लगा दिया कि जिस अडंगे के लगाने से ईश्वर को "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" बतलानेवाले वेदों के चार हजार प्रमाणों का काला मुंह हो जावे ! आर्यसमाजियों में शास्त्रज्ञान और विचार द्वारा विवेक करनेवाली बुद्धि नहीं होती इसलिये उनको जो चाहे सो बहका ले । देखो हम समझाते हैं, समझने की कृपा करें । ईश्वर सर्वव्यापक है और वह चेतन है, संसार में एक भी परमाणु ऐसा नहीं जहां चेतन ईश्वर न हो इसलिये चेतनों की भांति जड़ों में भी चेतनशक्ति मौजूद है और यही मौलिक है अर्थात् समस्त संसार का यह मूल है । जब समस्त पदार्थों में चेतनता मौजूद है फिर जड़ चेतन का भेद कैसे ? यहां पर आर्यसमाजी यह कह सकते हैं कि मिट्टी पत्थर आदि जिनको हम जड़ कहते हैं चेतनों की भांति कार्य नहीं करते, फिर हम उनको चेतन कैसे मानें ? इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि जड़ों में भी चेतनता शक्ति मौजूद है इसको तो हम पहिले ही लिख आये हैं, अब इतने का जवाब देना है कि जड़ पदार्थ चेतनों की भांति काम क्यों नहीं करते ? इसका जवाब यही है कि जड़ों में पांच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन इनका अभाव है इस कारण से जड़ पदार्थ चेतनों कैसा काम नहीं कर सकते और जब जड़ पदार्थ में किसी विशेष संयोग से विशेष योग द्वारा शरीर इन्द्रियां बन जाती हैं तब ये जड़ पदार्थ चेतनों कैसा काम करने लगते हैं । चातुर्मास्य में जब भैंस जंगल में गोबर कर देता है तब गोबर के जड़ परमाणुओं में विशेष शक्ति का संयोग होने से

गोबर के कीड़े बन जाते हैं. यदि जड़ में चेतन शक्ति नहीं थी तो कीड़ों में कहां से आ गई ? नस्ती से हस्ती और हस्ती से नस्ती नहीं होती। जो चेतनशक्ति कीड़ों में है वह गोबर के परमाणुओं में मौजूद थी किन्तु इन्द्रियों के अभाव में काम नहीं कर सकती थी। [ग] सत्यार्थप्रकाश के लेखक पहिले तो लिखते हैं कि मकड़ी का दृष्टान्त तुम्हारे पक्ष की पुष्टि नहीं करता। क्यों नहीं करता ? जीव, शरीर दोनों के संयोग का नाम मकड़ी है, मकड़ी जाले के बिछाने में अन्य पदार्थ की सहायता नहीं लेती इसी प्रकार संकल्प और ईश्वर इसी से संसार बनता है। [घ] कारिका को भ्रम-मूलक बताते हैं और कारिका के घट कुठारादि दृष्टान्तों पर ध्यान नहीं देते, पहिले भी घट नहीं था, अन्त में भी घट नहीं रहेगा; मध्य में ही घट है, इसी प्रकार गत प्रलय में संसार नहीं था और आगामिनी प्रलय में भी संसार नहीं रहेगा यह भी मध्य में ही हो गया है। कारिका कहती है कि पहिले संसार के आरंभ में घटसत्ता नहीं थी और अन्त में भी नहीं रहेगी, केवल मध्य दशा में है अतएव घट पृथक् सत्ता रखने वाला पदार्थ नहीं वरन् मिट्टी ही है इसी प्रकार पहिले भी संसार नहीं था और अन्त में भी नहीं रहेगा अतएव मध्य में भी संसार पृथक् सत्ता वाला नहीं ठहरता। सत्यार्थप्रकाश के लेखक इसका कोई जवाब न दे सके, कारिका को भ्रममूलक लिख दिया। परमार्थिक सत्ता में घट और संसार की सिद्धि करनेवाला कोई आर्यसमाजी न आज तक पैदा हुआ है और न आगे को हो सकता है। [ङ] 'आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास' प्रमाण देने चले थे कि 'पहिले यह जगत् प्रसिद्ध नहीं था' इस पर मनु का प्रमाण दिया। इसका जवाब तो यह है कि पहिले ईश्वर प्रसिद्ध नहीं था तो पहिले घट भी प्रसिद्ध नहीं था। रही मनु के प्रमाण की बात, उसको क्रम से देखें।

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥
ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यंजयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥
सोऽभिध्यायशरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥

मनु० अ० १

यह विश्व महाप्रलयकाल में अन्धकारयुक्त और लक्षणों से रहित, संकेत के अयोग्य तथा तर्क द्वारा और स्वरूप से जानने के अयोग्य सब ओर से निद्रा की सी दशा में था ।५। इसके अनन्तर अप्रतिहत है सृष्टि सामर्थ्य जिसकी स्वयं प्रकट होने वाला भगवान् इस अव्यक्त संसार को प्रकट करने के लिये पहिले उसने महत्तत्व को रचा और फिर अन्धकार को दूर करता हुआ अपनेआप प्रकट हुआ ।६। जो इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं, सूक्ष्म तथा अव्यक्त और सनातन है, जो सर्वभूतमय एवं अचिन्त्य है वही सब से प्रथम महदादि कार्यरूप से प्रकट हुआ ।७। वह परमात्मा ध्यान मात्र से प्रथम अपने शरीर से जल को उत्पन्न करता भया और उस जल में फिर उसने बीज को रक्खा ।८।

यहां पर मनु ने ईश्वर को सृष्टि का 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' माना है। पंचम श्लोक में यह दिखलाया कि प्रलय में यह संसार अव्यक्त था फिर षष्ठ में यह कहा कि प्रलय के अनन्तर स्वयंभू जगदीश्वर ने महत्तत्व का स्वरूप धारण किया। सप्तम श्लोक कहता है जो सनातन परमात्मा अचिन्त्य है वही अपने आप यह तत्त्व का रूप धारण करके आया। अष्टम श्लोक ने बतलाया कि उसने अपने शरीर महत्तत्व से जलों को रचा तथा उन जलों में सृष्टि रचने की शक्ति को स्थापित किया। सत्यार्थप्रकाश का लेखक जिस 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' का खण्डन कर रहा था अपनी शास्त्रानभिज्ञता से मनु के 'आसीदिदम्' श्लोक से उस प्रकरण को आगे रख गया कि जिस प्रकरण में मनु ने ईश्वर को सृष्टि का 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' लिखा है इसका आर्यसमाजियों के पास क्या जवाब है ?

जब तक आर्यसमाजी निमित्तकारण की खराबी को नहीं समझते तभी तक ईश्वर को संसार का निमित्तकारण मानते हैं जिस दिन यह समझ जावेंगे कि निमित्त कारण मानने पर ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं रहता उस दिन निमित्तकारण मानना छोड़ देंगे। जब हम आर्यसमाजियों से यह प्रश्न करते हैं कि तुम नित्य ईश्वर ईश्वर चिल्लाते हो, वह तुम्हारा ईश्वर रहता कहां है ? तब आर्यसमाजी जवाब देते हैं कि ईश्वर तो सर्वव्यापक है इसलिये सब जगह रहता है। आर्यसमाजियों के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि आर्यसमाज ईश्वर को सृष्टि का उपादानकारण मानती है क्योंकि उपादानकारण ही सर्वव्यापक होता है। घट का उपादानकारण मिट्टी है इस लिये घट के एक एक परिमाणु में मिट्टी व्यापक है किन्तु घट का निमित्तकारण कुलाल घट में व्यापक नहीं हो सकता, इसी प्रकार कुठार का उपादानकारण लोहा है और वह कुठार के प्रत्येक अवयव में व्यापक है किन्तु कुठार का निमित्तकारण लुहार

कुठार में व्यापक नहीं, इसी प्रकार संसार के समस्त पदार्थों में उनके उपादानकारण व्यापक रहते हैं, निमित्तकारण व्यापक नहीं होते, इसी नियम से यदि हम आर्यसमाज के कथनानुसार यह मान लें कि इस संसार का उपादानकारण प्रकृति और निमित्त कारण ईश्वर है ऐसी दशा में उपादानकारण होने से प्रकृति सर्वव्यापक बन जायगी किन्तु ईश्वर व्यापक न हो सकेगा, तब आर्यसमाज से यह प्रश्न होगा कि संसार का निमित्तकारण तुम्हारा ईश्वर कहां रहता है ? उस समय आर्यसमाजी न तो सर्वव्यापक कह सकेंगे और न ही ईश्वर का कोई स्थान बतला सकेंगे, जिसके स्थान का पता नहीं चलेगा उसके अस्तित्व में बाधा अवश्य आवेगी इसको आर्य-समाजी समझ लें।

सर्वशक्तिमान

स. प्र. पृ. २१५ पं. २०–"सर्वशक्तिमान का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ग्रन्थ लिखने की अनभिज्ञता से सत्यार्थप्रकाश में बार बार पुनरुक्त दोष भरते हैं यह इनकी शास्त्रानभिज्ञता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान् क्यों है ? जिसे यह देखना हो वह सप्तम समुल्लास के "सर्वशक्तिमत्व" प्रकरण को देख ले।

ईश्वर की जबर्दस्ती

स. प्र. पृ. २१६ पं. ३–"जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़ कर जगदाकार बना देता है।

वि०—ईश्वर भी बड़ा जालिम है। प्रकृति डर के मारे भाग निकलती होगी और ईश्वर भी उसके पकड़ने को पीछे पीछे दौड़ता होगा, जब अपनी जबर्दस्ती से ईश्वर प्रकृति को पकड़ लेता होगा तब वह इन्कार करती होगी कि मैं संसार नहीं बनूंगी किन्तु ईश्वर अपनी जबर्दस्ती से उसको संसार बनने के सांचे में धंसाकर संसार बना ही देता होगा। यह बहुत बुरी बात है, गरीब प्रकृति के साथ ईश्वर का किया एक प्रकार का जुल्म है ? आर्यसमाजी यह तो बतलावें कि वेद के किस मंत्र में प्रकृति और उससे संसार बनना लिखा है ? आर्यसमाजी यह कहा करते हैं कि ईश्वर कर्मों

के अनुसार फल देता है। इस प्रकृति ने ऐसा कौन बुरा कर्म किया था कि जिसके फल से इसको संसार के सांचे में ढलना पड़ा, इन सब बातों का जवाब आर्यसमाजियों के ऊपर बकाया है।

कार्य कारण की समता

स. प्र. पृ. २१६ पं. ७–"यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है क्योंकि हम अभी कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादानकारण नहीं किन्तु निमित्तकारण है और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं।

वि०—सृष्टि के आरंभ में तो प्रकृति की प्रथक् सत्ता ही नहीं होती इसके लिये "नासदासीन्नोसदासीत् ऋ० मंड० १० अ० १० सू० १२६ मं० १। २" प्रमाण देखिये और जब ब्रह्म से प्रकृति का प्रादुर्भाव होता है तब वह प्रकृति सर्वथा ही निराकार होती है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक का यह तर्क था कि यदि ब्रह्म से सृष्टि बनेगी तो सृष्टि भी निराकार हो जायगी क्योंकि ब्रह्म निराकार है वह तर्क प्रकृति रचित संसार में भी लागू हो जायगा कि निराकार प्रकृति से बना हुआ संसार साकार कैसे होगा? इसका आर्यसमाजियों के पास क्या जवाब है? और सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जो "प्रकृति और परमाणु" लिखा है यह शास्त्रानभिज्ञ आर्यसमाजियों को धोका देने के लिये है। प्रकृति से अहंकार, अहंकार से महत्तत्व जब बन लेता है तब परमाणु बनते हैं। प्रकृति पुरुष को अनादि मानना सांख्य सिद्धान्त है और परमाणुओं को अनादि मानना यह नैयायिकों का स्थूल सिद्धान्त है।

प्रलय

स. प्र. पृ. २२२ पं. ४–"जब महाप्रलय होता है उसके पश्चात् आकाशादि क्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है अग्न्यादि क्रम से, और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल क्रम से सृष्टि होती है अर्थात् जिस जिस

प्रलय में जहां जहां तक प्रलय होता है वहां वहां से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

वि०—वेद में यह उल्लेख नहीं पाया जाता कि किसी समय पृथ्वी और जल का प्रलय और कभी कभी अग्नि, जल, पृथ्वी का प्रलय एवं वाज वक्त पांचो तत्वों का प्रलय। ब्रह्म के जिस देश में सृष्टि प्रलय होता है तो पांचो तत्वों का होता है और वेद में जो कहीं ईश्वर से सृष्टि और कहीं तेज से तथा कहीं जल से वर्णन की है यह आवश्यकतानुसार की है। जैसे स्थूल सृष्टि का वर्णन करना है तो सृष्टि का वर्णन तेज से कर चलेंगे और यदि सूक्ष्म सृष्टि का वर्णन करना है तो ब्रह्म से करेंगे, वेदान्त दर्शन में यही उल्लेख मिलता है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक वेद शास्त्र नहीं जानते इसलिये मनमाना लेख लिखते हैं।

वेद माननेवाले नास्तिक

स. प्र. पृ. २१८ पं. १०—

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवोब्रह्मैव नापरः॥

यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है, नवीन वेदान्ति लोग पांचवें नास्तिक की कोटी में हैं।

वि०—क्या मंत्रभाग, क्या ब्राह्मणभाग और क्या उपनिषद् भाग सभी का यह सिद्धान्त है कि जीव ब्रह्म है, देखिये प्रमाण—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ ६॥
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ ७॥

ईशावास्योपनिषद्

जो मुमुक्षु प्रकृति से लेकर स्थावर पर्यन्त जड़ तथा चेतनों को अपने आत्मा में देखता है, क्या देखता है कि मेरे ही में सब भूत स्थित हैं मुझ से भिन्न नहीं हैं और समस्त भूतों में अपने आत्मा को अभेद रूप से देखता है अर्थात् समस्त भूतों

का रूप मैं हूँ और मेरे ही रूप भूत हैं ऐसा देखता है उसका नानात्व का संदेह दूर हो जाता है। ६। इसी अर्थ को यह दूसरा मंत्र कहता है जिस विशेष अवस्था में यह समस्त जड़ चेतनात्मक संसार आत्मा (ब्रह्म) ही है ऐसा समझ में आता है तब आकाश की भांति विशुद्ध एक ब्रह्म के ज्ञान की उपलब्धि से सब को एक देखता है उस समय न शोक रहता है, न मोह होता है वह ब्रह्म बन जाता है। ७।

अब आर्यसमाजी बतलावें कि जीव को ब्रह्म वेद कहता है या नहीं, जब वेद जीव को ब्रह्म कहता है और जीव को ब्रह्म कहनेवाले नास्तिक हैं तब तो हिन्दुओं के समस्त पूर्वपुरुष नास्तिक हुये, हिन्दुओं को नास्तिक बतला वेदों से विश्वास तोड़ हिन्दुओं को ईसाई बनाने का ही यह उद्योग है।

सृष्टि की उत्पत्ति

स. प्र. पृ. २२५ पं. २–(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ? (उत्तर) अनेक क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुये। पुनः स. प्र. पृ. २२५ पं. ९–"युवावस्था में (हुये)"।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक का काम धर्मनिर्णय करना नहीं है बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजियों को धोके में फांसना है। [ख] सृष्टि के आदि में अनेक मनुष्य पैदा हुये इसका कोई भी प्रमाण आर्यसमाज के लंगड़े वेद में नहीं है यह सत्यार्थप्रकाशलेखक के दिमाग की सूझ है और सोलह आने चौसठ पैसे झूठ है। [ग] यह भी वेद में कहीं नहीं लिखा कि कुछ जीव ऐसे थे जिनके कर्म सृष्टि के आरम्भ में पैदा होने के थे, पहिली झूठ को सत्य करने के लिये यह दूसरा झूठा लेख लिखा। [घ] सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने पुष्टि में "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त" ये दो प्रमाण यजुर्वेद के नाम से लिखे किन्तु कासगंज में आर्यसमाज के प्रसिद्ध वक्ता स्वामी दर्शनानन्द जी पं० अनोखेलाल जी भजनोपदेशक से शास्त्रार्थ हार गये। अनोखेलाल जी कहते थे कि ये दोनों प्रमाण यजुर्वेद में नहीं हैं,

दर्शनानन्द जी कहते थे कि हैं। यजुर्वेद टटोल्या गया. उसमें ये प्रमाण नहीं निकले तब दर्शनानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धि और अपनी हार को स्वीकार कर लिया। यहां से दिल्ली पहुँच आर्यप्रतिनिधि को लिखा कि ये दो प्रमाण यजुर्वेद में नहीं. परोपकारिणी ने खूब तलाश किया यजुर्वेद में न निकले। ये प्रमाण कहां के हैं इस खोज में आर्य प्रतिनिधि ने आर्य विद्वानों को चिट्ठियाँ लिखीं तब स्वर्गवासी नन्दकिशोर देव शाहजहांपुरवालों ने लिखा कि ये प्रमाण शतपथ के हैं और शतपथ को यजुर्वेद माना जाता है तब आर्यसमाज ने ग्यारहवीं आवृत्ति में सत्यार्थप्रकाश का पाठ बदल कर यह लिखा कि 'यह यजुर्वेद और उसके ब्राह्मण में लिखा है' यजुर्वेद का नाम अब भी झूठ ही लिखा गया है और वह इज्जत बचाने के लिये लिखा है। वास्तव में ये प्रमाण यजुर्वेद में हैं नहीं और सत्यार्थप्रकाश के रचयिता शतपथ को वेद नहीं मानते पुराण मानते हैं। [ङ] सत्यार्थप्रकाश लिखता है कि 'सृष्टि के आरम्भ में जवान जवान पुरुष और जवान जवान स्त्रियाँ. जवान जवान गायें और जवान जवान बैल, जवान जवान घोड़े और जवान जवान घोड़ियां, जवान जवान गधे और जवान जवान गधियां पैदा हो गईं', ये निराकार के जोड़े आकाश से टपके या किसी के घर से निकल भागे इसका पता कुछ भी नहीं लिखा। सत्यार्थप्रकाश का लेखक तथा अन्य आर्यसमाजी दूसरों को कहा करते हैं कि तुम्हारा लेख प्रत्यक्ष के विरुद्ध और असंभव है, नहीं मालूम यहां प्रत्यक्ष विरोध और असम्भवता कहां भाग गई? जवान जवान जोड़ों का पैदा होना आर्यसमाज के लंगड़े वेद में लिखा ही नहीं तो भी यह चंडू-खाने की गप्प इस भरोसे पर लिखी गई कि कोई नहीं मानेगा तो मूर्ख आर्यसमाजी तो मान ही लेंगे। [च] इस विषय में शतपथ यह लिखता है कि—

स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ ॥४॥
स इमेमेवात्मानं द्वेधा पातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां ततो मनुष्या अजायन्त ॥५॥

श० कां० १४।४।२

उस ईश्वर को अकेले में आनन्द नहीं आया इसलिये संसार में भी अकेले में आनन्द नहीं आता है उसने दूसरे को चाहा वह इतना मोटा हुआ जितने दो स्त्री पुरुष मिलकर होते हों फिर उसने अपने मोटे शरीर के दो विभाग किये एक भाग पुरुष और दूसरा भाग पत्नी बना उससे मनुष्य पैदा हुये। सष्टि के आरम्भ में

ईश्वर ने अपने शरीर से एक स्त्री पुरुष का जोड़ा बनाया और उस जोड़े से ही मनुष्यों की पैदायश चली तो फिर सृष्टि के आरम्भ में अनेक मनुष्यों का पैदा होना क्या यह लेख झूठ नहीं है ? झूठे लेखों से ही आर्यसमाज मत का जन्म हुआ है। यहां पर ईश्वर से संसार पैदा हुआ अतएव संसार का "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" ईश्वर है यह वेदोक्त सृष्टिक्रम आर्यसमाजियों की दृष्टि में न पड़ जाय इस भय से सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इन दो श्रुतियों को छिपा दिया। इसके आगे शतपथ ने मनुष्य से भिन्न सृष्टि की पैदाइश इस प्रकार लिखी, पढ़िये—

सोहेयमीक्षां चक्रे कथं नु मात्मनऽएव जनयित्वा सम्भवति हन्त तिरोसानीति ।६। सा गौरभवत् । वृषभ इतरस्ताꣳ समेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त ।७। वडवेतराभवदश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ । इतरस्ताꣳ समेवाभवत्तत एकशफमजायत ।८। अजेतराभवत् । वस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्ताꣳ समेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किं च मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृज्जत ।९।

शत० कां० १४ । ४ । २

पत्नी ने देखा कि इसने मुझको अपने शरीर से ही बना कर मुझसे रमण किया इस खेद से वह छिप गई, छिप कर गौ हुई पुरुष ने भी वृषभ बन कर उससे व्यवाय किया उससे गो जाति उत्पन्न हुई। फिर वही पत्नी घोड़ी हुई पुरुष घोड़ा बना। पत्नी फिर गदही बनी पुरुष गदहा बना, फिर दोनों ने आपस में मैथुन किया उससे एक टांप वाले अश्व गर्दभ उत्पन्न हुये, फिर पत्नी बकरी बनी पुरुष बकरा बना, पत्नी फिर भेड़ बनी पुरुष मेढ़ा बना, फिर आपस में उन्होंने रमण किया उससे भेड़ बकरी बनी, इसी प्रकार दोनों चीटी तक बनते गये और संसार बनता गया। अब आर्यसमाजी बतावें कि सृष्टि के आरंभ में एक एक जोड़ा हुआ या हजारों गाय भैंस के जोड़े एकदम आकाश से टपक पड़े।

आदि सृष्टि की जन्मभूमि

स. प्र. पृ. २२५ पं. २९-(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ? (उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिसको तिब्बत कहते हैं।

वि०—तिब्बत में आदि सृष्टि हुई, इसका वेदादि सच्छास्त्रों में कोई प्रमाण नहीं, तिब्बत को त्रिविष्टप कहते हैं इसका भी वेदादि सच्छास्त्रों में वर्णन नहीं, मनमानी गप्प है। ऐसी झूठी गप्पों को तिब्बतवालों की सन्तान आर्यसमाजी ही मानेंगे। क्या कोई आर्यसमाजी इस बात का सबूत दे देगा कि प्रथम सृष्टि तिब्बत में हुई या तिब्बत को त्रिविष्टप कहते हैं? जब सत्यार्थप्रकाश में सबूत आजायगा तब हम उसके ऊपर विचार करेंगे, मनमानी झूठी बातों का उत्तर देना भी बेसमझी है।

एक जाति

स. प्र. पृ. २२६ पं. १–(प्रश्न) आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक? (उत्तर) एक मनुष्यजाति थी पश्चात् "विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवः" [१।५।१।८] यह ऋग्वेद का वचन है। श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान्, देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू मूर्ख नाम होने से आर्य और दस्यु दो नाम हुये। "उतशूद्रे उतार्ये" अथर्ववेद वचन। आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र चार भेद हुये। द्विज विद्वानों का नाम आर्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ।

वि०—एक लेख के विरुद्ध दूसरा लेख जब तक न लिखा जावे तब तक सत्यार्थप्रकाश के लेखक को शान्ति ही नहीं होती। "मुखं किमस्यासीत्" इस मंत्र के ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के टीका में लिखा है कि "इस पुरुष के मुख अर्थात् मुख्य गुणों से इस संसार में क्या उत्पन्न हुआ है, बल वीर्य शूरता और युद्ध आदि विद्या गुणों से इस संसार में कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ है, व्यापार आदि मध्यम गुणों से किसकी उत्पत्ति हुई है, मूर्खपन आदि नीच गुणों से किसकी उत्पत्ति होती है"। यहाँ पर उत्तम मध्यम नीच आदि गुणों से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र की उत्पत्ति का प्रश्न है इसके उत्तर में 'ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्०' के भाषा टीका में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका लिखती है कि "श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न होता है और ईश्वर ने बल तथा पराक्रम से क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया है" ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ने तो गुणों के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र जाति की उत्पत्ति पृथक् पृथक् बतलाई किन्तु यहाँ पर उन गुणों को उड़ा कर उत्पत्तिकाल में मनुष्यों की एक जाति लिख दी इन दो

बातों में से कौन सत्य ? इसका पता आर्यसमाजी लगावें। यह कौन वेद में लिखा है कि मनुष्य पहिले तिब्बत में रहते थे और उनमें केवल एक मनुष्यजाति थी ? वेद में इसका कहीं पता नहीं। वेद को तिलांजलि देकर मनमानी गप्पें हांकना यह आर्यसमाजियों का स्वाभाविक धर्म है और उसी की एक चमक यहाँ पर शोभा दे रही है।

तिब्बत में महाभारत

स. प्र. पृ. २२६ पं. ८—जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर उनमें सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमिखण्ड को जान कर यहीं आकर बसे इसी से इस देश का नाम 'आर्यावर्त' हुआ।

वि०—(१) इस घोर संग्राम का वर्णन किस इतिहास में है (२) यह लड़ाई किस जमाने में हुई (३) दोनों सेनाओं के सेनापति कौन कौन थे (४) इस युद्ध में तोप बन्दूकों से काम चला या लात घूंसे ही चलते रहे (५) मूर्खों ने विद्वानों को इस तरह ठोंका कि डर के मारे विद्वानों को जन्मभूमि छोड़ देनी पड़ी (६) विद्वान् लोगों ने ज्योतिष् कंठ कर रक्खा होगा, नहीं तो 'आर्यावर्त सर्वोत्तम देश है' यह कैसे जान लिया ? सन् २१ में गान्धी जी ने आन्दोलन उठाया कि बृटिश गवर्नमेंट भारत का शासन न करे, विदेशी लोगों को हमारे ऊपर शासन करने का कोई अधिकार नहीं, इसी देश के बाशिन्दे हम यहां का शासन करेंगे। गांधी जी की इस आवाज पर आर्यसमाजी लोग भी स्वराज्य प्राप्ति की आवाज उठाने लगे, यह न समझा कि हम भी विदेशी हैं, अंग्रेज योरुप से आये और हम तिब्बत से आये, विदेशी आर्यसमाजियों को स्वराज्य न मिलेगा, इनको यदि स्वराज्य लेना हो तो दलाईलामा के पास पहुँच स्वराज्य लें, भारतवर्ष में इनका क्या रक्खा है। तिब्बत की लड़ाई लंगड़े वेद के किस मंत्र में लिखी है, आर्यसमाजियों को इसका जवाब देना होगा, नहीं तो यह कह देना होगा कि झूठे गप्पाष्टक ही हमारे धार्मिक सिद्धान्त हैं।

म्लेच्छ देश

स. प्र. पृ. २२७ पं. २५—

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः। मनु० १०। ४५

म्लेच्छदेशस्त्वतः परः । मनु० २ । २३

जो आर्यावर्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहाते हैं।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक भूके हैं, जब खाने के लिये इन्हें कुछ न मिला तो मनुस्मृति का आधा श्लोक ही खा लिया और इस प्रकार हजम किया कि आर्य-समाजियों को पता ही नहीं चला। यह श्लोक मनु जी ने यों लिखा है—

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः॥

मनु० १० । ४५

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इनकी क्रियालोप से जो अधम जाति उत्पन्न हुई चाहे वे म्लेच्छभाषा करके संयुक्त हों, चाहे आर्यभाषा बोलने हों वे सब दस्यु हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि 'इससे भिन्न देश दस्युदेश कहाता है' इसका यह भाव है कि आर्यावर्त देश में भी कर्महीन क्रियाभ्रष्ट लोगों का नाम दस्यु था।

पुराण इतिहास की सृष्टि

स. प्र. पृ. २२८ पं. १२–"ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश, इनके स्वायंभवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त के प्रथम राजा हुयेजिन्होंने यह आर्यावर्त बसाया है।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में "स ब्रह्मा" यहां पर निराकार ईश्वर का नाम ब्रह्मा बतलाया, अब वही सत्यार्थप्रकाश का लेखक ब्रह्मा को मनुष्य बतला कर उससे सृष्टिक्रम चलाता है यह आश्चर्य है। [ख] आपने बतलाया कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, सत्यार्थप्रकाश के लेखक विराट् को ब्रह्मा का इकलौता बेटा मानते हैं और इसके ऊपर वेद लिखता है कि "ततोविराडजायत० यजु० ३१।५" उस मायारहित ब्रह्म के माया स्वीकार करने पर यह ब्रह्माण्ड रूप विराट् उत्पन्न हुआ। यहां पर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति है किसी मनुष्य की नहीं, फिर ब्रह्माण्ड की रचना के पश्चात् "पश्चाद्भूमिमथोपुरः यजु० ३१।५" पृथ्वी की उत्पत्ति हुई किन्तु वेद के इस अभिप्राय को दबाने के लिये सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने ब्रह्मा को मनुष्य बनाया और ब्रह्मा के

विराट् लड़का पैदा किया। खुशी की बात यह है कि उस समय पृथ्वी नहीं बनी थी, ये बाप बेटा आकाश में ही खेलते फिरे और आकाश का ही भोजन करते रहे, यह आर्य-समाजियों की अक्ल का फोटू है। [ग] फिर लिखा कि 'विराट् का पुत्र मनु' मनु विराट् का पुत्र नहीं वरन् ब्रह्मा का रूपान्तर है। ब्रह्मा की सृष्टि रचना में अनेक विघ्न आये क्योंकि सृष्टि अमैथुनी थी, तब ब्रह्मा ने कहा कि—

न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम्।
एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥ ५१
कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते।
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ ५२
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट्।
स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ ५३
तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे।
स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥ ५४
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥ ५५

भागवत स्कं० ३ अ० १२

ब्रह्मा ने कहा कि मेरी रची प्रजा नहीं बढ़ती इसमें दैव ही विघातक है, तब ब्रह्मा ने प्रजा बढ़ने की युक्ति को जान और दैव को देख कर अपने शरीर के दो शरीर बनाये उस में से जो दक्षिण अंग था वह मनु और वामांग शतरूपा हुई। तब मनु और शतरूपा ने मैथुन धर्म से प्रजा को बढ़ाया। प्रियव्रत एवं उत्तानपाद ये दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति, प्रसूति ये तीन कन्यायें उत्पन्न हुईं। विचारशील विचार करें कि क्या मनु विराट् का पुत्र है या ब्रह्मा का रूपान्तर? फिर लिखा कि मनु के मरीच्यादि दश पुत्र हुए, मनु जी के तो दो ही पुत्र थे एक प्रियव्रत दूसरा उत्तानपाद, दो के दश कैसे हो गये? मालूम होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने आठ पुत्र किसी और मनुष्य के छीन कर मनु को दे दिये। जिन मरीच्यादि ऋषियों को सत्यार्थप्रकाश मनु के पुत्र बतलाता है उनको इतिहास तथा मनुस्मृति ने ब्रह्मा के पुत्र बतलाया है।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥

मनु० अ० १ श्लो० ३५

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद। इसी का नाम इतिहासवेत्ता है।

इसके बाद लिखा कि मरीच्यादि दश के पुत्र स्वायम्भवादि सात राजा। बिल्कुल ही झूठ न बोला तो फिर आर्यसमाज के धर्म का प्रवर्तक कौन कहेगा? इन दश के पुत्रों के नाम देखिये—मरीचि के पुत्र कश्यप [भागवत स्कं ६ अ० १ श्लो० १०] अत्रि के पुत्र चन्द्रमा [भाग० स्कं० ६ अ० १४ श्लो० ३] अंगिरा के पुत्र उतथ्य और बृहस्पति [भाग० स्कं० ४ अ० १ श्लो० ३५] पुलस्त्य के अगस्त्य और विश्रवा [भाग० स्कं० ४ अ० १ श्लो० ३६] पुलह के कर्मश्रेष्ठ, वरीयान्, सहिष्णु [भाग० स्कं० ४ अ० १ श्लो० ३८] क्रतु के वालखिल्य [भाग० स्कं० ४ अ० १ श्लो० ३६] भृगु के धाता, विधाता [भाग० स्कं० ४ अ० १ श्लो० ४३] वसिष्ठ के चित्रकेतु आदि सात [भाग० स्कं० ४ अ० १ श्लो० ४०] प्रचेता के पुत्र वाल्मीकि, देखो वाल्मीकीय रामायण का अन्तिम श्लोक। नारद ने विवाह नहीं किया। अब लिखा पढ़ा मनुष्य कौन कह सकता है कि मरीच्यादि ऋषियों के पुत्र स्वायम्भवादि थे? कई एक आर्यसमाजी यह कहेंगे कि हम भागवत को नहीं मानते। ठीक है, यदि नहीं मानते तो दूसरे ग्रन्थ में सन्तानोत्पत्ति का वर्णन मिलना ही नहीं, यह तो पुराण में ही मिलेगा। दूसरे आर्यसमाज पुराण को तो मानती नहीं क्योंकि वे झूठे हैं किन्तु सत्यार्थप्रकाश के लेखक का लिखा हुआ यह सृष्टि वर्णन अलिफलैला का झूठा किस्सा आर्यसमाज ने कैसे माना? फिर आगे लिखा कि "स्वायम्भवादि सात राजाओं के इक्ष्वाकु आदि राजा" यह भी झूठ, मालूम होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने अपने जीवन में झूठ बोलने का ठेका लिया है। इक्ष्वाकु आदि राजा स्वायम्भुव आदि राजाओं के लड़के नहीं हैं वरन् श्राद्धदेव मनु के अकेले के पुत्र हैं।

ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥११॥
इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ।
नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥१२॥

भाग० स्कं० ६ अ० १

संज्ञा में श्राद्धदेव मनु उत्पन्न हुये, श्राद्धदेव मनु ने श्रद्धा नाम की अपनी भार्या में दश पुत्रों को उत्पन्न किया और उनके नाम इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग, कवि ये हैं। कहो आर्यसमाजियो ! सत्यार्थप्रकाश के लेखक के इस सृष्टिक्रम को सत्य सिद्ध करनेवाला कोई आर्यसमाजी कभी मिलेगा ?

सूर्य के आकर्षण से पृथ्वी का धारण

स. प्र. पृ. २३० पं. २–

उक्षा दाधार पृथिवीमुतद्याम् ।

यह भी ऋग्वेद का वचन है। पुनः पृ. २३० पं० ६–"उक्षा वर्षा द्वारा भूगोल के सेचन करने से सूर्य का नाम है, उसने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है। पुनः पृ. २३० पं. २५—

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् । यजुः १३ । ४

यह यजुर्वेद का वचन है जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोक लोकान्तर पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाश सहित लोक और पदार्थों का रचन धारण परमात्मा करता है, जो सब में व्यापक हो रहा है वही सब जगत् का कर्ता और धारण करनेवाला है।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक के भूगोलिक ज्ञान को जानकर यूरोप और अमेरिका के तत्ववेत्ता दांतों के नीचे अंगुली दबाते हैं। सूर्य वर्षा से पृथ्वी को तर करता है इसलिये उसका नाम उक्षा है, उस उक्षा (सूर्य) ने अपने आकर्षण से पृथ्वी को धारण कर रक्खा है, यदि सूर्य में यह आकर्षण न होता तो फिर पृथ्वी कभी की नीचे को चली गई होती, कहो कैसा अनोखा ज्ञान है ऐसा किसी को आज तक हुआ है? [ख] पहिले सूर्य का पृथ्वी को धारण करना लिखा और अब ईश्वर का पृथ्वी को धारण करना लिखते हैं इन दो बातों में कौन सत्य ?

भू भ्रमण विचार

स. प्र. पृ. २३१ पं. ४–(प्रश्न) पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर ? (उत्तर) घूमते हैं। (प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य

घूमता और पृथ्वी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य नहीं घूमता इसमें सत्य क्या माना जाय? (उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः । यजु० अ० ३ मं० ६

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारो ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है।

वि०—[क] इस मंत्र का अग्नि देवता है और निरुक्त ने यह लिखा है कि "यातेनोच्यते सा देवता" मंत्र का जो वर्णनीय विषय है वही देवता है, जब इसका अग्नि देवता है तब तो मंत्र में अग्नि का वर्णन निकलेगा, पृथ्वी का वर्णन इसमें कैसे धंस जायगा। [ख] जब इस मंत्र से बलात्कार पृथिवी घूमने का अर्थ निकालने लगे तब अर्थ ठीक न हुआ इस लिये "मातरम्-पितरम्-पुरः" इन पदों को छोड़ देना पड़ा। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने यह सिद्ध किया कि ईश्वर बेवकूफ है इसलिये उसने 'मातरम्-पितरम्-पुरः' ये तीन पद अपनी बेवकूफी से मंत्र में जोड़ दिये, हम भी इतने विद्वान् हैं कि हमने ईश्वर की गल्ती को पकड़ लिया और 'मातरम्-पितरम्-पुरः' इन फिजूल पदों का अर्थ नहीं किया, बस सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजियों के ऊपर रोब जमाने के लिये वेद की यह काट छांट की है, इस प्रकार की चालाकी को क्या आर्यसमाजी नहीं समझते? इस मंत्र का अर्थ यह है—

"यह दृश्यमान अग्नि चारो तरफ से आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि में आक्रमण कर गया। यह अग्नि कैसा है जो यज्ञ की सिद्धि के लिये प्रत्येक यजमान के घर में गमन करता है, फिर यह अग्नि कैसा है कि लोहित शुक्ल कृष्ण आदि अनेक प्रकार की ज्वालाओं से युक्त है। पहिले पूर्व दिशा में यह अग्नि पृथ्वी पर आया इस कारण से इसने आहवनीय रूप धारण किया और आदित्य रूप से स्वर्ग में चल द्युलोक को प्राप्त हुआ"।

भूभ्रमण विषय में सत्यार्थप्रकाश का लेखक न तो प्राचीन सिद्धान्त को जानता है और न ही नवीन को, ज्ञानशून्य होने पर भी पंचम सवार में अपनी गणना कराने के लिये वेदमंत्र के अर्थ की हत्या कर पृथ्वी का चलना लिखता है। सूर्यसिद्धान्त कहता है कि—

ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते ।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोधः क्रमशस्तथा ॥३०
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधरा घनाः ॥३१
मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति ।
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२

अ० १२

ब्रह्माण्ड के मध्य में जो परिधि है उसे आकाशकक्षा कहते हैं उसके मध्य में नक्षत्रमंडल का भ्रमण होता है उसके नीचे यथाक्रम शनि, जीव, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध चन्द्र एक से नीचे एक भ्रमण (अपनी अपनी मध्यकक्षा में) करते हैं उसके नीचे सिद्ध, विद्याधर, मेघ हैं और चारो ओर से बीचोबीच ब्रह्माण्ड के मध्य (केन्द्र में) परब्रह्म परमेश्वर की धारणात्मिका शक्ति को धारण किये आकाश में भूगोल (पृथ्वी) सर्वतोभाव से स्थित है। जिस भास्कराचार्य के दिमाग से रेखागणित और बीजगणित निकले तथा आर० सी० दत्त, कीन्स कालेज के प्रिन्सिपल थीबो साहब और मानियर विलियम्स ने जिनके दिमाग की भूरि भूरि प्रशंसा की है वे इस विषय में लिखते हैं कि—

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठनत्वमश्मनिः ।
मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो
यतो विचित्रावतवस्तु शक्तयः ॥

सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय ।

जैसे सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में गति, पाषाण में स्वभाव से कठिनता है ऐसे ही स्वभाव से पृथिवी अचल है, वस्तुओं की शक्ति विचित्र है। ये प्राचीन सिद्धान्त हैं चौदहवीं शताब्दी तक समस्त संसार इसी सिद्धान्त को मानता रहा।

इसके बाद यूनान में "पैथागोरास" नाम का एक यूनानी तत्ववेत्ता हुआ उसने अपने दिमाग से यह बात निकाली कि पृथ्वी घूमती है। यह सिद्धान्त भारत-

वर्ष में बहुत जल्दी आ गया, इसके आने का कारण यह था कि उस समय भारतवर्ष में एक आर्यभट्ट नाम का विद्वान् था उसने एक करण ग्रन्थ लिखा उसमें अठारह अधिकार और ६२५ आर्याछन्द रख इस ग्रन्थ का नाम "आर्यभट्टीय सिद्धान्त" रक्खा और उसमें पृथ्वी का स्थिरत्व लिखा. उसकी आशा थी कि इस करण ग्रन्थ लिखने के पश्चात देश में मेरी प्रतिष्ठा होगी किन्तु उस समय वराहमिहिर और लल्ल जैसे उत्कट विद्वान् विद्यमान थे उनके सन्मुख करण ग्रन्थ लिखने पर भी आर्यभट्ट की प्रतिष्ठा न हुई तब प्रतिष्ठा पाने के लिये आर्यभट्ट ने १२० श्लोक का दूसरा ग्रन्थ "आर्यभट्टीय" लिखा और इसमें "पृथ्वी के घूमने" इस पैथागोरास के सिद्धान्त की उत्तम रीति से पुष्टि की किन्तु जिस समय यह ग्रन्थ लल्ल और वराहमिहिर के सन्मुख गया तब उन्होंने इस सिद्धान्त का इतना प्रबल खंडन किया कि उस खंडन से पृथ्वी घूमने का सिद्धान्त बिलकुल कमजोर सिद्ध होकर संसार से उड़ गया।

इसके कुछ दिन बाद कैप्लर ने फिर आवाज उठाई कि पृथ्वी घूमती है किन्तु उस समय भी संस्कृत का अध्ययन लोगों में चालू था, लल्ल और वराहमिहिर के खण्डन को पढ़ने से पृथ्वी घूमने के सिद्धान्त से विश्वास उठ गया।

कैप्लर के पश्चात् न्यूटन ने फिर आवाज उठाई कि पृथ्वी घूमती है। इस समय संस्कृत का पठन पाठन उठ गया था, लोगों को न्यूटन के विरुद्ध पृथ्वी के स्थिरा होने की युक्तियां नहीं मिलीं अतएव संसार ने न्यूटन के सिद्धान्त को सत्य माना और कुछ दिन बाद शिक्षापद्धति में इस सिद्धान्त का प्रवेश हो गया, उस दिन से सुपठित न्यूनपठित सभी मनुष्य अपनी पढ़ाई पर विश्वास कर पृथ्वी का घूमना मानने लगे और इसने पृथ्वी के स्थिरत्व सिद्धान्त को दबा दिया। यह अर्वाचीन सिद्धान्त है।

अब हम उन युक्तियों को आपके आगे रखते हैं कि जिन युक्तियों से वराहमिहिर तथा लल्ल ने पैथागोरास के भूभ्रमण का खण्डन लिखा है।

भ्रमति भ्रमस्थितेव क्षितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणः।
यद्येवं श्येनाद्या नखात्युनः स्वनिलयमुपेयुः॥ ६
भवेद्भूमेरन्हा भ्रमरंहसा ध्वजादीनाम्।
नित्यं पश्चात्प्रेरणमथाल्पगास्यात्कथं भ्रमति॥ ७

वराहमिहिर।

वराहमिहिर कहते हैं कि जिन लोगों ने यह सिद्धान्त माना है कि 'पृथ्वी घूमती है और भपंजर (ग्रह गण) नहीं घूमता' उनके सिद्धान्त में प्रथम विरोध यह है कि

पक्षी अपने घोसलों में नहीं जा सकेंगे। ६। इसको इस प्रकार समझें कि पृथ्वी की परिधि (दायरे का घेरा) पचीस हजार मील है, यदि हम इस पर त्रैराशिक लगा लें तो एक घंटे में एक हजार इकतालिस मील और एक मिनट में सत्रह मील घूमती है। कल्पना करो कि छः बजे कबूतर अपने स्थान से उड़ने के लिये अकाश को चढ़ गये और दो घंटे आकाश में उड़ कर अब वे अपने घोसले में आना चाहते हैं, पृथ्वी घूमनेवालों के सिद्धान्त में अब उनको घोसला न मिलेगा क्योंकि वे दो घंटे उड़े हैं और दो घंटे में उनका स्थान पृथ्वी घूमने के कारण दो हजार बयासी मील चला गया है, इतनी दूर गया हुआ घोसला कबूतरों को मिल जावेगा यह प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। कल्पना करो कि कुछ कबूतर उड़ने को आकाश में चढ़े और तीन मिनट आकाश में उड़े, अब वे अपने घोसले में जाना चाहते हैं इनको भी घोसला न मिलेगा। प्रथम तो तीन मिनट में इनका घोसला इक्यावन मील पहुँच गया, दूसरे जब ये घोसले की तरफ बढ़ेंगे तो इनकी चाल धीमी और पृथ्वी की चाल तेज होन के कारण फासला और भी बढ़ता जावेगा, हम प्रत्यक्ष में देखते हैं कि कबबूरों को घोसला मिल जाता है अब यह मानना पड़ेगा कि पृथ्वी नहीं घूमती।

जो पृथ्वी का घूमना मानते हैं वे यह कहते हैं कि भूवायु का कबूतरों पर प्रभाव पड़ता है इस लिये भूवायु उनको हरदम खैंचता रहता है। भूवायु में आकर्षण मानना और उससे कबूतरों का एक घंटे में एक हजार इकतालिस मील खिंच जाना यह निरी गप्प है। [क] जब किसी कबूतर को भूवायु एक घंटे में एक हजार इकतालिस मील खैंचेगा तब उस कबूतर का जीवित रहना एक असंभव बात है। दृढ़ आधार जिस पर हम खड़े हो सकते हैं या बैठ लेट सकते हैं जैसे कि मोटर-रेलगाड़ी-हवाई जहाज है इस पर खिंचना और बात है किन्तु कुछ भी आधार न रख कर वायु के जोर से आकाश में खिंचते ही चले जाना, और फिर खिंचना भी कितना कि एक घंटे में एक हज़ार इकतालिस मील, इस तीव्र वेग के आकर्षण में तो मनुष्य भी जिन्दा नहीं रह सकता कमजोर दिल कबूतर जीवित कैसे रहेगा। [ख] हम देखते हैं कि बाज बाज समय बादल आध आध घंटा एक ही स्थान पर डटे रहते हैं इनको भूवायु क्यों नहीं खैंचता ? [ग] कल्पना करो कि हमने बन्दूक में गोली भर कर आकाश को सीधी छोड़ी, जब तक गोली में बन्दूक से उत्पन्न हुआ वेग रहेगा तब तक वह गोली ऊपर को जायगी, वेग के समाप्त होते ही वह गोली नीचे को चल देगी और कुछ टाइम बाद जमीन पर आ पड़ेगी, तुम्हारा भूवायु गोली को क्यों नहीं खेंचता ? [घ] यह देखी हुई बात है कि एक दिन कबूतरों का झुंड आकाश में उड़ रहा था किसी कारण से ऊपर ही

एक कबूतर मर गया और वह नीचे आ पड़ा, इस मृतक कबूतर को भूवायु ने क्यों नहीं खेंचा ? [ङ] हवाई जहाज से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि भूवायु पदार्थ को नहीं खेंचता, हमने इसको प्रत्यक्ष करके देखा है, भूवायुवाले देखलें। एक हवाई जहाज है और उसकी फी घंटे की दौड़ अस्सी मील है जब तुम उसकी पूरी चाल पर जहाज को पूर्व में चलाओगे तो वह घंटे भर में पूर्व को अस्सी मील जायगा और यदि उसी जहाज को तुम उसी चाल पर पश्चिम को दौड़ाओगे तो वह अस्सी ही मील जायगा; इसी प्रकार उत्तर-दक्षिण दिशाओं में उसकी चाल तुल्य वेगवाली रहती है, अब भूवायु का प्रभाव कहां रहा ? इसके ऊपर भूभ्रमणवाले एक दलील देते हैं कि रेल में जब गेंद को उछालते हैं तो गेंद रेल के वेग से कुछ आगे को बढ़ जाती है और रेल के हंडे के आस पास घूमनेवाले पतंगे रेल के वेग से रेल के साथ चले जाते हैं कबूतरों में भी यही वेग रहता है और वह वेग कबूतरों को खेंच ले जाता है।

दलील में जो दृष्टान्त है उसमें समानाधिकरण नहीं, पतंगे और गेंद रेल के अन्दर हैं रेल से लगाव रखते हैं और कबूतरों का पृथ्वी से लगाव नहीं। कल्पना करो कि किसी कुंभकार के चाक में चूहों ने छेद कर लिया और उसमें बैठ कर उन्होंने बच्चे पैदा किये, कुंभकार चाक चलावेगा तो चाक के साथ चूहे घूम जायंगे मगर चाक से लगाव न रखनेवाले चाक के ऊपर जो मक्खी आदि प्राणी हैं उनका चाक के साथ घूमना कौन मान लेगा ? जो पक्षी रेल के भीतर बैठे हैं या रेल के ऊपर बैठ गये उनको रेल खैंचेगी किन्तु जिन पक्षियों का लगाव रेल से नहीं, रेल के दो तीन हाथ ऊपर उड़ रहे हैं उनको रेल कैसे खैंचेगी। जब हम पृथ्वी का चलना मान लें तो पृथ्वी से लगाव रखनेवाले मनुष्यादि पृथ्वी के साथ खिच जायंगे यह संभव हो सकता है किन्तु जिन कबूतरों का पृथ्वी के साथ किसी प्रकार का लगाव नहीं वे कैसे खिचेंगे। पतंगे रेल से लगाव रखते हैं इसलिये पृथ्वी से लगाव रखनेवाले कबूतरों के खिचने की पुष्टि इस दृष्टान्त से नहीं होती, इन सब बातों को हृदय में रख वराहमिहिर ने यह कहा कि यदि पृथ्वी घूमेगी तो पक्षियों को घोंसले न मिलेंगे।

वराहमिहिर की दूसरी शंका वायु के ऊपर है, मतलब यह है कि आकाश में किसी चीज के घूमने या किसी वस्तु के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण प्रभृति दिशाओं में दौड़ने से संचलन शक्ति उत्पन्न होकर वायु को पैदा कर देती है। आप हाथ में पंखा लेकर उसे घुमाइये, निश्चल और शान्त आकाश में पंखे के घूमने से वायु पैदा हो जावेगा इसी प्रकार जब मोटर एक दिशा को जाता है उसके चलने से आकाश में धक्का लग वायु पैदा हो जाता है और वह मोटर से उत्पन्न हुआ वायु उस दिशा

को दौड़ता है कि जिससे वह मोटर आ रहा है। खाली मोटर की ही यह दशा नहीं है, रेल में भी यही नियम काम करता है, रेल के चलते समय आकाश में धक्का लग वायु उत्पन्न होता है और यह वायु भी उसी दिशा को दौड़ता है कि जिससे रेल आ रही है। यही नियम पृथ्वी के चलने में काम करेगा, हमारी पृथ्वी पूर्व को जाती हुई जब आकाश में धक्का देगी आकाश से उत्पन्न हुआ वायु पश्चिम को दौड़ेगा इसलिये संसार की ध्वजा, पताकायें हमेशा पश्चिम की तरफ को उड़ा करेंगी, ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता इसलिये पृथ्वी का घूमना मानना भयंकर भूल है।

कई एक सज्जन यह कहते हैं कि जिस दिशा को दौड़नेवाला पदार्थ जाता है उसी दिशा को वायु जाता है इसकी पुष्टि में वे कुछ दलीलें देते हैं उनमें से पहिली दलील यह है कि "जब हम रेल की खिड़की से कुछ वस्तु नीचे फेंकते हैं तब वह हमारे निशाने पर न गिर कुछ आगे को गिरती है इससे यही सिद्ध होता है कि वायु आगे को दौड़ता है और वह फेंकी हुई चीज को आगे को धिका देता है ?" इसका उत्तर यह है कि जब चीज खिड़की से फेंकी जायगी तब पहिले रेल के वायु के जोर से वह पीछे को दौड़ेगी किन्तु पहिये के सामने आकर वह आगे को बढ़ेगी, पहियों के ऊपर की रेलगाड़ी वायु को पीछे फेंकती है किन्तु पहियों के आते ही हवा आगे को बढ़ती है इसका कारण यह है कि चलती हुई रेलगाड़ी जो वायु को पीछे फेंकती है जहां तक वायु की रोक नहीं वह पीछे को ही फेंकती जावेगी किन्तु पहियों के सामने आकर वायु की गति विपरीत हो जाती है, जब एक पहिया वायु को पीछे को फेंकता है तब वह वायु दूसरे पहिये से ठोकर खा उल्टी लौटती है यह नियम इंजन के पहियों से लेकर ब्रिक्स के पहियों तक अपना काम बराबर करता रहता है इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि जब तुम खिड़की में धोती सुकाओगे तब वह पीछे को दौड़ेगी क्योंकि उस भाग का वायु पीछे को जाता है किन्तु जब तुम रेल की पटरी के पास घास, रुई, बारीक कपड़ा जमीन पर रख दोगे तब वह रेल के आने पर पहियों की हवा से आगे को दौड़ेगा। जमीन में पहियों का निर्माण नहीं है इसलिये उसका वायु आगे को न जा सर्वदा पीछे को ही जावेगा फिर यह कहना कि पृथ्वी का वायु पूर्व को दौड़ता है यह भूल नहीं तो क्या है।

दूसरी शंका यह की जाती है कि जब हम रेल में बैठ कर किसी स्थान में पत्थर फेंकते हैं तो वह पत्थर लक्ष्य पर न गिर कुछ आगे को गिरता है इससे हम जानते हैं कि रेल की हवा आगे को जाती है और वह पत्थर को भी खैंच लेती है ? इसका उत्तर यह है कि चाहे तो आप पत्थर को उस घेरे में फेंकें जहां कि रेल की हवा है

या उस स्थान पर फेंकें जहां रेल की हवा नहीं पहुँचती, पत्थर हमेशा आगे को ही गिरेगा। इसका कारण यह है कि पत्थर फेंकते समय जिस स्थान को लक्ष्य बना कर पत्थर छोड़ता है, छोड़ते समय रेल के आगे बढ़ने से पत्थर की लाइन भी अगाड़ी बढ़ जाती है इसलिये पत्थर आगे को गिरता है।

तीसरी शंका यह की जाती है कि हवाई जहाज से जो डाक के थैले फेंके जाते हैं वे थैले नियत स्थान पर न गिर कर कुछ आगे को गिरते हैं? इसका उत्तर यह है कि यह नियम अटल नहीं कि थैले आगे को ही गिरें, पहिले थैले गिरानेवाले का हाथ जिधर को थैले फेंकेगा हाथ के वेग से वे उधर को ही जायंगे, फिर पूर्व-पश्चिम चलनेवाली हवा का प्रभाव थैले पर गिरेगा, यदि हवा जहाज के आनेवाली दिशा से वह रही है तो थैला आगे को और सन्मुख की हवा होने पर थैला पीछे को हटेगा। इसमें ज्यादा हुज्जत की जरूरत नहीं, परीक्षा करके देख लेना चाहिये। रेल और मोटर पर झंडियां बांध दो और फिर चलाओ, चलते ही झंडियों की पताका उधर को भागेगी जिधर से रेल आ रही है फिर कोई दलील कोई उदाहरण संसार में आपको ऐसा न मिलेगा जो हवा का जाना उस दिशा को सिद्ध कर दे कि जिस दिशा को मोटर या रेलगाड़ी दौड़ रही है, इन सब तर्कों को हृदय में विचार वराहमिहिर ने यह लिखा कि पृथ्वी चलेगी तो ध्वजा पताका सर्वदा पश्चिम को दौड़ेंगी ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता अतएव पृथ्वी का भ्रमण मानना मिथ्या है।

वराहमिहिर की दो अकाट्य दलीलें हमने आपके आगे रक्खीं, अब ज्यौतिष् के धुरंधर विद्वान् लल्ल की दलीलों को सुनें—

यदि च भ्रमति क्षमा तदा
स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः।
इषवोऽभिनभः समुज्झिताः
निपतन्तः स्युरपाम्पतेर्दिशि ॥४२
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो
वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घनः
अथ मंदगमात्तदा भवे-
त्कथमेकेन दिवा परिभ्रमः ॥४३

यदि पृथ्वी चलती है तो फिर पक्षी अपने घोसलों में नहीं पहुँच सकेंगे यह वही दलील है जो वराहमिहिर ने संसार के आगे रक्खी है और इस पर विवेचन भी हो गया है अब अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। पण्डितवर लल्ल दूसरी बात कहते हैं कि यदि पृथ्वी चलती है तो आकाश का फेंका हुआ बाण पश्चिम में गिरेगा, इसको इस प्रकार समझिये कि एक धनुषवाले ने धनुष पर बाण रख कर सीधा ऊपर को फेंका वह धनुष के वेग से ऊपर को गया और जब धनुष का वेग खतम हो गया तब नीचे को गिरने लगा, जब बाण ऊपर फेंका गया था तब से बाण के नीचे गिरने तक पन्द्रह सेकण्ड लग गये, पन्द्रह सेकण्ड में वह भूमि जहाँ से बाण फेंका गया था पृथ्वी की चाल से सवाचार मील पूर्व को बढ़ गई, बाण पश्चिम को रह गया, अब जो वह बाण गिरेगा पश्चिम को गिरेगा, किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता इसलिये यह मानना पड़ेगा कि पृथ्वी नहीं चलती, यदि कोई यह कहे कि बाण को भूवायु खैंचेगा ऐसा कहनेवाले को यह सोचना चाहिये कि भूवायु का खैंचना तो लल्ल की युक्ति में ही कपूर हो गया फिर उसका चर्चा उठाना बेकार है। लल्ल तीसरी युक्ति यह देते हैं कि यदि पृथ्वी का चलना माना जायगा तो बादल हमेशा पश्चिम को जायगा। इसको इस प्रकार समझें कि जो बादल पूर्व से पश्चिम को जा रहा है वह तो पश्चिम को जावेगा ही किन्तु जो बादल पश्चिम दिशा में पैदा होकर पूर्व को जारहा है वह भी पश्चिम को ही जायगा। कल्पना करो कि पश्चिम दिशा से उठकर जो बादल पूर्व को चला वह हम से एक फर्लांग की दूरी पर है, बादल भी पूर्व को जा रहा है और पृथ्वी भी पूर्व को जा रही है, बादल की चाल धीमी और पृथ्वी की चाल तेज है, पन्द्रह सेकण्ड के बाद ही वह बादल हमें दूर पश्चिम में दीखेगा क्योंकि शीघ्र चाल से पन्द्रह सेंकड में पृथ्वी पूर्व को बहुत दूर निकल जावेगी और फिर थोड़ी देर बाद वह बादल हमारी दृष्टि में भी नहीं आवेगा, यद्यपि बादल पूर्व को जा रहा है तो भी पृथ्वी की तेज चाल बादल का पश्चिम जाना सिद्ध करती है ऐसा प्रत्यक्ष देखने में नहीं आता इसलिये पृथ्वी का चलना यह कथन प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

यदि कोई यह कहे कि हम पृथ्वी को इतना शीघ्र थोड़ा ही दौड़ाते हैं, यदि पृथ्वी एक घंटे में एक हजार इकतालिस मील न जायगी इसकी चाल धीमी होगी तो यह अपने भ्रमण को एक दिन में पूरा भी नहीं कर सकेगी।

प्यारे सज्जनो! आंख बन्द करके किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त को मानना यह मनुष्य का मनुष्यत्व नहीं है। पाश्चात्य तत्ववेत्ताओं ने पृथ्वी के भ्रमण में जो युक्तियां दी हैं उनके ऊपर प्रेमभाव से विचार कर उनका सार निकालना हमारा और तुम्हारा

कर्तव्य है इसी प्रकार भूभ्रमण के खंडन में जो भारतीय विद्वानों ने युक्तियां रक्खी हैं उन पर विचार करना भी हमारा आपका कर्तव्य है। इस लेख में हमने भारतीय विद्वानों की केवल चार युक्तियां आपके सन्मुख रक्खी हैं किन्तु युक्तियां इतनी हैं कि यदि इनके ऊपर दो दो घंटे रोज विचार किया जावे तो संभव है चालिस या पचास दिन में युक्तियों की समाप्ति हो और रेखागणित तथा बीजगणित के पूर्णज्ञान न होने के कारण भारतीयों की करीब चालिस युक्तियां तो हमारी समझ में ही नहीं आतीं, ऐसे ऐसे गंभीर विषयों पर विवेचन करने के लिये "सुमति प्रकाशिका" आदि बड़े बड़े ग्रन्थ देखने चाहिये। हमें आशा है कि यूरोपवालों की भांति देश के कल्याण के लिये ऐसे ऐसे गंभीर विषयों का विचार आप आरंभ करेंगे।

ध्रुव दर्शन

अमेरिकावालों ने ताराओं के देखने की एक दुर्बीन बनाई, उस दुर्बीन से लोगों को तो तारे दीखे किन्तु हमने तारों को न देखकर दुर्बीन में यह देखा कि पृथ्वी अचला है वह कभी एक इंच भी अपने स्थान से नहीं हटती। सुनिये कथा—जयपुर, उज्जैन, देहली और काशी में जयपुराधीश महाराज जयसिंह के बनवाये ज्योतिष् के यंत्र हैं, इन सब स्थानों में एक एक यंत्र ऐसा भी है कि जिससे ध्रुव का दर्शन होता है। इस यंत्र में दक्षिण की तरफ से यंत्र का आरंभ होकर यंत्र की दीवार ऊंची उठती हुई उत्तर को जाती है, उत्तर के आखिरी सिरे पर एक वृत्ताकार लोहे का कड़ा है उसका लम्बा भाग दीवार की ईंटों में चुन दिया गया है अतएव उत्तर के कोने पर केवल वृत्ताकार जिसका व्यास सवा इंच का है लगा हुआ है, एक ऐसा ही कड़ा दक्षिण की तरफ यंत्र के उस भाग में लगा है जहां से यंत्र का आरंभ होता है। जब मनुष्य खड़ा होकर नीचे के कड़े से दृष्टि की लाइन ऊपर के कड़े के बीचोंबीच लाता है उस सीध में ध्रुवतारा दीख पड़ता है।

एक दिन उजियाली रात में माननीय महामहोपाध्याय श्री १०८ पं० अयोध्यानाथ जी नई बस्तीवाले अमेरिकावाली दुर्बीन लेकर काशी के मानमन्दिर में पहुँचे। उन्होंने उस दुर्बीन से ध्रुव को देखकर एक भपंजर का नकशा बनाया, दश बजे रात के वे चलने लगे। उन दिनों हम काशी में पढ़ा करते थे और मानमंदिर में ही रहते थे एवं हम ज्योतिष् इन्हीं पूज्य महामहोपाध्याय जी से पढ़ते थे तो इनका हमारा गुरु-शिष्य सम्बन्ध था। मैंने कहा कि गुरु जी! दुर्बीन छोड़ते जाओ मैं तीन बजे लेता आऊँगा। पूज्य पंडित जी भजन पूजन से निवृत्त होकर तीन बजे रात से विद्या-

र्थियों का पाठ आरंभ कर देते थे और साढ़े छः बजे प्रातःकाल पढ़ाकर पढ़ाने की गद्दी छोड़ देते थे इस कारण मैंने कहा कि मैं तीन बजे दुर्बीन लेता आऊंगा। गुरु जी ने दुर्बीन मुझे दे दी। उस समय चन्द्रमा का प्रकाश था इस कारण बिना दुर्बीन के ध्रुव तारा स्पष्ट नहीं दीखता था। मैंने साढ़े दश बजे कुर्सी डाल और उस पर बैठ दुर्बीन लगाई, डेढ़ बजे रात के बन्द कर दी, साढ़े दश बजे से डेढ़ बजे तक ध्रुव तारा दुर्बीन से उन लोहे के वृत्तों में दीखा करा जहां साढ़े दश बजे था वहां ही डेढ़ बजे रहा, एक बाल कितना भी फर्क उसमें न पड़ा, बस हमको ज्ञान हो गया कि ध्रुव तारे को शास्त्रों ने स्थिर माना है और इधर पृथ्वी को अचला कहा है, वास्तव में ये दोनों ही नहीं चलते, यदि इन दोनों में से कोई एक चलता होता तो किसी न किसी समय इस लाइन से ध्रुव तारा पूर्व पश्चिम अवश्य हो जाता। क्या कोई आर्यसमाजी लल्ल और वराहमिहिर की युक्तियों को काट कर भूभ्रमण के सिद्ध करनेवाला उत्पन्न हो गया ?

इति अष्टम समुल्लासः

❀ अथ नवम समुल्लासः ❀

मुक्ति प्रकरण

स. प्र. पृ. २३६ पं. ६–(प्रश्न) बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है वा निमित्त से ? (उत्तर) निमित्त से, क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती।

वि०—हम माने लेते हैं कि बन्ध और मोक्ष निमित्त से होता है जैसे कि यह शरीर कर्मों से मिला है और इसी शरीर से जब हम ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कर लेंगे तब ब्रह्मज्ञान के निमित्त से हमारी मोक्ष हो जावेगी। यही बात मुण्डकोपनिषद् में लिखी है—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं
कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय
निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥

मुण्ड० तृतीय मुण्ड० खं० १ श्रु० ३

जिस समय द्रष्टा सुवर्ण वर्ण और ब्रह्मा के भी उत्पत्ति स्थान उस जगत्कर्ता ईश्वर पुरुष को देखता है उस समय वह विद्वान् पाप पुण्य दोनों को त्याग कर निर्मल हो अत्यन्त समता को प्राप्त हो जाता है।

मुण्डक ने जीव का यहां ब्रह्म बनना लिखा और यह भी लिखा कि जब जीव ब्रह्म बन जाता है तब पुण्य पाप नहीं रहते, जब पुण्य पाप नहीं रहते तब फिर किस निमित्त को लेकर मुक्तजीव संसार में आवेगा इसका जवाब देनेवाला कोई आर्य-समाजी नहीं मिला, फिर सत्यार्थप्रकाश की यह गप्प कि जीव मुक्ति से लौटता है इसको कौन मानेगा ?

आत्म प्रशंसा

स. प्र. पृ. २३६ पं. ११–(प्रश्न)–

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

गौड़पादीयकारिका प्र. २ कां० ३२

स. प्र. पृ. २३६ पं. १८–(उत्तर) यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता, पापरूप कर्मों के फल भोगरूप बन्धन में फंसता, उसके छुड़ाने का साधन करता, दुःख से छूटने की इच्छा करता और दुःखों से छूट कर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है।

वि०—इस कारिका का अर्थ भी सत्यार्थप्रकाश के लेखक की समझ में नहीं आया। अर्थ इसका यह है कि जब अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब निरोध उत्पति बन्ध साधक मुमुक्षु मुक्ति कुछ भी शेष नहीं रहता है केवल स्वयं प्रकाश लक्षित होने लगता है, परमार्थिक सत्ता में जीव अल्प नहीं है, जिस प्रकार एकदेशीय अग्नि सर्वव्यापक है उसी प्रकार जीव है, जन्म शरीर का होता है, जीव का नहीं, इसी लिये उपनिषदों ने जीव को अजन्मा लिखा है, जीव न कर्म करता है और न उनमें फंसता है वह तो साक्षी है। आप कहते हैं कि 'परमानन्द परमेश्वर की प्राप्ति होकर मुक्ति भी भोगता है' जब जीव मुक्ति में ईश्वर से भिन्न रहता है फिर ब्रह्मप्राप्ति कैसी? सत्यार्थप्रकाश के लेखक को दिमाग संभाल कर लेख लिखना चाहिये था, यह कौन मान लेगा कि जीव ईश्वर से पृथक् रहे और उसको ब्रह्म की प्राप्ति हो जावे। और मोक्ष के ये अर्थ नहीं हैं जो यहां सत्यार्थप्रकाश ने लिखे हैं, वेद कहता है कि—

अत्र पिताऽपिता भवति माताऽमाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदाः। अत्र स्तेनोऽस्तेनो भवति भ्रूणहाऽभ्रूणहा चाण्डालोऽचाण्डालः पौल्कसोऽपौल्कसः श्रमणोऽश्रमणस्तापसोऽतापसोऽनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाँल्लोकान्हृदयस्य भवति।

बृहदा० अ० ६ ब्रा० ३ श्रु० २२

जहां पिता अपिता और माता अमाता, लोका अलोका, देवा अदेवा, वेदा अवेदा होते हैं और जहां पर स्तेन अस्तेन, भ्रूणहा अभ्रूणहा, चाण्डाल अचाण्डाल पौल्कस अपौल्कस, श्रमण अश्रमण, तापस अतापस, अनन्वागत पाप तथा अनन्वागत पुण्य से पार होकर तब समस्त शोक हृदय से भिन्न नहीं रहते अर्थात् इन सब को

छोड़ कर जब एकला जीव अद्वितीय ब्रह्मरूप में आना है यही मोक्ष का स्वरूप है. फिर आप कारिका को कैसे मिथ्या बतलाते हैं। सत्यार्थप्रकाश के लेखक वैदिक लोगों के किसी भी प्रमाण का उत्तर नहीं दे सके इसके लिये सत्यार्थप्रकाश देख लिया जावे। जब उत्तर नहीं दे सकते तब लाचार होकर निन्दा के रूप में उनको नवीन वेदान्ती की उपाधि दे देते हैं। लेखक जानता है कि आर्यसमाजियों को तो मंत्रों के अर्थों का ज्ञान नहीं, हमारे कहने पर वैदिक लोगों को वे नवीन वेदान्ती मान लेंगे. यह भी अच्छा है, बृहदारण्यक आदि तो नवीन और सत्यार्थप्रकाश प्राचीन. क्या यह सुफेद झूठ नहीं है ?

मोक्ष में आर्यसमाजियों की घुड़दौड़

स. प्र. पृ. २४० पं. १–(प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है ? (उत्तर) विद्यमान रहता है। (प्रश्न) कहां रहता है ? (उत्तर) ब्रह्म में। (प्रश्न) ब्रह्मकहां है और वह मुक्तजीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है ? (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्तजीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतंत्र विचरता है। (प्रश्न) मुक्तजीव का स्थूल शरीर होता है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं रहता। (प्रश्न) फिर वह सुख और आनन्द भोग कैसे करता है ? (उत्तर) उसके सत्य संकल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं भौतिक संग नहीं रहता, जैसे–

शृण्वन्श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन्त्वग्भवति, पश्यन्चक्षुर्भवति,
रसयन्रसना भवति, जिघ्रन्घ्राणं भवति, मन्वानो मनो
भवति, बोधयन्बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तम्भवत्यह-
ङ्कुर्वाणोऽहङ्कारो भवति।

शतपथ कां० १४

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के संकल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये घ्राण, संकल्प विकल्प करने समय

मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त और अहंकार के अर्थ अहंकाररूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और संकल्पमात्र शरीर होता है जैसे शरीर के आधार रह कर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने अपने दिमाग से पहिले कुछ हिन्दी लिखी और इसके बाद "शृण्वन्श्रोत्रं भवति" यह श्रुति लिखी। [क] हिन्दी में लिखते हैं कि 'मुक्ति में जीव विद्यमान रहता है' जीव के विद्यमान रहने में कोई प्रमाण नहीं दिया। [ख] फिर बतलाते हैं कि यह जीव ब्रह्म में रहता है, क्या ब्रह्म से बाहर भी कुछ जीव रहते हैं? नहीं रहते, और सभी ब्रह्म में रहते हैं तो इसका ब्रह्म में रहना लिख देना व्यर्थ। [ग] मुक्तजीव अव्याहत गति से विचरता है इसमें कोई प्रमाण नहीं। [घ] मुक्तजीव में शुद्ध गुण रहते हैं इसमें भी कोई प्रमाण नहीं दिया, यह तो आर्यसमाजियों के लिये हिन्दी की लबड़धोंधों है। अब "शृण्वन्श्रोत्रं भवति" इस श्रुति की कथा सुनिये—

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि यह श्रुति शतपथ के चौदहवें कांड की है। चौदहवें कांड में यह श्रुति नहीं है। इक्कीस बाइस बार सत्यार्थप्रकाश छप चुके किन्तु इस श्रुति का अभी पता नहीं लगा। भास्करप्रकाश के कर्ता पं० तुलसीरामजी ने भी समस्त शतपथ छान मारा किन्तु यह श्रुति न मिली, अब जितने भी आर्यसमाजी हैं चाहे वे चार लाख हों या पांच लाख सब एक जगह इकट्ठे हों और फिर शतपथ का एक एक पन्ना टटोलें, इस खोज के बाद बतलावें कि यह श्रुति शतपथ में कहीं है या सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने खुद बना तैयार करके लिखी है तब इस श्रुति पर विचार होना चाहिये था किन्तु आर्यसमाजी तो संस्कृत का अक्षर भी नहीं जानते फिर श्रुति कौन टटोले? फिर यह श्रुति कहीं निकल भी आवे तब भी यह मोक्ष प्रकरण की नहीं। मोक्ष प्रकरण के विषय में वृहदारण्यकोपनिषद् लिखता है कि—

यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तन्न जिघ्रति न हि घ्रातुर्घ्रातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यज्जिघ्रेत् ॥ २४ ॥ यद्वै तन्न रसयते रसयन्वै तन्न रसयते न हि रसयितू रसयते विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशि-

त्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्रसयेत् ॥ २५ ॥ यद्वै तन्न वदति वदन्वै तन्न वदति न हि वक्तुर्वक्तेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यद्वदेत् ॥ २६ ॥ यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यच्छृणुयात् ॥ २७ ॥ यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यन्मन्वीत ॥ २८ ॥ यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति न हि स्प्रष्टुः स्पृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्स्पृशेत् ॥ २९ ॥ यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विजानीयात् ॥ ३० ॥

बृहदार० अ० ६ ब्रा० ३

मुक्तजीव कुछ भी नहीं सूंघता, हम यह भी कह सकते हैं कि सूंघने की शक्ति रहने पर भी नहीं सूंघता. सूंघनेवाले को सूंघने की चीज से भिन्नता नहीं है, वहां पर एक अविनाशी ही रहता है द्वितीय पदार्थ का अभाव हो जाता है फिर क्या सूंघेगा ।२४। इसी प्रकार वह जीव रसन नहीं करता, रसनशक्ति रहने पर भी रसन का अभाव हो जाता है, रसन और रसन करनेवाले का वहां भेद ही नहीं रहता क्योंकि वह अकेला अविनाशी ही शेष रहता है, कोई दूसरी चीज हो तब तो रसन हो ।२५। मुक्तजीव नहीं बोलता, वदनशक्ति रहने पर भी कुछ नहीं कहता क्योंकि यहां पर कथन और कथन करनेवाले का अभेद हो जाता है, एकला अविनाशी ही शेष रहता है फिर दूसरा पदार्थ ही ऐसा नहीं जो वह कहे । २६। मुक्तजीव नहीं सुनता, सुनने की शक्ति होने पर भी वह नहीं सुनता क्योंकि श्रोता और सुनने के पदार्थ में भेद नहीं रहता, एकला अविनाशी ही रहता है दूसरा कुछ नहीं रहता जो सुनना और

श्रोता दो हों तभी तो सुनेगा।२७। मुक्तजीव नहीं मनन करता, मननशक्ति रहने पर भी वह मनन नहीं करता क्योंकि मनन योग्य पदार्थ और मनन करनेवाले का वहां अभेद हो जाता है, जब वह एकला अविनाशी ही रहता है और अन्य कोई पदार्थ नहीं रहता फिर मनन किसका होगा, दूसरी चीज हो तो मनन हो।२८। इसी प्रकार "यद्वै तन्न स्पृशति" और "यद्वैतन्न विजानाति" के भी अर्थ समझो।

जब बृहदारण्यक मुक्तजीव के सूंघने, खाने, बोलने, सुनने, मनन करने, छूने और जानने को छोड़ कर ब्रह्म में लय होना मानता है तब उसके विरुद्ध मुक्तजीव का सूंघना आदि दूसरी वेद की श्रुति कैसे कहेगी, क्या वेद पागलों की किताब है जो कहीं पर कुछ और कहीं पर कुछ लिख देगा।

मुक्तजीव की शक्ति

स. प्र. पृ. २४० पं. २०–(प्रश्न) उसकी शक्ति कै प्रकार की और कितनी है? (उत्तर) मुख्य एक प्रकार की शक्ति है परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन स्वादन और गंध ग्रहण तथा ज्ञान इन चौबीस प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव है इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है।

वि०—जीव की शक्ति एक प्रकार की और चौबीस प्रकार की अपने मन से ही लिख दी, वेदशास्त्र का इसमें कोई प्रमाण नहीं दिया, क्या स्थान स्थान पर गल्तियां खानेवाले और अपना लिखा अपने आप भूल कर कहीं कुछ एवं कहीं कुछ० लिखनेवाले सत्यार्थप्रकाश के लेखक का लेख ही वेद कहलावेगा? बिना लिखे पढ़े आर्यसमाजी सत्यार्थप्रकाश के लेख को वेद भले ही मान लें किन्तु विचारशील मनुष्य बिना प्रमाण के लेख को दूर फेंक दिया करते हैं।

जीव को सुख

स. प्र. पृ. २४० पं. २४–जो मुक्ति में जीव का लय होता तो मुक्ति का सुख कौन भोगता? और जो जीव के नाश ही को मुक्ति समझते हैं वे महामूढ़ हैं क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूट कर आनन्द स्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना।

वि०—यहां पर जीव का मुक्ति में सुख भोगना लिखा, मगर प्रमाण शास्त्र का एक भी न दिया, यह अच्छी रही। जीव को क्या सुख है जरा इसी को कोई बतला दे? देखिये, एक मनुष्य ने बारह बजे दिन के छत्तीस प्रकार के भोजन खाये, तबियत खूब भर गई, अब वह भोजन हजम होने लगा, छः बजे शाम के जितना भोजन हजम हुआ उतनी भूक लग आई, दिन निकले और भी अधिक क्षुधा सताने लगी, धीरे धीरे फिर दिन के बारह बजने को आये, क्षुधा का वेग भयंकर रूप से बढ़ गया और अब वह दुःख देने लगा, अब वह मनुष्य चाहता है कि जल्दी भोजन मिले तथा क्षुधा की पीड़ा निवृत्त हो। यहां पर जीव को कौन सुख है, केवल क्षुधारूपी पीड़ा की निवृत्ति है। इसी प्रकार समस्त विषयों को समझो। फिर जीव को दुःखनिवृत्ति के सिवाय सुख क्या है यह तो कोई बतलावे? एवं मोक्ष में किस सुख का भोग होगा, आर्यसमाजियों को वेदादि सच्छास्त्र से यह बतला देना होगा। फिर यह लिखा कि "जो जीव के नाश को मुक्ति समझते हैं वे महामूढ़ हैं" इसमें भी कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं दिया, ऐसी शास्त्रशून्य व्यवस्थाओं को आर्यसमाजी ही मानते रहें तो अच्छा है और उन्हीं के लिये ये मनमाने लेख लिखे गये हैं।

भयंकर छल

स. प्र. पृ. २४१ पं. १—

अभावं बादरिराह ह्येवम्। वेदान्त द० ४। ४। १०

जो बादरि व्यास जी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और उसके साथ मन का भाव मानता है अर्थात् जीव और मन का लय पराशर जी नहीं मानते। वैसे ही

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्। वेदान्त द० ४। ४। ११

और जैमिनि आचार्य मुक्तपुरुष का मन के समान सूक्ष्मशरीर, इंद्रियों और प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः वेदान्त द० ४। ४। १२

व्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव इन दोनों को मानते हैं अर्थात् शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है। अपवित्रता, पापाचरण, दुःख अज्ञानादि का अभाव मानते हैं।

वि०—सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखा है कि (प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है ? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है। तृतीय समुल्लास में तो आर्यसमाज का मत वेद है किन्तु नवम समुल्लास में उस वेद को तो दूर फेंक दिया, अब वह वेद आर्यसमाज का धार्मिक ग्रन्थ न रहा। यहां पर तो वेदान्त दर्शन ही आर्यसमाज का स्वतः प्रमाण ग्रन्थ हो गया, ऐसा क्यों हुआ ? वेद मोक्ष में जीव का ब्रह्म होना मानता है उसके अर्थ के बदलने में बहुत परिश्रम किया किन्तु अर्थ न बदल सके अतएव सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने यहां वेद को तिलांजलि दे दी। आर्यसमाजी पढ़े नहीं, उनको अर्थ का ज्ञान नहीं इसलिये वेदान्तदर्शन के तीन सूत्र लिखकर और उनके अंडबंड अर्थ करके मोक्ष में जीव के ब्रह्म से भिन्न रहने को सिद्ध कर चले। इन सूत्रों का अर्थ करने से पहिले मुक्ति पर एक दृष्टि डालना आवश्यकीय है। मुक्ति तीन प्रकार की मानी गई है (१) ब्रह्मलोक प्राप्ति (२) ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा क्रम मुक्ति (३) कैवल्य। ब्रह्मलोक प्राप्ति और ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा क्रममुक्ति ये दो मुक्तियां गौण मुक्तियां है इनमें जीव शुभाशुभ कर्मों से तो छूट जाता है किन्तु ब्रह्म में लय नहीं होता, कालान्तर में यह जीव ब्रह्म में लय होगा इसलिये इसको गौण मुक्ति में लिया गया है और अभी इन दोनों दशाओं में जीव मुक्त हुआ नहीं इसलिये मुक्ति से भिन्न ब्रह्मलोक प्राप्ति एवं ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा क्रममुक्ति नाम रक्खे गये हैं, भाव यह है कि ब्रह्मलोक प्राप्ति तथा ब्रह्मलोक प्राप्ति द्वारा क्रममुक्ति में जो जीव है वह मुक्त होगा।

ब्रह्मलोक प्राप्ति का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् के चतुर्थ प्रपाठक के पन्द्रहवें खंड में है। इसी बात को भगवान् कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है कि—

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥

भगवद्गीता अ० ८ श्लो० २४

सगुण ब्रह्म के या हिरण्यगर्भ के उपासक सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं, जब वे यहां से चलते हैं तब अग्नि अभिमानी देवता, फिर ज्योति अभिमानी, बाद में दिन अभिमानी, पश्चात् शुक्लपक्षाभिमानी, इसके अनन्तर उत्तरायणाभिमानी देवता इस उपासक को ले जाता है। छान्दोग्योपनिषद् कहता है कि इसके पश्चात् ब्रह्मा का मानस पुत्र आकर उसको ब्रह्मा के पास पहुंचा देता है यह ब्रह्मप्राप्ति है।

"अभावं वादरिराह ह्येवम्" इस सूत्र में ब्रह्मलोकप्राप्त जीव का वर्णन है, सत्यार्थप्रकाश का लेखक इसको नहीं जानता, फिर सूत्र का अर्थ भी अशुद्ध करना है, अर्थ में सूत्र के समस्त पद भी नहीं आये, जो अन्वय भी करना नहीं जानता वह वेदान्त दर्शन में बुद्धि दौड़ावे यह गदर है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने अर्थ किया है कि "जो वादरि व्यास जी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और उसके साथ मन का भाव मानता है अर्थात् जीव और मन का लय पराशरजी नहीं मानते"। धन्य है इस अर्थ को और हजार बार धन्य है उनको जो इस अर्थ को मानते हैं। अर्थ यह है कि "वादरिः अभावं-मन्यते-हि-एवं-आह अत्र मन्यते क्रियाया अध्याहारः" वादरि आचार्य अभाव मानते हैं (हि) जिस कारण से (एवं) ऐसे (आह) इस सूत्र विषयक श्रुति कहती है और वह यह है—

मनसैतान्कामान्पश्यन्मते रयते ब्रह्मलोके।

छान्दोग्य० प्र० ८ खं० १२

ब्रह्मलोक में शरीरेन्द्रिय से विना केवल मन से ही भोग साधन है। अब पाठक बतलावें कि "अभावं वादरिः" यह सूत्र ब्रह्मलोकप्राप्त जीव की अवस्था का वर्णन करता है या मुक्तजीव को ? यही पूरी श्रुति सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इसी प्रकरण में लिखी है किन्तु "ब्रह्मलोके" जिसका अर्थ होता है "ब्रह्मलोक में" इसको उड़ाकर "जो ये ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होके" ब्रह्मलोक का यहां पर परमात्मा अर्थ किया यह मनमाना अर्थ है जैसे कि बांस का अर्थ बैंगन और छंछूदर का अर्थ आर्यसमाज। जब छान्दोग्योपनिषद् का ब्रह्मलोक वर्णन समाजियों के आगे रक्खा जावेगा तब यह सत्यार्थप्रकाश की मिथ्या कल्पना ऐसे उड़ेगी जैसे कि गधे के शिर से सींग उड़े। फिर परमात्मा कैसा ? दर्शनीय। सत्यार्थप्रकाश में तो परमात्मा सब जगह निराकार किन्तु यहां पर वह दर्शनीय है, देखने के लायक है, चाहे उसको कोई भी देखले, इन अनर्गल लेखों से ही इस ग्रन्थ का नाम सत्यार्थप्रकाश रक्खा गया।

अब "भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्' के अर्थ का तमाशा देख लें। इसके भाषा में लिखा है कि "और जैमिनि आचार्य मुक्तपुरुष का मन के समान सूक्ष्मशरीर, इन्द्रियों और प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं"। यह भी अर्थ सोलह आने गलत। क्योंकि इसमें सूक्ष्मशरीर, इन्द्रिय, प्राण आदि का सद्भाव माना, जब सूक्ष्मशरीर मान लिया था तब इन्द्रिय और प्राण पृथक् क्यों माने, क्योंकि पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेंद्रिय एवं पंचप्राण तथा मन बुद्धि इन सत्रह के समूह को सूक्ष्मशरीर कहते हैं, क्या

आर्यसमाजियों के मत में सूक्ष्मशरीर में इन्द्रियां नहीं आतीं ? इससे भिन्न एक दोष यह आया कि जैमिनि के मत में मुक्तजीव के सूक्ष्मशरीर रहता है और बादरि के मत में मन है, मन भी सूक्ष्मशरीर के बिना नहीं रह सकता फिर बादरि के मत में तथा जैमिनि के मत में भेद क्या रहा ? जब कोई भेद नहीं तब तो अलाहिदा अलाहिदा ऋषियों के नाम नहीं चाहिये क्योंकि दोनों का एक सिद्धान्त है, इसको लिखे पढ़े ही समझेंगे, आर्यसमाजी नहीं समझ सकते। ताज्जुब तो यह है कि जो सूक्ष्मशरीर को नहीं जानता वह वेदान्तदर्शन के अर्थ करने को दौड़ पड़ा, यह आर्यसमाजी अन्धेर कब तक चलेगा। "विकल्पाममनात्" का कोई अर्थ ही न लिखा, अर्थ इस सूत्र का यह है कि "जैमिनि आचार्य ब्रह्मलोकप्राप्त जीव को मनसहित इन्द्रियोंवाले शरीर का सद्भाव मानते हैं 'विकल्पाममनात्' नानात्व भाव का अभ्यास श्रुति में देखा जाता है, यथाहि—

स एकधा भवति त्रिधा भवति पंचधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशस्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः ॥

छान्दोग्य० ७ खं० २६

वह मुक्तपुरुष एक प्रकार का, तीन प्रकार का, पांच सात नव पुनः ग्यारह सौ दश फिर एक फिर सहस्र बीस इत्यादि प्रकार के भाव को प्राप्त होता है। इस श्रुति प्रमाण से मोक्ष में सहित इन्द्रिय शरीर का होना जैमिनि मानते हैं।

सत्यार्थप्रकाश में तीसरा सूत्र लिखा है कि "द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः" इस सूत्र का भी अर्थ सोलह आने चौसठ पैसे गलत लिखा है "द्वादशाहवत् उभयविधंबादरायणः अतः" इतने पद इस सूत्र में हैं, स्वामी जी ने इसमें आदि अन्त के पद छोड़ के "उभयविधं" का अर्थ किया है कि "शुद्धसामर्थ्ययुक्त हो पापाचरणादि विशिष्ट न होना" यह कथन भी पूर्व दो मतों का साधक नहीं क्योंकि पूर्व मतों में भी पापाचरणादि नहीं माने, जब पूर्व मतों में भी यही अर्थ है तब तीन मत कैसे हो जायंगे ? और सत्यार्थप्रकाश के लेखक तो प्रेम, द्वेष, इच्छादि खुद मानते हैं तब पवित्रता कहां ? अपने लिखे को अपनेआप गलत कर देना यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक का स्थान स्थान में चमत्कार पाया जाता है। अब "द्वादशाहवत्" सूत्र का अर्थ देखिये "व्यास जी कहते हैं कि ब्रह्मलोकप्राप्त जीव जब शरीर कल्पना करता है तब शरीर सहित और जब अशरीर कल्पना करता है तब अशरीरी होता है, ये दोनों भाव होते हैं. क्योंकि ब्रह्मलोकप्राप्त विद्वान् सत्यसंकल्प है इससे संकल्प की

विचित्रता से उभयविध भाव हो सकता है 'द्वादशाहवत्' जैसे दो प्रकार की श्रुति से पूर्व मीमांसा में द्वादशाहयाग को सत्रत्व तथा अहीनत्व यह दोनों प्रकार मानते हैं तैसे ही ब्रह्मलोकगत पुरुष को सशरीरत्व तथा अशरीरत्व दो प्रकार का मानते हैं।

यह ब्रह्मलोकगत पुरुष अनेक दिव्य वर्षों तक ब्रह्मलोक में निवास करता हुआ जब तक ब्रह्मा रहते हैं तब तक रहता है इसका नाम क्रममुक्ति है। ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर जब ब्रह्मा का ब्रह्म में लय होता है तब ब्रह्मा के साथ ही इसका भी ब्रह्म में लय हो जाता है यह मुक्ति है. मुक्ति के अनेक मार्गों में से ब्रह्मलोक द्वारा मुक्त होना यह भी एक मार्ग है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने ब्रह्मलोकगत जीव की दशाओं को मुक्तजीव की दशाओं में जो लगाया यह उसकी शास्त्रानभिज्ञता है या जान बूझकर संसार के साथ छल किया है, मुक्तजीव तो ब्रह्म हो जाता है जैसे एक लोटा पानी कुये का तुमने नदी में डाल दिया, गिरते ही कुंये के पानी का भेद मिट कर वह नदी बन गया या जैसे गंगा समुद्र में गिरते समय अपने नाम रूप का खोकर समुद्र बन जाती है उसी प्रकार यह जीव अपनी सब उपाधियों को छोड़ कर ब्रह्म बनता है। इस विषय में वेद इस प्रकार लिखता है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

ईशावास्य० श्रु० ६

जो परिव्राट् मुमुक्षु अव्यक्त से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में ही देखता है, अर्थात् उन्हें आत्मा से पृथक् नहीं देखता तथा उन सम्पूर्ण भूतों में भी आत्मा को देखता है अर्थात् उन भूतों के आत्मा को भी अपना ही आत्मा जानता है यानी यह समझता है कि जिस प्रकार मैं इस देह के कार्य (भूत) और करण (इन्द्रिय) संघात का आत्मा और इसकी समस्त प्रतीतियों का साक्षी, चेतयिता केवल और निर्गुण हूँ उसी प्रकार अपने इसी रूप से अव्यक्त से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों का आत्मा भी मैं ही हूँ, इस प्रकार जो सब भूतों में अपने निर्विशेष आत्म स्वरूप को ही देखता है वह उस आत्मदर्शन के कारण ही किसी से जुगुप्सा अर्थात् घृणा नहीं करता, यह प्राप्त वस्तु का ही अनुवाद है, सभी प्रकार की घृणा अपने से भिन्न किसी दूषित पदार्थ को देखनेवाले पुरुष को ही होती है, जो निरन्तर अपने अत्यन्त विशुद्ध आत्मस्वरूप को ही देखनेवाला है उसकी दृष्टि में घृणा का निमित्त भूत कोई अन्य पदार्थ है ही नहीं यह बात स्वतः प्राप्त हो जाती है, इसीलिये वह किसी से घृणा नहीं करता।

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥

ईशावास्य० श्रु० ७

जिस समय अथवा जिस पूर्वोक्त आत्मस्वरूप में परमार्थ तत्व को जाननेवाले पुरुष की दृष्टि में वे ही सब भूत परमार्थ आत्मस्वरूप के दर्शन से आत्मा ही हो गये अर्थात् आत्मभाव को ही प्राप्त हो गये उस समय अथवा उस आत्मा में क्या मोह और क्या शोक रह सकता है ? शोक और मोह तो कामना और कर्म के बीज को न जाननेवाले को ही हुआ करते हैं, जो आकाश के समान आत्मा का विशुद्ध एकत्व देखनेवाला है उसको नहीं होते, 'क्या मोह और क्या शोक' इस प्रकार अविद्या के कार्यस्वरूप शोक और मोह की आक्षेप रूप से असंभवता दिखला कर कारण सहित संसार का अत्यन्त ही उच्छेद प्रदर्शित किया गया है ।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छा-
श्वतीभ्यः समाभ्यः ।

ईशावास्य० श्रु० ८ ।

ऊपर लिखे दो मंत्रों का देवता 'मुमुक्षु' है और 'सपर्यगात्' इस तीसरे मंत्र का देवता भी मुमुक्षु ही है इसलिये इसमें मुमुक्षु का वर्णन है । वह मुमुक्षु 'पर्यगात्' सर्वव्यापी, पराक्रमयुक्त और 'अकाय' सुख दुःखात्मक शरीररहित स्वेच्छातनु लिंगशरीररहित, फोड़ा फुंसीरहित, नश नांड़ी के बन्धन से शून्य, शुद्ध, पापशून्य कवि, मनीषी, चारो तरफ से प्रकट होनेवाला, अपनेआप शरीर धारण करनेवाला वह बहुत काल पर्यन्त हमारे मनोरथों को पूरा करे । इस मंत्र में मुमुक्षु जीव का ईश्वर बनना सिद्ध है फिर वेदविरुद्ध कोई कैसे कहेगा कि मोक्ष में जीव ब्रह्म न बन कर जीव ही बना रहता है ।

वेद दर्शन पर कुठाराघात

स. प्र. पृ. २४२ पं. २२–(प्रश्न) जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म मरण रूप दुःख में कभी आते हैं वा नहीं ? क्योंकि

न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते इति उपनिषद्वचनम् छां. प्र. ८ खं. १५

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् । शारीरिक सूत्र ४ । ४ । २२

यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम । भगवद्गीता ।

इत्यादि वचनों से विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्त होकर पुनः संसार में कभी नहीं आता (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है ।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहेचारु देवस्य नाम ।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयँ मातरं च ॥ २
ऋ. मं. १ सू. २४ मं. १ । २

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः । ३ । सांख्य सूत्र १ । १५६

(प्रश्न) हम लोग किसका नाम पवित्र जानें ? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है हमको मुक्त का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है । (उत्तर) हम इस स्वप्रकाशस्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है । वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सबका स्वामी है । २ । जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यंत विच्छेद बंध मुक्ति का कभी नहीं होता किंतु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती ।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक का यदि कोई आधार है तो वह जिद्द है। यहां पर आप लिखते हैं कि 'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते' और 'अनावृत्तिः शाब्दादनावृत्तिः शब्दात्' इन प्रमाणों में जो जीव के मोक्ष से लौटने का निषेध है वह ठीक नहीं, लेखक की दृष्टि में ये दोनों ही प्रमाण झूठे हैं। जिस छान्दोग्य की छै श्रुतियों को लेकर सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य का महत्व दिखलाया वह छान्दोग्योपनिषद् यहां पर झूठा और न मानने के लायक हो गया और इस लेख से पूर्व सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने वेद को तिलाञ्जलि दे वेदान्त दर्शन को स्वतःप्रमाण मान 'अभावं बादरिराह ह्येवम्' इत्यादि तीन सूत्रों में मुक्तजीव का आनन्द भोगना लिखा था उसी वेदान्त दर्शन को यहां झूठा लिखना यह जिद्द नहीं तो और क्या है ?

यहां पर छान्दोग्योपनिषद् और वेदान्तदर्शन के झूठा बनाने का मतलब सत्यार्थप्रकाश के लेखक का यह है कि मन्त्रभाग और उपनिषद्भाग, वेद और दर्शन तथा पुराण, इतिहास, समस्त वैदिक साहित्य झूठा है इसको आर्यसमाजी न मानें। यद्यपि वेद, दर्शन, पुराण, इतिहास में सहस्रों प्रमाण ऐसे हैं जो मुक्तजीव का मोक्ष से लौटना नहीं मानते उन सब प्रमाणों को हम यहां उद्धृत करें तो ग्रन्थ बढ़कर बहुत बड़ा हो जावेगा तो भी पाठकों के देखने के लिये कुछ प्रमाण नीचे लिखते हैं—

(१) एतस्मान्न पुनरावर्तन्ते ।१

प्रश्नोपनिषद् प्रश्न १ श्रुति १०

इस मोक्ष दशा को प्राप्त होकर फिर वहां से वापिस नहीं आते । १ ।

(२) ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते।२

छान्दोग्य प्र० ८ खंड १५ श्रु० १

जो पुरुष ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और ब्रह्मलोक से क्रममुक्ति द्वारा जो मोक्ष को जाता है वह फिर वहां से लौटकर नहीं आता, नहीं आता । २ ।

(३) तेषु ब्रह्मलोकेषु पराः परावतो वसंति तेषां न पुनरावृत्तिः

मुक्त को फिर बंध का योग नहीं अनावृत्ति अर्थात् नहीं लौटना यह श्रुति होने से । ३ ।

(४) वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।

यजु० अ० ३१ मं० १८

मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहता है कि इस महान् सर्वोत्तम सूर्य के समान तम से परे जो पुरुष है उसको मैं जानता हूँ । उसको जानकर मनुष्य मृत्यु को पार कर जाता है अन्य कोई रास्ता मोक्ष का नहीं है ।

(५) यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदिश्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्मसमश्नुते ॥

बृहदा०

इस मनुष्य के हृदय में जो कामनायें हैं उनके छूटने पर यह मनुष्य मर्त्य से मृत्युरहित होकर ब्रह्मसुख को भोगता है ।

(६) धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।

तलवकार० खं० १ श्रु० २

धीर मनुष्य इस लोक में शरीर त्याग करके मृत्युरहित हो जाते हैं फिर जन्म मरण के बन्धन में नहीं आते ।

(७) यज्ज्ञात्वा मुच्यते जंतुरमृतत्वं च गच्छति ।

कठ० अ० २ वल्ली ६ । श्रु० ८

जिस ब्रह्म को जान कर यह प्राणी संसार से छूटता है और अमृतत्व जन्म-मरणशून्य पद को प्राप्त होता है ।

(८) यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथमर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥

कठ० व० ६ श्रु० १५

इस मनुष्य के हृदय में जितनी कामनायें हैं वे सब जब छूट जाती हैं तब यह अमृत मृत्युरहित होता है यह वेद का अनुशासन है ।

(९) तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ।

मुण्डक० ३ खं० २ श्रु० ९

शोक और पाप को पार होकर तब गुहा ग्रन्थि कर्मबन्धन की गांठों को तोड़ यह प्राणी अमृत होता है ।

(१०) अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।

शा० अ० ४ पा० ४ सू० २२

मुक्त का फिर जन्म नहीं होता यह वेद का सिद्धांत है ।

(११) न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः ।

सांख्य० अ० ६ सू० १७

मुक्त को फिर बन्ध का योग नहीं अनावृत्ति अर्थात् नहीं लौटना यह श्रुति होने से ।

(१२) तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः ।

न्याय० अ० १ आह्नि० १ सू० २२

दुःखजन्मप्रभृति दोष मिथ्या ज्ञान की अत्यन्त जो निवृत्ति उसको मोक्ष कहते हैं ।

मोक्ष से लौटने का निषेध करनेवाले छान्दोग्य और शारीरिक सूत्र के प्रमाण झूठे हैं तो इत्यादि शास्त्र के हजारों प्रमाण सत्यार्थप्रकाश के लेखक की दृष्टि में भी झूठे ही हैं। आप लिखते हैं कि 'मुक्ति से न लौटना यह ठीक नहीं क्योंकि वेद में इसका निषेध किया है। प्रथम तो पतञ्जलि आदि जितने भी महर्षि हुये हैं सभी ने उपनिषदों को वेद माना है फिर ये वेद क्यों नहीं ? यदि सत्यार्थप्रकाश का लेखक अपनी जिद्द पर डट जावे कि हम तो मन्त्रभाग की चार ही शाखाओं को वेद मानते हैं तो भी यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा का 'वेदाहमेतं' यह मन्त्र मोक्ष से लौटने का निषेध करता है। इस निषेध करनेवाले मन्त्र को सत्यार्थप्रकाश के लेखक यहां लबेद क्यों मानते हैं।

आपने मुक्तजीव के वापस आने में 'कस्यनूनं' और 'अग्नेर्वयं' दो मंत्र दिये और दोनों के झूठे और असम्भव अर्थ लिख संसार को धोका दिया, प्रमाण सहित अर्थ देखिये। इसके ऊपर ऐतरेय ब्राह्मण लिखता है कि—

सोऽसिंनिःशानरायायाथहशुनः शेप ईक्षां चक्रेऽमानुष-मिव वै माविशसिष्यन्ति हंताहं देवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार कस्य नूनं कतम-स्यामृतानामित्येतयर्चातं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोग्निमुपससार अग्नेर्वयं प्रथम-स्यामृतानामित्येतयर्चातमग्निरुवाचेत्यादि ।

ऐतरेय ब्रा० सप्तम पंचिका खं० १६

अजीगर्त राजर्षि शुनःशेप के बध के लिये तलवार को तेज धार बना कर जब शुनःशेप के समीप आया तब शुनःशेप ने विचार किया कि अब यह पशु की भांति मेरा बध करेगा मुझे इस समय देवाराधन करना चाहिये इसको चित्त में रख सब से प्रथम प्रजापति की शरण में गया और 'कस्य नूनं' इस मंत्र का उच्चारण किया तब प्रजापति शुनःशेप से बोला कि अग्नि सब देवताओं में समीप है इसलिये तुम अग्नि की आराधना करो तब उस शुनःशेप ने 'अग्नेर्वयं' इस मंत्र से अग्नि की प्रार्थना की। अग्नि ने कहा कि तुम सविता देव की उपासना करो। यह राजसूय यज्ञ विषयक ऐतरेय ब्राह्मण ने कहा है।

(१) 'कस्यनूनं' इस मंत्र का देवता प्रजापति और 'अग्नेर्वयं' इस मंत्र का देवता अग्नि है निरुक्तकार ने स्पष्ट लिख दिया कि 'यातेनोच्यते सा देवता' मंत्र में

जिस विषय का वर्णन होता है वही विषय मन्त्र का देवता होता है। 'कस्य नूनं' इस मंत्र का देवता प्रजापति और 'अग्नेर्वयं' इस मंत्र का देवता अग्नि होने से इन मंत्रों में क्रम से प्रजापति और अग्नि का वर्णन रहेगा। देवता और निरुक्त के विरुद्ध मोक्ष जीवों की चिल्लाहट मर्त्यलोक में भेजने की इन मंत्रों में से कैसे टपक पड़ेगी। (२) इसी अर्थ में ऐतरेयब्राह्मण ने इन मंत्रों को लगाया है, ब्राह्मण के विरुद्ध मुक्तजीवों की पुकार का अर्थ इन मंत्रों में वही मानेगा जिसकी सात पीढ़ी ने भी कभी मंत्र न देखे हों। (३) 'सपर्यगात् यजुर्वेद' और 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति उपनिषद्' तथा 'सो जानहि जेहि देहु जनाई, जानत तुमहिं तुमहिं ह्वै जाई रामायण' आदि प्रमाण जीव का मोक्ष में ब्रह्म होना मानते हैं तो मर्त्यलोक में आने की पुकार कौन करेगा? 'कस्य नूनं' इस मंत्र का अर्थ यह है कि—

(अमृतानाम्) देवताओं के मध्य में (नूनं) निश्चय कर (कस्य) किस (कतमस्यदेवस्य) कौन देवता के (चारुनाम) उत्तम नाम को (मनामहे) अभ्यास करें (अदितये मह्यै) भूमिरूप माता के निमित्त (नः) हमको (कः) कौन प्रजापति (पुनः) फिर (दात्) दे जहां (पितरञ्च) पिता को भी (च) और (मातरम्) माता को (दृशेयम्) देखें।

यहां पर शुनःशेप किसी ऐसे देवता को टटोलता है कि जिस देवता के नाम के अभ्यास से शुनःशेप मुक्तबन्धन होकर माता और पिता के दर्शन करे।

दूसरा मन्त्र 'अग्नेर्वयं' है इसका अर्थ यह है कि—

(अमृतानाम्) देवताओं के मध्य में (प्रथमस्य) पहिले (अग्नेर्देवस्य) अग्नि देवता के (चारुनाम) उत्तम नाम का (वयम्) हम (मनामहे) स्मरण करते हैं (सः) वह प्रजापति अग्नि (नः) हमको (मह्यै अदितये) भूमि रूप माता को (पुनः) फिर (दात्) देगा (च) और (पितरम्) पिता (च) और (मातरम्) माता को (दृशेयम्) देखेंगे।

इसी प्रकार देवताओं के नाम का स्मरण करते करते वरुण की स्तुति करके शुनःशेप मुक्तबन्धन हो गया, बलि में जाने से वह छूट अपने घर आ गया। कौन कहता है कि मोक्ष से जीव के लौटने का इन मन्त्रों में वर्णन है।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जो 'इदानीमिव-सांख्यसूत्र' मुक्तजीवों के लौटने में प्रमाण दिया है यह गलत है, यह सूत्र मोक्ष विषय का नहीं है, यह तो तत्व के निर्णय में है इसका अर्थ यह है कि यदि वर्तमानकाल की भाँति सर्वकाल में बन्ध का नाश

नहीं होता तो वेदादि सच्छास्त्र व्यर्थ हो जावेंगे। मुक्ति के विषय में सांख्य लिखता है कि —

नमुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोप्यनावृत्तिश्रुतेः ।

सां० अ० ६ सू० १७

मुक्त को फिर बन्ध का योग नहीं है (अनावृत्ति) नहीं लौटना यह श्रुति होने से। जिस सत्यार्थप्रकाश में आरम्भ से अन्त तक एक भी लेख सत्य न हो वह सत्यार्थ-प्रकाश आर्यसमाज का धर्मपुस्तक !

जीवों को जो शरीर मिलते हैं ये शुभाशुभ कर्मों के योग से मिलते हैं इस विषय में वेदादि सच्छास्त्रों के सहस्रों प्रमाण भुजा उठाकर कहते हैं, उन प्रमाणों में से हम एक प्रमाण नीचे लिखते हैं, और वह यह है कि—

यथाहि रमणीयाचरणा अभ्याशोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्य-योनिं वाथ य इह कपूयाचरणा अभ्याशोह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥

छा० ब्रा० उप० प्र० ५ खं० १०

जो शुभ कर्मों को करता है वह शुभ शरीर पाता है—ब्राह्मण बनता है, क्षत्रिय बनता है, वैश्य बनता है और जो पाप कर्म करता है वह पापयोनि को धारण करता है-कुत्ता बनता है, सूकर बनता है, चाण्डाल बनता है।

यह जीव मोक्ष को जाने लगता है मोक्ष जाने से पहिले ही इसके शुभाशुभ कर्म का क्षय हो जाता है, जब कर्म नहीं रहते तो मुक्तजीव बिना कर्म के कैसे शरीर धारण करेगा। इस विषय में अनेक प्रमाण होने पर भी हम एक ही प्रमाण पाठकों के आगे रखते हैं—

ज्ञात्वादेवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।

श्वेताश्वतर अ० १ श्रु० ११

ब्रह्म को जानकर समस्त पाश कर्मबन्धनों का क्षय हो जाता है। जब क्लेश, कर्म क्षय हो जाते हैं तब फिर न जन्म होता है न मृत्यु होता है। वेदादि सच्छास्त्रों में

कर्मों के विना शरीर मिलते नहीं और कर्म मोक्ष जाने से पहिले ही छूट जाते हैं। संभव है कि मोक्ष में गये हुये आर्यसमाजी सत्यार्थप्रकाश के लेखक के कर्मों से शरीर धारण कर संसार में आ जाते हों।

सत्यार्थप्रकाश के पंचम समुल्लास पृ० १३० पं० २३ में लिखा है कि संन्यासी मरण पाके निरन्तर सुख को प्राप्त होता है। पुनः उसी पंचम समुल्लास पृ० १३२ पं० १ में लिखा है कि शरीर छोडे पश्चात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्द का देनेवाला संन्यास धर्म है। पचम समुल्लास में तो जीव मोक्ष का अक्षय सदा सुख भोगता है और इस नवम समुल्लास में मोक्ष से लौट आता है। इन दो लेखों में कौन सत्य?

आर्यसमाज के जन्मदाता स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि—

'उसके नाश होने से (जन्म) अर्थात फिर जन्म नहीं होता उसके न होने से सब दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाता है। दुःखों के अभाव से पूर्वोक्त परमानन्द मोक्ष में अर्थात् सब दिन के लिये परमात्मा के साथ आनन्द ही आनन्द भोगने को बाकी रह जाता है इसी का नाम मोक्ष है। (वाधना०) सब प्रकार की वाधा अर्थात् इच्छाविघात और परतन्त्रता का नाम दुःख है। (तदत्यन्त०) फिर उस दुःख के अत्यन्त अभाव और परमात्मा के नित्य योग करने से जो सब दिन के लिये परमानन्द प्राप्त होता है उसी सुख का नाम मोक्ष है'।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मोक्ष प्रकरण पृ० १६२

सत्यार्थप्रकाश में मोक्ष से जीव का लौटना लिखा और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में मुक्तजीव के संसार में आने का निषेध लिखा, इन परस्पर विरोधी लेखों में कौन लेख सत्य है इस पर कभी आर्यसमाजी विचार करेंगे या हमेशा कुम्भकर्णी नींद के मजा ही उड़ाते रहेंगे।

जवाब नहीं बना

स. प्र. पृ. २४३ पं. २१—तदत्यन्त विमोक्षोपवर्गः।
दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये-
तदनन्तरापायादपवर्गः। न्यायसूत्र १। २२। २।

जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है क्योंकि जब मिथ्या ज्ञान अविद्या, लोभादि दोष, विषय दुष्ट व्यसनों में प्रवृत्ति,

जन्म और दुःख का उत्तर २ के छूटने के पूर्व २ के निवृत्त होने ही से मोक्ष होता है जो कि सदा बना रहता है । (उत्तर) जैसे "अत्यन्तं दुःखमत्यंतं सुखं चास्य वर्तते" बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्य को है। इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत सुख वा दुःख है। इसी प्रकार यहां भी अत्यन्त शब्द का अर्थ जानना चाहिये ।

वि०—अत्यन्ताभाव से बहुत भिन्न शब्द है, 'इस मनुष्य को बहुत सुख है' इसके कहने से यह सिद्ध होता है कि किञ्चित दुख अवश्य है, जब यह कहेंगे कि 'इसको अत्यन्त सुख है' इससे यह सिद्ध होगा कि इसको दुःख है ही नहीं, सत्यार्थप्रकाश के लेखक से जवाब नहीं बनता, बनावटी बातों में धोका देकर भाग रहा है ।

स्वामी दयानन्द जी ने इसके ऊपर क्या लिखा है उसके देखने से सत्यार्थ-प्रकाश के बनावटी अर्थ में दियासलाई लग जाती है, स्वामी जी का लेख यह है—

'अब मुक्ति विषय में गोतमाचार्य के कहे हुये न्याय शास्त्र के प्रमाण लिखते हैं (दुःख जन्म०) जब मिथ्याज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट हो जाती है तब जीव के सब दोष नष्ट हो जाते हैं उसके पीछे (प्रवृत्ति०) अर्थात् अधर्म अन्याय विषयासक्ति आदि की वासना सब दूर हो जाती है उसके नाश होने से (जन्म) अर्थात् फिर जन्म नहीं होता उसके न होने से सब दुःखों का अत्यन्त अभाव हो जाता है। दुःखों के अभाव से पूर्वोक्त परमानन्द मोक्ष में अर्थात् सब दिन के लिये परमात्मा के साथ आनन्द ही आनन्द भोगने को बाकी रह जाता है इसी का नाम मोक्ष है।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका मोक्ष प्रकरण पृ० १६२

यहां पर स्वामी जी 'दुःख, जन्म, मिथ्याज्ञान जब अविद्या नष्ट हो जाती है' इस लेख में दुःख जन्म की अत्यन्त निवृत्ति है। अब आर्यसमाजी ही बतलावें कि सत्यार्थप्रकाश का लेख गलत है या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का, और वेदान्त ध्वान्त-निवारण में इस सूत्रका यही अर्थ स्वामी जी ने किया है कि 'विविध प्रकार की पीड़ा उसका नाम दुःख है उसकी अत्यन्त निवृत्ति होने से जीव को अपवर्ग जो मोक्ष ईश्वर के आधार में अत्यानन्द सो सदा के लिये प्राप्त होता है'। सत्यार्थप्रकाश बार बार स्वामी दयानन्द को बेवकूफ बनाता है क्या इस पर आर्यसमाजियों को तनिक भी लज्जा नहीं आती ।

ब्रह्मलोक से मुक्ति

स. प्र. पृ. २४४ पं. ७–

ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ।
मुण्डक ३ । खं० २ मं. ६

यह मुण्डक उपनिषद् का वचन है । वे मुक्तजीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तब तक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्तिसुख को छोड़ के संसार में आते हैं ।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने कभी भी होश में आकर लेख न लिखा, आर्यसमाज के मत में तो कोई ब्रह्मलोक है ही नहीं फिर ब्रह्मलोक के कहनेवाली श्रुति से कैसे पुष्टि करते हैं, ब्रह्मलोक का अर्थ यह है कि 'ब्रह्मणोलोकः ब्रह्मलोकः' ब्रह्मा का जो लोक उसका नाम ब्रह्मलोक है, 'लोकस्तु भुवनेजने' लोक शब्द के दो ही अर्थ हैं एक भुवन और दूसरा मनुष्य, यहां पर लोक का अर्थ भुवन है, अब आर्यसमाजी बतलावें कि आर्यसमाज के मत में ब्रह्मा का भुवन कहां है और ब्रह्मा कौन ? (२) और पाठ भी अशुद्ध लिखा उपनिषद् में पाठ 'परामृताः' है सत्यार्थप्रकाश में 'परामृतात्' किया क्योंकि पाठ के बदले विना अर्थका बदलना ठीक नहीं बैठता था । (३) मुण्डकोपनिषद् का लेख यह है—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् ।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥

मुण्डक ३ । खं० २ श्रु० ४

बलहीन मनुष्य को आत्मा नहीं मिलता और न प्रमाद से मिलता है न तप से और न खूबसूरती से जो विद्वान् इस श्रुति से पूर्व लिखे उपायों में परिश्रम करता है उसका जो आत्मा है वह ब्रह्मलोक में प्रवेश करता है । आर्यसमाज के मत में ब्रह्मधाम का प्रवेश ही कहना भूल है यदि कोई यह कहे कि ब्रह्मधाम या ब्रह्मलोक का अर्थ हम ब्रह्मा न करके निराकार ब्रह्म लेंगे ऐसी दशा में भी ब्रह्मधाम प्रवेश न होगा क्योंकि कीट, पतंग, पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता सभी निराकार ब्रह्म के अन्दर रहते हैं, ब्रह्म का अन्त नहीं अतएव कोई प्राणी ब्रह्म के बाहर जा नहीं सकता, इन्हीं की भाँति मुक्तजीव भी रहैगा फिर उसका ब्रह्मधाम प्रवेश कहना कैसा ? फिर मुण्डक लिखता है कि—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥
यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥

मुण्डक ३ खं० २ श्र० ६ । ७ । ८

जिन्होंने विज्ञान से वेदान्त के अर्थों का निश्चय किया है और इसी से जब वे यत्नशील सर्वस्व त्यागरूप संन्यास योग से शुद्ध चित्तवाले हो गये हैं ऐसे पवित्रात्मा समस्त विदित वेद्य ब्रह्मलोक में प्राप्त होते हैं वहां से अमर होकर वे सब जन्म मरण रूप बन्धन से छूट जाते हैं । ६ । महात्माओं की जो पञ्चदश कला हैं वे अपने २ कारण में लय हो जाती हैं उन कलाओं के नाम ये हैं—प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक ये समस्त एक होकर पर (सर्वोत्तम) अव्यय ब्रह्म में जा मिलती हैं । ७ । इसमें दृष्टान्त—जैसे बहती हुई समस्त नदियां अपने नाम रूप को त्याग कर समुद्र में मिल जाती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष नाम रूप को छोड़ कर परात्पर दिव्यपुरुष को प्राप्त होता है ।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने 'नायमात्मा' इस श्रुति को छिपा कर ब्रह्मलोक प्राप्ति को दबाया और 'गताः कलाः पञ्च' इस श्रुति को दबा कर पञ्चदश कलाओं के एकीभाव को छिपाया और 'यथा नद्यः' इस श्रुति को छिपाकर नदियों के समुद्र में मिलने के दृष्टान्त और विद्वान् का ब्रह्म में लय होना इस दार्ष्टान्त को दबा कर 'वेदांत विज्ञान सुनिश्चितार्थाः' इस श्रुति में थोड़ा सा पाठ बदल जाली अर्थ बना जीव का मोक्ष से लौटना लिख दिया, यह धर्मनिर्णय नहीं वरन् घोर पाप है, इस घोर पाप को वैदिकधर्म कहनेवाले मनुष्यों को ईश्वर से डरना चाहिये ।

संसार का खातमा

स. प्र. पृ. २४४ पं. २०—जो मुक्ति में से कोई भी लौट कर जीव इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहिये ।

वि०—मन्त्रभाग, ब्राह्मणभाग और उपनिषद्भाग की कई हजार श्रुतियां जीव का ब्रह्म बनना कह रही हैं किन्तु सत्यार्थप्रकाश के लेखक की एक सड़ियल दलील के आगे ये हजारों श्रुतियां झूठी हो गईं यदि आर्यसमाजी ऐसी सड़ियल दश बारह दलीलें तैयार कर लें तो फिर वेद के तीनों भाग सदा के लिये झूठे हो जावें और आर्यसमाजियों का धर्म से गला बच जावे। दलील से श्रुतियों का कट जाना यह नास्तिकता है। इसके ऊपर मनु जी लिखते हैं कि—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद्द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥

मनु० अ० २ श्लो० १०।११

वेद को श्रुति और धर्मशास्त्र को स्मृति कहते हैं समस्त धर्माधर्म के निर्णय में इन दो ही की मीमांसा करनी क्योंकि धर्म का प्रदुर्भाव इन्हीं से हुआ है। दलील का आश्रय लेकर जो श्रुति स्मृति का अपमान करता है वह नास्तिक है और वेदनिन्दक है सज्जन लोग ऐसे का बहिष्कार करें और सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में 'योऽवमन्येत' पर लिखा है कि 'जो वेद और वेदानुकूल आप्तपुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति, पङ्क्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिये। बड़ी बड़ी आर्यसमाजों को चाहिये कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक और सत्यार्थप्रकाश तथा 'जीव नहीं रहैंगे' इस दलील के उठानेवाले आर्यसमाजियों को भारतवर्ष से निकाल दें। अज्ञातकाल से नदियों के श्रोत बह रहे हैं पहिले उन्हें खतम करो तब जीव के खातमे की शंका उठाओ।

भीड़ भड़क्का

स. प्र. पृ. २४४ पं. २५— मुक्ति के स्थान में बहुत सा भीड़ भड़क्का हो जायगा क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ भी नहीं होने से बढ़ती का पारावार न रहैगा।

वि०—भारतवर्ष की प्रायः समस्त नदियां समुद्र में जा रही हैं वहां पानी ही पानी हो जावेगा, सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने इस पानी के भीड़ भड़क्के के हटाने का क्या

प्रबन्ध किया ? जब टीड़ीदल आता है तब सब जगह टीड़ियां ही टीड़ियां हो जाती हैं और ये इतनी अधिक होती हैं कि इनके मारे लाखों करोड़ों पौधे और वृक्षों के छाल पत्ते टीड़ियों का पेट नहीं भर सकते। आयन्दा से टीड़ियां का भीड़ भड़क्का न हो इसके लिये आर्यसमाज ने क्या प्रबन्ध किया ? करनाल, रोहतक, रिवाड़ी, मेरठ, हापुड़, अलीगढ़ और मथुरा की तरफ से मनुष्यों की भरी हुई रेलगाड़ियां दिल्ली को चली जाती हैं किसी दिन दिल्ली में भीड़ भड़क्का हो जायेगा इसके लिये आर्यसमाजी क्या सोच रहे हैं ? मोक्ष में भीड़ भड़क्का कैसा ? भीड़ भड़क्का तो तब हो जब कि प्रत्येक जीव की पृथक् २ सत्ता हो, मोक्ष जाने से पहिले जीव अपने शुभाशुभ कर्मों का त्याग कर ब्रह्म में मिल जाता है। जब सब जीव ब्रह्म में मिल जाते हैं और ब्रह्म एक ही रहता है तो अकेले का भीड़ भड़क्का हो जाना इस फिलास्फी को आर्यसमाजी ही समझेंगे।

ईश्वर की बेइन्साफी

स. प्र. पृ. २४४ पं. २९—कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के रसों के भोगनेवाले को होता है। और जो ईश्वर अन्तवाले कर्मों का अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय।

वि०—कर्म चाहे शुभ हो या अशुभ है अविद्या का कार्य, आर्यसमाज के मत में यदि कर्म से मोक्ष होती है तब तो मुक्तजीव आर्यसमाजी अविद्या में फंसे रहते हैं, वेद का तो यह सिद्धांत है कि जैसी जलती हुई अग्नि लकड़ी के जल जाने पर अपने दृश्यशरीर को छोड़कर अरूप सर्वव्यापक अग्नि में लय हो जाती है इसी प्रकार जीव अविद्या के शान्त होने पर अरूप सर्वव्यापक ब्रह्म में मिल जाते हैं और कर्मफल से तो स्वर्ग नर्क और मर्त्य आदि लोक मिलते हैं। कर्म से मोक्ष का मिलना वेद, दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास प्रभृति संस्कृत साहित्य के किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा।

बोझा लादना

स.प्र. पृ. २४५ पं. ४—जो जितना भार उठा सके उतना उस पर धरना बुद्धिमानों का काम है। जैसे एक मन भर उठानेवाले के शिर पर दश

मन धरने से भार धरनेवाले का निन्दा होती है वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वर के लिये ठीक नहीं।

वि०—क्या मोक्ष में जीवों पर भार लादा जाता है? इस लेख से तो यही सिद्ध है कि मुक्तजीव गधे और खिच्चर बनाकर मोक्ष में भेजे जाते हैं और वे वहां अन्धाधुन्धी से लादे जाते हैं। जीव अल्पज्ञ तो तभी तक है जब तक यह माया के पंजे में है माया के छूटते ही सर्वज्ञ है और सर्वशक्तिमान है, इसमें हम 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' आदि अनेक प्रमाण पीछे दिखला आये हैं।

मोक्ष है या जेलखाना

स० प्र० पृ० २४ पं० १०—मुक्ति में जाना वहां से पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़े से कारागार से जन्मकारागार दण्डवाले प्राणी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानता है? जब वहां से आना ही न हो तो जन्मकारागार से इतनाही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्म में लय होना समुद्र में डूब मरना है।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक की बुद्धि डबल उन्नति कर गई है, जो सर्वोपरि सुख मोक्ष को जेलखाना मानती है। कई एक आर्यसमाजी ऐसे हैं जो जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त धनी रहते हैं और धन के सुख को भोगते हैं यदि सुख भोगना जेलखाना है तो इतना धन छीन कर जल्दी से जल्दी दूसरों को दे दो और इनकी जान सुखरूपी जेलखाने से बचाओ। मनुष्यों का स्वांस वायु जब बाहर निकलता है तब अपने कारण सर्वव्यापक वायु में और जलती हुई अग्नि जब बुझती है तो अपने कारण निराकार अग्नि में और सूर्य की किरणों से उड़ा हुआ सूक्ष्म जल अपने कारण सर्वव्यापक जल में तथा लकड़ियों के फूंकने से जो राख हुई वह राख अपने कारण पृथ्वी में जा मिलती है तो उपाधि शान्त होने पर यह जीव अपने कारण ब्रह्म में क्यों नहीं मिलेगा। आर्यसमाजी पहिले जल, वायु, अग्नि और राख के डूब मरने या फांसी को बचावें तब जीव की फिकर करें। अब देखना है कि आर्यसमाजी तत्वों के डूब मरने के बचाने के लिये क्या उपाय सोचते हैं।

चतुर्धामोक्ष

स. प्र. पृ. २४६ पं. ६—(प्र.) पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वर के

लोक में निवास (सारूप्य) जैसे उपासनीय देव की आकृति है वैसा बन जाना (सामीप्य) सेवक के समान ईश्वर के समीप रहना (सायुज्य) ईश्वर से संयुक्त होजाना यह चार प्रकार की मुक्ति मानते हैं वेदान्ती लोग ब्रह्म में लय होने को मोक्ष समझते हैं ।

स. प्र. पृ. २४६ पं. १८–(उत्तर) पौराणिक लोगों से पूछना चाहिये जैसी तुम्हारी मुक्ति वैसी कीट पतंगादिकों की भी स्वतःसिद्ध है क्योंकि यह सब जितने लोक हैं वे सब ईश्वर के हैं इन्हीं में सब जीव रहते हैं इस लिये सालोक्य मुक्ति अनायास प्राप्त है सामीप्य ईश्वर सर्वत्र प्राप्त होने से सब उसके समीप हैं इस लिये सामीप्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है सायुज्य जीव ईश्वर से सब प्रकार छोटा और चेतन होने से स्वतः बन्धुवत् है सब जीव परमात्मा में व्याप्य होने से संयुक्त हैं इससे सायुज्य मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है । इत्यादि ।

वि०—आर्यसमाजी अपनी इच्छानुसार सत्यार्थप्रकाश का पाठ बदला करते हैं, इस प्रकरण में भी बदल कर पाठ को भ्रष्ट कर दिया। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने ऐसा पाठ नहीं लिखा इसलिये हमने यह पाठ द्वितीयावृत्ति से लिया और पृष्ठ पंक्ति अठारहवीं आवृत्ति की लिखीं जो पाठक द्वितीयावृत्ति और अठारहवीं आवृत्ति के पाठ को मिलावेंगे उनको यह ज्ञान होगा कि आर्यसमाजी पाठ बदल कर सत्यार्थप्रकाश के लेखक के नाम से लिखते हैं। आर्यसमाजियो ! आप लेख लिख कर उस लेख को किसी दूसरे का लेख बतलावें यह धर्मनिर्णय है या संसार को धोका देना है। चतुर्थीमोक्ष में सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जो दोष दिये हैं वे दोष आर्यसमाज की मुक्ति पर भी चढ़ बैठते हैं किन्तु सत्यार्थप्रकाश के लेखक को यह क्या खबर कि जो आक्षेप हम उठाते हैं वह आक्षेप हमारी मानी हुई मुक्ति का ही स्वाहा कर देगा, ऐसी बातें लिखे पढ़े मनुष्य ही जाना करते हैं। आर्यसमाज के मत में मुक्तजीव ब्रह्म के रचे हुये इन्हीं लोकों में रहते हैं और इन्हीं लोकों में कीट पतंग रहते हैं, किसी प्रकार का भी अन्तर नहीं। अब मानना पड़ेगा कि आर्यसमाज के मत में कीट पतंग उल्लू आदि पक्षी और गधे खिच्चर आदि पशु एवं अन्धे, लँगड़े, लूले आदि मनुष्य मुक्तजीव हैं। (२) आर्यसमाज के मत में 'ईश्वर सर्वत्र प्राप्त होने से सब उसके समीप हैं' इसलिये मुक्तजीवों में और संसारी जीवों में कोई भेद न रहा। (३) आर्यसमाज के मत में भी 'जीव ईश्वर से सब प्रकार छोटा और चेतन होने से स्वतः बन्धुवत् है सब जीव परमात्मा

में व्याप्य होने से संयुक्त हैं इसलिये सभी मुक्त हैं। सालोक्य आदि चार अवस्थाओं में विशेषता यह है कि यहां जीव को किसी प्रकार का दुःख नहीं होता सब प्रकार से सुख ही सुख होता है इसी से इन अवस्थाओं का नाम मोक्ष है। आर्यसमाजी कह देंगे कि मोक्ष के विषय में यही जवाब हमारा है। आर्यसमाजियों का यह जवाब नहीं हो सकता क्योंकि इनके मुक्तजीव मुक्ति में दुःखी होकर 'कस्य नूनं' और 'अग्नेर्वयं' इन दो मन्त्रों से ये पुकार करते हैं कि 'वह कौन देव है जो हम को मुक्ति से छुड़ा संसार में भेज माता पिता के दर्शन करवावे' इसके लिये देखो 'भयंकर छल' शीर्षक लेख।

इति नवम समुल्लासः

❀ अथ दशम समुल्लासः ❀

शिखा की सफाई

स. प्र. पृ. २६३ पं. ११–"जो शीतप्रधान देश हो तो काम चार है चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है, डाढ़ी मूछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है।

वि—[क] बात अच्छी है। बीकानेर और जोधपुर, जैसलमेर आदि देशों के आर्यसमाजियों को सदा के लिये चुटिया कटवा देनी चाहिये और पंजाब, राजपूताना, संयुक्तप्रान्त, बिहार, बंगाल, मध्यभारत के निवासी आर्यसमाजियों को गर्मी के मौसम में शिखा कटवानी चाहिये यदि वे ऐसा न करेंगे तो बस अक्ल की समाप्ति कर बेवकूफ बने बिना न रहेंगे। [ख] यह सत्यार्थप्रकाश सम्वत् १९४१ में बना और आज सम्वत् १९९२ है अभी तक आर्यसमाजियों ने अपनी औरतों के शिर के बाल क्यों नहीं कटवाये, धर्म के पालन में आर्यसमाजी जी क्यों चुराते हैं। किसी भी वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन, अङ्ग और पुराण इतिहास के किसी प्रमाण में शिखा कटवाने की आज्ञा नहीं है फिर हिन्दुओं की शिखा कटवा कर मुसलमान बनाने का उपाय नहीं तो यह और क्या है? मुसलमान साम्राज्य में चन्द निन्दनीय बादशाहों ने हिन्दुओं के आगे यह प्रश्न रक्खा कि गर्दन देते हो या शिखा? या तो चुटिया कटवा दो नहीं तो तुम्हें क़त्ल कर दिया जायगा, लाखों मनुष्य कत्ल हो गये किन्तु शिखा न कटवाई। गुरु गोविन्दसिंह और शिवा जी शिखा की रक्षा के लिये ही मुसलमानों से लड़े किन्तु सत्यार्थप्रकाश का लेखक अपनी भयंकर बुद्धि से शिखा कटवाने की आज्ञा देता है यह क्यों? आर्यसमाजी इसका जवाब दें? आर्यसमाजियों को मूंछ दाढ़ी भी कटवानी चाहिये।

शूद्रों का बनाया भोजन

स. प्र. पृ. २६९ पं १०—

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्रपाठक २ पटल २ खं. २ सूत्र ४

यह आपस्तम्ब का सूत्र है, आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करैं परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें, आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े ।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखा है कि '(प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है ? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसका हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है' । सत्यार्थप्रकाश के लेखक को अपने धर्मपुस्तक वेद में ऐसा कोई प्रमाण न मिला जिससे शूद्रों के बनाये भोजन का खाना सिद्ध करते, लाचार होकर सनातनधर्मियों के धर्मपुस्तक आपस्तम्ब धर्म सूत्र को स्वतःप्रमाण मान शूद्रों के हाथका भोजन खाना लिखा । आज सनातनधर्मियों के ग्रन्थ से शूद्रों का पकाया भोजन खाना लिखते हैं कल को कुरानशरीफ को स्वतःप्रमाण धर्मपुस्तक मान नमाज पढ़ना और फिर किसी दिन इञ्जील को धर्मपुस्तक मान गिरजा में जाना लिख देंगे । जो क्षण क्षण में धार्मिकग्रन्थों को अधार्मिक और अधार्मिक ग्रन्थों को धार्मिक बनाते हैं ऐसे चालबाजों का भी कोई धर्म होता है ? [ख] फिर 'आर्या अधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः' इस सूत्र में भोजन बनाना कहां लिखा है, इसका अर्थ तो यह है कि आर्यों के घरों में शूद्र झाड़ना और लीपना, पानी भरना, वर्तन मांजना, प्रभृति संस्कार किया करते हैं । झूठे लेख लिख कर अनपढ़ आर्यसमाजियों को जाल में फांसना सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ से उठाया और यही सिद्धान्त यहां रख शूद्रों के हाथ का भोजन खाना बतलाते हैं । जब शूद्रों के हाथ का भोजन खाना वैदिकधर्म है तो फिर सत्यार्थप्रकाश पृ० २६६ पं० ८ में यह क्यों लिखा गया कि 'शूद्र के पात्र और उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावे' । मनु जी तो लिखते हैं कि—

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नम्०

मनु० अ० ४ श्लो० २२३

शूद्र के हाथ का पक्वान्न भी न खावे ।

सब का जूठा खाना

स. प्र. पृ. २६६ पं. १८–"जिन्होंने गुड़-चीनी-घृत-दूध-पिशान-शाक-

फल मूल खाया उन्होंने जानों सब जगत भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खाया।

वि०—[क] हमें नहीं मालूम इस लेख का क्या प्रयोजन है। इस लेख से सत्यार्थप्रकाश के लेखक गुड़, शक्कर, चीनी, घृत, दुग्ध, फल आदि के खाने का आर्यसमाजियों के लिये निषेध करते हैं या यह कहते हैं कि इन सब पदार्थों में तो तुम जूठा खाते ही हो तो भंगी चमारों का जूठा भी आर्यसमाजी खाया करें। पहिले शिखा कटवाई फिर शूद्रों का भोजन खाना बतलाया अब सब का जूठा खाना लिखा। इससे तो यही सिद्ध होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक का अभिप्राय हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का है और सनातनधर्म के ग्रन्थों में 'नोच्छिष्टं कस्य चिद्दद्यात्' किसी का भी जूठा न खाय। इस पर शंका की गई है कि मनुष्य का जूठा भले ही न खाय किंतु मक्खी का जूठा खाना पड़ेगा। इस शंका के ऊपर यह उत्तर लिखा गया है कि जब मनुष्य की शक्ति जूठा होने को न रोक सके वहां उच्छिष्ट का दोष नहीं, इसी भाव से प्रथम तो दूध, घी के उच्छिष्ट होने को रोके और जहां गुप्त उच्छिष्ट होने से न रुके वहां दोष नहीं।

कच्ची पक्की

स. प्र. पृ. २६८ पं. २८–(प्रश्न) सखरी निखरी क्या है? (उत्तर) सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी दूध में पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी। यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपंच रचा है, नहीं तो जो अग्नि का वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है।

वि०—सत्यार्थप्रकाशलेखक के मुंह में लगाम नहीं, जो जी में आता है वही लिख देते हैं। जिस मनु के ३६०३ श्लोकों को लेकर सत्यार्थप्रकाश को धार्मिक ग्रन्थ बनाया उसी मनु जी को यहां धूर्त लिखते हैं क्योंकि मनु जी ने ही कच्चे पक्के के भेद को स्वीकार कर यह लिखा कि 'नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं'। कई एक मनुष्य यह कहेंगे कि आटा, दाल, चावल जो अग्नि पर नहीं गये उन्हीं को कच्चा कहते हैं, यह बात गलत है

और इसको आमान्न कहते हैं. शूद्र के यहां का आमान्न खाना इसका लेख धर्मशास्त्रों में मिलता है, देखिये—

आर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ।

मनु० अ० ४ श्लो० २५३

आर्धिक, कुलमित्र, गोपाल, दास, नाई और जो आत्मा को निवेदन करे, आपत्ति-काल में इनका आमान्न लेकर ब्राह्मण खा सकता है ।

शूद्र के हाथ के भोजन का निषेध

स. प्र. पृ. २७१ पं. ५–'और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें ।

वि०—आर्यसमाज के मत में चार ही वर्ण हैं और प्रायः चतुर्थ वर्ण शूद्र जाति के लोग मांस शराब का अधिक व्यवहार करते हैं फिर शूद्र का पकाया भोजन खाना इस समुल्लास में कैसे लिखा । आर्यसमाजी कहेंगे कि जो शूद्र मांस शराब का व्यवहार नहीं करते उनके हाथ का भोजन ऊपर लिखा, जो मांस शराब का सेवन करते हैं उनके हाथ के भोजन का यहां निषेध किया । उत्तर तो ठीक है किन्तु आर्यसमाज के मत में शौनकीय, माध्यन्दिनी, कौथुमी और शाकल ये चार ही शाखा वेद हैं इन शाखाओं में मांस खाने और शराब पीने का कहां निषेध लिखा है, क्या कोई आर्यसमाजी अपने लँगड़े वेद में शराब मांस के निषेधक मन्त्र को दिखला सकता है ? प्रलय तक नहीं दिखला सकता । शराब मांस का निषेध तो सनातनधर्मियों के ग्रन्थों में लिखा है । शराब के ऊपर 'ब्रह्महत्या सुरापानं मनु० अ० ११ श्लो० ५४' प्रभृति वचन जो शराब को महापातक कहते हैं और 'अनुमन्ता विशसिता मनु० अ० ५ श्लो० ५१' इत्यादि प्रमाण जो मांस खानेवाले को हत्यारा बतलाते हैं वे सब सनातन-धर्मियों के ग्रन्थों के हैं । इसके ऊपर आर्यसमाजी कहेंगे कि हम मनु को मानते हैं; झूठी बात और संसार को धोका देना है, आर्यसमाज मनु को मानती तो नाद्याच्छू-द्रस्य पक्वान्नं' इस मनु वचन के रहते हुये शूद्रों के हाथ का पकाया भोजन खाना कैसे लिखा जाता ?

मनुष्यभक्षण की विधि

स. प्र. पृ. २७२ पं. १०—यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें? (उत्तर) चाहें फेंक दें, चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।

वि०—ऊपर के लेख में पहिले तो यह लिखा कि उस मृतक मनुष्य का मांस चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि को खिला दें और चाहे जला दें, इतना लेख ठीक और न्यायसंगत है किन्तु आगे लिखा है कि 'अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी हाकर हिंसक हो सकता है'। 'संसार को हानि नहीं होती' यह लिखना सुफेद झूठ है, संसार की तो भयंकर हानि होगी। आज मनुष्य धर्म की मर्यादा में बंधे हुए यह समझ रहे हैं कि मनुष्य के लिये मनुष्य का मांस खाना भयंकर पाप है इस पाप के भय से मनुष्य का मांस मनुष्य नहीं खाते उससे संसार में शान्ति का साम्राज्य है किन्तु जिस समय मनुष्य का मांस मनुष्य खाने लगेगा तो सत्यार्थप्रकाश के लिखने के मुताबिक मांस खानेवाले का स्वभाव हिंसक हो जायगा ऐसी दशा में यदि उसको मृतक मनुष्य का मांस न मिला तो वह जीवित मनुष्य को मार कर खाने लगेगा, संसार में अशान्ति फैलेगी। अब संसार की हानि हुई या नहीं? सत्यार्थप्रकाश की आज्ञा से मृतक मनुष्य का मांस खाते खाते जब आर्यसमाजी जीवित पुरुषों को खाने लगेंगे तब राजा आर्यसमाजियों को फांसी पर लटकावेगा, यह भी हानि है। समझ की बलिहारी है, इतना अच्छा है कि वर्तमान समय तक आर्यसमाजियों ने ऊपर के लेख को चंडूखाने की गप्प समझा और संसार में कोई हानि नहीं होगी ऐसा समझ कर कोई मृतक मनुष्य नहीं खाया। यह सत्यार्थप्रकाश का भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण है। जब सत्यार्थप्रकाश की दृष्टि में मनुष्य भी भक्ष्य है तो वह संसार में कौन पदार्थ है जो अभक्ष्य होगा। ऐसे ऐसे अनर्गल लेखों पर आर्यसमाजी ध्यान दें तो बहुत अच्छा हो।

सहभोज

स. प्र. पृ. २७२ पं. २२–(प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ? (उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है।

वि०—पहिले तो लिखा कि जिसने चीनी, घी, दूध खा लिया उसने सारे संसार का जूठा खा लिया, अब जूठा खाने का निषेध लिखते हैं. आर्यसमाज के वेद में तो कहीं जूठा खाने का निषेध है ही नहीं फिर यह निषेध कहां से लिया ? कई एक आर्यसमाजी यह कह देंगे कि "नोच्छिष्टं कस्य चिद्दद्यात्" इस पद्य से लिया। क्या आर्यसमाज मनुस्मृति को मानती है ? अगर मानती है तो मनु के तृतीय अध्याय के सैकड़ों श्लोकों में जो मृतक श्राद्ध करना लिखा है उसको आर्यसमाज करेगी ? श्राद्ध प्रकरण के आगे आते ही आर्यसमाज कह उठती है कि हम मनु को प्रमाणकोटि में नहीं लते हम तो केवल वेद को प्रमाण मानते हैं फिर यहां मनु के श्लोक को प्रमाण क्यों माना ? आर्यसमाज की ग्रन्थों में घुसने और निकलने की चालबाजी आर्यसमाज को संसार से बिदा किये बिना न रहैगी।

यदि एक साथ भोजन करने में एक बिजली दूसरे के शरीर में हानि पहुँचाती है तब तो मनुष्य के शरीर के द्वारा निकलनेवाली बिजली शरीर स्पर्श द्वारा भी हानि पहुँचावेगी। जब एक मनुष्य से कोई दूसरा मनुष्य हाथ मिलाता है तब हाथ मिलाने मात्र से ही एक की बिजली दूसरे पर दौड़ती है फिर शूद्र के हाथ के पकाये भोजन का खाना कैसे लिख दिया ? शूद्र के हाथ द्वारा निकली हुई बिजली क्या उसके बनाये भोजन पर अपना प्रभाव न डालेगी ? उच्छिष्ट खाने के निषेध को आर्यसमाजी नहीं मानते, जब एसेम्बली में मन्दिर प्रवेश और अछूतोद्धार बिल आये तब बम्बई में एक बड़ा भारी सहभोज हुआ था उसमें सैकड़ों आर्यसमाजियों ने भंगी चमारों का जूठा बचा हुआ भोजन खाया और जलियानवाले बाग के समय लाहौर में हजारों आर्यसमाजियों ने मुसलमानों का जूठा पानी पिया। खाने की कौन बात रही, अब तो अनेक आर्यसमाजी अम्बेदकर के लड़के से अपनी लड़की का बिवाह करने को तैयार हैं !

खानपान

स. प्र. पृ. २७३ पं. १८–(प्रश्न) कहो जी मनुष्य मात्र के हाथ की कीहुई रसोई के खाने में क्या दोष है ? क्योंकि ब्राह्मण से लेके चांडाल पर्यन्त के शरीर हाड़ मांस चमड़े के हैं और जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर में है वैसा ही चांडाल आदि के, पुनः मनुष्य मात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है ? (उत्तर) दोष है क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गंधादि दोष रहित रज वीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडाली के शरीर में नहीं क्योंकि चांडाल का शरीर दुर्गंध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं, इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चांडालादि नीच भंगी चमार आदि का न खाना । पुनः स. प्र. पृ. ३८८ पं. १४–(४) अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने पीने का भेद नहीं रक्खा, इन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जातिभेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा, परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहां उलटा बिगाड़ होता है ।

वि०—आर्यसमाज में शूद्र वर्ण है और शूद्र वर्ण में भंगी, चमार आदि सब जातियां आ जाती हैं क्योंकि सनातनधर्म या यजुर्वेद अध्याय ३० की भांति आर्यसमाज के धर्म में शूद्रों में जातिभेद नहीं है, पहिले तो लिखा कि शूद्रों के हाथ का पका भोजन खाओ और अब लिखते हैं कि मत खाओ, ये दो बातें कैसे ? इसके ऊपर हमारा विचार करना निष्प्रयोजन है क्योंकि इन दोनों लेखों को आर्यसमाजी सर्वथा मिथ्या समझ खण्डन कर चलते हैं । सभ्य आर्यसमाजी तो यह कहते हैं कि सत्यार्थप्रकाश का लेखक भी मनुष्य था, भूल गया, भूलना मनुष्य का काम है, गर्मदल के आर्यसमाजियों का कथन है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक भी महज बेवकूफ जो ऐसा लिख गये !

गू गोबर की अनोखी सूझ

स. प्र. पृ. २७४ पं. ३–(प्रश्न) जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो तो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते ? और गोबर के चौके में

जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता ? (उत्तर) गाय के गोबर से वैसा दुर्गंध नहीं होता जैसा कि मनुष्य के मल से, गोमय चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता, न मलीन होता है ।

वि०—यदि किसी प्रकार से मनुष्य के मैले की दुर्गंध निकाल दी जाय और किसी रसायनिक प्रयोग से उसमें चिकनापन पैदा कर दिया जाय ऐसी दशा में तो आर्यसमाजियों को मनुष्य के मैले से चौका लगाने में कोई उज्र न होगा ? इस पर जबान बन्द। कहते हैं कि किसी ने सत्यार्थप्रकाश के लेखक से प्रश्न किया था उसका यह जवाब है। ऐसा घृणित प्रश्न कोई धार्मिक मनुष्य नहीं कर सकता. यह तो सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक की सूझ है ।

विद्यावृद्धि में हानि

स. प्र. पृ. २७४ पं. २६—जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने और चौका देने बर्तन भांड़े मांजने आदि बखेड़े में पड़े रहैं तो विद्यादि शुभ गुणों की वृद्धि कभी न हो सकै ।

वि०—यह बात तब हो सकती है जब कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण जन्म से माने जावें। आर्यसमाज ऐसा मानती नहीं वह तो यह मानती है कि कोई जाति का मनुष्य क्यों न हो जब वह विद्वान् हो लेगा तब राजसभा और विद्यासभा योग्यता की परीक्षा लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण की उपाधि देंगी। जब वे विद्या पढ़ कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य बन गये तो क्या अब वे रसोई बनाने से पढ़ी हुई विद्या भूल जावेंगे ? या वैश्य क्षत्रिय अपनी विद्या अधिक बढ़ाकर दूसरे तीसरे वर्ष फिर ब्राह्मण बन जायंगे ? आज कई सहस्र आर्यसमाजी भंगी, चमार और ईसाई मुसलमानों का बनाया भोजन खाते हैं किन्तु वेद का उनको एक मंत्र भी नहीं आता, उनकी विद्यावृद्धि क्यों नहीं हुई ? और हजारों ही विद्वान् जिन में प्रायः सभी महा-महोपाध्याय भी शामिल हैं जब से पढ़ने लगे तब से अपने हाथ का भोजन बनाकर खाते हैं, ये लोग मूर्ख क्यों नहीं बन गये ?

इति दशम समुल्लासः

❀ अथ एकादश समुल्लासः ❀

मंत्रशक्ति

स. प्र. पृ. २८१ पं. ६–ये सब बातें जिनसे अर्थशास्त्रों को सिद्ध करते थे वे मंत्र अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे। और जो मंत्र अर्थात् शब्दमय होता है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहै कि मंत्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मंत्र के जप करने वाले के हृदय और जिह्वा को भस्म कर देवे। मारने जाय शत्रु को और मर रहे आप इसलिये मंत्र नाम है विचार का।

वि०—विश्वामित्र-मतंग-कुन्ती-माद्री का नियोग, अम्बा-अम्बालिका और दासी का व्यास जी से नियोग, इन कथाओं में सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने महाभारत को स्वतःप्रमाण माना और षष्ठ समुल्लास के राजधर्म में शुक्रनीति एवं महाभारत के पढ़ने की आज्ञा दी तथा अष्टम समुल्लास में निराकार की सन्तान और भारत के आरंभिक राजा महाभारत और पुराणों से लिये किन्तु अब महाभारत को झूठा सिद्ध करने के लिये मंत्रशक्ति को उड़ाने का उद्योग किया। महाभारत में तो यह स्पष्ट लिखा है कि शस्त्रास्त्र में मंत्रों के द्वारा विशेष शक्ति आती थी, प्रमाण पढ़ें—

ततः क्रुद्धो महाबाहुरैन्द्रमस्त्रं दुरासदम् ॥ ५ ॥
प्रादुश्चक्रे महाराज त्रासयन्सर्वभारतान्।
ततः शराः प्रादुरासन्दिव्यास्त्रप्रतिमंत्रिताः ॥ ६ ॥
प्रदीप्ताश्च शिखिमुखाः शतशोऽथ सहस्रशः।
आकर्णपूर्णनिर्मुक्तैरग्न्यर्काशुनिभैः शरैः ॥ ७ ॥
नभोऽभवत्तद्दुष्प्रेक्ष्यमुल्काभिरिव संवृतम्।
ततः शस्त्रान्धकारं तत्कौरवैः समुदीरितम् ॥ ८ ॥
अशक्यं मनसाप्यन्यैः पाण्डवः सम्भ्रमन्निव।
नाशयामास विक्रम्य शरैर्दिव्यास्त्रमंत्रितैः ॥ ९ ॥

नैशं तमोऽशुभिः क्षिप्रं दिनादाविव भास्करः।
ततस्तु तावकं सैन्यं दीप्तः शरगभस्तिभिः ॥ १० ॥

महाभारत द्रोण प० अ० १४६

"हे महाराज ! तदनन्तर क्रोध में भरे हुये महाभुज अर्जुन ने भारती सेना के सब योधाओं को त्रास देने के लिये दुरासद ऐन्द्रास्त्र को प्रकट किया उसमें से दिव्य अस्त्रों के मंत्रों से अभिमंत्रित प्रदीप्त अग्नि के समान मुखवाले सहस्रों और सैकड़ों बाण प्रकट हो गये, धनुष को कान तक खैंचकर छोड़े हुये, अग्नि और सूर्य की किरणों के समान प्रदीप्त और तीखे बाणों से घिरा हुआ आकाश उल्काओं से घिरे हुये आकाश के समान कठिनता से देखने योग्य हो गया, तदनन्तर कौरवों ने भी अन्य मनुष्य जिसकी मन से भी कल्पना नहीं कर सकते ऐसा घोर अन्धकार आकाश में बाणों का जाल पूर कर कर दिया, अर्जुन कुछ भ्रम में पड़ा परन्तु फिर उसने प्रातःकाल के समय जैसे सूर्य रात्रि के अन्धकार को अपनी किरणों से नष्ट कर देता है तैसे ही दिव्य अस्त्रों के मंत्रों से अभिमंत्रित बाण छोड़ कर उस अन्धकार को नष्ट कर दिया, तदनन्तर समर्थ अर्जुन जैसे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य किरणों से तलैयों के जलों को सोख लेता है तैसे ही बाणरूपी किरणों से तुम्हारी सेना को सोखने (नष्ट करने) लगा"। कहीं पर महाभारत को वेद से अधिक प्रमाण मानना, कहीं पर झूठा लिख देना आर्यसमाज की यह दुष्टनीति संसार को धोके में फांसने के लिये है। मंत्रों में विशेष शक्ति वेद कहता है, इसके लिये द्वितीय समुल्लास के "मंत्र यंत्र" शीर्षक लेख को पढ़ लें।

ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः

स. प्र. पृ. २८४ पं. ३–"ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः" अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणों के मुख में से निकलता है वह जानो साक्षात् भगवान् के मुख से निकला।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक को इतना भी ज्ञान नहीं जितना कि एक लघुकौमुदी पढ़े हुये विद्यार्थी को होता है। आपने क्या ही अच्छा समझा "ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः" इसका भाषा आप लिखते हैं कि "जो कुछ ब्राह्मणों के मुख में से वचन निकलता है वह जानो साक्षात् भगवान के मुख से निकला" यह अर्थ उस समय हो सकता था कि जब "जनार्दनः" के स्थान में "जनार्दनस्य" होता और "ब्रह्मवाक्यं" में

समास न होता अर्थात् यहां पर "ब्राह्मणो वाक्यं जनार्दनस्य" ऐसा पाठ रहने पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक का लिखा हुआ अर्थ ठीक होता किन्तु ऐसा तो है नहीं। और सत्यार्थप्रकाश के लेखक को विभक्ति का ज्ञान नहीं जिसके बल पर वह अर्थ कर ले इसलिये कुछ का कुछ लिख मारा। श्लोक इस प्रकार है—

उषः प्रशंसते गर्गः शकुनं च बृहस्पतिः।
अंगिरा मन उत्साहं ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः॥

श्लोक ज्योतिष् का है और इसमें प्रयाण का मुहूर्त है, गर्ग यह कहते हैं कि जब कभी प्रयाण करे उषा (प्रातःकाल) में करे, बृहस्पति का कथन है कि जिस समय अच्छे शकुन हों उसी समय यात्रा को चला जाय, अंगिरा का कथन है कि जब मन का उत्साह हो बस उसी समय चल दे, जनार्दन पंडित कहते हैं कि जिस समय की यात्रा ब्राह्मण बतलावे वही समय गमन का अच्छा है। क्या सत्यार्थप्रकाश के लेखक की इस व्याकरणानभिज्ञता पर कोई समाजी दृष्टि डालेगा?

पोप

स. प्र. पृ. २८४ पं. १९-(प्रश्न) तो हम कौन हैं? (उत्तर) तुम पोप हो। (प्रश्न) पोप किस को कहते हैं? (उत्तर) इसकी सूचना रूमन् भाषा में तो बड़ा और पिता का नाम पोप है परन्तु अब छल कपट से दूसरे को ठग कर अपना प्रयोजन साधनेवाले को पोप कहते हैं।

वि०—रूमन भाषा का लिखना ठीक है, हम आर्यसमाजियों के बाप हैं क्योंकि सभी आर्यसमाजी सनातनधर्मियों की औलाद हैं, बाप नहीं तो बाबा अवश्य सनातन-धर्मी था। छल कपट से ठग कर प्रयोजन साधनेवाले को कोई पोप नहीं कहता यदि आर्यसमाजी कहते हों तो सत्यार्थप्रकाश के लेखक को कहें जिसने छल कपट से अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिये झूठा सत्यार्थप्रकाश बनाया।

शंकराचार्य को विष

स. प्र. पृ. २९४ पं. ८–"शंकराचार्य के पूर्व शैवमत भी थोड़ा सा प्रचलित था उसका भी खंडन किया। पुनः पृ. २९४ पं. १४ "उन

दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द हो गई पश्चात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया।

वि०—दो जैनियों ने शङ्कराचार्य को विषयुक्त वस्तु खिलाई उसी से शङ्कराचार्य मरे, यह सुफेद झूठ है। किसी सनातनधर्मी ऐतिहासिक ग्रन्थ या शङ्कराचार्य के जीवन चरित्र अथवा जैनियों के किसी उल्लेख में यह घटना नहीं लिखी। सनातनधर्मी और जैनियों में द्वेष बढ़ाने के लिये सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने झूठा लेख लिखा है, विष तो दयानन्द को दिया गया जो तड़फ तड़फ कर मरे। आर्यसमाज के लिखे दयानन्द के जीवनचरित्रों में इस घटना का उल्लेख है। इस सत्यार्थप्रकाश के बनने के समय स्वामी दयानन्द जी मर चुके थे। स्वामी दयानन्द की दशा शंकराचार्य के ऊपर वर्णन की यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक का पाप है।

जीव ब्रह्म की एकता

स. प्र. पृ. २६४ पं. २४—जो जीव ब्रह्म की एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खंडन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है। पुनः पृ. २६३ पं. २५—अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खंडित और शंकराचार्य का मत अखंडित रहा।

वि०—वास्तव में उस समय के जैनी बड़े विद्वान् थे, कुमारिलभट्ट के बनाये हुये तंत्रवार्तिक और श्लोकवार्तिक इन दो ग्रन्थों पर जैनियों ने खंडन लिखा है। वह इतने ऊंचे दर्जे का है कि हमारी तो समझ में भी नहीं आता जब ऐसे ऐसे विद्वानों से भी जीव ब्रह्म की एकता यह शंकर का मत खण्डन न हुआ तो फिर अनपढ़ और पुस्तक-चुम्बक आर्यसमाजी जीव ब्रह्म की एकता का खंडन कैसे करेंगे ? शंकर धर्म का स्वरूप थे, आचार्य थे, वेदों के गूढ़ रहस्यों के जानने में अद्वितीय थे, शंकर का अवतार थे फिर वे ऐसा क्यों करेंगे कि मन में कुछ और वाणी में कुछ। अपना निज मत तो और रखते हैं किन्तु जैनियों के गिराने के लिये जीव ब्रह्म की एकता गाते हैं। जो मनुष्य जैसा होता है वह दूसरे को भी वैसा ही समझता है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक में यह घटना पूर्ण रूप से घटती है आप तो खुद नास्तिक हैं किन्तु लोगों को नास्तिक बनाने के लिये वेद को अपना मत बना रहा है, और यह भी तो लिख दिया कि

'जैनियों के खंडन के लिये यदि शंकराचार्य ने जीव ब्रह्म को एक माना हो तो कुछ अच्छा है' धोका देकर दूसरे के सत्य मत को असत्य कर देना इसको सत्यार्थप्रकाश का लेखक अच्छा बतलाता है, शर्म !

फिर 'जीव ब्रह्म की एकता' शंकर का निज मत कैसे ? यह तो वेदमत है इसके लिये देखिये 'वेदसिद्धान्त परिचय' के "अभिन्न निमित्तोपादानकारण" के "यथा सुदीप्तात्" आदि प्रमाण। सत्यार्थप्रकाश का लेखक यहां वेद का खंडन करता है और उस खंडन करने में जीव ब्रह्म की एकता को शंकर मत बतलाता है यह इसकी चालबाजी है।

जीव ईश्वर का भेद

स. प्र. पृ. ३०२ पं० ४–

(१) नेतरोनुपपत्ते १।१।१६। (२) भेदव्यपदेशाच्च १।१।१७। (३) विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ १।१।२२। (४) अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति १।१।१९। (५) अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् १।१।२०। (६) भेदव्यपदेशाच्चान्यः १।१।२१। (७) गुहां प्रविष्टावात्मनौ हि तद्दर्शनात् १।२।११। (८) अनुपपत्तेस्तु न शारीरः १।२।३। (९) अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् १।२।१८। (१०) शारीरश्चोऽभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते १।२।२०

व्यासमुनिकृत वेदान्त सूत्राणि

अर्थ–ब्रह्म से इतरजीव सृष्टिकर्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ सामर्थ्यवाले जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता इससे जीव ब्रह्म नहीं।१। "रसं ह्येवायं लब्ध्वा नन्दी भवति" यह उपनिषद् का वचन है। जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्ति विषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता। इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं।२।

दिव्यो ह्य मूर्तः पुरुषः स वाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः॥

मुण्डकोपनिषदि मुं. २ खं. १ मं. २

दिव्य, शुद्ध, मूर्तिमत्वरहित, सबमें पूर्ण, बाहर भीतर निरन्तर व्यापक, अज, जन्म मरण शरीर धारणादिरहित, श्वास, प्रश्वास, शरीर और मन के सम्बन्ध से रहित प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्मा के विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृति से परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है। प्रकृति और जीवों से ब्रह्म का भेद प्रतिपादन रूप हेतुओं से प्रकृति और जीवों से ब्रह्म भिन्न है। ३। इसी सर्वव्यापक ब्रह्म में जीव का योग वा जीव में ब्रह्म का योग प्रतिपादन करने से जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है। ४। इस ब्रह्म के अन्तर्यामि आदि धर्म कथन किये हैं और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्म से भिन्न है क्योंकि व्याप्य व्यापक सम्बन्ध भी भेद में संघटित होता है। ५। जैसे परमात्मा जीव से भिन्न स्वरूप है वैसे इन्द्रिय, अन्तःकरण पृथिवी आदि भूत, दिशा, वायु, सूर्यादि दिव्य गुणों के भोग से देवतावाच्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है। ६। "गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके" इत्यादि उपनिषदों के वचनों से जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदों में बहुत ठिकाने दिखलाया है। ७। "शरीरे भवः शारीरः" शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव जीव में नहीं घटते। ८। (अधिदैव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियादि पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादि भूत (अध्यात्म) सब जीवों में परमात्मा अन्तर्यामी रूप से स्थित है क्योंकि उसी परमात्मा के व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदों में व्याख्यात हैं। ९। शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म से जीव का भेद स्वरूप से सिद्ध है। १०। इत्यादि शारीरिक सूत्रों से भी स्वरूप से ही ब्रह्म और जीव का भेद सिद्ध है।

वि०—[क] ग्रन्थकार अपने ग्रन्थ में एक सिद्धान्त का एक ही स्थल में निर्णय किया करते हैं किन्तु सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जीव ईश्वर के भेद को प्रथम सप्तम समुल्लास में, फिर अष्टम समुल्लास में लिखा, अब यहां लिखते हैं, जिस मनुष्य को इतनी भी स्मरणशक्ति नहीं वह क्या खाक् विद्वान् होगा? [ख] वेद की श्रुतियों ने जीव ईश्वर का अभेद लिखा इसके लिये "वेदसिद्धान्त परिचय" का "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" देखलें, यहां पर वेद के लेने से अभेद सिद्ध होता है इसलिये सत्यार्थ-

प्रकाश के लेखक ने वेद को तिलांजलि दे व्याससूत्रों को अपना स्वतःप्रमाण धार्मिक ग्रन्थ मान लिया। जब तृतीय-समुल्लास में वेदानुकूल होने पर ही आर्यसमाज को वेदान्तदर्शन मान्य है तो फिर यहां वेद छोड़ कर व्याससूत्रों का स्वतःप्रमाण मानना क्या तृतीय समुल्लास के लेख पर कुठाराघात करना नहीं है ? [ग] "नेतरः" यह सूत्र आनन्दमयाधिकरण का है इसका अर्थ यह है कि "जीव आनन्दमय नहीं हो सकता क्योंकि 'सोऽकामयत' इस श्रुति में उक्त कामयितृत्व आदि धर्म का जीव में संभव नहीं इस कारण आनन्दमय परमात्मा ही है" ईश्वर आनन्दमय और जीव दुःखी इससे भेद सिद्ध नहीं होता, प्रथम तो सुवर्ण के पांसे और सुवर्ण की अंगूठी में मूल्य का अन्तर रहने पर भी अभेद है, इसी प्रकार एक लोटा गंगाजल और गंगा की धारा में भी न्यूनाधिक शक्ति है तो भी दोनों जलों में भेद नहीं, इसी प्रकार जीव ईश्वर में न्यूनाधिक होने पर भी भेद नहीं। यह जीव ही "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" इत्यादि श्रुतियों के लेख से ब्रह्म हो जाता है उस दशा में भेद कैसा ? हां, जब तक जीवोपाधि नहीं छूटती तब तक व्यवहारिक सत्ता में भेद है जैसे मिट्टी के घड़े और मिट्टी की हांडी में भेद है, फूटने पर दोनों मिट्टी हो जाते हैं तब अभेद हो जाता है इसी प्रकार जीव की जब अविद्या दूर हो जाती है तब जीव ईश्वर का अभेद सिद्ध हो जाता है। दूसरे सूत्र का अर्थ यह है कि 'रसं ह्येवायं' इस श्रुति में आनन्दमय जीव से भिन्न है ऐसा कहा है अतः आनन्दमय परमात्मा ही है जीव नहीं" इतने पर भी नीचे लिखा सूत्र खुद ही जीव ईश्वर का अभेद कहेगा। "अस्मिन्" इस सूत्र का अर्थ यह है कि "यदा ह्येवैष" इत्यादि श्रुतियां आनन्दमय के ध्यान में आसक्त मुमुक्षु का उसके साथ अभेद प्रतिपादन करती हैं इस कारण प्रधान आनन्दमय नहीं हो सकता क्योंकि अचेतन के साथ चेतन का अभेद नहीं हो सकता अतः आनन्दमय परमात्मा ही है। इस सूत्र ने ईश्वर जीव का अभेद और ईश्वर प्रकृति का भेद कहा फिर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ईश्वर जीव का भेद कैसे लिखते हैं ?

हिरण्मयाधिकरण में "अन्तस्तद्धर्म" और "भेदव्यपदेशात्" जो सूत्र आये हैं उनका अर्थ यह है कि "अथ य एषो०' इस श्रुति में उक्त आदित्यमंडल के भीतर रहनेवाला हिरण्मय पुरुष सूर्य नहीं है क्योंकि पापशून्यत्व आदि ब्रह्म के धर्म कहे गये हैं वे धर्म सूर्य में नहीं घट सकते अतः वह पुरुष परमेश्वर ही है। "य आदित्ये० ' इस श्रुति में सूर्य नियम्य और ब्रह्म नियामक है ऐसा भेद कहा गया है इस कारण भी 'अथ य०' इस श्रुति में उक्त पुरुष सूर्य से भिन्न परमेश्वर ही है क्योंकि दोनों श्रुतियों में आदित्य के अन्तर्वर्ती पुरुष का उपदेश है। यहां पर सूर्य जड़ और ब्रह्म चेतन

का भेद है किन्तु चेतन ब्रह्म एवं चेतन जीव का भेद होगा कैसे ? जीव ईश्वर के भेद का तो "अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति" सूत्र ने ही खंडन कर दिया।

मनोमयाधिकरण में "अनुपपत्तेः" यह सूत्र आया है इसका अर्थ यह है कि "उपासना के लिये विवक्षित सत्यसंकल्पत्व आदि गुणों का जीव में समन्वय नहीं हो सकता अतः जीव उक्त गुणों से उपास्य नहीं है, ब्रह्म ही उपास्य है"। जीव के उपास्य न होने पर भी जीव ईश्वर का अभेद ही रहेगा क्योंकि जिस अभेद को "अस्मिन्" यह सूत्र कह चुका है उस अभेद का खण्डन "अनुपपत्तेः" इस सूत्र में नहीं है।

गुहाधिकरण में "गुहां प्रविष्टौ" यह सूत्र आया है इसका अर्थ यह है कि "ऋतं पिबन्तौ०" इस मंत्र में जीव और परमात्मा ही गुहा प्रविष्ट कहे गये हैं बुद्धि और जीव नहीं क्योंकि संख्या के श्रवण से अर्थात् किसी एक वस्तु का निर्देश करके दूसरा तीसरा इत्यादि कहने से उक्त वस्तु के सजातीय पदार्थ का ही ग्रहण होना लोक व्यवहार में भी प्रसिद्ध है अतः "पिबन्तौ" 'पान करनेवाले' इसमें पान कर्ता रूप से सिद्ध जीवात्मा का साथी परमात्मा ही हो सकता है क्योंकि दोनों चेतन होने के कारण सजातीय हैं, बुद्धि नहीं हो सकती क्योंकि बुद्धि चेतन नहीं है अतः वह चेतनत्व रूप से जीवात्मा की सजातीय नहीं है। यह सूत्र सत्यार्थप्रकाश के मत जीव ईश्वर के भेद की पुष्टि नहीं करता वरन् भयंकर रूप से खण्डन करता है।

अन्तर्याम्यधिकरण में "अन्तर्यामी" और "शारीरः" तथा विशेषण "व्यपदेशाभ्याम्" ये तीनों सूत्र आये हैं इनका अर्थ यह है कि "यः पृथिव्याम्" इत्यादि श्रुतियों में प्रतीयमान नियमनकर्ता अन्तर्यामी परमात्मा ही है क्योंकि श्रुति में आत्मत्व अमृतत्व आदि परमात्मा के धर्म कहे गये हैं। जीव अन्तर्यामी नहीं है क्योंकि काण्व और माध्यन्दिन शाखावाले अन्तर्यामी से नियम्य होने के कारण जीव को अन्तर्यामी से भिन्न कहते हैं इससे सिद्ध हुआ कि अधिदेवादि श्रुतियों में प्रतीयमान अन्तर्यामी परमात्मा ही है। 'दिव्यो ह्यमूर्तः' इत्यादि श्रुतियों में दिव्यत्व, अपरिच्छिन्नत्व, सर्वव्यापकत्व आदि विशेषण भूतयोनि के लिये कहे गये हैं अतः जीव में इन गुणों के न होने के कारण जीव भूत योनि नहीं है, 'अक्षरात्' इस श्रुति में अक्षर और परमात्मा में भेद कहा गया है अतः प्रधान भूत योनि नहीं है किन्तु परमात्मा ही भूतयोनि है।

जैसे गंगा की धारा और नारदाने का पानी इन में भेद है किन्तु नारदाने के पानी को जब सूर्य अपनी किरणों से उड़ाकर गगन में जमा कर देता है तब उस जल

में और गंगा की धारा में कोई भेद नहीं रहता केवल जल जल में अभेद है इसी प्रकार 'अस्मिन्' सूत्र ने बतला दिया कि जीव ईश्वर में चेतनत्वेन अभेद है। जब यह जीव माया के पंजे से छूट चेतनमात्र अवशिष्ट रहता है तब ईश्वर और जीव का अभेद हो जाता है, इसके ऊपर मुण्डकोपनिषद् लिखता है कि—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽ
स्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुष मुपैति दिव्यम्॥

तृतीय मुं० खं० २ श्रु० ८

जिस प्रकार निरन्तर बहती हुई नदियां अपने नाम रूप को त्याग कर समुद्र में अस्त हो जाती हैं उसी प्रकार विद्वान् नाम रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्यपुरुष को प्राप्त हो जाता है। आर्यसमाजी बतलावें कि अब भेद है या नहीं? किन्तु समझना और बतलाना यह उसका काम है जो वेद शास्त्र को माने एवं उसके ठीक अर्थों की खोज करे। सत्यार्थप्रकाश के लेखक तो अपने मन से नवीन सिद्धान्त बनाते हैं और फिर दिखलाने के लिये कुछ प्रमाण लिख उन प्रमाणों के अपने मन से जो जी में आता है वही अर्थ कर चलते हैं, इन्हीं फ़र्ज़ी अर्थों से शास्त्रार्थ में आर्यसमाजों को नीचा देखना पड़ता है।

कालिदास गड़रिया

स. प्र. पृ. ३०४ पं. ६—जिसके राज्य में कालिदास बकरी चरानेवाला भी रघुवंश काव्य का कर्ता हुआ।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने तृतीय समुल्लास में कालिदास के काव्यों के पढ़ने का निषेध किया। अब कालिदास को बकरियां चरानेवाला लिखते हैं। लिख तो दिया मगर सबूत न दे सके। जबानी हुक्म दे दिया। समस्त आर्यसमाजी शिर पटक के मर जायं किन्तु 'कालिदास गड़रिया था' यह लेख कहीं न मिलेगा। संस्कृत साहित्य में इतना ऊंचा पद पाना ब्राह्मण को छोड़ कर अन्य जाति के मनुष्य में कभी हुआ ही नहीं। यूरोपवाले जो भारतवासियों को निरा असभ्य समझते थे शकुंतला को देख कर उनकी आंखें खुल गईं। कविवर गेटी और जर्मन के तत्ववेत्ता हंबोल्ड

एवं सर विलियम जोन्स प्रभृति यूरोप के सहस्रों विद्वानों ने संसार के कवियों में कालिदास को कविशिरोमणि लिखा है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक जैसे विना पढ़े ही वेद-वेत्ता बनते हैं वैसे ही इतिहासज्ञ भी बनते हैं, आप राजा भोज के जमाने में कालिदास का होना लिखते हैं किन्तु कालिदास राजा विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में से एक रत्न था इसके लिये हमारे मित्र पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र के भाषा टीका रघुवंश की भूमिका पढ़ें। कालिदास जाति का ब्राह्मण था तिब्बत से जो रघुवंश की प्राचीन लिपि मिली है उसमें "मिश्र कालिदासकृतौ" अक्षर हैं।

रुद्राक्ष

स. प्र. पृ. ३०४ पं. २७—

धिक् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम् ॥१॥
रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान्द्वादशान्द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितमेकमेवं शिखायाम्
वक्षस्यष्टाऽधिकं यः कलयति शतकं सस्वयं नीलकण्ठः ॥२॥

पुनः पृ. ३०४ पं. २३—जिसके कपाल में भस्म और कंठ में रुद्राक्ष नहीं है उसको धिक्कार है। पुनः पृ. ३०४ पं. २४-जो कंठ में ३२, शिर में ४०, छः छः कानों में, बारह २ करों में, सोलह २ भुजाओं में, १ शिखा में और हृदय में १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वह साक्षात् महादेव के सदृश है।

वि०—ग्रन्थ लिखने से पहिले स्वामी दयानन्द जी गंगा के तट पर नग्न विचरा करते थे उस समय मस्तक पर भस्म और गले में एक रुद्राक्ष का कंठा रखते थे, देखो ब्राह्मणसर्वस्व प्रथम वर्ष, क्या स्वामी जी निरे असभ्य थे? एक रात्रि एक स्थान में निवास करना और पांच सात घरों से मधूकरी मांग कर खाना, रुपये पैसे को न छूना, अधिक बात न करना एवं गेरुआ वस्त्र धारण करना इत्यादि जो संन्यासियों के धर्म हैं उनका प्रयोजन संसार से वैराग्य और ब्रह्म में प्रीति बढ़ाने का है इसी प्रकार भस्म लगाना, रुद्राक्ष पहिनना भी शंकर में प्रीति के उत्कर्ष के लिये है।

राजा भोज और शिव-मार्कंडेय पुराण तथा महाभारत

स. प्र. पृ. ३०५ पं. १६–राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कंडेय और शिवपुराण किसी ने बना कर खड़ा किया था उसका समाचार राजा भोज को विदित होने से उन पंडितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नाम से बनावे, ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये संजीवनी नामक इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर के राज्य भिंड नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है। जिसको लखुना के राव साहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे जी ने अपनी आंख से देखा है उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यास जी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिता जी के समय में पच्चीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा हो जायगा।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक पुनर्जन्म और ईश्वरसत्ता को न मानने वाले नास्तिक हैं इसलिये ये झूठे लेख लिखने से नहीं घबराते, इनको इतनी भी शर्म नहीं कि संसार में जब हमारे लेख की असत्यता फैलेगी तब हमारी निन्दा होगी या नहीं। यह लेख सर्वथा ही असत्य है। [ख] राजा भोज का संजीवनी नामक इतिहास कहीं भी उपलब्ध नहीं होता, न किसी प्रेस में छपा है और न कोई इसकी हस्तलिखित कापी मिलती है, न ही इस ग्रन्थ के किसी अन्य पुस्तक में उद्धरण मिलते हैं, साथ ही साथ यह भी पता नहीं चलता कि इस नाम का कोई पुस्तक राजा भोज ने बनाया था। यह तो सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने धोका दिया है, आर्यसमाज में ऐसे धोके ही धर्म समझा जाता है। [ग] जब संजीवनी नामक ग्रन्थ ही संसार में नहीं तब तो उसके नाम का लिखा हुआ लेख झूठा हो गया। राजा भोज के जमाने में पंडितों ने शिवपुराणऔर मार्कंडेयपुराण व्यास के नाम से बनाये थे इसका जिक्र किसी ऐतिहासिक ग्रन्थ में नहीं मिलता और न ही यह मिलता है कि राजा भोज ने कुछ पंडितों के हाथ काटे थे

फिर कोई पुराण बनावेगा कैसे ? नारदपुराण और मत्स्यपुराण में अठारह पुराणों की विषयानुक्रमणिका है कि इसके बाद यह कथा और पश्चात यह कथा. आरंभ से अन्त तक प्रत्येक पुराण की समस्त कथायें क्रम से मिलती हैं. इससे भिन्न सभी पुराणों की श्लोकसंख्या प्रत्येक पुराण में लिखी है जैसे भागवत में अठारह पुराण की श्लोक संख्या है इसी प्रकार समस्त पुराणों में है. जो बनावटी पुराण को झूठा सिद्ध करने को तैयार है। अब मानना पड़ेगा कि राजा भोज के समय में दो पुराणों का बनना यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक का सुफेद झूठ है। लिख दिया कि 'संजीवनी नामक इतिहास भिंड में मिलता है' इसकी खोज में संवत् १९४५ के कार्तिक में हम भिंड गये और शंकर दीक्षित सूबे साहब (कलक्टर) के यहां ठहरे। इतिहास की तलाश के लिये कलक्टर साहब ने पं० रामरत्न आदि ब्राह्मणों को बुलाया. इकत्तीस ब्राह्मण आये उनमें दो तीन तिवारी भी थे। उनसे पूछा गया. उन्होंने कहा कि इस नाम का ग्रंथ भिंड में किसी के यहां नहीं है। कुछ पंडित इनमें वृद्ध भी थे उन्होंने कहा कि पचास वर्ष से हमको होश है हमने नहीं सुना कि इस नाम का ग्रंथ भिंड में रहा। तिवारियों से जब पूछा तब उन्होंने बतलाया कि कोई तिवारी के यहां ऐसा पुस्तक नहीं। फिर हमने पूछा कि कभी लखुना के राव साहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबे यहां आये ? और उन्होंने तिवारियों के यहां कोई पुस्तक देखी ? इस पर शिवप्रसाद तिवारी ने जवाब दिया कि वे बड़े आदमी आये होंगे तो स्टेट के प्रबन्ध में ठहरे होंगे, हमें उनके आने की खबर नहीं, मगर तिवारियों के यहां पुस्तक नहीं देखी। भिंड में संजीवनी नामक पुस्तक न रहने पर भी झूठा लेख लिख कर जो संसार को धोका दिया है इस धोका देने की तनक भी लज्जा आर्यसमाजियों को नहीं है, यह बड़े तअज्जुब की बात है।

[घ] स्वामी दयानन्द जी महाभारत को चौबीस हजार बतलाते थे किन्तु सत्यार्थप्रकाश का लेखक व्यासकृत महाभारत की संख्या चार हजार ही बतलाता है एवं फिर महाभारत की संख्या चार हजार होने में कोई प्रमाण नहीं देता। हम सत्यार्थप्रकाश के लेखक से पूछते हैं कि तुमने विश्वामित्र, मतंग, कुन्ती, माद्री, अम्बा, अम्बालिका और दासी का नियोग ये कथायें उन्हीं चार हजार श्लोकों में से ली हैं या उनसे बाहर की हैं ? फिर तुमने षष्ठ समुल्लास के राजधर्म में शुक्रनीति तथा इस झूठे महाभारत के पढ़ने की आज्ञा क्यों दी ? एवं अष्टम समुल्लास में निराकार की सन्तान और भारतवर्ष के आरंभिक राजा जो लिखे वे चार हजार श्लोकों के अन्दर आ गये ? आर्यसमाज की चालाकी है कि जब वह प्रमाण दे तब तो ग्रंथ सही और जब सनातनधर्मी उसी ग्रंथ का प्रमाण दें तब ग्रंथ दूसरों का बनाया तथा मानने के योग्य नहीं रहता।

क्या भूतल पर कोई आर्यसमाजी ऐसा मौजूद है कि जो महाभारत के चार हजार ही श्लोक व्यास जी ने बनाये इसका सबूत दे दे, कोई नहीं दे सकता, झूठी बात को कोई किस प्रकार सत्य कर देगा ?

जैनियों की नकल

स. प्र. पृ. ३०६ पं. १८–इन लोगों ने जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों के सदृश चौबीस अवतार मन्दिर और मूर्तियां बनाई ।

वि०—इस लेख के लिखने का प्रयोजन यह है कि वेद जैनियों के बाद बना, क्योंकि अवतार और मूर्तिपूजा जैनियों की नकल है। अवतार और मूर्तिपूजा पुराणों में ही नहीं है वरन् वेद में है इसके लिये 'वेदसिद्धान्त परिचय' का 'ईश्वर स्वरूप' और 'मूर्तिपूजा' देखो।

देवी द्वारा संसार रचना

स. प्र. पृ. ३०७ पं. ३–देवी भागवत में श्री नामा एक देवी स्त्री जो श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है उसी ने सब जगत् को बनाया ।

वि०—यह कथन कहां का है इसका प्रमाण सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने नहीं दिया, यह बात बुरी है तो आर्यसमाज को वेद छोड़ देना होगा क्योंकि वेद में भी यही लिखा है अंभृण ऋषि की वाक् नामवाली लड़की कहती है कि—

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥

ऋ० मंड० १० अ० १० सू० १२५ मं० ५

मैं ही आप यह कहती हूँ कि सेवित है देवताओं और मनुष्यों से, जिसको मैं चाहती हूँ उस उसको उत्तम बनाती हूँ, उसको ब्रह्मा, उसको ऋषि, उसको मेधावी बनाती हूँ। वेद ने लिखा है कि—

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना संबभूव ॥

ऋ० मं० १० सू० १२५ मं० ८

लक्ष्मी माया का वाक्य है कि मैं ही सब भुवनों को उत्पन्न करती, वायु के समान चलती हूँ स्वर्ग और पृथ्वी से परे जो पुरुष है उतनी ही और उससे युक्त मैं महिमा से नानारूपवाली हुई हूँ।

ईश्वरभक्ति झगड़ा

स. प्र. पृ. ३०६ पं. २–

शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः । विष्णोः परमात्मनोऽयंभक्तो वैष्णवः । गणपतेः सकल जगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः । भगवत्या वाण्या अयं सेवकः भागवतः । सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः ।

ये सब रुद्र, शिव, गणपति, सूर्यादि परमेश्वर के और भगवती सत्य-भाषणयुक्त वाणी का नाम है । इसमें बिना समझे ऐसा झगड़ा मचाया है ।

वि०—सत्यार्थप्रकाश का लेखक टट्टी की ओट में वेद का क्यों खण्डन करता है, साफ लिखे कि वेद झूठा है। शिव, विष्णु, दुर्गा, गणेश इनकी भक्ति और पूजन करना यह वेद का लेख है इसके लिये 'वेदसिद्धान्त परिचय' का 'मूर्तिपूजा' शीर्षक लेख पढ़ लें।

नाम माहात्म्य

स. प्र. पृ. ३१४ पं. २२–नाम स्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता जैसा कि मिशरी २ कहने से मुँह मीठा और नीब २ कहने से कड़ुवा नहीं होता ।

वि०—इसका उत्तर हम सप्तम समुल्लास के "अघनाशन" प्रकरण में लिख आये हैं पाठक वहां ही पढ़ लें।

जैनियों से मूर्तिपूजा

स. प्र. पृ. ३१३ पं. १–(प्रश्न) मूर्तिपूजा कहां से चली? (उत्तर) जैनियों से। (प्रश्न) जैनियों ने कहां से चलाई? (उत्तर) अपनी मूर्खता से।

वि०—इस लेख का प्रयोजन भी वेदों को जैनियों के बाद बनना सिद्ध करना है। मूर्तिपूजा वेदों में ही है प्रमाण यह है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मा मृतात्॥

निरुक्त परिशिष्ट अ० २

इसके अर्थ में आर्यसमाजी पं० राजारामजी शास्त्री प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर लिखते हैं कि "हम अग्नि, चन्द्र और सूर्य इन तीन नेत्रोंवाले रुद्र परमात्मा को पूजते हैं जो पुण्यगंध से युक्त है, धन धान्यादि की पुष्टि का बढ़ानेवाला है 'जिससे कि उसकी कृपा से खरबूजे की न्याईं हम बन्धन से छूटें, मत अमृत से"। जब आर्यसमाजी पंडितों ने वेद में मूर्तिपूजा मान लिया और सत्यार्थप्रकाश के लेखक कहते हैं कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली तब वेद जैनियों के बाद का बना हुआ ठहरा या नहीं? अपने धर्मपुस्तक वेद को नवीन बनाना अपने हाथ से अपनी नाक काटना है।

मूर्तिपूजा

स. प्र. पृ. ३१४ पं. ५–जब परमेश्वर निराकार सर्वत्र व्यापक है तब उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती।

वि०—ईश्वर का निराकार होना यह सत्यार्थप्रकाशलेखक के दिमाग में, सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाजियों की बुद्धि में है किन्तु इस सुफेद झूठ को वेद नहीं मानते जैसे बर्फ और पानी जल के दो रूप हैं और जैसे निराकार एवं साकार अग्नि के दो रूप हैं इसी प्रकार निराकार और साकार ईश्वर के दो रूप हैं इसके लिये 'वेदसिद्धान्त परिचय' के 'अभिन्न निमित्तोपादानकारण' और 'ईश्वर स्वरूप' शीर्षक लेख पढ़ने चाहिये। सत्यार्थप्रकाश का लेखक कहता है कि ईश्वर की मूर्ति नहीं बन सकती और वेद

कहता है कि बनती है, इन दो में कौन झूठा ? मूर्ति बनने के लिये 'वेदसिद्धान्त परिचय' का 'मूर्तिपूजा' शीर्षक लेख पढ़ो।

मूर्ति में ईश्वर की भावना

स. प्र. पृ. ३१५ पं. २०—जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ाके एक छोटी सी झोपड़ी का स्वामी मानना, देखो यह कितना बड़ा अपमान है ? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्प पत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिस के क्यों लगाते ? धूप को जला के क्यों देते ? घंटा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर नमाते ? अन्न जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते ? जल में है, स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की ? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य की करते हो तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ? अब कहिये भाव सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण रजतादि, पाषाण में हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेन में मोती, जल में घृत, दुग्ध, दधि आदि और धूलि में मैदा, शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते वह क्यों होता ? और सुख की भावना सदैव करते हो वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मर जाते हो ? इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना कहते हैं, जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना, और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है।

वि०—[क] विद्वान् मनुष्य चूल्हे में रोटी पकाता हुआ भी विद्या के बल से अग्नि को सर्वव्यापक समझ रहा है उसी प्रकार हम मूर्तिपूजा करते हुये भी ईश्वर को सर्वव्यापक जानते और मानते हैं। एक शंकर का भक्त शंकर का पूजन करता हुआ कहता है कि—

त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिंगात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन्॥

हे देव! हे भव! हे स्मरारे! यह जगत् तुमसे उत्पन्न हुआ है और हे मृड! हे विश्वनाथ! यह जगत् तुम्हीं में ठहरा है, हे ईश! हे हर! हे चराचर विश्वरूपिन्! यह लिंगात्मक जगत् तुम्हीं में लय होता है। देखिये यह भक्त पूजन करता हुआ भी सर्वव्यापक ईश्वर के गुणों का वर्णन कर रहा है। एक यही स्तुति ऐसी नहीं वरन् हमारी समस्त स्तुतियों में ही सर्वव्यापक ईश्वर के गुणों का वर्णन रहता है और मूर्ति में व्यापक तथा सर्वव्यापक को हम एक समझते हैं। हम पूजा करते हुये भी जब ईश्वर को सर्वव्यापक समझते हैं तब अपमान का प्रश्न हमारे ऊपर लागू नहीं हो सकता। [ख] व्यापक मानने से हमको समझाया गया कि तुम पुष्पादि चढ़ाने का कृत्य क्यों करते हो? व्यापक मानने पर जो आपत्ति हम पर आती है वही आर्यसमाज पर भी आती है क्योंकि आर्यसमाज भी तो ईश्वर को व्यापक मानती है? एक दिन इसी आपत्ति को लेकर एक आर्य उपदेशक ने हमें सुनाया कि—

तुम्हीं हो मूर्ति में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
कहो भगवान पर भगवान भला क्योंकर चढ़ाऊँ मैं॥

हमने इसके उत्तर में कह दिया कि—

तुम्हीं हो पेट में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो भोजन में।
कहो भगवान मैं भगवान भला क्योंकर धँसाऊँ मैं॥

मूर्ति में भी भगवान् है और फूल में भी भगवान् है, हम भगवान् को भगवान् पर चढ़ाते हैं तो आर्यसमाजी भी कम नहीं। गेहूं में भी ईश्वर और खेत में भी ईश्वर,

आर्यसमाजी ईश्वर में ईश्वर बो कर गेहूँ का पेड़ पैदा करते हैं उसमें भी ईश्वर, दो ईश्वरों को मिलाकर तीसरे नये ईश्वर को पैदा करना क्या यह आर्यसमाजियों का कर्तव्य निन्दनीय नहीं है ? गेहूँ के पकने पर गेहूँ के पेड़ को काटते हैं, गेहूँ के पेड़ में भी ईश्वर और काटने के हथियार में भी ईश्वर, जब ईश्वर से ईश्वर कटेगा तो क्या आर्यसमाजियों को ईश्वर के काटने की हत्या न लगेगी ? इसके पश्चात् जब गेहूँ निकाल लेते हैं तब उन गेहुओं को चक्की में पीसा जाता है, गेहूँ में भी ईश्वर और चक्की में भी ईश्वर, ईश्वर के ईश्वर से पिसने का पाप आर्यसमाजियों के शिर पर चढ़ बैठा। जब रोटी बन कर आर्यसमाजियों के आगे आती है तब आर्यसमाजी हाथ से रोटी के टुकड़े बनाते हैं, हाथ में भी ईश्वर और रोटी में भी ईश्वर, तो क्या यहां आर्यसमाजियों को ईश्वर के टुकड़े करने का पाप न लगेगा ? फिर रोटी को मुँह में डाल कर दांतों से चबाते हैं। दांतों में भी ईश्वर और रोटी के टुकड़े में भी ईश्वर। यहां आर्यसमाजियों ने ईश्वर से ईश्वर चबा कर उसकी चटनी कर डाली, फिर पेट में निगल जाते हैं। पेट में भी ईश्वर और भोजन में भी ईश्वर। यहां आर्यसमाजियों ने ईश्वर में ईश्वर धंसा दिया। पहिले आर्यसमाजी इसको छोड़ दें और फिर हमसे कहें कि तुम मूर्ति पर फूल मत चढ़ाओ, हाथ मत जोड़ो। आर्यसमाजियों का यह ध्येय है कि जिसको आर्यसमाजी करें वह पुण्य का काम, उसी को दूसरा करे तो वह बेवकूफ। जरा दो हफ्ते के लिये आर्यसमाजी ईश्वर में ईश्वर डालना छोड़ दें फिर देखो कितने आर्यसमाजी संसार में रहते हैं। आर्यसमाजियों का कथन है कि हम यह सब काम जीवन रखने के लिये करते हैं तो सनातनधर्मियों का कथन है कि हम सद्गति के लिये करते हैं। सत्यार्थप्रकाश के लेखक की नास्तिकताभरी शंका का गोबर निकला या नहीं, इस पर आर्यसमाजी ध्यान दें। [ग] इसके आगे लिखा कि तुम व्यापक की पूजा करते हो या व्याप्य की ? इसके उत्तर में हम यह कहते हैं कि हम व्यापक की पूजा करते हैं। किसी दिन किसी एक रईस का दूर देश से बूढ़ा बाबा आया। रईस बाबा को आते देख खड़ा हो गया, चरणस्पर्श किये, बाद में बाबा को कुर्सी पर बिठलाया। थोड़ी देर में साबुन-तेल और गर्मजल मंगवा कर बाबा को स्नान करवाया। स्नान के पश्चात् कई प्रकार के षटरस भोजन करवाये। भोजन के बाद बाबा चलने लगे। रईस ने एक थान मलमल और ५१) रुपये बाबा की भेंट किये। बाबा ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। यहां सिद्ध है कि व्याप्य के जरिये से व्यापक का पूजन होता है। पहिले चरण छुये, चरण हाड मांस, फिर कुर्सी पर बिठलाया, कुर्सी पर बाबा का व्याप्य शरीर बैठा, तेल साबुन पानी से व्याप्य शरीर के स्नान हुये, भोजन व्याप्य

शरीर ने खाया, रुपये और थान हाथ ने लिये, यहां पर व्याप्य के सम्मान से व्यापक जीवात्मा बाबा ने आशीर्वाद दिया। इसी प्रकार व्याप्य मूर्ति के पूजन से व्यापक परमात्मा प्रसन्न होता है। व्याप्य के बिना व्यापक का पूजन हो ही नहीं सकता। जो व्याप्य के बिना व्यापक का पूजन होना मानते हैं भला उनकी बुद्धियां पशुओं से मुकाबला न करेंगी तो और किनकी करेंगी। [घ] भावना दो प्रकार की होती है एक सद्भावना और दूसरी असद्भावना। तिलों में तेल, दूध में घृत, बनौले में रुई यह सद्भावना है क्योंकि इन पदार्थों में तीनों चीजें व्यापक हैं इसलिये यह सद्भावना है और बालू में चीनी एवं जल में घृत यह असद्भावना है क्योंकि बालू-जल में चीनी-घृत त्रिकाल में भी नहीं। जिस प्रकार तिलों में तेल, दूध में घृत, बनौले में रुई सद्भावना है उसी प्रकार मूर्ति में ईश्वर मानना सद्भावना है क्योंकि मूर्ति में ईश्वर व्यापक है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने जो असद्भावना के उदाहरण दिये इससे मालूम होता है कि इसकी बुद्धि तरक्की करती हुई ऊँट के गले से भी कुछ लम्बी हो गई है।

रुद्राक्ष-तुलसी

स. प्र. पृ. ३०८ पं. १६–रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में तिलक, कण्ठी, चन्दन का खण्डन किया और अभी इसी समुल्लास में भस्म, रुद्राक्ष में खण्डन लिखा। अब फिर खण्डन लिखते हैं। मालूम होता है कि होश में नहीं। यहां पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने झूठा समझ वेद को तो दूर फेंक दिया और अपनी बुद्धि को ईश्वर की बुद्धि से अधिक समझ अपनी बुद्धि की तर्कों को स्वतःप्रमाण मानना आरम्भ कर दिया, यह कोरी नास्तिकता है। यदि रुद्राक्ष, तुलसी, चन्दन धारण करना जंगली मनुष्यों का काम है तो इनका खंडन करना बोझा ढोनेवाले पशुओं का काम है। रुद्राक्ष, तुलसी आदि के धारण का असली अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार पशु का गला रस्सी से बंध वह पशु स्वामी के आधीन होता है इसी प्रकार रुद्राक्ष और तुलसी धारण करनेवाले अपने गले को ईश्वर के नियमों में बांध ईश्वर की शरण में जाते हैं। रुद्राक्ष से शीतला और तुलसी से मलेरिया आदि ज्वर दूर होते हैं। चन्दन से दिमाग तर होता है इसका प्रमाण हम तृतीय समुल्लास में दे आये फिर जंगलीपन कैसा ?

देवता का आवाहन

स. प्र. पृ. ३१६ पं. १७–जो मंत्र को पढ़ कर आवाहन करने से देवता आ जाता है तो मूर्ति चेतन क्यों नहीं हो जाती ? और विसर्जन करने से चला क्यों नहीं जाता ? और वह कहां से आता और कहां जाता है। सुनो अंधो ! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मंत्रबल से परमेश्वर को बुला लेते हो तो उन्हीं मंत्रों से अपने मरे हुये पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते ? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते। सुनो भाई भोले भाले लोगो ! ये पोप जी तुमको ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

वि०—सत्यार्थप्रकाश का लेखक भयंकर नास्तिक है। मूर्तिपूजकों के खंडन के बहाने से स्वामी दयानन्दजी के लेख और वेद की धज्जियां उड़ा रहा है। क्या आर्यसमाजी इस पर ध्यान देंगे ? स्वामी दयानन्दजी ने आर्याभिविनय में ईश्वर का बुलाना लिखा है "अग्निर्होता १।५" में ईश्वर को बुलाया है वहां पर यह लेख है कि "हमारे हृदय में आप प्रकट हों" फिर "मानस्तोके १।५१" में लिखा है कि "हम लोग आपको सर्वदैव आह्वान करते हैं, इससे भिन्न "यो विश्वस्य जगतः १।४४" में लिखा है कि "आओ मित्रो भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिलके मरुत्वान् अर्थात् परमानन्द बलवाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गद्गद होके बुलावें" फिर "सोमरारन्धि १।३७" में लिखा है कि "हे सोम्य ! सौख्यप्रदेश्वर ! आप कृपा करके हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। स्वामी दयानन्द का ईश्वर को बुलाना हम दिखला चुके अब वेद का प्रमाण देखिये—

वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥

ऋ० १।१।३।१ (आर्याभिविनय १।७)

आर्याभिविनय में स्वामी दयानन्दजी ने इसका अर्थ यह लिखा है कि "हे अनन्त बल परेशवायो दर्शनीय ! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो। हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोमवल्यादि ओषधियों का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आप के लिये अलंकृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं और वे सब आप के समर्पण किये गये हैं उनको आप स्वीकार करो।

सर्वात्मा मे पान करो"। इस मंत्र पर निरुक्त भी है, यही अर्थ निरुक्त ने लिखा है। जब स्वामी दयानन्दजी और वेदमंत्र को लेकर आर्यसमाजी ईश्वर को बुलावें तब तो वह दौड़ा चला आवे और जब हम बुलावें तो हम बेवकूफ और झूठे हो जायं। आर्यसमाजियों का बुलाया ईश्वर आता है इस लिये (१) ईश्वर के आने के स्थान का चेतन होना, (२) वह कहां से आता और कहां जाता है, (३) मरे हुये पुत्र का बुलाना, (४) शत्रु के आत्मा का विसर्जन करके उसका मारना ये चारों प्रश्न आर्यसमाजियों की खोपड़ियों में चढ़ बैठे अब किसी के भी उतारे नहीं उतरेंगे। जब वेद ने ईश्वर के आवाहन को माना है तब वेद पर पानी फेर संसार को नास्तिकता में फांस संसार से चंदा मांग यह ठग्गी करना आर्यसमाज का काम है।

जाली मंत्र

स. प्र. पृ. ३१६ पं. २६–

प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।
आत्मनेहा गच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा।
इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इत्यादि वेद मंत्र हैं क्यों कहते हो नहीं हैं ! (उत्तर) अरे भाई ! बुद्धि को थोड़ी सी तो अपने काम में लाओ ! ये सब कपोल कल्पित वाममार्गियों की वेदविरुद्ध तंत्र ग्रंथों की पोपरचित पंक्तियां हैं वेद वचन नहीं। (प्रश्न) क्या तंत्र झूठा ? (उत्तर) हां सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्ति विषयक वेदों में एक मंत्र भी नहीं वैसे "स्नानं समर्पयामि" इत्यादि वचन भी नहीं अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषाणादि मूर्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गंधादिभिरर्चयेत्" अर्थात् पाषाणादि की मूर्ति बना मंदिरों में स्थापन कर, चंदन अक्षतादि से पूजे ऐसा लेश मात्र भी नहीं है।

वि०—[क] यहां पर सत्यार्थप्रकाश का लेखक आपही प्रश्नकर्ता और आपही उत्तरदाता है, नवीन जाली मंत्र बनाकर जो प्रश्न में तुमको वेदमंत्र बतला रहा है यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक की अनधिकार चेष्टा और भयंकर पाप है, फिर उत्तर के समय इन जाली मंत्रों को तांत्रिक मंत्र लिखा यह भी झूठ है। चैतन्यानन्द ब्रह्मचारी जिनके समस्त वाममार्ग के ग्रंथ देखे हुये हैं उनका कथन है कि ये मंत्र वाममार्ग के किसी ग्रंथ में नहीं। [ख] हम वाममार्ग की हिमायत नहीं लेते किन्तु सत्यार्थप्रकाश

के लेखक ने वाममार्ग की असत्यता में एक भी प्रमाण न दिया और वाममार्ग को असत्य लिख दिया यह भी कोई इन्सानियत है ? अगर इसमें विद्या थी तो दो चार हेतु देकर वाममार्ग की असत्यता सिद्ध करना और पीछे से वाममार्ग को असत्य कहता किन्तु सत्यार्थप्रकाश के लेखक को इसका घमंड है कि आर्यसमाजी संस्कृत लिखने पढ़ने के दुश्मन हैं एवं वे हमारे ही लेख को वेद मानते हैं फिर हमको झूठ लिखने में किसका डर ? [ग] यदि ईश्वर का आवाहन नहीं होता तो सत्यार्थप्रकाश का लेखक दयानन्द और निराकार ईश्वर की खबर क्यों नहीं लेता. इन दोनों ने अपनी बेवकूफी से जो ईश्वर का आवाहन लिख दिया. ऐसे अनुचित लेख लिखनेवालों की थप्पड़ और डंडों से आर्यसमाज खबर ले तो अच्छा है। [घ] प्राणप्रतिष्ठा होती कब है, आरंभ से अन्त तक जितना भी प्रतिष्ठा का कृत्य है उस कृत्य का अभिप्राय मूर्ति में ईश्वरीय शक्ति लाना है, जो सत्यार्थप्रकाश का लेखक इसको प्राणप्रतिष्ठा समझता है तो इस विषय में हम यही कहेंगे कि इसकी दृष्टि में संस्कृत का काला अक्षर भैंसे के बराबर है। [ङ] पाषाणादि मूर्तियों पर जो कटाक्ष उठाया है यह इस लिये है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक की सात पीढ़ी ने भी वेद नहीं देखे। महावीर प्रजापति की मिट्टी की मूर्ति बनाना और उसका पूजन करना शतपथ ने बड़े विस्तार से दिया है इसके लिये "वेदसिद्धान्त परिचय" का "मूर्तिपूजा" शीर्षक लेख पढ़ो।

वेद में मूर्तिपूजा का निषेध

स. प्र. पृ. ३१७ पं. ८–(प्रश्न) जो वेदों में विधि नहीं तो खंडन भी नहीं है और जो खंडन है तो "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" मूर्ति के होने ही से खंडन हो सकता है (उत्तर) विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है, क्या अपूर्व विधि नहीं होता ! सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥१॥ यजु० अ० ४० मं. ९
न तस्य प्रतिमा अस्ति।२। यजु० अ० ३२ मं० ३

पुनः पृ. ३१७ पं. २६–जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुये कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि

के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिरके महा क्लेश भोगते हैं।१। जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है।२।

वि०—सनातनधर्मी प्रकृति के कार्य और प्रकृति को नहीं पूजते किन्तु प्रकृति में व्यापक जो मौलिक वस्तु ब्रह्म है उसको पूजते हैं, इनके पूजन में आवाहन, पाद्य, अर्घ, स्नान, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, आर्ती आदि समर्पण के जितने भी मंत्र हैं उन सब में ईश्वर के गुणों का वर्णन है अतएव ये ईश्वरपूजक हैं इसको सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने भी स्वीकार किया है। कुरान समीक्षा नं० ३० में लिखा है कि "जिनको तुम बुतपरस्त समझते हो वे भी उन उन मूर्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं"। नरक में तो आर्यसमाजी जायँगे क्योंकि ये लोग "घृतेन सीता मधुना समज्यताम्० यजु० अ० १२ मं० ७०" के दयानन्द भाष्यानुसार खेत के पटेले जो प्रकृति का कार्य है उसका जल, दुग्ध, शहद, चीनी, घी से पूजन करके उससे जल, दुग्ध, शहद, चीनी, घी मांगते हैं। यहां पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक चोरी और सीनाजोरी से काम ले रहे हैं, इस मंत्र के अर्थ में (१) उब्बट लिखते हैं कि "न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते" उस ईश्वर कि प्रतिमानभूत तुल्यता रखनेवाला कोई नहीं है। (२) महीधर लिखते हैं कि "प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तु नास्ति" उस ईश्वर की प्रतिमा प्रतिमान तुल्यतावाली कोई वस्तु नहीं है (३) आदि जगद्गुरु शंकराचार्य लिखते हैं कि "न तस्य प्रतिमा अस्तीति ब्रह्मणोनुपमानत्वं दर्शयति" "न तस्य" इस मंत्र में ब्रह्म की तुल्यता का अभाव दिखलाया है (४) गिरिधर ने भाषा में "प्रतिमा-समान" लिखा है (५) मिश्रभाष्य में "प्रतिमा-तुल्यता न" लिखी है (६) स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि "(प्रश्नः) वेदेषु प्रतिमा शब्दोस्ति न वा (उत्तरम्) अस्ति। (प्र०) पुनः किमर्थो निषेधः (उ०) नैव प्रतिमार्थेन मूर्तयो गृह्यन्ते। किं तर्हि परिमाणार्था गृह्यन्ते" देखो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के मूर्तिपूजा निषेध विधि विषय के "सपर्यगात्" मंत्र का भाष्य।

(प्रश्न) वेदों में प्रतिमा शब्द है या नहीं? स्वामी जी उत्तर देते हैं कि है। फिर प्रश्न करनेवाला कहता है कि फिर तुम प्रतिमा पूजन का निषेध क्यों करते हो? उत्तर देते हैं कि प्रतिमा के अर्थ से मूर्तियों का ग्रहण नहीं होता। फिर (प्रश्न) क्या होता है? (उत्तर) परिमाण अर्थ लेना।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने वेद के अन्य प्रमाणों से उव्वट, महीधर, आदि जगद्गुरु शंकराचार्य, गिरिधर, मिश्र एवं स्वामी दयानन्द के लेख को काटा नहीं और अपने अर्थ में कोई पुष्टि दी नहीं इतने पर अपने अर्थ को सच मान लिया यह सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक की सीनाजोरी है। भारतभूमि ने क्या कोई ऐसा आर्यसमाजी पैदा नहीं किया जो स्वामी दयानन्द के लेख की धज्जियां उड़ा के मूर्खानन्द सत्यार्थ-प्रकाश के लेखक के लेख को सही सिद्ध कर दे, ऐसा किये बिना मूर्तिपूजा का खण्डन ऐसा उड़ेगा जैसे कि गधे के शिर से सींग उड़े।

मंत्र में हिरण्यगर्भः–"मा मा हि ॐ सीत्" और "यस्मान्न जातः" इन तीन मंत्रों की प्रतीक है। मंत्रार्थ यह है कि उस परमात्मा के सदृश कोई वस्तु नहीं जो बड़े भारी यशवाला है और हिरण्यगर्भः– मा मा हि ॐ सीत्, यस्मान्न जातः इन मंत्रों में जिसका वर्णन है।

अब पहिले 'हिरण्यगर्भः' मंत्र को टटोलो, यह मंत्र और इसका अर्थ हमने "वेदसिद्धान्त परिचय" के 'ईश्वर स्वरूप' शीर्षक लेख में लिख दिया पाठक वहां ही देख लें। इसी मंत्र से शतपथ ने मूर्तिपूजा का विधान लिखा है, शतपथ यह है—

अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिः सोग्निः स यजमानः।
स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतꣳ
हिरण्यममृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः॥

शत० ७।४।१।१५

स्थूल प्रपंचाभिमानी विराट् पुरुष ही अग्निरूप है और सूक्ष्म प्रपंचाभिमानी हिरण्यगर्भ है वह हिरण्यगर्भरूप ही यजमान है और चयन को प्राप्त अग्निपुरुष रूप से संस्कृत होती है उसी का प्रतिकृति रूप हिरण्य पुरुष है इस कारण वह पुरुषाकृति के योग्य है उभय प्रतीक में एक ध्येय को प्रतिकृति कहते हैं।

इसके ऊपर कात्यायन कल्पसूत्र लिखता है कि—

उत्तानं प्राञ्चꣳ हिरण्यपुरुषं तस्मिन्हिरण्यगर्भ इति।

१७।४।३

रुक्म के ऊपर पूर्वाभिमुख उत्तिष्ठमान हिरण्यपुरुष को "हिरण्यगर्भः" इस मंत्र से सुवर्ण फलक के ऊपर स्थापन करे।

इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि—

अथ साम गायति एतद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृशमेवापश्यन्यथैतच्छुष्कं फलकम् ।२२। ते अब्रुवन् उपतज्जानीत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति ते अब्रुवंश्चेतयध्वमिति चितिमिच्छतेति वा व तदब्रुवंस्तदिच्छत यथास्मिन्पुरुषे वीर्यं दधामेति ।२३। ते चेतयमाना एतत्सामापश्यँस्तदगायँस्तदस्मिन्वीर्यमधुस्तथैवास्मिन्नयमेतद्दधाति पुरुषे गायति पुरुषे तद्वीर्यं दधाति चित्रे गायति सर्वाणि हि चित्राण्यग्निस्तमुपधाय न पुरस्तात्परीयान्नेनमायमग्निर्हि न सदिति ।२४। अथ सर्पनामैरुपतिष्ठत इमे वै लोकाः सर्पाः ॥

शत० ७।४।१

जब देवताओं ने हिरण्मय पुरुष को सुवर्ण फलक के ऊपर स्थापन किया तब यह परामर्श किया कि वह सुवर्णपुरुष चेतना से रहित शुष्क फलक की समान है। तब फिर सब बोले कि इस हिरण्मय पुरुष में शक्ति प्रादुर्भाव के निमित्त परामर्श करो सब देवताओं ने इस बात को अनुमोदन किया कि इसमें वीर्य स्थापन करें वह देवता मीमांसा करते हुये तब (नमोस्तु सर्पेभ्यो० या इषवो यातु० ये वामी रोचने०) इन तीन मंत्ररूप साम की उपलब्धि को प्राप्त हुये और इस तीन मंत्ररूप साम को गाया तब उस हिरण्मय पुरुष में वीर्य अर्थात् फलप्रदायक शक्ति को स्थापन किया।

क्या इस मूर्तिपूजा का खण्डन करनेवाला संसार में पैदा हो गया? जिस प्रकार 'हिरण्यगर्भः' मंत्र से मूर्तिपूजन सिद्ध है इसी प्रकार 'मा माहिꣳसीत्' और "यस्मान्न जातः" इससे भी मूर्तिपूजा सिद्ध होती है। संसार के अधिक मनुष्य वेद से अनभिज्ञ हैं इसलिये "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इस मंत्र से मूर्तिपूजा का खण्डन दिखला सत्यार्थप्रकाश का लेखक पाप की गठरी शिर पर धरता है जिसका भयंकर फल उसको भोगना पड़ेगा। केनोपनिषद् की "यद्वाचानभ्युदितम्" इत्यादि जो पांच श्रुतियां प्रमाण में रक्खी हैं उनका मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं, वे सब अरूप ब्रह्म के महत्व को कह रही हैं।

मूर्तिपूजा पर पहिली शंका

स. प्र. पृ. ३२० पं. ३–मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है।

वि०—मूर्तिपूजा को जो गहरी खाई बतलाई इसमें क्या कोई वेदमंत्र दिया? नहीं दिया, सत्यार्थप्रकाश का लेखक अपने नास्तिक दिमाग से मूर्तिपूजा को खाई बतला दे तो क्या आश्चर्य है। चार्वाक् आदि नास्तिकों ने तो खुल्लमखुल्ला वेदों को धूर्तों का बनाया कहा। सत्यार्थप्रकाश के लेखक में इतना साहस नहीं इसलिये यह छिप छिप कर वेद का खंडन करता है। जिन्होंने भारतीय इतिहास को पढ़ा है वे जानते हैं कि मूर्तिपूजा के प्रभाव से ही मार्कंडेय मृत्यु को दूर फेंक अमर हो गया। मूर्तिपूजा से अम्बरीष और ध्रुव सद्गति को पा गये। मूर्तिपूजा से ही उद्धव और जनक ज्ञानी हुये। यदि मूर्तिपूजा से कोई लाभ नहीं तो आर्यसमाज ओखली मूसल को भोग क्यों लगाता है?

मूर्तिपूजा पर सोलह शंका

स. प्र. पृ. ३२० पं. १६–साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण, कर्म, स्वभाव का विचार करता करता आनंद में मग्न होकर स्थिर हो जाता है। और जो साकार में मन स्थिर होता तो सब जगत का मन स्थिर हो जाता क्योंकि जगत् में मनुष्य स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है परंतु किसी का मन स्थिर नहीं होता जब तक निराकार में न लगावें, क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है इसलिये मूर्तिपूजन करना अधर्म है।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक वेद को तिलांजलि दे अपने मन से ऐसी झूठी गप्पें लिखते हैं कि जिनकी पुष्टि में किसी पुस्तक का प्रमाण ही नहीं मिलता। यहां पर दलीलों से जो आर्यसमाज का मजहब सच्चा सिद्ध करते हैं क्या आर्यसमाज के मत में खाली दलीलें ही स्वतःप्रमाण और आर्यसमाज की पुष्टि करनेवाली हैं? [ख] स्थूल पदार्थ को सूक्ष्म का ज्ञान नहीं होता जैसे आँख, नाक, कान आदि इन्द्रियों

को मन का ज्ञान नहीं उसी प्रकार सावयव मन निरवयव ब्रह्म के ज्ञान से बहुत दूर रहता है, मन सावयव है इस विषय में यह प्रमाण है कि—

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माꣳसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥१॥

छान्दोग्य० प्र० ६ खं० ५

खाया हुआ अन्न तीन विभागों में विभक्त होता है। अन्न का जो स्थूलांश है उसका पुरीष (मल) बनता है और जो मध्यमांश है उसका मांस तथा सूक्ष्मांश का मन बनता है। इस वेद प्रमाण से मन का सावयव स्थूल होना सिद्ध है। वेद कहता है कि स्थूल मन सूक्ष्म ब्रह्म में नहीं जा सकता, प्रमाण यह है—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मा० ब० २ अनु० ६

मन और वाणी ब्रह्म की खोज में चले किन्तु दोनों ही ब्रह्म को नहीं पा सकते इस कारण दोनों वापिस लौट आये। सत्यार्थप्रकाश के लेखक क्षण क्षण में अपने लिखे को भूल जाते हैं नहीं मालूम कैसा दिमाग है, अभी मूर्तिपूजा में केनोपनिषद् की श्रुतियां देते हुए लिखा था कि "यन्मनसा न मनुते" जिसको मन नहीं जान सकता और अब कहते हैं कि मन निराकार ब्रह्म में लगता है यह आश्चर्य है। जब 'योगदर्शन' ने यह जाना कि मन निराकार ब्रह्म का ध्यान नहीं कर सकता तब साकार का ध्यान लिखा—

यथाभिमत ध्यानाद्वा।

योगदर्शन समाधिपाद सू० ३९

जिसको जो देवता प्रिय हो उसका उसी में ध्यान करने से चित्त स्थिर होता है।

परमाणुपरममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः।

योगदर्शन समाधिपाद सू० ४०

परम अणु से लेकर परम महत्व तक इस मन का स्थिरत्व होता है। यहां पर योगदर्शन ने साकार में ही मन का स्थिर होना बतलाया। सत्यार्थप्रकाश के लेखक कहते हैं कि यदि साकार में मन स्थिर होता तो सांसारिक पदार्थ धन, पुत्र, कलत्र में मनुष्यों का मन स्थिर हो जाता। कंजूसों का मन धन में इतना स्थिर होता है कि वे प्राण जाने की नौबत आने पर भी धन देना नहीं चाहते। पुत्र में मन कैसा लगता है

इसके लिये पाठक चित्रकेतु और अजामील की कथा पढ़ लें। स्त्री के लिये मजनूं और पुरूरवा सर्वोपरि गिने जाते हैं। सत्यार्थप्रकाश के लेखक भी साकार में ही मन का स्थिर होना लिख आये हैं। पृ० १८७ पं० ११ में लिखा है कि "मन को नाभि प्रदेश में वा हृदय, कंठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर" अब लिखते हैं कि मन साकार में स्थिर नहीं होता, यह गिरगिट की भांति रंग क्यों बदला? इस रंग बदलने का कारण यह है कि आर्यसमाजियों को बतलाया कि मूर्ति में मन स्थिर नहीं होता, इस लेख से वे मूर्तिपूजा तो छोड़ ही देंगे और निराकार में मन स्थिर होगा ही नहीं। अब आर्यसमाजी दोनों दीन से भ्रष्ट होकर नास्तिक न होंगे तो और क्या होंगे?

एक शंका का हमने उत्तर दिया है और पन्द्रह शंका इसके नीचे और हैं उनको हम छोड़ते हैं। शंका ऐसी भद्दी हैं कि इनमें अच्छी शंका दश वर्ष की आयु का लड़का बनाले किन्तु शंकाओं में क्रोध और गालियां बहुत हैं। कैसी बेसमझी की शंका हैं इसके लिये हम दूसरी शंका को पाठकों के आगे रखते हैं। (२) "उसमें क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है" इसका उत्तर यह है कि आर्यसमाज लक्षों रुपये प्रतिवर्ष आर्यसमाज के प्रचार में व्यय करती है इसमें गृहस्थों के धन का व्यय बढ़ता है और प्रमाद होता है। भूतल के मनुष्य किरोड़ों रुपया नित्य खर्च करते हैं इससे दरिद्री होते हैं और प्रमाद बढ़ता है, पहिले इन दो कामों को रोको तब मन्दिरों का चर्चा करना। आर्यसमाज कहेगी कि हम धार्मिक प्रचार करते हैं, भूतल के मनुष्य कहेंगे कि हम अपनी शरीररक्षा के लिये भोजन खाते हैं, ऐसे ही वैदिक लोगों का यह जवाब है कि हम भावी सद्गति के लिये मूर्तिपूजा करते हैं, पाठक शेष रही शंकाओं को सत्यार्थप्रकाश में देख लें, देखते ही हंसी आवेगी कि ऐसी भद्दी शंका लिखनेवाला आर्यसमाज के धर्म का प्रवर्तक! इससे अधिक और लज्जा क्या होगी?

मूर्तिपूजा से माता-पिता को दुःख

स. प्र. पृ. ३२३ पं. १५—बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढ़ों ने इसीलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य वा भेट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा।

वि०—आर्यसमाज की दृष्टि में जितने भी सनातनधर्मी हैं वे सब माता पिता से द्रोह करनेवाले हैं, जो लोग धर्मग्रन्थों के अनुसार चलते हैं वे आज भी माता पिता को पहिले भोजन करवा के तब आप खाते हैं और मरने पर भी तीन पीढ़ी तक माता पिता आदि पितरों के लिये भोजन और जलदान देते हैं किन्तु संसार की आंख में धूल झोंकना यह आर्यसमाज का मौरूसी पेशा है उसी प्रकृति से यह दुष्ट लेख लिखा है। माता-पिता से भोजन चुराने के लिये मूर्तिपूजा नहीं वरन् वेद की आज्ञा का पालन करने और अपने भावी जन्म की सद्गति के लिये मूर्तिपूजा है। देखिये वेद क्या लिखता है—

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत्पुरं न धृष्णवर्चत ॥

ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८

हे अध्वर्यादि तुम परमात्मा इन्द्र का (अर्चत) पूजन करो (प्रार्चत) स्तुति विशेष से पूजन करो (प्रियमेधासः) प्यारी बुद्धिवालो तुम (अर्चत) पूजन करो (उत) और (पुत्रकाः) पुत्र भी (अचन्तु) विशेष कर इन्द्र को पूजें (उत) और जैसे (धृष्णु) धर्षणशील, राजा, पिता, गुरु आदि का पूजन करते हो वैसे ही तुम ईश्वर का पूजन करो। अब आर्यसमाजी ही बतलावें कि हम माता, पिता के भोजन चुराने के लिये पूजन करते हैं या वेद की आज्ञा पालन करने के लिये पूजन करते हैं ?

रामेश्वर

स. प्र. पृ. ३२७ पं. २०—रामचन्द्र के समय में उस लिंग वा मंदिर का नाम चिह्न भी न था किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ राम नामक राजा ने मन्दिर बनवा लिंग का नाम रामेश्वर धर दिया है। जब रामचन्द्र सीता जी को ले हनुमान आदि के साथ लंका से चले, आकाश मार्ग में विमान पर बैठ कर अयोध्या को आते थे तब सीता जी से कहा है कि—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।
सेतुबन्ध इति विख्यातम् ॥

वाल्मीकि० रा० लंका कां० सर्ग १२५ श्लोक २०

हे सीते ! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास्य किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा

है उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई और देख यह सेतु हमने बांध कर लंका में आके उस रावण को मार तुझको ले आये इसके सिवाय वहां वाल्मीकि में अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

वि०—[क] 'दक्षिण देश के राम नामक राजा ने मंदिर बनवा लिंग का नाम रामेश्वर धर दिया' यह उल्लेख भारत के किस इतिहास में लिखा है ? नहीं लिखा तो इतिहास के विरुद्ध इस झूटे गपोड़े को हम कैसे सत्य मान लें ? क्या हम अक्षरशून्य आर्यसमाजी हैं कि जो सत्यार्थप्रकाश का लेखक लिख देगा उसी को वेद मान लेंगे। [ख] 'और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे' यह श्लोक के किन अक्षरों का अर्थ है ? श्लोक के भाव को छोड़ और अपने मन के भावों को लिखना क्या यह भी कोई श्लोकार्थ है, ऐसी ऐसी चालाकियां आर्यसमाज को गारत किये बिना न रहेंगी। [ग] फिर वाल्मीकि रामायण के श्लोक लिखते समय सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने श्लोकों की चोरी क्यों की ? जिस सोसाइटी का धर्मप्रवर्तक खुद चोरी करे वह सोसाइटी कैसी होगी इसका निर्णय प्रतिनिधि सभायें करें, पाठ यह है—

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्॥
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम्।
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः॥

युद्ध कां० स० १२५ श्लो० २०। २१

भगवती जनकनन्दनी से प्रभु राम जी कहते हैं कि हे जानकि ! महात्मा सागर का यह सेतुबन्ध तीर्थ दीखता है जो त्रिलोकी में पूजित होगा यह परम पवित्र और महापाप का दूर करनेवाला है पूर्वकाल में इसी तीर्थ पर मेरे स्थापन करने से विभु महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी।

[घ] इन वाल्मीकि के श्लोकों,ने बतलाया कि यह महात्मा सागर का तीर्थ है यह परम पवित्र और त्रैलोक्यपूजित एवं महापाप का नाश करनेवाला है। इस लेख से आर्यसमाज के उस सिद्धान्त की मौत हो गई जिसमें तीर्थों का पूजना आधुनिक और निष्फल बतलाया गया। कहो आर्यसमाजियो ! इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है ? [ङ] यहां पर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने लिख दिया कि "वही जो सर्वत्र विभु व्यापक देवों का देव महादेव परमात्मा है" यहां महादेव को उड़ाया और चालबाजी से परमात्मा अर्थ किया, अस्तु यह लिख दिया कि 'परमात्मा से हमको यहां सब सामग्री

प्राप्त हुई' पहिले तो यह निर्णय करना है कि ईश्वर ने राम जी पर कृपा की तो राम जी कौन हुए ? आर्यसमाज की दृष्टि में वे भले ही मनुष्य हों किन्तु वाल्मीकि की दृष्टि में वे विष्णु हैं, देखिये वाल्मीकीय रामायण—

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवानिदम् ॥१॥
सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः ।
विष्णोः सहायान्वलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ॥२॥

वाल्मी० बा० स० १७

जब विष्णु महात्मा राजा दशरथ के पुत्रपन को प्राप्त हुये तब ब्रह्मा समस्त देवताओं से बोले कि सत्यसंकल्प हमारे हितैषी वीर बलवान् जो विष्णु हैं उनकी सहायता के लिये तुम अपनी इच्छानुसार अपने शरीर धारण करो। जब रामचन्द्र जी भी ईश्वर थे तब तो यही मानना पड़ेगा कि ईश्वर के दूसरे रूप महादेव अर्थात् शंकर जी ने कृपा की। [च] सत्यार्थप्रकाश का लेखक यहां लिखता है कि "सब सामग्री यहां प्राप्त हुई" यह श्लोक के किन अक्षरों का अर्थ है या श्लोक का रूंगा (घलुआ) है ? श्लोक को आगे रख अपने सड़ियल दिमाग में आई हुई इबारत को श्लोक के बहाने से लिखना क्या यह संसार को धोका देना नहीं है ? क्या करें विचारे आर्यसमाजी पढ़े ही नहीं यदि लघु भी पढ़े होते तो इस मिथ्यार्थप्रकाश को दूर फेंक देते।

विलक्षण युक्ति

स. प्र. पृ. ३२६ पं २५—जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहां गई थी ?

वि०—[क] गदर में तोपों से मन्दिर उड़ाये गये कोई इतिहास इसका साक्षी नहीं, इतिहास के विरुद्ध लेख को किस आधार पर सत्य माना ? [ख] जिस समय पेशावर के मजिस्ट्रेट और जज ने अपने अपने फैसले में सत्यार्थप्रकाश को व्यभिचार के पोथे की डिगरी दी तब वह निराकार ईश्वर कहां चला गया था ? तिब्बत में आर्य और दस्युओं की भयंकर लड़ाई हुई वेदपाठी निराकार के भक्त आर्यों की दस्युओं ने अच्छी खबर ली, इतनी मार मारी कि लड़ाई में बचे हुये आर्य दस्युओं की मार से घबराये हुये अपना देश छोड़ कर आर्यावर्त की तरफ भागे, उस समय निराकार ईश्वर कहां चला गया था ? आर्यसमाज के मत में ईश्वर निराकार और सर्वव्यापक

है एक स्थान में किसी मनुष्य ने मैला कर दिया. मैले के नीचे आये हुये ईश्वर उसका कुछ भी न कर सके इसका जवाब आर्यसमाजी यह देते हैं कि ईश्वर पवित्र है और वह प्रारब्ध कर्म के विरुद्ध किसी को हानि नहीं पहुँचाता। बस यही उत्तर हमारा है कि मूर्ति में व्यापक एवं सर्वव्यापक ईश्वर इन झगड़ों से बाहर है और मूर्ति तोड़ने वालों को उनके प्रारब्ध के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहता।

वाममार्गी और जगन्नाथ

स. प्र. पृ. ३२६ पं. १०—जगन्नाथ में वाममार्गियों ने भैरवी चक्र बनाया है क्योंकि सुभद्रा श्रीकृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है उसी को दोनों भाइयों के बीच में स्त्री और माता के स्थान बैठाई है।

वि०—वाममार्गियों की अपेक्षा आपका भैरवी चक्र भी कुछ कम नहीं जो स्त्री के स्थान में माता को बिठलाये देते हो। कौन कहता है कि यह सुभद्रा की मूर्ति है? आप को जहां पर भद्रा या सुभद्रा शब्द मिलेंगे तो क्या इन शब्दों का अर्थ आप कृष्ण की बहिन लेंगे? यदि ऐसा है तब तो "सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्० यजु० अ० २३ मं० १८" में कृष्ण की बहिन और "भद्रो भद्रया सामवेद उत्तरार्चिक १५ अ० २ खं० १ सू० ३" में भी कृष्ण की बहिन ही अर्थ करना होगा। यह मूर्ति सुभद्रा की नहीं है वरन् लक्ष्मी जी की है और जगन्नाथ माहात्म्य में तो साफ साफ लक्ष्मी की प्रतिमा लिखी है, जरा पढ़ कर देखो. जवानी जमा खर्च को हरदम काम में न लाया करो।

वृन्दावन

स. प्र. पृ. ३३३ पं. ३—वृन्दावन जब था तब था अब तो वेश्यावनवत् लल्ला लल्ली और गुरु चेली आदि की लीला फैल रही है।

वि०—मालूम होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक को किसी वेश्या ने ठग लिया है या किसी गुरुचेली ने पूरा अपमान किया है उसी क्रोध में यह लेख लिखा है। अगर वेश्याबन है तो उसमें आर्यसमाजियों ने गुरुकुल क्यों खोला? वेश्याबन में तो तबलचीकुल, सारंगीकुल खुलना चाहिये था, क्या निन्दनीय वृन्दाबन से आर्य-समाजी जल्दी से जल्दी गुरुकुल उठा लेंगे।

तीर्थ

स. प्र. पृ. ३३३ पं. १२—ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिर-नार, पालिटाना, शिखर शत्रुजय और आबू आदि तीर्थ बनाये उनके

अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये। जो कोई इनके आरंभ की परीक्षा करना चाहें वे पंडों की पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखें, तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पांच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता इससे आधुनिक हैं। पुनः पृ. ३३३ पं. २२–"गंगागंगेत्यादि० हरिर्हरतीति० प्रातःकाल इति" इत्यादि श्लोक पोपपुराण के हैं। पुनः पृ. ३३४ पं. ५–मिथ्या होने में क्या शंका? क्योंकि गंगा गंगा वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। पुनः पृ. ३३४ पं. ६–मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नाम स्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी। पुनः पृ. ३३४ पं. १७–जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते। पुनः पृ. ३३४ पं. १६–प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदि को तरते हैं। "समानतीर्थेवासी अ० ४ पा० ४।१०८। नमस्तीर्थ्याय च, यजुः अ० १६ मं. ४२" जो ब्रह्मचारी एक आचार्य और एक शास्त्र को साथ साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समान तीर्थसेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं।

वि०—[क] सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने तृतीय समुल्लास में वाल्मीकीय रामायण को प्रमाण माना है इसलिये गंगामहत्व पर हम वाल्मीकीय रामायण के ही प्रमाण देते हैं, प्रमाण ये हैं—

मध्यं तु समनुप्राप्य भागीरथ्यास्त्वनिन्दिता।
वैदेही प्रांजलिर्भूत्वा तां नदीमिदमब्रवीत् ॥१॥
पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः।
निदेशं पालयत्वेनं गंगे त्वदभिरक्षितः ॥२॥
चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने।
भ्रात्रा सह मया चैव पुनः प्रत्यागमिष्यति ॥३॥

ततस्त्वां देवि सुभगे क्षेमेण पुनरागता ।
यच्ये प्रमुदिता गंगे सर्वकामसमृद्धिनि ॥४॥
त्वं हि त्रिपथगे देवि ब्रह्मलोकसमक्षमे ।
भार्या चोदधिराजस्य लोकेऽस्मिन्संप्रदृश्यते ॥५॥
सा त्वां देवि नमस्यामि प्रशंसामि च शोभने ।
प्राप्तराज्ये नरव्याघ्रे शिवेन पुनरागमे ॥६॥
गवां शतसहस्रं च वस्त्राण्यन्नं च पेशलम् ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदास्यामि तव प्रियचिकीर्षया ॥७॥

वाल्मी० आयोध्या० स० ५२ श्लोक ८१ से ८७ तक

बन जाते समय जब भगवान् राम गंगा पार करने के लिये नौका में बैठे, पश्चात् मलाह ने नौका छोड़ दी। नौका के बीच धार में पहुँचते ही जनकनन्दनी हाथ जोड़कर भगवती जाह्नवी से कहती हैं कि गंगे ! ये दशरथ के पुत्र प्रभु राम बन में रहेंगे आप इनकी रक्षा करो। अपने भाई और मुझ सहित चौदह वर्ष बन में निवास करके फिर घर को पधारेंगे। भगवति गंगे ! आप इनके ऊपर प्रसन्न हो कुशल पूर्वक इनको वापिस लाओ । आप सकल मनोरथों के सिद्ध करनेवाली और समस्त त्रिलोकी के कार्य को साधक तथा ब्रह्मलोक की प्राप्ति देनेवाली, समुद्र की पत्नी हो, दोनों हाथ बांधकर मैं भगवती गंगे आप से प्रार्थना करती हूँ कि रघुनाथ जब बन से लौट अयोध्या में उपस्थित होंगे तब तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं एक सहस्र गौ, वस्त्र, अन्न ब्राह्मणों को दान दूंगी। क्या आर्यसमाजी इस लेख को मान कर गंगा के महत्व को स्वीकार करेंगे ? नहीं करेंगे तो क्या तीसरे समुल्लास में वाल्मीकीय रामायण का प्रमाणकोटि में लेना यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक की भूल है ?

मनुस्मृति को आर्यसमाजी प्रमाणकोटि में लेते हैं, यहां तक कि सत्यार्थप्रकाश में ३६०३ मनु के श्लोक लिये हैं, हम यह कह सकते हैं कि सत्यार्थप्रकाश का विशेष आधार मनुस्मृति है, वही मनुस्मृति तीर्थ और क्षेत्र के विषय में लिखती है कि—

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून्गमः ॥

मनु० अ० ८ श्लो० ९२

अदालतों में शपथ दिलानेवाला गवाह से कहता है कि यम वैवस्वत देव जो तुम्हारे हृदय में स्थित है यदि असत्य भाषणादि से उनके साथ तुम्हारा कोई विवाद नहीं तो न तो तू गंगा जी जाना और न कुरुक्षेत्र जाना। यहां पर असत्य भाषणादि पाप की निवृत्ति के लिये गंगा एवं कुरुक्षेत्र जाना मनु जी ने कहा है, क्या अब भी गंगा से पाप की निवृत्ति आर्यसमाजी नहीं मानते? यद्यपि मंत्रभाग की ११३१ शाखा हैं किन्तु आर्यसमाजी उनमें से शाकल, माध्यन्दिनी, कौथुमी, शौनकी इन चार ही शाखाओं का वेद मानते हैं और संसार के मनुष्यों में यह समझाया करते हैं कि सनातनधर्मी पौराणिक हैं एवं हम वैदिक हैं, आज हमको देखना है कि आर्यसमाजी अपने माने वेद को सच ही मानते हैं या लोगों को धोका देने के लिये वेद का मानना स्वीकार करते हैं। इनकी मानी हुई शाकल शाखा में लिखा है कि—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि सचता परुष्ण्या
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया॥

ऋ० म० १० अ० ३ सू० ७५ मं० ५

हे गंगे! हे यमुने! हे सरस्वति! हे शुतुद्रि! हे मरुद्वृधे! हे आर्जीकीये! परुष्णी, असिक्नी, वितस्ता, सुषोमा के साथ तुम मेरे इस यज्ञ को सेवन करो अर्थात् इसको पवित्र करो और मेरी स्तुतियों को सुनो। यहां पर वेद यज्ञकर्ता को नदियों से प्रार्थना करवाता है कि तुम सब नदियां मेरे यज्ञ को पवित्र करो और मेरी प्रार्थनाओं को सुनो। क्या वेद आर्यसमाजियों की भांति नदियों को जड़ मानता है या इनको देवता मान इनमें पवित्र करने और प्रार्थना सुनने की शक्ति बतलाता है। जब नदियां प्रार्थना सुन लेती हैं एवं यज्ञों को पवित्र कर देती हैं तो इनके द्वारा मनुष्य का पवित्र होना जो वैदिक लोग मानते हैं वे वैदिक हैं या सत्यार्थप्रकाश के लेखक के मन से उपजी हुई तर्क से नदियों का खण्डन वैदिक है। आर्यसमाज नदियों को जड़ कैसे मानती है, ऋग्वेद लिखता है कि शतद्रु और व्यास इन नदियों ने प्रत्यक्ष होकर विश्वामित्र से बातें कीं इसके लिये देखो "वेदसिद्धान्त परिचय" का 'पुराण-इतिहास' शीर्षक लेख।

चाहे वाल्मीकीय रामायण कहे कि गंगा मोक्ष देती है और चाहे मनु जी कहें कि गंगा मनुष्य का पाप दूर कर देती है इससे भिन्न मनुष्य की स्तुति को नदियों का सुनना और नदियों का यज्ञों को पवित्र करना एवं विश्वामित्र से शतद्रु और व्यास की वार्तालाप होना ऋग्वेद हाथ उठा करके कहे किन्तु आर्यसमाजी इन

ग्रन्थों के कथन को सुनने के लिय तैयार नहीं क्योंकि इनके अन्तःकरण में सत्यार्थ-प्रकाश ने भयंकर नास्तिकता भर दी है।

[ख] सत्यार्थप्रकाश लिखता है कि जब जैनियों ने अपने तीर्थ बनाये, उनकी देखा देखी इन्होंने भी तीर्थ बनाये। यदि यह बात सच है तब तो जैनियों के तीर्थ बनने के पश्चात् ही रामायण, मनु और वेद बने क्योंकि इन तीनों में हिन्दू-तीर्थों का वर्णन है। यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक की चालाकी है जो तीर्थों के बहाने से वाल्मीकीय रामायण और मनु तथा वेद का खंडन करता है इसको निरक्षर आर्यसमाजी न समझें तो भी पढ़े लिखे इस चालाकी को फौरन परख लेंगे। [ग] पंडों की बही और लेख मुसलमानी राज्य से चले, पहिले लेख नहीं लिखे जाते थे, केवल मुँह से कहा जाता था। मुंह का कहा कभी असत्य नहीं होता था। आज से सौ वर्ष पहिले तमस्सुक और रुक्के नहीं थे क्या इसका अर्थ यह लगा लें कि पहिले जमाने में लेन देन नहीं होता था। हजार वर्ष से पहिले कागज ही नहीं था फिर बही खाते कहां से बनते? आठ सौ वर्ष से पहिले की जितनी भी पुस्तकें मिलती हैं वे ताड़पत्र पर मिलती हैं और ताड़पत्र की बार बार उथल पुथल हो तो वह महीने भर में ही खतम हो जाता है क्या बही और पत्र का लेख लिखकर संसार को धोके में फांसना नहीं है? [घ] जब वेद में आये तीर्थमहत्व को ही आर्यसमाज नहीं मानता इस घोर नास्तिकता से वह 'गंगा गंगेति' का खंडन करदे तो उसके लिये कोई आश्चर्य नहीं। [ङ] फिर गंगा का खंडन करते हुये 'हरिर्हरति' और 'प्रातःकाले' इन श्लोकों में आई हुई भगवद्भक्ति का भी खंडन कर दिया। सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने पहिले सप्तम समुल्लास में और फिर इसी एकादश समुल्लास में भगवन्नाम के स्मरण का खंडन किया है, अब इसको फिर याद आ गया फिर खंडन करने लगा, इसको इतना भी स्मरण नहीं रहा कि हम भगवन्नाम के स्मरण का पहिले दो जगह खंडन कर आये हैं, अब तीर्थों का खंडन कर रहे हैं, इस प्रकरण में भगवन्नाम का खण्डन करना अप्रासंगिक है। संसार को यह मानना होगा कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक किसी मादक द्रव्य का सेवन करते थे और उसी के नशे में वे कुछ का कुछ लिखते थे। [च] धार्मिक लोग जिनके अन्तःकरण में धर्म ने श्रद्धा जमाई है वे जान बूझ कर पाप नहीं करते फिर कैसे लिख दिया कि गंगा के भरोसे पाप बढ़ेगा? हम इसलिये लाचार हैं कि आर्यसमाजी धर्म का निर्णय नहीं चाहते, यदि आर्यसमाज के चित्त में धर्म जानने की आकांक्षा हो जावे तो कुछ दिन बाद सत्यार्थप्रकाश के दर्शन होने दुर्लभ हो जायं। [छ] नौका को तीर्थ कोई

मजहब नहीं मानता "बाबा वचनं प्रमाणम्" को मान यदि आर्यसमाजी नौका को तीर्थ मानें तो इनसे अधिक मूर्ख और कौन होगा ?

गुरुमहत्व

स. प्र. पृ. ३३५ पं. २३–गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोप लीला है ।

वि०—गुरुगीता आज तक हमने नहीं देखी । हमारे पास बहुत प्रश्न आये कि गुरुगीता कौन पुराण की है, हमने बहुत पुराण टटोले किसी में गुरुगीता न मिली । हिन्दुओं के तिलक पं० बालगंगाधर जी का बनाया "गीता रहस्य" टटोला उसमें पता चला कि 'गुरुगीता' किसी पुराण में नहीं आई । बिना देखे हम उसके ऊपर कुछ नहीं कह सकते, हां यह मानेंगे कि गुरु का संसार में बड़ा महत्व है । गुरु के बिना किसी को ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के बिना जीव की अविद्या दूर नहीं होती, जो गुरु ज्ञान देकर जीव को ब्रह्म बना दे उस गुरु के महत्व मानने में क्या किसी मनुष्य को कोई उज्र हो सकता है ? वेद तो इस विषय में यह लिखता है कि—

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

मुण्डक० प्रथम मु० श्रु० १२

कर्म द्वारा प्राप्त हुये लोकों की परीक्षा कर ब्राह्मण निर्वेद को प्राप्त हो क्योंकि संसार में अकृत नित्य कोई पदार्थ नहीं है और कृत से हमें प्रयोजन क्या है अतः उस नित्य वस्तु का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने के लिये तो हाथ में समिधा लेकर श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाय ।

आर्यसमाज की गुरुभक्ति

स. प्र. पृ. ३३५ पं. २५–जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं ।

वि०—गुरु भी शरीरधारी है उसमें कोई न कोई दोष अवश्य होगा। दोष के कारण डण्डे जूते मारना और फांसी पर लटका देना यह आर्यसमाज की गुरुभक्ति है। ईश्वर इस गुरुभक्ति से संसार को बचावे।

शिवपुराण

स. प्र. पृ. ३३८ पं. २२–शिव ने इच्छा की कि मैं सृष्टि करूं तो एक नारायण जलाशय को उत्पन्न कर उसकी नाभी से कमल, कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है। जल की अंजलि उठा देख जल में पटक दी। उससे एक बुद्बुदा उठा और बुद्बुदे में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ब्रह्मा से कहा कि हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न कर। ब्रह्मा ने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है। उनमें विवाद हुआ और दिव्यसहस्र वर्ष पर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे, तब महादेव ने विचार किया कि मैंने जिनको सृष्टि करने के लिए भेजा था वे दोनों आपस में लड़ झगड़ रहे हैं। तब उन दोनों के बीच में से एक तेजोमय लिंग उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र अकाश में चला गया उसको देख के दोनों आश्चर्य हो गये। विचारा कि इसका आदि अन्त लेना चाहिये जो आदि अन्त लेके शीघ्र आवे वह पिता और जो पीछे वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कूर्म का स्वरूप धर के नीचे को चला और ब्रह्मा हंस का शरीर धारण करके ऊपर को उड़ा। दोनों मनोवेग से चले। दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उसका अन्त न पाया। तब नीचे से ऊपर विष्णु और ऊपर से नीचे ब्रह्मा ने विचारा कि जो वह छेड़ा ले आया होगा तो मुझको पुत्र बनना पड़ेगा। ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय और एक केतकी का वृक्ष ऊपर से उतर आया उनसे ब्रह्मा ने पूछा कि तुम कहां से आये? उन्होंने कहा हम सहस्र वर्षों से इस लिंग के आधार से चले आते हैं। ब्रह्मा ने पूछा कि इस लिंग का थाह है वा नहीं? उन्हों ने कहा कि नहीं। ब्रह्मा ने उनसे कहा कि तुम हमारे साथ चलो और ऐसी साक्षी देओ कि मैं इस लिंग के शिर पर दूध की धारा वर्षाती थी और वृक्ष कहे कि मैं फूल वर्षाता था, ऐसी साक्षी देओ तो मैं तुमको

ठिकाने पर ले चलूं। उन्होंने कहा कि हम झूठी साक्षी नहीं देंगे। तब ब्रह्मा कुपित होकर बोला जो साक्षी नहीं देओगे तो मैं तुमको अभी भस्म करे देता हूं। तब दोनों ने डर के कहा कि हम जैसी तुम कहते हो वैसी साक्षी देवेंगे। तब तीनों नीचे की ओर चले। विष्णु प्रथम ही आगये थे ब्रह्मा भी पहुँचा। विष्णु से पूछा कि तू थाह ले आया वा नहीं? तब विष्णु बोला मुझको इसका थाह नहीं मिला। ब्रह्मा ने कहा मैं ले आया। विष्णु ने कहा कोई साक्षी देओ। तब गाय और वृक्ष ने साक्षी दी। हम दोनों लिंग के शिर पर थे। तब लिंग में से शब्द निकला और वृक्ष को शाप दिया कि जिस से तू झूठ बोला इसलिये तेरा फूल मुझ वा अन्य देवता पर जगत् में कहीं नहीं चढ़ेगा और जो कोई चढ़ावेगा उसका सत्यानाश होगा। गाय को शाप दिया कि जिस मुख से तू झूठ बोली उसी मुख से विष्ठा खाया करेगी। तेरे मुख की पूजा कोई नहीं करेगा किन्तु पूंछ की करेंगे। और ब्रह्मा को शाप दिया कि जिससे तू मिथ्या बोला इसलिये तेरी पूजा संसार में कहीं न होगी। और विष्णु को वर दिया कि जिससे तू सत्य बोला इससे तेरी पूजा सर्वत्र होगी। पुनः दोनों ने लिंग की स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उस लिंग में से एक जटाजूट मूर्ति निकल आई और कहा कि तुमको मैं ने सृष्टि करने के लिये भेजा था झगड़े में क्यों लगे रहे? ब्रह्मा और विष्णु ने कहा कि हम बिना सामग्री सृष्टि कहां से करें। तब महादेव जी ने अपनी जटा में से एक भस्म का गोला निकाल कर दिया कि जाओ इसमें से सब सृष्टि बनाओ इत्यादि। भला कोई इन पुराणों के बनानेवाले पोपों से पूछे कि जब सृष्टितत्व और पंच महाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के शरीर, जल, कमल, लिंग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्म का गोला क्या तुम्हारे बाबा के घर में से आ गिरे।

वि०—इस लेख से यह सिद्ध होता है कि सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने कभी शिवपुराण नहीं देखा। लोगों से कथा सुन कुछ अपनी तरफ से मिला कथा का रूपान्तर कर शिवपुराण पर मिथ्या कलंक लगाया है। कथा इस प्रकार है—सूत जी कहने लगे कि हे शौनक! जिसके अनन्त नाम और जो सर्वाध्यक्ष है उसको वैष्णव विष्णु, शाक्त शक्ति, सूर्योपासक सूर्य एवं उसी को गाणपत्य विनायक के नाम से याद करते हैं। इस गुणरहित अरूप परमात्मा की इच्छा हुई कि हम एक से अनेक हों

तब आप शिवरूप से प्रकट हुये और अपने आनन्द के लिये शक्ति को प्रकट किया, जिसको माया या महामाया, दुर्गा, भगवती कहते हैं यह जगत् की कारण है। इन शिव को 'पुरुष' और शक्ति को 'प्रकृति' कहते हैं। शंकर ने अपने विहार के लिये एक लोक बनाया जिसका नाम 'अविमुक्त' है जो समस्त जीवों को आनन्द देनेवाला अत्यन्त रमणीय है। पश्चात् शिव की इच्छा हुई कि एक जगत् का पालक पुरुष हम उत्पन्न करें। अध्याय चतुर्थ समाप्त हो गया। पंचमाध्याय में लिखा है कि शंकर की यह इच्छा देख प्रकृति ने दिव्य रूप भगवान् विष्णु को प्रकट किया। शिव ने उनसे कहा कि आपका नाम विष्णु है। तुम संसार में सर्वोत्तम देवता हो इसलिये तप करो। भगवान् विष्णु ने दिव्य तप किया और उस तप से इतना जल उत्पन्न हुआ कि विष्णु उस जल में शिव की बतलाई योग विद्या का आश्रय ले शयन करने लगे। शयन के समय भगवान् विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ उस कमल में शंकर ने ब्रह्मा को प्रकट किया, ब्रह्मा जी सोचते हैं कि मुझे किसने पैदा किया यह सोच कमल की थाह लेने के लिये नीचे को चले गये और बहुत समय बीत गया वह कमल भी ब्रह्मा की दृष्टि से अदृश्य हो गया तब आकाशवाणी हुई और दो अक्षर प्रादुर्भूत हुये और एक स्थान के रहने के निमित्त उनमें प्रतिष्ठित हैं तब योगनिद्रा त्याग भगवान् विष्णु ब्रह्मा के पास आये और ब्रह्मा से बोले कि हम सृष्टि के कर्ता सच्चिदानन्द हैं वेदों को हमीं ने उत्पन्न किया है तुम हमारे नाभि कमल से उत्पन्न हुये इस कारण हमारे पुत्र हो। ब्रह्मा जी ने कहा कि आप गुरु की भाँति हमको उपदेश देते हैं आप नहीं जानते कि वेद क्या हैं। ब्रह्मा के इस कथन को सुन भगवान् विष्णु कुछ विवाद करने लगे। अथ षष्ठ सप्तम अध्याय—इस विवाद को देख भगवान् शंकर प्रलयकाल की वडवाग्नि के सदृश रूप में प्रकट हुये, इसको देख विवाद त्याग ब्रह्मा जी और भगवान् विष्णु परस्पर में प्रश्न करने लगे कि यह क्या है। यह निर्णय हुआ कि जो इसका आदि या अन्त देख ले वह सृष्टि निर्माता। ब्रह्मा जी ऊपर को गये और भगवान् विष्णु श्वेत वाराह कल्प के रूप में नीचे को चले। दोनों ही ढूढ़ने लगे। खोज करने में दिव्य सहस्र वर्ष निकल गये तब दोनों ही लौट आये किन्तु खाली आये। उसके आदि अन्त का पता न लगा, जब लौट कर आये तो इन दोनों को अपना स्थान भी न मिला तब समझा कि कोई तीसरा पुरुष हम दोनों से अधिक है यह निश्चय कर इन दोनों ने आपस में प्रेम किया तब आकाशवाणी हुई कि तुम योग करो। यह सुन दोनों ही योग को स्वीकार कर प्रार्थना करने लगे कि भगवन्! आप दर्शन दीजिये, तब प्रणव प्रकट हुआ किन्तु इन दोनों ने भली भांति से उसको न जाना। फिर उस प्रणव के 'अ-उ-म्-

विन्दु' ये चार भाग हो गये। पहिला भाग जो 'अ' है वह लिंग की 'ज्योति' और द्वितीय भाग, मध्यभाग तथा तृतीय अर्धमात्रा, लिंग की ज्योति का विन्दुरूप में शिर और विन्दु सर्व लिंग की ज्योति है इसी में चारो वेदों का समावेश है। कोई भी इस प्रणव रूप लिंग का अन्त नहीं पा सकते। ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सब उसी के अन्दर हैं। वही शिव जी का स्वरूप है। इस शिव मूर्ति को देख दोनों ने स्तुति की। तब शंकर ने शरीर धारण कर दर्शन दिया। अथाष्टमाध्याय– शंकर ने कहा कि आप लोगों के विवाद को देख यह प्रणवरूपी लिंग हमने उत्पन्न किया। फिर कहा कि आप लोग हमारा कहना मानो। यह कह श्वास के द्वारा वेदों का उपदेश किया। प्रणव की शिक्षा दे भगवान विष्णु को सृष्टि पालन और ब्रह्मा जी को उत्पन्न करने में नियुक्त किया, समझाया कि जिस क्षेत्र में यह सृष्टि लीन हुई है उसे लिंग कहते हैं। इस लिंग के पूजन से यह लोक का सुख तथा परलोक में सद्गति होगी और हम भी रुद्रावतार धारण कर तुम्हारे नगर में उपस्थित होंगे। हम ब्रह्मा, विष्णु, महेश एवं प्रकृति इन चारो का एक ही स्वरूप है जो इन स्वरूपों में भेद समझेगा वह दुःखी होगा तथा सृष्टि के आरंभ में कभी हम और कभी ब्रह्मा जी तथा कभी विष्णु जी प्रकट होते हैं। हम सब में और सब मुझ में हैं हम तुम सब एक हैं यह कह दोनों को अपनी शक्ति से शक्ति दे सृष्टि रचना की आज्ञा कर शिव जी अन्तर्धान हुए और विष्णु जी भी शक्तिसहित अन्तर्धान हुये तब ब्रह्मा जी ने प्रकृति से सृष्टि की रचना आरंभ की।

(विद्येश्वर संहिता अ० ४ से ८ तक)

अब कथा को मिलावें। शिव पुराण में न केतकी का वृक्ष है, न गौ, न झूठ बोलना, न भस्म का गोला और न ब्रह्म का उतरना फिर हम सत्यार्थप्रकाश के लेख को झूठ क्यों न कहें। सत्यार्थप्रकाश का लेखक अपनी तरफ से कथाओं में मिलावट कर संसार को धोका देने के लिये कुछ का कुछ लिखा करता है, वही यहां लिखा है। क्या आर्यसमाजी अपने धर्म प्रवर्तक के झूठे लेख लिखने पर कभी लज्जित न होंगे? जिनके भव्य विचार दूषित हो गये उनको लज्जा कहां?

कई एक मनुष्य यह प्रश्न करेंगे कि पुराणों में कहीं विष्णु बड़ा, कहीं शंकर बड़ा, कहीं शक्ति बड़ी यह क्या लीला है? इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि ईश्वर एक है किसी कल्प में विष्णुरूप से प्रकट होकर सृष्टि रचता है और कभी शंकररूप से एवं कहीं कहीं शक्तिरूप से, यह प्रकट होना सृष्टि के आरम्भ में है किन्तु लोक-लोकान्तरों की रचना करना सभी पुराणों में ब्रह्मा के आधीन है। आरम्भ काल में भेद है, सृष्टि रचना के समय नहीं। "स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः" इत्यादि श्रुतियां

यही कहती हैं कि वही ब्रह्म ब्रह्मा है, वही विष्णु है और वही रुद्र है। प्रत्येक कल्प में छोटे बड़े का भेद जैसे पुराणों में है वैसे ही वेदों में है। वेदों में "ब्रह्म ज्येष्ठा संभृता वीर्याणि अथर्व कां० १६ अनु० ३ सू० २३ मं० ३०" इस श्रुति में ब्रह्मा को ब्रह्म कह फिर 'यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् श्वेताश्व० अ० ६ श्रु० १८" इसमें यह कह दिया कि जिस ईश्वर ने ब्रह्मा के हृदय में वेदों को प्रकट किया है। यहां पर ब्रह्मा को ईश्वर से छोटा दिखलाया है तो भी वेद की श्रुति सब को ईश्वर मानती है अर्थात् एक ही ईश्वर के ये भिन्न भिन्न स्वरूप हैं, यही बात शिवपुराण के अष्टमाध्याय में स्पष्ट कर दी है।

श्रीमद्भागवत

स. प्र. पृ. ३४० पं. १०–"कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊँट, गधा, भैंसा, घास, फूस और बबूर आदि वृक्ष कांटे सहित उत्पन्न हो गये। वाहरे वाह! भागवत के बनानेवाले लालबुझक्कड़! क्या कहना तुझको, ऐसी ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अन्धा ही बन गया। भला स्त्री पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वर की सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं हो सकते और हाथी, ऊंट, सिंह, कुत्ता, गधा और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश भी कहां हो सकता है और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मां बाप को क्यों न खा गये? और मनुष्य शरीर से पशु, पक्षी, वृक्षादि का उत्पन्न होना क्योंकर सम्भव हो सकता है। धिक्कार है पोप और पोपरचित इस महा असंभव लीला को जिसने संसार को अभी तक भ्रमा रक्खा है। भला इन महा झूठ बातों को वे अन्धे पोप और बाहर भीतर की फूटी आँखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं, बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई!!! इन भागवतादि पुराणों के बनाने हारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता।

वि०—यहां पर सत्यार्थप्रकाश का लेखक भागवत के खंडन के बहाने से ईश्व की चोखी खबर ले रहा है, कश्यप की सृष्टि रचना और वेद की सृष्टि रचना में इंच भर फर्क नहीं और तिल भर अन्तर नहीं, क्रम से देखिये।

स वै नैव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्स हैतावानास यथा स्त्रीपुमाꣳसौ सम्परिष्वक्तौ ॥ ४ ॥ स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां ततो मनुष्या अजायन्त। ५। सोहेयमीक्षां चक्रे। कथं नु मात्मनऽएव जनयित्वा संभवति हन्त तिरोसानीति। ६। सा गौरभवत्। वृषभ इतरस्ताꣳ सामेवाभवत्ततो गावोऽजायन्त। ७। वडवेतराभवत्। अश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ताꣳ समेवाभवत्तत एकशफमजायत। ८। अजेतराभवत्। वस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्ताꣳसमेवाभवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किंच मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्तत्सर्वमसृजत। ९।

शत० १४। ४। २

उसको अकेले में आनन्द नहीं आया इसीलिये संसार में भी अकेले में आनन्द नहीं आता। उसने दूसरे को चाहा वह इतना मोटा हुआ जितने दो स्त्री पुरुष मिल कर होते हैं। फिर उसने अपने मोटे शरीर के दो भाग किये। एक भाग पुरुष और दूसरा भाग पत्नी बना उससे मनुष्य पैदा हुये। पत्नी ने देखा कि इसने मुझको अपने शरीर से ही बना कर मुझ से रमण किया इस खेद से वह छिप गई। छिप कर गौ हुई। पुरुष ने भी वृषभ बन कर उससे व्यवाय किया। उससे गो जाति उत्पन्न हुई। फिर वही पत्नी घोड़ी हुई पुरुष घोड़ा बना। पत्नी फिर गदही बनी पुरुष गदहा बना फिर दोनों ने आपस में मैथुन किया उससे एक टाप वाले अश्व, गर्दभ उत्पन्न हुये। फिर पत्नी बकरी बनी पुरुष बकरा बना। फिर पत्नी भेड़ बनी पुरुष मेड़ा बना फिर आपस में उन्होंने रमण किया उससे भेड़ बकरी बनी। इसी प्रकार दोनों चीटी तक बनते गये और संसार बनता गया।

यह वेद की सृष्टि है, पुराण ने कश्यप को ईश्वर की कला माना है। इस पर निरुक्त लिखता है कि "कश्यपः कस्मात्पश्यको भवतीति" कश्यप क्यों कहते हैं यह सब का देखनेवाला है। इस लेख से निरुक्त ने कश्यप और ईश्वर में अभेद सिद्ध किया है और "अदितिर्द्यौः ऋ० १।६।१६।१०" के "अदितिर्माता" पद से अदिति को माता कहा है। इसका मतलब यह है कि अदिति आदि कश्यप की स्त्रियां प्रकृति की विशेष शक्ति को लेकर प्रकट हुई हैं। दैत्य, दानवा आदित्य, यह सृष्टि तो संकल्प से हुई है। विनता और कश्यप ने पक्षीसृष्टि को शतपथसृष्टि के अनुसार ही रचा। जैसे कश्यप कबूतर बना और विनता पत्नी इन्होंने भोग द्वारा कबूतरसृष्टि को पैदा किया। फिर कबूतरजाति के शरीर त्याग दिये। फिर कश्यप तीतर बना और विनता मादा। दोनों ने तीतर की सृष्टि पैदा की। तीतरसृष्टि पैदा करके फिर शरीर त्याग दिये। वैसे ही कश्यप ने कुत्ते का स्वरूप धारण किया सरमा मादा हुई दोनों ने मैथुन से कुत्ताजाति की सृष्टि रची। फिर पति पत्नी ने शरीर त्यागे। कश्यप बिलाव हुआ और सरमा मादा, मैथुन से बिल्लीजाति को पैदा किया। फिर शरीर त्याग दिये। वैसे ही वृक्षजाति को पैदा करने के लिये कश्यप और उसकी पत्नी ने भिन्न भिन्न वृक्षजाति के शरीर धारण किये। पुष्प द्वारा फल देकर फिर वृक्षशरीरों को त्याग दिया। दूसरे वृक्षों का शरीर धारण किया। उनमें भी फलों में बीज देकर उन शरीरों को छोड़ दिया। श्रीमद्भागवत ने यह सृष्टि वेद के आधार पर लिखी। यदि इस प्रकार की सृष्टि मिथ्या और असंभव है तो वेद पर कलंक आवेगा, भागवत पर नहीं आ सकता। इसने तो वेद के क्रम को स्पष्ट किया है। सत्यार्थप्रकाश के लेखक बहाने बहाने से वेद का ही खण्डन करते हैं इसलिये "वाह रे वाह" ये गालियां और "इन भागवतादि पुराणों के बनानेहारे" आदि गालियां सत्यार्थप्रकाश का लेखक ईश्वर को दे रहा है और "भला इन महाझूठ बातों को" इत्यादि जो गालियां हैं ये उनको हैं जो वेद मानते हैं। अब पाठकों को समझ लेना चाहिये कि सत्यार्थप्रकाश का लेखक व्यास के बहाने से ईश्वर को और भागवत माननेवालों के बहाने से वैदिक लोगों को कितनी बुरी गालियां दे रहा है कि जिनको सुनते ही आदमी का खून उबल बैठे। ऐसी गालियाँ तो भंगी-चमार भी नहीं देते। हमारी समझ में तो गालियां देने का कारण गर्भ का दोष है?

अनर्थकता

स. प्र. पृ. ३४२ पं. १०–

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदंगं च गृहाण गदितं मया ॥

भा० स्कं० २ अ० ९ श्लो० ३०

पुनः पृ. ३४२ पं. १३–हे ब्रह्मा जी ! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अंग है उसी का मुझ से ग्रहण कर। जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो परम अर्थात् ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषण से रहस्य भी पुनरुक्त है। जब मूल श्लोक अनर्थक है तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं।

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक शास्त्रों के विषय में खाक नहीं समझते। ज़बर्दस्ती से टांग अड़ाते हैं। इनकी यह अनधिकार चेष्टा आर्यसमाज को नीचे गिरावेगी। इस श्लोक का टीका करते हुये श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर जी लिखते हैं कि—

ज्ञानं शास्त्रोक्तं विज्ञानमनुभवः रहस्यं भक्तिः सुगोप्यमपि वक्ष्यामीत्यादिनिर्देशात्तस्यांगं साधनम् ॥

शास्त्र का जो कथन है वह ज्ञान है और अनुभव में जो आया उसका नाम विज्ञान है। रहस्य कहते हैं भगवद्भक्ति को। सुगोप्य आगे कहा जावेगा वह भक्ति के अंगों का साधन है। अब आर्यसमाजी बतलावें कि इसमें कौन पद व्यर्थ है ?

ब्रह्मा का मोह

स. प्र. पृ. ३४२ पं. १९–

भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्। भाग० स्क० २ अ० ९ श्लो० ३६। आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलय में भी मोह को कभी प्राप्त न होंगे ऐसा लिख के पुनः दशम स्कन्ध में मोहित होके वत्सहरण किया। इन दोनों में से एक बात सच्ची दूसरी झूठी। ऐसा होकर दोनों बात झूठी।

वि०—बिच्छू का मंत्र न जाने और सांप के बिल में हाथ डाले। सत्यार्थप्रकाश के लेखक को लघुकौमुदी और श्लोक लगाने का ज्ञान नहीं, इतने पर भी आप भागवत की अशुद्धियां पकड़ने चले। विष्णु ने तो ब्रह्मा से यह कहा था कि "इस परमसमाधि

में आप स्थित रहेंगे तो कल्पों के विकल्पों में जो अनेक प्रकार की सृष्टि है इसके हम कर्ता हैं ऐसे मोह को प्राप्त नहीं होंगे अर्थात् यह समाधि तुमको सृष्टिरचने के अभिमान से बचावेगी और वत्सहरण में कोई सृष्टिरचना का क्या विकल्प था ? यहां पर तो उल्टा ब्रह्मा का अभिमान खुद्‌बखुद् जाता रहा और दीन होकर भगवान की स्तुति करनी पड़ी, क्या इसको सत्यार्थप्रकाश के लेखक नहीं समझे ?

जय-विजय की कथा

स. प्र. पृ. ३४२ पं. २३—जब वैकुण्ठ में राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं है तो सनकादिकों को वैकुण्ठ के द्वार में क्रोध क्यों हुआ ? जो क्रोध हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं । तब जय, विजय द्वारपाल थे । स्वामी की आज्ञा पालनी अवश्य थी । उन्होंने सनकादिकों को रोका तो क्या अपराध हुआ, इस पर बिना अपराध शाप ही नहीं लग सकता । जब शाप लगा कि तुम पृथ्वी में गिर पड़ो इसके कहने से यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी । आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा तो ऐसा द्वार, मन्दिर और जल किसके आधार थे ? पुनः जब जय विजय ने सनकादिकों की स्तुति की कि महाराज ! पुनः हम वैकुण्ठ में कब आवेंगे । उन्होंने उनसे कहा कि जो प्रेम से नारायण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोध से भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म वैकुण्ठ को प्राप्त होओगे । इसमें विचारना चाहिये कि जय विजय नारायण के नौकर थे । उनकी रक्षा और सहाय करना नारायण का कर्तव्य काम था । जो अपने नौकरों को बिना अपराध दुःख देवें उनको उनका स्वामी दण्ड न देवे तो उसके नौकरों की दुर्दशा सब कोई कर डाले । नारायण को उचित था कि जय विजय का सत्कार और सनकादिकों को खूब दण्ड देते क्योंकि उन्होंने भीतर आने के लिये हठ क्यों किया ? और नौकरों से लड़े क्यों ?

वि०—सत्यार्थप्रकाश के लेखक का पहिला प्रश्न यह है कि 'सनकादिकों को क्रोध क्यों हुआ ?' इसका उत्तर यह है कि सनकादिक छः डयोढ़ी पार करके जब सातवीं में पहुँचे तब जय, विजय ने सनकादिकों को अन्दर जाने से बेंत से रोका क्योंकि जय, विजय प्राचीन जन्मों के कर्मों की वासना से "भगवत्प्रतिकूल शीलौ भाग० स्कं० ३ अ० १५ श्लो० ३०" भगवान् के विरुद्ध स्वभाववाले थे इसको देख सनकादिक बोले कि यह तो वैकुंठ है यहां पर सब सम स्वभाववाले रहते हैं किन्तु तुम "विषम

स्वभावः भाग० स्कं० ३ अ० १५ श्लो० ३२ " विषम स्वभाववाले यहां कहां से आये, विषम स्वभाव ही ने सनकादिकों को क्रोध दिलाया-यह प्रथम प्रश्न का उत्तर हुआ।

(२) दूसरा प्रश्न यह है कि "जय विजय ने सनकादिकों को रोका तो क्या अपराध किया ?"। वैकुंठ में जितने भी जाते हैं वे स्वच्छमन जाते हैं, स्वच्छमन वालों की रोक टोक भगवान् के पास पहुँचने की नहीं है "तद्वाममुष्य० भाग० स्कं० ३ अ० १५ श्लो० ३४" इस श्लोक में सनकादिकों ने कहा कि वैकुंठ के भक्त होकर जो तुमने यह असद्व्यवहार किया है इस अपराध के बदले तुमको दण्ड देने का हम विचार करते हैं, जय विजय के अपराध का प्रश्न खतम।

(३) तीसरा प्रश्न यह है कि "बिना अपराध शाप ही नहीं लग सकता"। अपराध नहीं है यह तो सत्यार्थप्रकाश का लेखक कहता है, श्रीमद्भागवत तो जय विजय का ऊपर लिखा अपराध लिख रही है, वह अपराध सत्यार्थप्रकाश के लेखक को न दीखे तो श्रीमद्भागवत का क्या दोष ? तीसरा प्रश्न खतम।

(४) चतुर्थ प्रश्न यह है कि "जब शाप लगा कि तुम पृथ्वी में गिर पड़ो" यह लेख सत्यार्थप्रकाश के लेखक का सोलह आने चौसठ पैसे गलत है, सनकादिकों ने यह नहीं कहा कि वैकुंठ जल, वायु, अग्नि का लोक है तुम पृथ्वी के लोक में गिरो वरन् यह कहा कि—

लोकानितो व्रजत मन्तरभावदृष्ट्या
पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र।

भाग० स्कं० ३ अ० १५ श्लो० ३४

तुम यहां से उन लोकों में जाओ जहां अन्तरभाव दृष्टि से काम, क्रोध, लोभ ये तीन पापी रिपु हों।

(५) सत्यार्थप्रकाश का लेखक कहता है कि "शाप को सुन कर जय विजय ने स्तुति की तब सनकादिकों ने कहा कि यदि बैर करोगे तो तीन जन्म में और ईश्वर से प्रीति करोगे तो सात जन्म भोग कर वैकुंठ में आओगे" सत्यार्थप्रकाश के लेखक का यह लेख सुफेद झूठ है, सनकादिकों ने तीन जन्म और सात जन्म की कोई चर्चा ही नहीं चलाई, झूठे लेखों से श्रीमद्भागवत के किये हुये खंडन को वे ही आर्यसमाजी सत्य मानेंगे जो हिन्दी के भी अक्षर नहीं जानते।

पृथ्वी की चटाई

स. प्र. पृ. ३४३ पं. १५—उनमें से हिरण्याक्ष को वराह ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार से लिखी है कि वह पृथ्वी को चटाई के समान लपेट शिराने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके उसके शिर के नीचे से पृथ्वी को मुख में धर लिया। वह उठा। दोनों की लड़ाई हुई। वराह ने हिरण्याक्ष को मार डाला। इन पोपों से कोई पूछे कि पृथ्वी गोल है वा चटाई के समान? तो कुछ न कह सकेंगे क्योंकि पौराणिक लोग भूगोलविद्या के शत्रु हैं। भला जब लपेट कर शिराने धरली आप किस पर सोया? और वराह किस पर पग धरके दौड़ आये? पृथिवी को तो वराह जी ने मुख में रक्खी फिर दोनों किस पर खड़े होके लड़े? वहां तो और कोई ठहरने की जगह नहीं थी किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोप जी की छाती पर खडे होके लडे होंगे।

वि०—बिल्कुल झूठ, सर्वथा झूठ, सुफेद झूठ, बनावटी झूठ। हिरण्याक्ष पृथ्वी को नहीं ले गया वरन् पृथ्वी खुद बखुद पानी में डूब कर रसातल को चली गई। जब ब्रह्मा ने मनु जी से कहा कि तुम सृष्टि रचो तब मनु जी कहते हैं कि—

यदोकः सर्वसत्वानां महीमग्ना महाम्भसि।

भाग० स्कं० ३ अ० १३ श्लो० १५

जो समस्त प्राणियों के रहने का स्थान पृथ्वी है वह तो जल में डूब गई सृष्टि काहे पर रचूं? मनु की इस बात को सुन

परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथासन्नामवेक्ष्य गाम्।
कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम्॥

भाग० स्कं० ३ अ० १३ श्लो० १६

ब्रह्मा ने जल में डूबी हुई पृथ्वी को देखा और फिर यह विचार करने लगे कि इस डूबी हुई पृथ्वी को हम ऊपर कैसे लावें। यहां पर मनु ने अपने आप पृथ्वी डूब गई यह ब्रह्मा से कहा। इस कथन पर जब ब्रह्मा ने पृथ्वी की तरफ देखा तब मालूम हुआ कि पृथ्वी जल में डूब गई अब हम इसको ऊपर कैसे लावें—यह है पृथ्वी के जल

में उतरने का लेख, यहां हिरण्याक्ष का पता नहीं। फिर ब्रह्मा कहते हैं कि—

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता।
अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः॥

भाग० स्कं० ३ अ० १३ श्लो० १७

मैं पृथ्वी को रच रहा था वह पृथ्वी जलों से डुबाई हुई रसातल को चली गई, सृष्टि रचना में लगे हुये जो हम हैं इस समय हमारा क्या कर्तव्य है। ब्रह्मा के यह सोच करते समय ब्रह्मा को छींक आई, छींक के साथ ब्रह्मा की नासिका से वराह प्रकट हुये। वे वराह क्या करने लगे, इसके ऊपर लेख है कि—

तेषां सतां वेदवितानमूर्ति-
ब्रह्माऽवधार्यात्मगुणानुवादम्।
विनद्य भूयो विबुधोदयाय
गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश॥

भाग० स्कं० ३ अ० १३ श्लो० २६

वेदों के द्वारा स्तुति की गई है मूर्ति जिसकी ब्रह्मा के द्वारा अपने गुणानुवाद को सुन उन्हीं सज्जनों के देखते देखते देवताओं की रक्षा के लिये पहिले गर्जे और फिर वे वराह जल में प्रवेश कर गये। रसातल में पहुँच

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां
स उत्थितः संरुरुचे रसायाः।
तत्रापि दैत्यं गदया पतंतं
सुनाभसन्दीपिततीव्रमन्युः॥

भाग० स्कं० ३ अ० १३ श्लो० ३१

जल में डूबी हुई पृथ्वी को उठा आप वापिस चले उस समय वराह बड़े सुशोभित थे। वापिस आते समय वहां पर गदा उठाये हुये मानो मारेगा, सहन के योग्य नहीं है पराक्रम जिसका, ऐसे दैत्य हिरण्याक्ष को आते देखा। इस कथा में स्पष्ट है कि पृथ्वी अपनेआप पानी में डूब गई थी और उसके ऊपर लाने के लिये वराह ने जल में प्रवेश किया,, रसातल में पहुँच पृथ्वी को उठा लौट रहे थे कि रास्ते में हिरण्याक्ष

दैत्य मिला। हिरण्याक्ष वहां क्यों गया इसका भी कुछ प्रसंग लिख देना आवश्यकीय है। हिरण्याक्ष ने वरुण से कहा कि हमारा तुम्हारा संग्राम हो जाय। वरुण ने उत्तर दिया तुम बड़े बलवान् हो हम तुम से नहीं लड़ सकते, तुम विष्णु से लड़ो वह तुम्हारे कैसे दुष्टों को मार कर जमीन में सुला देगा। विष्णु कहां हैं इस बात का पता लगाने के लिये हिरण्याक्ष नारद के पास गया, नारद ने बतलाया कि विष्णु वराह रूप धारण करके जल में डूबी हुई पृथ्वी को लेने के लिये रसातल गये हैं, लड़ाई करने के लिये हिरण्याक्ष वराह के पास पहुँचे। यह कथा सत्रह और अठारह के अध्याय की है।

सत्यार्थप्रकाश का लेखक कहता है कि पृथ्वी नहीं थी तो लड़े काहे पर? श्रीमद्भागवत साफ लिखती है कि जल पर लड़े। मनुष्य में शास्त्र के अवलोकन से बुद्धि आती है सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने शास्त्र तो देखे नहीं अतएव इनकी बुद्धि हिमालय की चट्टानों को नीचा दिखलाती है। आर्यसमाजी बतलावें कि जल में उतरने के समय जब पृथ्वी एक बिलस्त की थी तो एक बिलस्त पृथ्वी चटाई की भांति लपेटी कैसे गई? वेद कहता है कि वराह ने जिस पृथ्वी का उद्धार किया, वह उद्धार के समय एक बिलस्त भर थी, देखिये—

इयतीह वाऽइयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेमूष
इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिरिति ॥

शत० १४। १। २। ११

पहिले भूमि प्रादेश मात्र थी उसका वराह ने उद्धार किया वही इस पृथ्वी का पति और प्रजा का पति है। आर्यसमाजियो! अविद्या के कारण ये झूठे लेख तुम्हारी समझ में वेद हैं इसके ऊपर हमको बड़ा रंज है।

प्रह्लाद चरित्र

स. प्र. पृ. ३४३ पं. २६–हिरण्यकश्यप उसका लड़का जो प्रह्लाद था वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ाने को पाठशाला में भेजता था। तब वह अध्यापकों से कहता था कि मेरी पट्टी में राम राम लिख देओ। जब उसके बाप ने सुना उसने कहा तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है? छोकरे ने न माना। तब उसके बाप ने उसको बांध के पहाड़ से गिराया, कूप में डाला परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खंभा आगी में तपाके उससे बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इसको पक-

ड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शंका हुई जलने से बचूंगा वा नहीं? नारायण ने उस खंभे पर छोटी छोटी चीटियों की पंक्ति चलाई। उसको निश्चय हुआ झट खंभे को जा पकड़ा।

वि०— पट्टी पर राम नाम लिख दो यह बात श्रीमद्भागवत में नहीं है, प्रह्लाद पूर्णभक्त और पूर्णज्ञानी हो चुका था वेद्यवस्तु को जान गया था इसका प्रमाण यह है कि उसके एक व्याख्यान में समस्त लड़के ईश्वर के भक्त बन गये। 'लोहे का खंभा' यह सत्यार्थप्रकाश का लेख गलत, खंभे का तपाना सुफेद झूठ, तपे हुये खंभे पर चीटियों की लाइन चलना यह मिथ्या लेख सत्यार्थप्रकाश के लेखक की चालबाजी, प्रह्लाद का खंभे को पकड़ना यह सर्वांश में गलत। सब जगह झूठ ही झूठ लिखना यह आर्यसमाज के प्रवर्तक का मोक्षदायक धर्म है और इस झूठे लेख पर आर्यसमाजियों को लज्जा नहीं होती यह भयंकर अनर्थ है। स्तंभ की कथा इस प्रकार है—

व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे।
मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन्ननु स्युर्विप्लवा गिरः॥ १२
यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते॥ १३
सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते।
गोपायेत हरिस्त्वाऽद्य यस्ते शरणमीप्सितम्॥ १४
एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा
सुतं महाभागवन्तं महासुरः।
खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासना-
स्तस्तम्भं तताड़ातिबलः स्वमुष्टिना॥ १५
तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो
बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत्।
यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः
श्रुत्वा स्वधामाप्ययमंग मेनिरे॥ १६
स विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा

निशम्य निर्हादमपूर्वमद्भुतम् ।
अन्तः सभायां न ददर्श तत्पदं
वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १७
सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं
व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वह-
न्स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ १८

भाग० स्कं० ७ अ० ८

हिरण्यकशिपु कहता है मैंने जान लिया अब तेरे मरने का समय करीब आ गया। जिनकी मौत करीब आ जाती है उनकी वाणी में साहस बढ़ जाता है ।१२। मंदभाग्य प्रह्लाद! तुमने जो मुझ से अन्य ईश्वर बतलाया वह कहां है? प्रह्लाद जवाब देते हैं कि सब जगह मौजूद है। हिरण्यकशिपु ने कहा कि यदि सब जगह है तो वह इस खंभे में दिखलाई क्यों नहीं देता? प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि "दृश्यते" दीखता है ।१३। बहुत बकवाद करनेवाला जो तू है अब मैं तेरे शिर को धड़ से अलग करता हूँ—तेरा रक्षक इष्टदेव जो ईश्वर है वह अब आकर तुझे बचावे ।१४। इस प्रकार क्रोध से बार बार कठोर वाणी से प्रह्लाद के हृदय को दुःख पहुँचाता हुआ वह महान् असुर खड्ग लेकर अपने आसन को छोड़ नीचे कूद पड़ा, अत्यन्त बलवान् जो राक्षस है उसने एक घूसा खंभे में मारा ।१५। उस समय उस खंभे से एक ऐसा भयंकर शब्द निकला कि मानो ब्रह्माण्ड का क्षय कर देगा जिसको सुनकर अपने लोक में बैठे हुये ब्रह्मादिकों ने संसार का प्रलय मान लिया ।१६। पुत्र के मारने में क्रोध करनेवाला हिरण्यकशिपु घूमता हुआ अपूर्व कठोर शब्द को सुन सभा के मध्य में देखने लगा कि यह शब्द कहां से आया किन्तु उस शब्द के स्थान का पता न लगा जिस शब्द से दैत्यों के यूथप त्रास पाने लगे ।१७। अपने भृत्य भक्त प्रहलाद की वाणी सत्य करने और मैं समस्त भूतों में व्याप्त हूँ इस बात को दिखाने के लिये एक अद्भुत रूप धारण कर खंभ में दिखाई देने लगा। वह रूप कैसा है? न तो पूरा शेर ही है और न पूरा मनुष्य। १८। यह प्रकरण है। इसमें न तो लोहे का खंभा बतलाया गया और न उसका तपाना, न चीटियों का लाइन बांधकर चलना और न प्रहलाद का खंभे को पकड़ना,

झूठे कलंक लगा कर संसार को श्रीमद्भागवत से घृणा करवाना यह सत्यार्थप्रकाश के लेखक का प्रयोजन है, क्या इन झूठे लेखों पर आर्यसमाज नीचा न देखेगी ?

सन् १९१३ में सीपरीबाजार झांसी में आर्यसमाज और सनातनधर्म से शास्त्रार्थ था। आर्यसमाज की तरफ से पं० रुद्रदत्त सम्पादकाचार्य ने यही प्रश्न रक्खा। हमने उत्तर में कहा कि यदि ये बातें श्रीमद्भागवत में दिखला दो तो हम आज ही आर्यसमाजी हो जावें। पं० रुद्रदत्त जी ने कहा कि यदि यह सब लेख श्रीमद्भागवत में न निकले तो मैं आर्यसमाज छोड़कर सनातनधर्मी हो जाऊँ। हमने कहा बस सब बहस खतम। श्रीमद्भागवत लाओ। श्रीमद्भागवत आई, रुद्रदत्त के आगे रक्खी। इसने पढ़कर बतलाया कि इसमें तो यह कुछ भी नहीं। हमने रुद्रदत्त से कहा कि तुम इधर आ जाओ क्योंकि अब सनातनधर्मी होना पड़ेगा। पं० रुद्रदत्त जी ने कहा कि मेरा कोई दोष नहीं मैंने सत्यार्थप्रकाश देखकर शंका की थी, मुझे यह खबर नहीं थी कि सत्यार्थप्रकाश भी झूठ लिखता है। पांच हजार आदमियों में आर्यसमाज सीपरी बाजार झांसी को नीचा देखना पड़ा था।

प्रह्लाद की इक्कीस पीढ़ी

स. प्र. पृ. ३४४ पं. ७–प्रह्लाद से कहा वर मांग। उसने अपने पिता की सद्गति होनी मांगी। नृसिंह ने वर दिया कि तेरे इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये। पुनः पृ. ३४४ पं० १७–भागवत् की रीति से ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु चौथी पीढ़ी में होता है। इक्कीस पीढ़ी प्रह्लाद की हुई भी नहीं पुनः इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये कह देना कितना प्रमाद है।

वि०— श्रीमद्भागवत का लेख यह है कि—

त्रिःसप्तभिः पिता पूताः पितृभिः सह तेऽनघ।

भाग० स्कं० ७ अ० १० श्लो० १८

हे निष्पाप ! तेरे इक्कीस पीढ़ी पितरों सहित पिता पवित्र हो गया। यहां प्रश्न यह है कि पीढ़ी तो तीन ही गुजरी हैं ? इसके ऊपर श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर जी लिखते हैं कि—

यद्यपि कश्यपो मरीचिर्ब्रह्मा चेति तत्पितुस्त्रय एव पूर्वजा· स्तथापि त्रिःसप्तभिः सहेति प्राक्कल्पगतपित्रभिप्रायेणोक्तम्।

यद्यपि पूर्वज तीन ही हुये हैं और यहां इक्कीस पीढ़ी लिखी हैं तो पूर्व कल्प के पितरों को लेकर इक्कीस पीढ़ी का उल्लेख है। स्वामी श्रीधर के लेख को न देखना और शंका कर देना क्या यह भी कोई न्याय है ?

अक्रूर का गोकुल जाना

स. प्र. पृ. ३४४ पं. २३–

रथेन वायुवेगेन। भा० स्कं० १० अ० ३९ श्लो० ३८

जगाम गोकुलं प्रति। भा० स्कं० १० पू० अ० ३८ श्लो० २४

अक्रूर जी कंस के भेजे हुये वायु के वेग के समान दौड़नेवाले घोड़ों के रथ पर बैठ के सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुंचे अथवा घोड़े भागवत बनानेवाले की परिक्रमा करते रहे होंगे ? वा मार्ग भूलकर भागवत बनाने वाले के घर में घोड़े हांकने वाले और अक्रूर जी आकर सो गये होंगे ?

वि०—यहां पर दो श्लोकों के एक एक पाद लेकर सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने आधा बनावटी श्लोक तैयार किया। देखिये बहिराइच में पं० बाबूराम जी शास्त्री और आर्यसमाज की तरफ से पं० रुद्रदत्त जी से शंका समाधान हुआ, यह आधा श्लोक भागवत में न मिला, आर्यसमाज बहिराइच को नीचा देखना पड़ा, तब संवत् १९६९ में यह पाठ "रथेनवायुवेगेन भा० स्कं० १० अ० ३९ श्लोक० ३८" "जगाम गोकुलं प्रति भा० स्कं० १० पू० अ० ३८ श्लोक० २४" ऐसा कर दिया गया, पाठक दोनों श्लोक देखें—

भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप।
रथेनवायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम्॥

भाग० स्कं० १० अ० ३९ श्लोक० ३८

राम और अक्रूर के सहित भगवान् श्रीकृष्ण वायुवेगवाले रथ से पापों के नाश करनेवाली भगवती यमुना के तट पर पहुँचे।

इति संचिन्तयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्त गिरिं नृप॥

भाग० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० २४

इस प्रकार अक्रूर मार्ग में भगवान् कृष्ण का चिन्तन करते हुये जिस समय सूर्य अस्त होने लगा उस समय रथ से गोकुल में पहुँचे।

सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने "रथेनवायुवेगेन" यह पाठ तो ३६ के अध्याय के श्लोक से ले लिया और "गोकुलं" इतना पाठ ३८ के अध्याय के श्लोक से लिया एवं उसको उल्टा रक्खा, पहिले ३६ के अध्याय का पाठ 'रथेनवायुवेगेन' यह और फिर ३८ के अध्याय का पाठ "गोकुलं" लिख दिया तथा "जगाम" और "प्रति" ये दो शब्द अपनी तरफ से मिलाये। इसको हम क्या कहें, छल कहें या चालाकी? इसी प्रकार यदि हम "दयानन्द पृ० ६१७ पं० ७" से लेकर और "पृ० ५४५ पं० ६" से मुसलमान ले एवं "थे" अपनी तरफ से मिला दें तो पाठ यह हो जावेगा कि "दयानन्द मुसलमान थे" हमारे इस लेख को आर्यसमाज मंजूर कर लेगी? कई एक आर्यसमाजी यह कहते हैं कि आप का ऐसा करना संसार को धोका देना तथा महापाप है तो फिर रथेन-वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति" ऐसा पाठ करनेवाले सत्यार्थप्रकाश के लेखक के लेख में धोका और महापाप क्यों नहीं? आर्यसमाजी इसका जवाब दें।

पूतना

स. प्र. पृ. ३४५ पं० ३–"पूतना का शरीर छः कोश चौड़ा और बहुतसा लम्बा लिखा है। मथुरा और गोकुल के बीच में उसको मारकर श्रीकृष्ण जी ने डाल दिया। ऐसा होता तो मथुरा और गोकुल दोनों दब कर इस पोप जी का घर भी दब गया होता।

वि०—यह कहना बिल्कुल असत्य, कि पूतना का शरीर छः कोश चौड़ा और कुछ अधिक लम्बा लिखा है। भागवत में पूतना की कथा देखिये—

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसु-
र्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि।
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप॥
पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्।
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम्॥

भाग द० पू० अ० ६ श्लो० १३।१४

श्री कृष्णजी ने जब उसको व्यथित किया और प्राण निकलने लगे तब शिर के केशों को फैला हाथ पैर को फेंक राक्षसी गोष्ठ में ऐसे गिरी जैसे इन्द्र का मारा वृत्रासुर गिरा था। १३। हे राजेन्द्र! पतमान पूतना का देह तीन गव्यूति के अन्तर्गत वृक्षों का चूर्ण कर गया, यह एक महान् आश्चर्य की बात हुई। १४।

वृक्षों का चूर्ण होना तड़फ से है क्योंकि कृष्णजी ने पूतना को ऊपर नहीं फेंका जो जमीन पर गिरती हुई ने वृक्षों का चूर्ण कर डाला हो। "निशाचरीत्थं" इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि पूतना गोष्ठ गौ बँधने के स्थान में गिरी "ईषामात्रोग्र दंष्ट्रास्यम्" इत्यादि श्लोकों से यह सिद्ध होता है कि मरते समय राक्षसीमाया से पूतना ने अपने शरीर को थोड़ा सा बढ़ा लिया। यदि कोई यह आग्रह कर बैठे कि लम्बाई चौड़ाई से ही है तो इसमें झूठ क्या? योगी मनुष्यों में अणिमादि सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है, मनुष्य को जो सिद्धियाँ योग से मिलती हैं वे विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत इस देवजाति में स्वभाव से होती हैं। क्या आर्यसमाजी यह नहीं जानते कि—

रूपं रूपं मघवावो भवीति ।

इन्द्र जैसा चाहे वैसा रूप धारण कर ले। यहां पर इन्द्र सब देवताओं का उपलक्षण है, समस्त देवता ही अपने शरीर को छोटा बड़ा बना सकते हैं, यही बात राक्षसों में भी है, जिसको राक्षसों के बदले हुये रूप देखना हो वह द्वितीय समुल्लास का "भूतप्रेत" शीर्षक लेख पढ़ डाले। देवताओं के विषय में तो निरुक्त ने यहां तक लिखा कि—

आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्व आत्मायुध
मात्मेषव आत्मा सर्वं देवस्य ।

निरुक्त दैवत कां० अ० १ पा० १

आत्मा ही इनका रथ होता है, आत्मा ही अश्व, आत्मा ही शस्त्र, आत्मा ही बाण, आत्मा ही सब कुछ होता है देवता का।

निरुक्त का यह कथन और शरीर बदलना ये दोनों ही इतिहास में पाये जाते हैं। शरीर के बड़े छोटे करने का उदाहरण यह है—

सोलह योजन मुख तेहिं ठयऊ ।
तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ ॥
जस जस सुरसा वदन बढ़ावा ।

तासु द्विगुण कपि रूप दिखावा ॥
शतयोजन तेहि आनन कीन्हा ।
अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥

तुलसी० रामा० सुन्द० कां०

कंस के भेजे हुये जितने भी दैत्य अघासुर-बकासुर आदि आये वे अपने रूप को त्याग बनावटी रूप बना कर मैदान में उतरे। पूतना की ही लीजिये-जब यह यशोदा के यहां पहुँची तब इसका रूप एक खूबसूरत स्त्री के समान था "तां केश बन्धव्यति-षक्तमल्लिकां० भाग० स्कं० १० अ० ६ श्लो० ५" देख लें, यदि मरते समय पूतना ने छः कोश या नौ कोश का राक्षसी माया से बनावटी स्वरूप बना लिया हो तो इसमें झूठ क्या हो गया। अगर पूतना मरने के समय गोकुल से दक्षिण या पश्चिम में गिरी तो फिर वृन्दाबन और मथुरा के दबने का प्रश्न ही न रहा।

अजामील

स. प्र. पृ. ३४५ पं. ४–अजामेल की कथा ऊटपटांग लिखी है उसने नारद के कहने से अपने लड़के का नाम "नारायण" रक्खा था। मरते समय अपने पुत्र को पुकारा। बीच में नारायण कूद पड़े। क्या नारायण उसके अन्तःकरण के भाव को नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्र को पुकारता है मुझको नहीं। जो ऐसा ही नाम माहात्म्य है तो आजकल भी नारायण के स्मरण करनेवालों के दुःख छुड़ाने को क्यों नहीं आते। यदि यह बात सच्ची हो तो कैदी लोग नारायण २ करके क्यों नहीं छूट जाते।

वि०—अजामील को देवर्षि नारद न कभी मिले और न उन्होंने लड़के का नाम नारायण रखने को कहा, मरते समय भी भगवान् नारायण अजामील के सम्मुख नहीं आये। श्रीमद्भागवत में तो यह लिखा है कि—

निशम्यं म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ।
भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाप्रतन् ॥

भाग० स्कं० ६ अ० १ श्लो० ३०

मरते हुये अजामील ने हरिकीर्तन किया इस स्वामी के कीर्तन को सुन पार्षद जो हैं वे बहुत जल्दी आये। कारण आने का यह है कि—

पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥

भाग० स्कं० ६ अ० २ श्लो० १५

मकान के ऊपर से गिरा हुआ या मार्ग में जो गिर पड़ा हो, जिसकी खोपड़ी आदि फूट गई हो, सर्प बिच्छू से दंशित, ज्वरादि से सन्तप्त, दण्डे आदि से किसी का मारा हुआ जो किसी प्रकार भी भगवान् का नाम ले ले फिर वह मरने के पश्चात् पाप कर्म द्वारा दण्डित नहीं होता।

बोपदेव

स. प्र. पृ. ३४५ पं. १३—यह भागवत बोपदेव का बनाया है जिसके भाई जयदेव ने गीतगोविन्द बनाया है। देखो! उसने ये श्लोक अपने बनाये "हिमाद्रि" नामक ग्रन्थ में लिखे हैं कि श्रीमद्भागवत पुराण मैंने बनाया है।

वि०—बोपदेव के बनाये ग्रन्थ का नाम "भागवत" है और यह "श्रीमद्भागवत" है। प्रथम तो नाम में फर्क, फिर बोपदेव का ग्रन्थ बहुत छोटा है और यह अठारह हजार श्लोक संख्या में है। बोपदेव का ग्रन्थ काव्य है और यह पुराण है। बोपदेव कृत "भागवत" नामक काव्य हमने हस्तलिखित कापी पर खेमराज के यहाँ बम्बई में देखा था और सेठ जी ने हमसे कहा था कि हम इसको छापेंगे, मेरी समझ में वह वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस में छप भी गया है। फिर श्रीमद्भागवत बोपदेवकृत है इसमें आर्यसमाजियों के पास क्या प्रमाण है? जो प्रमाण हो उसे संसार के आगे रक्खें।

सुमेरु पर्वत का परिमाणादि

स. प्र. पृ. ३४५ पं. ९—ऐसा ही ज्योतिष् शास्त्र से विरुद्ध सुमेरु पर्वत का परिमाण लिखा है और प्रियव्रत राजा के रथ के चक्र की लीक से समुद्र हुये, उच्चास कोटि योजन पृथिवी है। इत्यादि मिथ्या बातों का गपोड़ा भागवत में लिखा है जिसका कुछ पारावार नहीं।

वि०—इस विषय में जिसको विस्तृत लेख पढ़ना हो वह हमारा "पुराण वर्म" पढ़े। सामान्य उत्तर यह है कि सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने योगदर्शन और व्यासभाष्य को प्रमाणिक माना है एवं आर्यसमाज दानापुर ने योगदर्शन तथा उसके ऊपर व्यासभाष्य और भोजवृत्ति सहित छपवाया था, जो कुछ श्रीमद्भागवत में लिखा है वही इस विषय में व्यासभाष्य ने लिखा है व्यासभाष्य जब

आगे आवे तब तो सुमेरु आदि की कथा आर्यसमाजियों को प्रमाण और जब यही कथा भागवत में आवे तब गपोड़ा, आर्यसमाजियों का न्याय बड़ा अच्छा है।

मार्कण्डेय पुराण

स. प्र. पृ. ३४१ पं. २४--मार्कण्डेय पुराण के दुर्गापाठ में देवों के शरीरों से तेज निकल के एक देवी बनी उसने महिषासुर को मारा। रक्तबीज के शरीर से एक विन्दु भूमि में पड़ने से उसके सदृश रक्तबीज के उत्पन्न होने से सब जगत् में रक्तबीज भर जाना, रुधिर की नदी बह चलनी आदि गपोड़े बहुत से लिख रक्खे हैं। जब रक्तबीज से सब जगत् भर गया था तो देवी और देवी का सिंह और उसकी सेना कहाँ रही थी? जो कहो कि देवी से दूर दूर रक्तबीज थे तो सब जगत् रक्तबीज से नहीं भरा था? जो भर जाता तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणी और जलस्थ मगर, मच्छ, कच्छप, मत्स्यादि बनस्पति आदि वृक्ष कहां रहते? यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवाले पोप के घर में भाग कर चले गये होंगे।

वि०—इस लेख का प्रयोजन यह नहीं है कि संसार में और कुछ रहा ही नहीं, समस्त संसार में रक्तबीज ही रक्तबीज हो गये? जिस खेत में अधिक कांटे होते हैं तो मनुष्य यही कहते हैं कि इस खेत में कांटे ही कांटे हैं इसके माने ये नहीं कि चना हैं ही नहीं। इसी प्रकार रक्तबीजों की बहुतायत को देख कर यह पुराण ने लेख लिखा है इसमें अत्युक्ति अलंकार है जिसको सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने कभी स्वप्न में भी नहीं जाना।

फलित ज्योतिष्

स. प्र. पृ. ३४७ पं. ८–देखो ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है।

वि०—सत्यार्थप्रकाश में यह लेख बहुत बड़ा है इसमें फलित ज्योतिष् को झूठ बतला कर ब्राह्मणों को खूब गालियां दी हैं। सत्यार्थप्रकाश के लेखक की दृष्टि में फलित ज्योतिष् झूठ है तो बना रहे, वेद तो इसको झूठा नहीं मानता। वेद की दृष्टि में फलित

ज्योतिष् सर्वथा सत्य, सत्य का भी सत्य, जिसको यह जानना हो वह इसी ग्रन्थ के द्वितीय समुल्लास के "फलित ज्योतिष् मिथ्या" और "सूर्यादि ग्रह जड़" इन दो शीर्षकों के लेख को पढ़ लें।

ग्रहण

स. प्र. पृ. ३४९ पं. १४—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः।

यह सिद्धान्तशिरोमणि का वचन है और इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्तादि में भी है अर्थात् जब सूर्य और भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता है तब सूर्य-ग्रहण और जब सूर्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब चन्द्रग्रहण होता है। अर्थात् चन्द्रमा की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है।

वि०—यह भी लेख बड़ा है। इसमें प्रश्न यह है कि पृथ्वी की छाया पड़ने से चन्द्रग्रहण और चन्द्रमा की छाया पड़ने से सूर्यग्रहण होता है फिर राहु कहां गया? छाया पड़ने का जो प्रमाण दिया यह सिद्धान्तशिरोमणि का नहीं है सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने अपनी अनभिज्ञता से सिद्धान्तशिरोमणि का नाम लिखा, यह प्रमाण "ग्रह-लाघव" का है और ग्रहलाघव को सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में त्याज्य ग्रन्थ बतलाया है। तृतीय समुल्लास में जो ग्रन्थ आर्यसमाज को त्याज्य था एकादश समु-ल्लास में वही ग्रन्थ स्वतःप्रमाण हो गया, आर्यसमाज के ऐसे ऐसे उलट फेर को कोई कहां तक थेगली लगा कर दुरुस्त करेगा और 'राहु चन्द्र सूर्य पर कैसे आक्रमण करता है' इसका उत्तर यह है कि—

सोंऽधकारचरतां वहन्महि-
च्छायया विशति सोममण्डलम्।
दीपितापरदलेन्दुमंडल-
च्छायया सह च सूर्यमण्डलम् ॥ ३ ॥

विवाह वृन्दावन राहुसत्ताध्याय ७

वह राहु अन्धकारचारी के भाव को धारण करता हुआ पृथ्वी की छाया के साथ सोममण्डल नाम चन्द्रमण्डल को प्रविष्ट होता है। भाव यह है कि पृथ्वी की छाया

अन्धकाररूपिणी है और पृथ्वी की छाया के साथ विचरनेवाला राहु भी अन्धकार-चारी होता है, वह राहु पृथ्वी छाया की सहायता से चन्द्रमण्डल को ढक लेता है। दीपित नाम प्रकाशमान है, अपरदल (ऊर्ध्वभाग) जिसका ऐसे चन्द्रमंडल की छाया के साथ राहु अन्धकारचरता को धारण करता हुआ अर्थात् अंधकार रूप होकर सूर्यमंडल को ढक लेता है। भाव यह है कि अमावस्या के दिन ऊपर भाग में प्रकाश करनेवाले चन्द्रमा का नीचे का भाग अन्धकाररूप होता है उसी अन्धकाररूप चन्द्रमा के नीचे के भाग की छाया के सहित अन्धकाररूप राहु भी सूर्यमण्डल को ढक लेता है। इस कथन से जो कि गोल गणित में राहु को ढकनेवाला नहीं मानते किन्तु पृथ्वी छाया को ढकनेवाला मानते हैं और स्मृति आदिक राहु को ढकनेवाली मानती हैं इन दोनों का विरोध दूर हो गया।

चक्कर से पुराण सत्य

स. प्र. पृ. ४०४ पं० ११—श्रीमान् महाराज स्वायंभव मनु से लेके महाराज युधिष्ठिर तक का इतिहास महाभारतादि में लिखा ही है।

वि०—महाभारत में समस्त राजाओं का वर्णन और भारत का पूरा इतिहास नहीं है इसलिये सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने आदि शब्द जोड़ा, आदि शब्द से यहां पुराण ही लिये जावेंगे क्योंकि पुराणों से भिन्न ऐसा कोई ग्रन्थ संसार में नहीं है कि जिसमें भारत का इतिहास लिखा हो। यहां पर सीधे सीधे पुराण लिखने में शर्म आई तब पुराणों का बोधक आदि शब्द लिखा। जिस सत्यार्थप्रकाश ने पुराणों का घोर खण्डन किया और जिसने विष मिले हुये अन्न की भाँति दूर से त्याज्य बतलाया इतिहास के विषय में उसी सत्यार्थप्रकाश ने पुराणों के चरणों में शिर रख दिया, सचाई के ये ही माने होते हैं।

अस्पृश्यता

स. प्र. पृ. ४६७ पं. ३—जैसे अन्त्यजों की दुर्गन्ध के सहवास से पृथक् रहनेवाले बहुत अच्छे हैं जैसे अन्त्यजों की दुर्गन्ध के सहवास से निर्मल बुद्धि नहीं होती वैसे तुम और तुम्हारे संगियों की भी बुद्धि नहीं बढ़ती।

वि०—यहां पर अन्त्यजों की दुर्गन्धि से दूर रहना लिखा है और यह यहां ही

नहीं लिखा वरन् स्वामी दयानन्द जी ने "वायवे चाण्डालम यजु० अ० ३० मं० २१" के भावार्थ में लिखा है कि "भंगी के शरीर में आया वायु दुर्गन्धयुक्त होने से सेवने योग्य नहीं होता इत्यादि"। जब आर्यसमाज के मत में भंगी के शरीर का वायु भी अस्पृश्य है तो फिर भंगी अस्पृश्य क्यों नहीं? इस प्रकार अनेक स्थलों में अस्पृश्यता रहने पर भी आज उसको आर्यसमाजी नहीं मानते। यहां पर यही कहना पड़ेगा कि आर्यसमाजियों का कोई मत नहीं, ये नास्तिक हैं और देश में जैसी हवा चलती है उसी को वेदसिद्धान्त कहने लगते हैं।

इति एकादश समुल्लासः

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।



सावधान !

आज विदेशीय शिक्षा तथा मनचले मनुष्यों के संसर्ग से बच्चों के अन्तःकरण मलीन होकर उनके कोमल हृदय में नास्तिक भाव जम जाते हैं और वे उखेड़ने से नहीं उखड़ते। इसलिये लड़कों को आरम्भ से ही सावधान कर देना माता पिता का कर्तव्य है। जो बालक नीचे लिखे ग्रन्थों को पढ़ लेता है वह कभी किसी के बहकाने में नहीं आता, दृढ़ सनातन-धर्मी बना रहता है। ग्रन्थों के नाम व दाम नीचे देखिये।

धर्मप्रकाश ६ समुल्लास ५।), पुराणवर्म पूर्वार्द्ध ३), आर्यसमाज की मौत २), लीडरी पर लेग २), व्याख्यान दिवाकर का प्रथम भाग (धर्माक) २), व्याख्यान दिवाकर का द्वितीय भाग (भगवद्भक्ति) १॥), असली सत्यार्थप्रकाश सन् १८७५ का २), दयानन्द छल कपट दर्पण २), शास्त्रार्थत्रय कानपुर ॥), श्राद्धनिर्णय ।=), वर्णव्यवस्था ।=), शारदाबिल =), शास्त्रार्थ सुजानगढ़ =), भजनतरंग =), आर्यसमाज के आक्षेपों का उत्तर =), बनावटी वेद —)॥, वेद पर आरा —)॥, तीर्थ —)॥, संस्कार विधि समीक्षा —)॥, लीडर गुद गर्जन —), रमामहर्षि सम्बाद —), हनुमाननिर्णय —), अनोखा विजय —), लीडरों की नादिरशाही —), नमस्ते मीमांसा —), हिन्दु शब्द मीमांसा —), बोधप्राप्ति —), ईश्वर की साकारता —), आर्यसमाज में मूर्तिपूजा —), द्विजत्व में दियासलाई)॥, दयानन्द की आप्तता)॥, स्वामी पर कलंक)॥, स्वामी शिष्य संग्राम)॥, स्वामी गुरु कि चेला गुरु)॥, मांस विचार)॥, दयानन्द लीला)॥, जाली वेदमन्त्र)॥, दयानन्द मतदर्पण)॥, दयानन्द की बुद्धि)॥, धर्मसन्ताप)॥, दयानन्द हृदय)॥, नई चाल का भंडाफोड़)॥, दयानन्द मत सूची)॥, वैदिक धर्म पर कुल्हाड़ा)॥, वेद पर वज्रपात)॥, निराकार की घुड़दौड़)॥, दयानन्द की सभ्यता)॥, शास्त्रार्थमोहम्मदाबाद)॥, धार्मिक-गायनसंग्रह)॥, ठगों से सावधान)॥, हिन्दु भाग १ सम्पूर्ण १॥), हिन्दु भाग ६ सम्पूर्ण १॥), हिन्दु भाग ८ सम्पूर्ण १॥), षोड़श संस्कारविधि २॥), आर्यमतनिराकरणप्रश्नावली ।=), पुत्रकामेष्टि पद्धति ।), नरमेधयज्ञ मीमांसा)॥, नित्य हवन विधि)॥

नोट—समस्त पुस्तकों का डाक व्यय पृथक् होगा।

पुस्तक मिलने का पता—

कामताप्रसाद दीक्षित, मैनेजर-हिन्दु,

मु० पो० अमरौधा जि० कानपुर।

हिन्दु:

हमारे यहां से 'हिन्दु' नामक मासिक-पत्र निकलता है। इस पत्र में उन विधर्मी लेखों के मुँहतोड़ उत्तर दिये जाते हैं जो सनातनधर्म के खण्डन के लिये लिखे जाते हैं। धार्मिकजगत् में क्या हो रहा है और सुधारक लोग हिन्दू धर्म को मारनेवाली अपनी नवीन कल्पनाओं को संसार की उन्नति देनेवाली सिद्ध कर संसार को किस प्रकार लोभ देकर अपनी कल्पना की तरफ खैंचते हैं, यह जिसको जानना हो अथवा संसार के धर्मों में सबसे पहिला और सच्चा जिसका एक सिद्धान्त भी संसार के समस्त मजहब और दलीलों तथा नूतन आविष्कारों से न कटता हो या जिसके विद्याबल के सम्मुख संसार के समस्त मत औंधे मुँह गिर कर अपनी हार स्वीकार करते हों, ऐसे सनातनधर्म के गूढ़ तत्वों को जानने एवं आर्यसमाज झूठे झूठे जाल रच कर दूसरे मजहबों को किस प्रकार गिरा रहा है, इसके गिराने के हथकण्डों की पोल खोलने तथा सुधारकों के चलाये धर्मनाशक रस्म रिवाज की पोल दिखाने और कुटुम्ब में सभी लड़के धार्मिक रहें, धर्म के विरुद्ध कोई कदम न रक्खे, इस कार्य की सिद्धि के लिये भारतवर्ष में एक ही 'हिन्दु' मासिक-पत्र है। ऊपर के विषयों पर निर्भीकता के साथ शास्त्रीय युक्ति युक्त लेख लिखने में आज 'हिन्दु' की समता का कोई पत्र नहीं। ऐसे अनोखे और हिन्दुओं के अस्तित्व को रखनेवाले शास्त्रीय गूढ़ सिद्धान्तों को सुगम रीति से समझानेवाले 'हिन्दु' पत्र के आप ग्राहक नहीं बनते, यह बड़ी भूल कर रहे हैं। ऐसे ऐसे अनेक पत्र भारतवर्ष में न होने के कारण आज हिन्दुओं की धार्मिक स्थिति डांवांडोल हो रही है। अन्य समाचार पत्र ऐसे पवित्र लेखों को नहीं लिखते तो आप 'हिन्दु' को ही अपने घर में स्थान दें। जो यह ग्रन्थ आपके करकमलों में है ऐसा एक अनोखा ग्रन्थ 'हिन्दु' प्रति वर्ष निकाल कर ग्राहकों को अर्द्ध मूल्य में देता है। हमें आशा है कि आप जल्दी से जल्दी 'हिन्दु' के ग्राहक बनेंगे। इस पत्र का वार्षिक मूल्य १॥) रुपया है। इसके ग्राहक वर्ष भर में निकले हुये बारह पत्रों की फाइल बना कर जिल्द बँधवा कर रखते हैं और वह फाइल समय समय पर सनातनधर्म के विरोधियों को जवाब देकर उनका शिर नीचा कर देती है।

मिलने का पता—पं० कामताप्रसाद दीक्षित,
मैनेजर 'हिन्दु'
मु० पो० अमरौधा, जि० कानपुर।